

भारत में

In India

वार्षिक मूल्य	१५०-००
हाफव्यय (रजिस्ट्री से)	१०-००
इस प्रति का मूल्य	५०-००
हाफव्यय (रजिस्ट्री से)	३-००

Annual Subscription	150-00
Postage by Registered post	10-00
This copy	50-00
Postage by Registered post	3-00

नगर परिषद्, जयपुर

राजस्थान में उत्तरोत्तर विकासोन्मुख सतत प्रयत्नशील सभी गण्यमान्य निवासियों,
नागरिकों एवं श्रमिक वर्ग का हार्दिक अभिनन्दन करती है
एवं

राजस्थान की राजधानी और भारत के पेरिस गुलाबी नगर जयपुर के सौन्दर्य को अक्षुण्ण
बनाये रखने हेतु नगरपरिषद् के अध्यक्ष, पापंद एवं कर्मचारीगण नागरिकों से हर
संभव सहयोग प्रदान करने हेतु एवं निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर
विशेष रूप से ध्यान देने का आह्वान करते हैं :—

- सौन्दर्य युक्त नगर में स्वच्छता कायम रखने हेतु निश्चित स्थानों पर नगर परिषद् द्वारा स्थापित
सूरादानों में ही कृपा टालकर सहयोग प्रदान करें
- बाजारों एवं नगर के अन्य स्थानों में परिषद् द्वारा की गई विशेष जल एवं रोजनी की व्यवस्था
तथा नगर परिषद् द्वारा परिस्थापित सम्पत्ति की सुरक्षा करना हमारा कर्तव्य है।
- निमगानुसार सुव्यवहार स्थित भवनों को गुलाबी रंग से सुशोभित कर हमें सहयोग प्रदान करें।
- परिषद् के विभिन्न कार्यों का निमगानुसार भुगतान कर परिषद् को आर्थिक रूप से मजबूत बनाने में
हमें धार्मिक रूप से सहयोग दें।
- नगर में पुरातत्त्व के महत्त्व के स्थानों एवं भवनों पर किसी प्रकार के टूटनीहार एवं पोस्टर न
लगाएँ, नगर की सुन्दरता बनाए रखने में सहयोग दें।

नगर परिषद्, जयपुर द्वारा प्रसारित

भारती-शोधसार-संग्रह, खण्ड १, २

(Bhāratī-Śodha-Sāra-Saṅgraha, Sections I, II)

वर्ष १
(Vol. 1)

अप्रैल, १९७१
(April, 1971)

अंक १
(No. 1)

विषयसूची (List of Contents)

पृष्ठ (Page)	विषय (Contents)
१	विषयसूची (List of Contents) *
१	सन्देश (Messages)
६	परिचयात्मक विवरण
१६	Introductory Note
२३	देवनागरी अक्षरों के रोमन लिपि में अनुलेखन की पद्धति (Scheme of Transliteration of Devanagari characters into Roman script)
२४	भारतीशोधसारसंग्रह सारयोजना (Bhāratī-Śodha-Sāra-Saṅgraha Arrangement in the Abstracts)
२७	सारांशकरण के लिए पथप्रदर्शक संकेत
३०	Guide-lines for Abstraction
३३	संक्षेप देवनागरी लिपि की पत्र-पत्रिकाएं आदि
३५	Abbreviations and List of Journals etc. containing Papers etc. in Roman Script Abstracted in this Issue
३७	देवनागरी लिपि में प्रयुक्त सामान्य संक्षेप
३८	General Abbreviations Used in Roman Script

१-३७ पृष्ठ १—भारतीशोधसारसंग्रह

(Bhāratī Śodha-Sāra-Saṅgraha Section I)

सूचना—कोष्ठकों में निर्दिष्ट अंक उन सारों की क्रमसंख्याएँ हैं, जो पूर्व के विषयों के अन्तर्गत आ चुके हैं, परन्तु प्रस्तुत विषय से भी उन का सम्बन्ध है।

Note: Figures in brackets represent the serial numbers of those abstracts which have been classified under earlier subject-heads but are also related to the present subject.)

५२	गीता (Gītā)	१५२-१५४
५४	पुराण (Purāṇa)	(३२; १४६); १५५-१५८
५५	लौकिक संस्कृत-भाषा और साहित्य (Classical Sanskrit Language and Literature)	१५९-२५२
५५	महाकाव्य (Court Epics)	(६१); १५९-१६३
५६	मुक्तक काव्य (Lyric Poetry)	(३२; १०३); १६४-१८४
५८	सुमापित संग्रह (Anthologies)	१७३-१८०
६१	स्तोत्र (Hymns)	१८१-१८४
६१	गद्य (Prose)	१८५-१८९
६२	नाटक (Drama)	१९०-१९३
६४	सामान्य अध्ययन (General Study)	(४७; ८१); १९४-२१६
७३	गीतिकाव्य (Lyric Poetry)	२१७-२२६
७८	सामान्य अध्ययन (General Study)	२२७-२३२
७९	साहित्यशास्त्र (Rhetorics)	(१३६); २३३-२४३
८३	श्लोककार (Figures of Speech)	२४४-२४५
८३	नाट्यशास्त्र (Dramaturgy)	२४६-२५३
८६	विविध (Miscellaneous)	२५४-२५६
८७	धर्म और दर्शन (Religion and Philosophy)	२५७-४३८
८७	ईरानी मत (Zoroastrianism)	२५७
८७	जैनमत (Jainism)	२५८-३१८
१००	बौद्धमत (Buddhism)	(२६५; ३०४); ३१९-३२८
१०४	सांख्य (Sāṅkhya)	(२६७; २६५); ३२९-३३१
१०५	योग (Yoga)	(८६; २८५); ३३०-३३४
१०६	न्याय (Nyāya)	(२६५; ३२२); ३३५-३३८
१०८	वैशेषिक (Vaiśeṣika)	(२६७; २६५); ३४०-३४८
१११	पूर्वमीमांसा (Pūrva-Mīmāṃsā)	(४३; ६८; ७८; २६५); ३४९-३५०
११२	वेदान्त (Vedānta)	(२०; ४०; ४४; ५५; ४७; ६५३; १५४; १८७; १८९; २६७; २६५; ३१८); ३५१-३६५

१५८ भाषाशास्त्र (Linguistics)	(२५-२७; ४१; ५४; ५५; ५७; ५९; ६०; ६२-६६; ७७; १०५; १०६; १२६; १२७; ४३६; ४४३; ४५४; ४५८);	५०७-५५२
१७३ पदार्थविज्ञान (Physical Sciences)	(११०-११३; ११७; ११८; ३४१; ३७६; ३७८);	५५३-५५४
१७४ चिकित्साशास्त्र (Medical Sciences)	(२२; ३८; ४८; ११६; १२०; ४१८);	५६०
१७६ तकनीकी (Technology)	(१२२; १२४);	५६१-५६४
१७८ सिंचाई (Irrigation)		५६५
१७९ ललित कलाएं (Fine Arts)	(४२४);	५६६-५७०
१७९ चित्रकला (Painting)		(४२४); ५६६
१७९ हस्तशिल्प (Handicrafts)		५६७-५६८
१७९ नृत्यकला (Dancing)		५६९
१८० संगीतकला (Music)		५७०
१८० कृषि (Agriculture)		५७१
१८० युद्धविद्या (Science of Warfare)		५७२
१८१ सामान्य अध्ययन (General Studies)		५७३-५७९
१८४ ज्योतिष (Astronomy & Astrology)	(१६; १८; ६६; ११४; १४९; ४२५);	५८०-५९२
१९० गणित (Mathematics)	(११५; ११६);	५९३-६०२
१९६ पुरातत्त्व (Archaeology)	(५२०);	६०३-६२३
२०४ सिन्धुघाटी संस्कृति (Indus Valley Culture)	(६४; ६६; ४२४);	६२४-६२९
२०६ उत्कीर्ण लेख (Inscriptions)		६३०-६४३
२१० मूर्तिकला (Sculpture)		६४४-६५०
२१४ आर्यसमस्या (Aryan Problem)	(३०; ६७);	६५१-६५२
२१५ वैदिक युग का इतिहास (History of Vedic Age)	(२६; ३१; ६५; ६६; ६८; १३१; १३२)	
२१५ वेदोत्तरकालीन प्राचीन भारत का इतिहास (History of Ancient India....Post-Vedic)		६५३-६५८
२१८ मध्यकालीन भारत का इतिहास (Medieval Indian History)	(१७८);	६५९
२१८ आधुनिक भारतीय इतिहास (Modern Indian History)	(३८२; ३८३; ४०१);	६६०-६६५
२२० राजस्थान का इतिहास-राजनीतिक (History of Rajasthan....Political)		६६६-६७१
२२२ राजस्थान का इतिहास-सांस्कृतिक (History of Rajasthan....Cultural)	(४५६; ६११; ६२३; ६६८);	६७२-६७३
२२४ दक्षिण भारत का इतिहास (History of South India)		६८०-६८३

२३०	एशियाई अध्ययन (Asiatic Studies)	६६०-६६५
२३२	विदेशों से सम्पर्क (Indian Contacts with Foreign Countries)	६६६-६६७
२३३	भारतीय राजनीति (Indian Polity) (८; १६; १०२-१०४; १७४-१७६; ४१७);	६६८-७०७
२३७	भारतीय शिक्षा (Indian Education) (३८३; ३८८; ३८९);	७०८
२३७	लोकसंस्कृति (Folk Culture) (३८; ५२; ८७; ४१८; ४२३-४२५; ४२७-४३०);	७०९; ७१०
२३८	विविध (Miscellaneous)	७११-७१४
२३९	गोष्ठियां आदि (Seminars etc.)	७१५-७२४

अनुक्रमणिकाएं (Indices)

२४२	सारकानुक्रमणिका (Abstractor's Index)
२४४	देवनागरी लिपि में अंकित लेखक नामों की अनुक्रमणिका
२४९	Index of Names of Authors Recorded in Roman Script
२५२	Index of Important Words and Subjects Recorded in Roman Script
२५९	पद एवं विषयानुक्रमणिका
२७८	सांख्यिकी विज्ञापण (Statistical Analysis)
२७९	देवनागरी लिपि में प्रयुक्त सामान्य संक्षेप
२८०	General Abbreviations Used in Roman Script

खण्ड २—लेख, समीक्षा और विज्ञापन

Section II—Papers, Reviews and Advertisements

इस खण्ड की विस्तृत सूची अलग से इस खण्ड के प्रारम्भ में दी गई है।

Detailed contents of this Section have been given separately in the beginning of this Section.

विज्ञापन

१. नगर परिषद्, जयपुर
२. Bharati Mandira Anusandhana Shala, Jaipur
३. दी बैंक ऑफ राजस्थान लिमिटेड, जयपुर

४. नगरविकासन्यास, जयपुर
 ५. अल्प वचत एवं स्टेट लाटरीज विभाग, राजस्थान, जयपुर
 ६. Jaipur Printers, Jaipur
 ७. L. M. B. Hotel, Jaipur
 ८. राज्य परिवार नियोजन संस्थान, राजस्थान, जयपुर
 ९. राजस्थान राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक लि०, जयपुर
 १०. जयपुर वॉटलिंग कम्पनी, फोटवाड़ा (जयपुर)
 ११. कृष्णा एजेन्सीज, किशनपोल बाजार, जयपुर-३
 १२. जनसम्पर्क कार्यालय, राजस्थान सरकार, जयपुर द्वारा राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
-

भारतीशोधसारसंग्रह के प्रकाशक

१. इस सारसंग्रह को अधिकतम उपयोगी बनाने के निमित्त सुधारों के लिए सुझाव
२. सारोकरण के लिए पुस्तकों और पत्रिकाएं आदि (खण्ड २ से विनिमय में/निःशुल्क)
३. आदरी सारक बनने के लिए आवेदन
४. विज्ञापन
५. समीक्षा के लिए पुस्तकों (दो प्रतियां)
६. क्रियमाण और निष्पन्न शोध की सार-सहित सूचना

आमन्त्रित करते हैं ।

टिप्पणी-१. प्रकाशक और लेखक अपने प्रकाशनों आदि के सार निर्धारित जैली पर भेज सकते हैं ।

२. गोष्ठियों आदि में पठित अप्रकाशित लेखों के सारों के प्रकाशन का मुद्रणव्यय लिया जाता है ।

३. विज्ञापन दरें पृष्ठों पर सूचित की जाएंगी ।

Publishers of the Bhārati-Śodha-Sāra-Saṅgraha invite

1. Suggestions for improvement of this abstract to make it most useful
2. Books, journals etc. for abstraction (in exchange with Section II/free)
3. Applications for becoming honorary abstractors
4. Advertisements
5. Books (two copies) for review
6. Informations with abstracts about research being conducted or completed.

Notes : 1. Publishers and authors can send abstracts of their publications on the models set in this abstract.

2. Cost of printing etc. of the abstracts of unpublished papers etc. read in symposiums etc. is charged.

3. Advertisement rates will be intimated on enquiry.

सन्देश (Messages)

भारतीशोधसारसंग्रह की योजना

पर

चुने हुए सन्देशों और सम्मतियों के अंश

(Extracts from selected messages and opinions on
the scheme of the Bhāratī-Śodha-Sāra-Saṅgraha)

Letter No. F. 2-G/71 dated 1. 9. 1971 from Shri K. R. Gupta, Additional Private Secretary to the **President**, President's Secretariate, Rashtrapati Bhavan, New Delhi—4 :

• “The President is glad to know from your letter of the 28th August, 1971, that you propose to bring out a magazine on research in Indology, entitled “Bharati Sodh Sara Samgraha”. He sends his best wishes for the success of your endeavour”.

Letter no. VP (PS)-3516/71 dated November 11, 1971 from Shri V. D. Phadke, Secretary to the **Vice-President of India**, New Delhi :

I am desirous to acknowledge, with thanks, the receipt of your letter dated the 5th November, 1971 addressed to the Vice-President of India regarding your proposed project.....He is...glad to know of your venture and sends you his best wishes for the success of your undertaking.

Message dated 22nd November 1971 from Shri K. K. Shah, Governor of **Tamil Nadu**, Raj Bhavan, Madras-22 :

I am glad to know that under the auspices of Bharati Mandira Anusandhan Shala of Jaipur, the inaugural issue of an indological quarterly abstract by name “Bharati Sodha Sara Samgraha” is proposed to be published. This will be very helpful to research scholars and I wish the publication every success.

श्री शेरसिंह, राज्यमन्त्री, कृषिमन्त्रालय, नई दिल्ली का सन्देश संख्या १८१/रा.मा./
कृ.मं./७१ दिनांक नवम्बर १२, १९७१ :

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि भारती मन्दिर अनुसन्धान शाला "भारती-शोध सार संग्रह" के नाम से भारतीय विद्याओं के सम्बन्ध में एक त्रैमासिक सार संग्रह पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ कर रही है। देश में विश्वविद्यालयों के विस्तार एवं प्रसार के साथ-साथ अनुसन्धान सम्बन्धी गतिविधियों एवं सुविधाओं का भी विस्तार हुआ है। किन्तु विभिन्न संस्थाओं एवं विद्वानों द्वारा किया गया अमूल्य अनुसन्धान कार्य समुचित प्रचार एवं सम्पर्क के अभाव में अपने क्षेत्र तक ही सीमित रह जाता है और अनुसन्धान विद्यार्थी एवं जिज्ञानु उनसे समुचित लाभ नहीं उठा पाते। इस में कोई सन्देह नहीं कि आयोजकों का यह प्रयास इस अभाव की पूर्ति करेगा और विभिन्न क्षेत्रों में प्रकाशित होने वाले लेख तथा पत्र और समीक्षाओं का सार संग्रह एवं संदर्भ भारती शोध सार संग्रह के माध्यम से जिज्ञानुओं को प्राप्त होता रहेगा। आशा है कि यह प्रकाशन विद्वानों एवं अनुसन्धान विद्यार्थियों, दोनों के लिये ही समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगा।

में भारती शोधसार संग्रह की सफलता की हार्दिक कामना करता हूँ।

Message from **Shri Shiv Charan Mathur, Minister For P. W. D., Power & Public Relations, Jaipur (Rajasthan)** dated 15 November, 1971 :

It gives me great pleasure to learn that an indological quarterly abstract 'Bharati Sodha Sara Sangraha' is proposed to be published. From the format one can look forward to the fulfilment of an ambitious promise. Indeed, the scope of indological survey defies all attempt at encompassing it. The classical languages were current one day and there be many a niche in various hamlets rich with oriental lore, leave alone the numerous inaccessible princely libraries. There is a cheering glimpse of a sweeping attempt at emotional integration, as well, in this multilingual project. The light has, after all, to shine forth from the campuses.

I look forward to the immense benefit accruing to the scholars and the laymen alike here and abroad.

Wish you Godspeed.

Message dated 23rd November, 1971 from **Shri Barkatullah Khan, Mukhya Mantri, Rajasthan, Jaipur** :

I am very happy to learn that the inaugural issue of an indological quarterly abstract 'Bharati Sodha Sara Samgraha' is being edited by Dr. Sudhir Kumar

Gupt. I hope it will cover research work done in India and abroad in the various languages of the world. The abstract will have an international circulation and importance. It will at the same time promote Hindi and will familiarise Hindi knowing persons with the latest researches etc. in indology who have no access to works in foreign languages.

I convey my blessings and good wishes for the success of this publication.

Letter no. VC/71/1660 dated 4.5.1971 from Shri V. V. John, Vice-Chancellor, The University of Jodhpur, Jodhpur :

“I have no doubt this will be an invaluable reference aid to scholars”.

डॉ० ए० बी० लाल, कुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान) का सन्देश क्रमांक १८३६/कु. प./७१ दिनांक ११ नवम्बर, १९७१ :

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि भारती मन्दिर अनुमन्वान जाला, ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित प्राच्यविद्या विषयक समस्त लेखों, समीक्षाओं और टिप्पणियों आदि की त्रैमासिक तालिका-त्मक सारपत्रिका निकालने का निश्चय किया है। शिक्षकवर्ग को ही नहीं अपि तु शोध कार्यकर्ताओं के लिये यह पत्रिका उपयोगी सिद्ध होगी। ऐसी पत्रिका की हिन्दी जगत में नितान्त आवश्यकता है। निःसन्देह डॉ० एम० के गुप्ता का यह मुन्दाव सराहनीय है। मैं आशा करता हूँ कि आपके इस प्रयाग में समस्त भागीदारों का सहयोग मिलेगा। मैं इसकी सफलता की कामनायें करता हूँ।

सुभ कामनाओं सहित

डॉ० मयूरानन्द नर्मा, एम० ए०, डॉ० निद्म, डायरेक्टर श्रीक एज्युकेशन, राजस्थान (गिटापर्ष), [मु० ए० उपकुलपति राजस्थान विश्वविद्यालय], डायरेक्टर श्रीक राजस्थान इन्स्टीट्यूट श्रीक हिस्टोरिकल रिमस, रामगु मार्ग, भी नलीम, जयपुर-१ का सन्देश दिनांक २४. ११. ७१ :

शोध सार संग्रह उपाय के लिये अभिवर्तनीय मैगजिनी पत्रिका है जिसका सम्पादन डॉ० सुन्दर कुमार जी गुप्ता द्वारा किया जा रहा है। सम्पादन, डिप्टी एडिटर डॉ० वकील जी गुप्ता और एडिटर डॉ० लाल कृष्ण शर्मा जीक द्वारा किया जा रहा है। प्रकाशकों में डॉ० सुन्दर कुमार गुप्ता जीक का सहयोग है। प्रकाशकों को सम्पादन के लिये डॉ० सुन्दर कुमार गुप्ता जीक का सहयोग है। प्रकाशकों को सम्पादन के लिये डॉ० सुन्दर कुमार गुप्ता जीक का सहयोग है। प्रकाशकों को सम्पादन के लिये डॉ० सुन्दर कुमार गुप्ता जीक का सहयोग है। प्रकाशकों को सम्पादन के लिये डॉ० सुन्दर कुमार गुप्ता जीक का सहयोग है।

Letter dated 31. 3. 1971 from **Dr. M. B. Emeneau, Professor of Sanskrit and General Linguistics, Deptt. of Linguistics, University of California, Berkeley, California 94720 :**

“Your proposed publication should be very useful”.

Letter dated 24. 4. 1971 from **Dr. G. V. Devasthali, Director, Centre of Advanced Study in Sanskrit (Near Arts Faculty), University of Poona, Poona 7 :**

“The भारतीय शोधसार संग्रह, as I understand it from the pamphlet you have sent me, can easily be described as quite an ambitious project which of course will not only satisfy a great need in the field of Oriental Research, but is sure, at the same time to inspire a large number of young scholars to do some research in the field of their choice. But the real benefit of such a journal is that it will keep younger (nay even seasoned) researchers in touch with the latest views held and expressed by scholars in any part of the world (in any language almost) without any trouble. This would mean a lot for a research scholar who will be saved all the trouble and time that he would otherwise have to devote to keep himself uptodate.

I have no doubt that under your able guidance this journal will soon make its mark and prove itself an indispensable item in the equipment of a research worker in Orientology in all its branches.

I wish the journal all success and congratulate you on your having had such a wide vision to plan this inspiring project and wish you a long healthy life to steer it for many years to come and to train a younger generation of scholars to safeguard its continuity”.

Letter dated 5. 5. 71 from **Dr. Surya Kant, Retired Professor and Head, Department of Sanskrit, Kurukshetra University, F. 75, Green Park, New Delhi :**

“Your energy is tremendous and your discrimination judicious...this plan will prove of immense help to the researches in India in case it is regular and permanent. I wish the Rajasthan Govt. extend their help to you in this. I should very much appreciate if your Univ. encourages this venture in a practical manner”.

डॉ० मङ्गल देव शास्त्री, मङ्गल भवन, २४/६ शक्ति नगर, देहली ७ का पत्र
दिनांक १८. ५. ७१ :

“आप की ‘भारती शोधसार संग्रह’ की योजना बहुत अच्छी है। इस को स्यायित्व प्राप्त हो,
यही चाहता हूँ। मेरी बधाई और शुभांशु को स्वीकार कीजिए।”

**Letter from Dr. Ramji Upadhyaya, Professor and Head, Sanskrit
Department, Sagar University, Sagar :**

“I have appreciation for the scheme which you have undertaken. It will
greatly help the progress of Indological studies. I wish you success in your
project”.

**Letter no. FA/S/1963 dated May 14/17, 1971 from Dr. Satya Vrat,
Professor and Head of the Department of Sanskrit, Faculty of Arts, Univer-
sity of Delhi, Delhi-7 :**

“I am glad to know of the ambitious project of ‘Bharati Sodha Sara
Samgraha’ undertaken by you. The stupendous task that you have taken upon
yourself is difficult in execution but fascinating in result. I congratulate you on
this and hope that you with your indefatigable energy will be able to see
through it”.

डॉ० सत्येन्द्र, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर का पत्र
दिनांक १८. ६. ७१ :

“भारती मन्दिर षट्पुस्तकालय नामा द्वारा ‘भारतीयशोधसारसंग्रह’ के प्रकाशन की योजना
बहुत ही प्रशंसनीय है। आप ने जो सादर्भ (Specimen) भेजा है, उसे देखकर मैं यह कहता हूँ कि
भारतीय विद्या के षट्पुस्तकालय-संग्रह के लिए आप उपयुक्त तथा उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करने का योग्य हैं।
मेरी बधाई स्वीकार करें। मुझे पूरा यकीन है कि आप इस के प्रकाशन में सफल होंगे और समाज-हित
करेंगे।”

Letter no. 10421 S dated August 9, 1971 from **Dr. D. N. Shukla, Senior University Professor and Head of the Department of Post-graduate Studies and Researches in Sanskrit, Panjab University, Chandigarh 14 :**

‘ Bharati Sodha may bring a Laurel ’

Letter no. 12881/71-72 dated 18th August, 1971 from **Dr. R. N. Dandekar, Hony. Secretary Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona 4 (India) :**

“I find the scheme prepared by you for the Indological Abstract quite sound, and I feel sure that, if it is implemented in the same careful manner, the Abstract will prove a great boon to students and teachers of Indology.

I send you my very best wishes”.

Letter dated the 16th Novr. 71 from **Dr. Prof. Ziauddin Khan, Head, Department of Public Administration, University of Rajasthan, Jaipur :**

Bharati Sodha Sara Sangraha is an attempt in the direction of providing good references in Hindi towards the study of various Social Sciences. It not only covers a wide area, it gives in brief summaries of the materials available, together with the easy method for locating them.

I particularly like the efforts of Dr. S. K. Gupta, because of the system adopted, scope for extending its frontiers, the care with which the summaries are made and above all the labour of love involved in it. The motivating concern of the endeavour is to serve the cause of Hindi. I only wish that it is backed by a supporting fund quite sufficient to sustain the seedling to a sumptuous collection, servicing the needy in the fields.

of research. The different disciplines in India and many other countries have been classified into (1) science (2) arts, and (3) commerce. A very efficient abstract service has existed since long in the various disciplines belonging to science. The same does not seem to be true of the various disciplines belonging to arts and commerce. I hope and trust that the workers, particularly working in the fields of arts and commerce, would extend their help to the editor of the journal in making the journal a success.

श्री युधिष्ठिर मीमांसक, सम्पादक वेदवाणी, श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट, २३२, माडल टाउन, सीनीपत (हरयाणा) का पत्र दिनांक ११. १. ७१ :

आपने सार संग्रह पत्रिका की जो योजना बनाई है निस्सन्देह उपयोगी है ।

श्री धर्मपाल मैनी, रीडर एण्ड हेड ऑफ दी डिपार्टमेंट ऑफ हिन्दी, गुरु नानक यूनिवर्सिटी, अमृतसर का पत्र दिनांक २८. १. ७१ :

यह जानकर विशेष प्रसन्नता हुई कि आप 'भारती शोध सार संग्रह' प्रकाशित कर रहे हैं ।

डॉ० पुष्पोत्तम लाल मेनारिया, एम० ए० (पीएच० डी०) साहित्यरत्न, उपनिदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर का पत्र संख्या एक० १/३० नि०/राप्राविप्र०/७०/३८६ दिनांक ६/६. २. ७१ :

“भारती मन्दिर अनुसन्धान शाला की योजना अति प्रशंसनीय है । प्रतिष्ठान की पत्रिका पुनः पीछे ही प्रकाशित हो रही है और आपको सेवा में पहुँचेंगे । साथ ही यहाँ के प्रकाशन भी यथा-समय समीक्षा हेतु आपकी सेवा में पहुँचेंगे । प्रतिष्ठान के विज्ञापन जनसम्पर्क कार्यालय, जयपुर से दिये जाते हैं । इस विषय में यहाँ से भी संस्तुति की जा रही है ।

Letter dated 6th March, 1971 from Dr. Ganesh Umakant Thite of Centre of Advanced Study in Sanskrit, University of Poona, 21, Erandawana, Gavathan, Poona 4 :

I agree to cooperate with you as far as possible.

I very much appreciate your proposed work.....Further I would also

परिचायक विवरण

प्रायोजना का इतिहास

१. एक नई भारतीय सारपत्रिका प्रस्तुत करने का सीभाग्य हमें प्राप्त हुआ है। इस प्रायोजना के परिचय और प्रस्तुत अंक के विषयों पर एक विहंगम दृष्टि, हमें विश्वास है, सब को इस सारपत्रिका की आवश्यकता को हृदयंगम करा देगी। जैसा नवम्बर १९७० में प्रकाशित इस सारपत्रिका-विषयक परिचायक साहित्य में दिखाया गया है रसायनशास्त्र और सांख्यिकी जैसे विज्ञान के विषयों में सारसंग्रहों के आदर्श पर नियोजित और क्रियान्वित भारतीयविद्या की सब ही या किसी शाखा की कोई सारपत्रिका नहीं है। लुई रेनो और २० न० दाण्डेकर तथा अन्यो की परम बहुमूल्य पुस्तकतालिका सेवाएं क्षेत्र और प्रस्तुतीकरण में सीमित हैं क्यों कि वे विरले ही उन में सूचीकृत लेखों का सार देती हैं। अतः उन्हें केवल तालिकात्मक संदर्भसूची ही माना जा सकता है। प्राचीन भारतीय इतिहास और पुरातत्त्व तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों के (इण्डक्स इण्डिया जैसे) सारसंग्रह भी इसी श्रेणी में आते हैं।

२. कुट्टक्षेत्र विश्वविद्यालय द्वारा चालू किया गया 'प्राची ज्योति' सारसंग्रह कुछ समय तक उबलव्य रहा। यह १९६६ में निलम्बित कर दिया गया। डॉ० गोपिका मोहन भट्टाचार्य के एक पत्र से ज्ञात हुआ है कि यह सारपत्रिका शीघ्र ही उन के सम्पादकत्व में पुनः निकलने वाली है। हम कुट्टक्षेत्र विश्वविद्यालय के इस निर्णय का स्वागत करने हैं, तथापि, भूत में इस सारसंग्रह की नीति और वास्तविक क्षेत्र उत्तरे पर्याप्त विस्तृत नहीं थी कि एक नया सारसंग्रह अनविद्यक रहता।

३. यह भी अनुभव किया गया कि सामान्यतया भारतीय भाषाओं के माध्यम से किया गया शोध कार्य, चाहे जित किन्हीं भी कारणों से ही, उपेक्षित और अलक्षित रहा है। यह शोध अनेक क्षेत्रों में और पर्याप्त विज्ञान है। यह प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक सभी सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व करता है। शोध की प्रणाली और तकनीकी विविध प्रकार की हैं। क्यों कि वैज्ञानिक रूप में यह व्याख्यान करना अति दुष्कर है कि क्या युक्त है और क्या अयुक्त, अतः अमान्यक और निम्नरा विद्वान् के लिए इन शोध में मनभिन रहना कठिन है। यह भी सत्य है कि पश्चिमी की शोध कर अन्य विदेशी भाषाओं की भाषाओं विद्वान् की यत्न सी गोज्ज् वृत्तों की, विशेषतः एण-भाषाविद्वानों को अनुपलब्ध होने के कारण अज्ञात रहती है।

शोध के स्तर में विरायट

suggest that in the proposed quarterly journal there should be a list of the subjects of works of research for the degrees of Ph. D., D. Litt. etc. in various universities, on which the work is in progress. Similarly very brief abstract of theses accepted for the Ph. D. etc. should also be included. Along with the papers in journals, periodicals etc. papers published in commemoration volumes or in such occasional collective publications should also be abstracted for your journal.

Finally I wish the best success for the work you have proposed to undertake.

श्री भगवद्दास वेदालंकार, सम्पादक, गुरुकुल पत्रिका, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, गुरुकुल कांगड़ी, जिला सहारनपुर (उ० प्र०) का पत्र दिनांक ६. ४. ७१ :

आपका प्रयत्न सराहनीय है और शोधकर्त्ताओं के लिये परम सहायक है ।

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल, एम० ए०, पीएच० डी०, शास्त्री, निदेशक, जैन साहित्य शोध संस्थान, महावीर भवन, सवाई मानसिंह हाइवे, जयपुर-३ (राज०) का पत्र दिनांक ११ अप्रैल, १९७१ :

भारती मन्दिर अनुसन्धान शाला की तालिकात्मक सारपत्रिका प्राप्त हुई । धन्यवाद । राजस्थान विश्वविद्यालय पुरी में भारती मन्दिर अनुसन्धानशाला की स्थापना कर के आपने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । आपके सुयोग्य निदेशन में इस अनुसन्धानशाला से प्राच्यविद्या के अध्ययन को विशेष प्रोत्साहन मिलेगा ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है ।

आपके प्रत्येक कार्य में मुझे सहयोग देने में पूर्ण प्रसन्नता होगी ।

Letter dated 20th September 1971 from **Dr. S. G. Kantawala, Reader in Sanskrit, Faculty of Arts, The M. S. University of Baroda, Baroda 2 India :**

“Such an abstract published by you would be a very useful tool to the researchers in Indology and I wish all success to this your undertaking.”

परिचायक विवरण

प्रायोजना का इतिहास

१. एक नई भारतीय सारपत्रिका प्रस्तुत करने का सीभाव्य हमें प्राप्त हुआ है। इस प्रायोजना के परिचय और प्रस्तुत श्रृंख के विषयों पर एक विहंगम दृष्टि, हमें विश्वास है, सब को इस सारपत्रिका की आवश्यकता को हृदयंगम करा देगी। जैसा नवम्बर १९७० में प्रकाशित इस सारपत्रिका-विषयक परिचायक साहित्य में दिखाया गया है रसायनशास्त्र और सांख्यिकी जैसे विज्ञान के विषयों में सारसंग्रहों के आदर्श पर नियोजित और क्रियान्वित भारतीयविद्या की सब ही या किसी शाखा की कोई सारपत्रिका नहीं है। लुई रेनो और २० न० दाण्डेकर तथा अन्यों की परम बहुमूल्य पुस्तकतालिका सेवाएं क्षेत्र और प्रस्तुतीकरण में सीमित हैं क्यों कि वे विरले ही उन में सूचीकृत लेखों का सार देती हैं। अतः उन्हें केवल तालिकात्मक संदर्भसूची ही माना जा सकता है। प्राचीन भारतीय इतिहास और पुरातत्त्व तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों के (इण्डैक्स इण्डिया जैसे) सारसंग्रह भी इसी श्रेणी में आते हैं।

२. कुम्भेश्वर विश्वविद्यालय द्वारा चालू किया गया 'प्राची ज्योति' सारसंग्रह कुछ समय तक उपलब्ध रहा। यह १९६६ में निलम्बित कर दिया गया। डॉ० गोपिका मोहन भट्टाचार्य के एक पत्र से ज्ञात हुआ है कि यह सारपत्रिका शीघ्र ही उन के सम्पादकत्व में पुनः निकलने वाली है। हम कुम्भेश्वर विश्वविद्यालय के इन निर्णय का स्वागत करते हैं, तथापि, भूत में इन सारसंग्रह की नीति और वास्तविक क्षेत्र उत्तरे पर्याप्त विस्तृत नहीं थे कि एक नया सारसंग्रह अनावश्यक रहता।

३. यह भी अनुभव किया गया कि सामान्यतया भारतीय भाषाओं के माध्यम से किया गया शोध कार्य, चाहे जित दिग्दर्शनी की कारणों से हो, उपेक्षित और अलक्षित रहा है। यह शोध अनेक क्षेत्रों में और पर्याप्त विज्ञान है। यह प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक सभी सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व करता है। शोध की प्रणाली और तकनीकी विविध प्रकार की हैं। क्यों कि वैज्ञानिक रूप में यह व्याख्यान करना प्रति मुश्किल है कि गया युक्त है और गया अयुक्त, अतः पर्याप्त और निर्यात विद्वान् के लिए एक शोध ने अनभिज्ञ रहना कठिन है। यह भी मुख्य है कि अंग्रेजी को छोड़ कर अन्य विदेशी भाषाओं की भारतीय विद्या की बहुत सी शोध दृष्टियों को, विशेषतः एत-भाषाविद्याओं को अनुपलब्ध होने के कारण अज्ञान रहती है।

में कोई रुचि नहीं है। अन्य सब विदेशी भाषाएँ केवल कुछ को ही ज्ञात हैं। अतः बहुत से आधुनिक शोधक अपने अध्ययन के क्षेत्र की नवीनतम शोधों और प्रवृत्तियों से अनभिज्ञ रहते हैं।

५. यह स्थिति कतिपय अन्य तत्त्वों से और भी विकट बन गई है। अधिकांश राजनैतिक नेताओं ने ऐसी कोई वस्तु दिए बिना जिसे वे देश के कल्याण और अभिवृद्धि के लिए उपयोगी समझते हैं और व्यावहारिक प्रयोग से उसे उपादेय सिद्ध कर सकें, आधुनिक शिक्षा प्रणाली की निन्दा करने और उसे व्यर्थ बताने का बीड़ा उठा लिया है। सब विश्वविद्यालयों और उच्चतर शिक्षा के संस्थानों में स्थितियाँ सदा सुखप्रद नहीं होती हैं। कुछ चयन, नियुक्तियाँ और परीक्षा तक भी दुराचरणों से पीड़ित हैं। वहाँ राजनैतिक तथा अतिशैक्षणिक प्रभाव सर्वोपरि हैं। प्रतिभा, मौलिकता और परिश्रम से घृणा, उन की निन्दा और दमन किए जाते हैं। विगुणों को पाला, रक्षित और समर्थ बनाया जाता है। एक बार एक केन्द्रिय विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध विद्वान् उपकुलपति ने कहा था कि उन अपने विश्वविद्यालय में 'वस्त्र कार्यकर्ता' अपेक्षित नहीं हैं।

६. इस कारण आज का शोध-विद्यार्थी स्वभावतः ही स्वरचित प्रबन्ध के स्तर की चिन्ता किए बिना शोध-उपाधि प्राप्त करने का लक्ष्य रखता है, और, जैसा बहुधा कहा जाता है, अनेक बार वह अपने लक्ष्य में सफल भी हो जाता है।

७. उच्चतर अध्ययन और शोध के लिए अपेक्षित सुविधाएँ विश्वविद्यालयों के साथ उच्चतर शिक्षा की संस्थाओं में बहुधा उपलब्ध नहीं होती हैं। बहुत सी शोध पत्रिकाएँ और आए दिन प्रकाशित होने वाली रचनाएँ मोल नहीं ली जाती हैं। नई प्रकाशित पुस्तकों की सूचना भी सब अध्यापकों को नहीं मिल पाती है। विभागाध्यक्षों और पुस्तकालयाध्यक्षों के पास आई हुई सूचियाँ अध्यापकों को नहीं दिखाई जाती हैं। परिणामतः विद्यार्थियों के साथ-साथ बहुत से अध्यापक भी अल्प सूचित होते हैं। ऐसी स्थिति में उन के निर्देशन में अथवा उन के अपने द्वारा की गई शोध सदा उपयुक्त स्तर की नहीं होती है।

८. इस प्रकार की परिस्थितियों में ज्ञान के उत्कर्ष के तथा देश की उन्नति के हित में यह हम सब का कर्तव्य ही जाता है कि शोध में रुचि को बनाए रखें और उस को बढ़ाएँ तथा हर सम्भव उपाय से उस के स्तर को ऊँचा उठाएँ। यह समझ कर कि देश की राष्ट्रभाषा, अर्थात् हिन्दी के माध्यम से उपयुक्त सारसंग्रह-रूप-तालिकात्मक-संदर्भ सामग्री इस लक्ष्य की सिद्धि में पर्याप्त सीमा तक सहायक हो सकती है, भारती मन्दिर अनुसन्धान शाला ने सम्पादक के सुभाष पर "भारतीशोधसारसंग्रह" (संक्षिप्त नाम-भाशोसासं०) रूप सारोकरण सेवा को प्रस्तुत करने की प्रयोजना को अंगीकार किया है।

सारसंग्रह में भाषाएँ

९. कभी-कभी यह होता है कि अनुवादक लेखक के भाव को समझने में असमर्थ रहता है और इस लिए इसे ठीक-ठीक प्रस्तुत करने में विफल रहता है। एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद

में भी अनेक बार मूल लेखक के भाव की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती है। अतः अभी ऐसी योजना बनाई गई है कि यथासम्भव सार उस भाषा में ही प्रस्तुत किए जाएं जिस भाषा में लेख या कृति लिखी गई है और इस सार का हिन्दी अनुवाद इस के वाद दिया जाए। यदि कहीं मूल सार और हिन्दी रूपान्तर के भावों में भेद प्रतीत हो, तो वहां मूल भाषा का सार ही प्रामाणिक रहेगा। जहां लेख/कृति का सार उस की भाषा में देना सम्भव न होगा, वहां वह केवल हिन्दी में दिया जायगा। जहां योजना से सम्बद्ध सारकों में किसी लेख/कृति की भाषा के ज्ञाता का अभाव होने के कारण सारीकरण सम्भव नहीं होगा, वहां लेख/कृति का सार के बिना ही उल्लेख किया जायगा।

१०. उपयुक्त योजना में अनिवार्यतः सारों में एक भाषा के सारों से दुगना स्थान लगता, परन्तु इस सारसंग्रह में अनेक उपायों के अवलम्बन से स्थान की पर्याप्त वृद्धि कर ली गई है। रोमन लिपि का समस्त अंश इन्हारे अन्तराल पर छापा गया है। सारों की स्पष्टता और पठनीयता को विकृत किए बिना पतों और पत्रिकाओं के नामों आदि में संक्षेपों का प्रयोग किया गया है। सारों में अनुच्छेदों का भी परिहार किया गया है।

लिपि

११. इस सारसंग्रह में केवल दो ही लिपियों का प्रयोग होता है— १. रोमन लिपि उन सब भाषाओं के लिए प्रयुक्त की जाती है जो भाषाएं सब कार्यों में सामान्यतः इस लिपि का प्रयोग करती हैं; तथा २. देवनागरी लिपि उन सब भाषाओं के अनुलेखन में प्रयुक्त की जाती है जो रोमन लिपि का प्रयोग नहीं करती हैं और अपनी स्वतन्त्र अथवा उधार ली हुई लिपि का प्रयोग करती हैं।

सारसंग्रह की प्रकृति

१२. यह सारसंग्रह शुद्ध, स्पष्ट, संक्षिप्त और समस्त अपेक्षित तत्त्वों से युक्त सार इस प्रकार प्रस्तुत करने का प्रयास करता है कि पाठक ठीक-ठीक निर्णय कर सके कि मूल रचना विशेष उसे प्रयुक्त करनी चाहिए अथवा नहीं। यह केवल रचना का परिचय देता है और सहायना मात्र है। हम का लक्ष्य मूल रचना का स्थान लेना नहीं है, परन्तु इस को प्रामाणिकता के साथ उद्धृत किया जा सकता है।

क्षेत्र

आधुनिक भारत और एशिया से सम्बन्धित उन सब अध्ययनों का समावेश होगा जिन का शोधपरक महत्त्व है अथवा जो वर्तमान में अथवा भविष्य में शोध में सहायक होने की सम्भावना से युक्त हैं।

रचनात्मक कृतियों का सारीकरण

१४. इसी प्रकार संस्कृत और अन्य प्राचीन और आधुनिक भारतीय भाषाओं में गद्य या पद्य में प्रस्तुत समस्त मौलिक रचनाओं के सार और उन के विषय में सूचना देने की भी योजना की गई है क्योंकि ये ही आधुनिक और भविष्य की साहित्यिक और अन्य शोध का आधार हैं। इस प्रकार की रचनाओं के गुरा और अवगुणों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। सारीकरण का यह पक्ष कालान्तर में निसर्गतः ही बढ़ेगा।

शोधप्रबन्ध, लघुप्रबन्ध और नए प्रकाशन

१५. यह सारसंग्रह विश्वविद्यालयों और उच्चतर शिक्षा के संस्थानों द्वारा स्वीकृत लघु और शोध प्रबन्धों के सारों का भी समावेश करता है—ये प्रबन्ध चाहे प्रकाशित हों अथवा अप्रकाशित। विश्वविद्यालयों की उपाधियों के लिए पञ्जीकृत विषयों को भी सम्मिलित किया जा सकेगा यदि उन की सूचना के साथ इस विषय का संक्षिप्त सार भी दिया गया हो कि शोधक क्या खोजना चाहता है। शोधमूल्य की नई पुस्तकों, मौलिक कृतियों, टीकाओं अनुवादों या टिप्पणियों आदि के संस्करणों के सार भी दिए जाते हैं। शोधलेखों के संकलन, स्मृति और अभिनन्दन ग्रन्थ, स्मारिकाएं और एवंविध प्रकाशन पत्रिकाओं के समान सारीकृत किए जाते हैं।

समीक्षाएं आदि

१६. पत्रिकाओं आदि में प्रकाशित उन समीक्षाओं को भी सारीकृत किया जाता है जिन में या तो समीक्षित कृति का सार हो अथवा विषय या मूल पुस्तक में प्रतिपादित इस विषय के किसी पक्ष पर गुणवान् विचार किया गया हो। एकाधिक पत्रिकाओं में समीक्षित रचना को एक ही सार में संकलित किया जाता है। यदि किसी पुस्तक की समीक्षा आगे भी किसी पत्रिका आदि के अंक में निकलती है, तो इस का सार केवल उसी अवस्था में दिया जायगा जब उस समीक्षा में कोई नई सूचना या प्रकाश निबद्ध हो, अन्यथा उस की उपेक्षा कर दी जायगी।

सारों की पुनरावृत्ति

१७. जब कोई लेखादि एकाधिक विषयों से सम्बन्ध रखता है, तब उस का सार केवल एक ही बार वहां दिया गया है और दिया जाता रहेगा जहां वर्गीकरण में वह सर्वप्रथम आता है। अन्य स्थलों पर शेष सूचनाओं—सारसंख्या, लेखादि का शीर्षक, लेखक, पत्रिका, उस का अंक, काल और भाषा की आवृत्ति करते हुए निर्देश मात्र किया गया है। विषयसूची और अनुक्रमणिकाओं में इस प्रकार के पुनरुक्त सारों की संख्या को कोष्ठों में दिखाया गया है।

सारों का विस्तार

२३. यह कामना रही है कि सार छोटे-से-छोटे दिए जाएं जिस से प्रत्येक अंक में भारी संख्या में सार दिए जा सकें। कुछ सार सारीकृत कृति की प्रकृति और विस्तार के कारण लगभग २५० या अधिक शब्दों के हो गए हैं।

समाचार और सूचनाएं

२४. समाचारपत्रों में और अन्यत्र प्रकाशित ऐसे समाचारों और सूचनाओं को सारीकृत किया जाता है जो कुछ शोव महत्त्व से मान्य पड़ते हैं। उपाधियों के लिए शोधप्रबन्धों को छोड़ कर अन्य विरच्यमान कृतियों, योजनाओं की प्रगतियों, परिसंवादों, गोष्ठियों और पत्रवाचन आदि की सूचनाएं और टिप्पणियां मुद्रण का व्यय देने पर प्रकाशित की जा सकती हैं।

अनुक्रमणिकाएं

२५. इस सारसंग्रह के प्रयोग को सुविवाजनक बनाने के निमित्त पांच अनुक्रमणिकाएं भी दी गई हैं। लेखकानुक्रमणिकाओं में प्राचीन लेखकों के नाम सामान्यतः छोड़ दिए गए हैं परन्तु उन की कृतियों के सम्पादकों के नाम दिए गए हैं। देवनागरी लिपि की शब्दानुक्रमणिका में सब सार समाविष्ट हैं क्योंकि प्रत्येक सार हिन्दी में अनूदित हैं।

पारिभाषिक शब्दावली

२६. अंग्रेजी के सारों में प्राप्त पारिभाषिक शब्दों का हिन्दी रूपान्तर १९६२ में भारत सरकार शिक्षा मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित पारिभाषिक शब्दों के कोष, आष्टे के अंग्रेजी-संस्कृत कोष, भाषाशास्त्रीय परिभाषा कोष (भारत सरकार) तथा अन्य सन्दर्भ ग्रन्थों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

वर्गीकरण

२७. जिन विषयों के अन्तर्गत सारों को संगृहीत किया गया है उन का वर्गीकरण ऊपर अनुच्छेद १३ में प्रदत्त क्षेत्र के अनुसार नियोजित किया गया है। यह वर्गीकरण लचीला है और जैसे-जैसे यह कार्य आगे बढ़ेगा इस का भी विकास होगा।

लेखकों के पते

२८. जहां सारीकृत लेख या समीक्षा आदि में लेखकों के पूरे पते दिए गए हैं, वहां सारों में उन को पूरा ही दिया गया है। इस से एक ही नाम वाले अथवा नामों के समान आद्यकारों वाले निम्न-निम्न व्यक्तियों का अभिज्ञान सम्भव हो सकेगा। यह कुछ अन्य दिशाओं में भी उपयोगी हो सकता है।

सारक

२९. हमारे सारकों के नाम व पते, उन के द्वारा प्रस्तुत या रूपान्तरित सारों की क्रम-संख्याओं के साथ सारकानुक्रमणिका में दिए गए हैं। यह सारसंग्रह वस्तुतः उन की ही निष्पत्ति है। हम उन के प्रति अपनी कृतज्ञता और आभार व्यक्त करते हैं।

सन्देश

३०. हम उन सब के कृतज्ञ हैं जिन्होंने इस संग्रह की योजना की सफलता के लिए अपनी श्रम कामनाओं के सन्देश भेजे हैं, विशेष रूप से उन के आभागी हैं जिन्होंने इस योजना की संज्ञा व्यक्त की है। इन्होंने हमें नया उत्साह और शक्ति प्रदान की है।

विज्ञापक

Introductory Note

History of the Project

We have great pleasure in presenting a new indological abstract. Even a cursory glance at the scheme of this project and the contents of the present issue will convince all, we hope, about the necessity of this abstract. As detailed in the introductory literature regarding this abstract published in November, 1970 there is no other abstract devoted to all or any branch of indology planned and executed on the models of abstracts in science subjects like Chemistry and Statistics. The highly valuable bibliographical services rendered by L. Renou, R. N. Dandekar and others are limited in scope and presentation in so far as they seldom give the gist of all the papers listed in them. They can thus be regarded only bibliographical catalogues. Abstracts devoted to Ancient Indian History and Archaeology and other Social Sciences (like the Index India) fall in the same line.

2. The Prācī Jyotī digest started by the Kurukshetra University was in the field for some time. It was suspended in 1969. We understand from a letter from Dr. Gopika Mohan Bhattacharya that the digest is soon reappearing under his editorship. We welcome the move of the Kurukshetra University. However, the policy and actual scope of this digest in the past were not wide enough to obviate the necessity of another indological abstract.

3. It was also noted that as a general rule most of the research work produced through the medium of Indian languages was ignored or remained unnoticed for whatever reasons it may be. This research covers many fields and is fairly large. It represents all schools—ancient, medieval and modern. The methodology and techniques of the researches are varied. Since it is very difficult to explain scientifically what is rational and what is irrational it is difficult for a dispassionate and unaligned scholar to be ignorant of this research. It is also true that much of indological research in various foreign languages other than English remains inaccessible to and hence unnoticed by many, especially unilingual researchers.

Fall in Research Standards

4. Our country is following the path of progress. With independence education has increased. The number of scholars devoted to research has shot up. At the same time medium of education, examination and consequently of reading, writing, thinking and expression has changed. English has declined. It has ceased to acquire a hold on the minds of the new generation. This generation takes

no interest in using books written in English. All the other foreign languages are known only to a few. Many of the modern Indian researchers, therefore, remain ignorant of the latest researches and trends in their field of study.

5. This situation is further aggravated by various other factors. Most of the political leaders have devoted themselves to condemning the present system of education as worthless without presenting anything which they might consider and prove by practical application useful to the well being and progress of the country. The situation in all the universities and institutions of higher learning is also not very happy. Many suffer from malpractices in selections, appointments and even in examinations. Political and other extra-academic factors remain supreme. Brightness, originality and industriousness are despised, condemned and suppressed. The untalented are nursed, protected and made powerful. A renowned scholar Vice-Chancellor of a central University once observed that he did not want 'voracious workers' in his university.

6. The modern research scholar, therefore, naturally aims at obtaining the research degree without worrying about the standard of the work produced by him and many a times, as is often said, he is successful in his aim.

7. The facilities needed for higher studies and research are not always available in all the institutions of higher learning including universities. Many research journals and day to day publications are not purchased. Informations about new books published also do not reach all the teachers. Lists received by Heads of Departments and Librarians are not brought to the notice of teachers. Naturally along with the students many of the teachers are also ill informed. In such a case the research done under their guidance or by them is not always up to the mark.

been planned to present, as far as possible, the abstracts in the language in which the paper or work has been produced followed by their Hindi version. In case of difference in the import of the Hindi version and the original abstract the latter will be authentic. Where it will not be possible to give the abstract in the language of the paper/work, it will be given in Hindi only. Where no abstraction is possible owing to the paucity of abstractors associated in the project knowing the language of a paper/work, it will only be noted without its abstract.

10. The above scheme would have necessarily consumed double the space than an abstract could have otherwise occupied but for the several devices used in the abstract to economise space this has not been so. All matter in Roman script has been printed at single space. Abbreviations in addresses, names of journals etc., without impairing the clarity and readability of the abstracts, have been used. Paragraphs have been avoided in the abstracts.

Scripts

11. The abstract employs only two scripts : 1. the Roman script for all languages which use this script for all uses : 2. the Devanagari script for all languages which do not use the Roman script, and employ their own independent or borrowed script.

Nature of the Abstract

12. The abstract attempts to present an accurate, clear and concise gist complete in essentials in such a way that the reader may be able to make a valid judgement whether the particular original document need be consulted by him. It merely introduces the work, is simply an aid and is neither intended to nor can replace the original document. It can, however, be quoted with all authority.

Scope

13. Its scope is very wide. It contains abstracts of papers, articles and reviews etc. relating to the following subjects :—Veda, Classical Sanskrit, Rhetorics, Prosody, Religion, and Philosophy (Hindu, Jaina, Buddha, Parsi, Islam, Christianity etc.), Pāli, Prākṛita, Apabhraṁśa, Modern Indo-Aryan Languages (Hindi, Bengali, Marathi, Gujarati, Rajasthani, Punjabi etc.) Arabic, Persian, Urdu, Iranian, Dravidian, Linguistics, Grammar, Etymology, History (literary, philosophical, cultural, religious, political—ancient, medieval, modern); Archaeology, Numismatics, Epigraphy, Geography, Geology, Fine Arts and Crafts, Music, Technical and Positive Sciences, Asiatic Studies, Law, Administration, Sociology, Economics, India and the World and Miscellaneous. In short it will cover all studies relating to ancient, medieval and modern India and Asia which have research value and are likely to help in research today or tomorrow.

Abstraction of Creative works

14. Likewise it has also been planned to incorporate abstracts and informations about all original compositions in prose or verse in Sanskrit and other classical and modern Indian languages since these are the basis of literary and other research—present or future. No heed is paid to the merits and demerits of such works. This aspect of abstraction will naturally grow in volume in due course.

Theses, Dissertations and New Publications

15. The abstract also covers dissertations and theses accepted by universities and institutions of higher learning, whether published or unpublished. Subjects registered for university degrees can also be recorded provided they are notified along with a short abstract of what the scholar wishes to search for. New books of research value or of creative nature or editions of commentaries, translations or annotations etc. are also abstracted. Collection of research papers articles, commemoration and felicitation volumes, souvenirs and the like are abstracted like journals.

Reviews etc.

16. Reviews of books appearing in journals etc. are also abstracted provided these reviews contain either an abstract of the book reviewed or some valuable discussion on the subject matter or any of its aspects treated in the original book. Review of a book by more journals than one are covered in one abstract. If a review of the same book appears in a subsequent issue of some journal etc. it will be recorded only if it contains some new information or light otherwise it will be ignored.

Repetition of Abstracts

News and Informations

24. Such news and informations published in news papers and elsewhere are abstracted as appear to possess some research value. Informations and notes etc. about the works (except theses for degrees) being written, progress of projects, seminars, symposiums and paper-reading etc. can be published against payment of printing charges.

Indices

25. Five indices have been given to facilitate the use of this abstract. In the author indices names of ancient authors have generally been omitted and the names of the editors of their works have been given. The word index in the Devanagari script covers all the abstracts since every abstract has been translated into Hindi.

Technical terms

26. The Hindi version of the technical terms occurring in English abstracts is based upon the dictionary of technical terms issued by the Government of India, Ministry of Education in 1962, Apte's English-Sanskrit Dictionary, Dictionary of Linguistic Terms (Government of India) and other reference works.

Classification

27. Classification of the subjects under which the abstracts are listed has been planned on the basis of the scope indicated above in paragraph 13. This classification is flexible and will evolve as the work progresses further.

Addresses of authors

६. शोधप्रवर्गों के सारों में उपयुक्त में प्रकाशक के नाम के स्थान पर प्रबन्ध को स्वीकार करने वाले विश्वविद्यालय और उपाधि का नाम तथा स्वीकृति का प्रस्तुत करने का वर्ष निर्दिष्ट किए गए हैं।

७. पत्रों आदि में प्रकाशित मौलिक रचनाओं-कविता और नाटक आदि का सार लेखों की सरणी पर है।

८. स्मृति ग्रन्थ, अभिनन्दन ग्रन्थ, स्मारिकाएं और निबन्ध-संकलन शोधपत्रिकाओं के समान मान कर लेखक: सारोक्त किए गए हैं।

९. देवनागरी लिपि की पद एवं विषयानुक्रमिका सब सारों की है। रोमन लिपि की अनुक्रमिका का क्षेत्र उस लिपि के सार ही है।

१०. लेखकानुक्रमिकाओं में तत्तद् लिपि में अंकित लेखकों की तालिकाएं हैं।

११. सारकों की अनुक्रमिका में नामों के आगे उन के पते और उन के सारों की संख्या दी गई है।

6. In the abstracts of research theses, in place of the name etc. of the publisher are given the name of the University, the degree granted, and the year of acceptance/submission.

7. Abstracts of original creative works—poems, dramas etc. published in magazines etc. are on the lines of abstracts of research papers.

8. Commemoration, Felicitation Volumes, Souvenirs and collections of papers, essays etc. have been treated like research journals and have been abstracted paperwise.

9. Index of Words and subjects in the Devanagari script covers all the abstracts whereas the same index in Roman characters covers only the abstracts in Roman script.

10. The author indices in the Devanagari and the Roman scripts cover the names of authors indicated in the respective scripts in the abstracts.

11. In the Abstractors' Index the numbers of their abstracts preceded by the abstractor's address have been given against the names of abstractors.

यह जान सके कि वह अपने अध्ययन की समस्या के समाधान के लिए आप के प्रबन्ध को पढ़ने के लिए व्यवस्था करे या नहीं। इस सार के अन्त में पूर्ण विराम लगाएँ।

यह सार पूरे शोधलेख के समान पठनीय और संसकत होना चाहिए। यह शोधप्रबन्ध की भाषा में ही अपेक्षित है—चाहे वह कोई सी भी हो। उन सब भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि ही प्रयुक्त करें, जो सामान्यतः लैटिन या रोमन लिपि का प्रयोग नहीं करती हैं। स्पष्टता के लिए भिन्न-भिन्न पदों के बीच पर्याप्त स्थान छोड़ना चाहिए।

रोमन और देवनागरी—दोनों में ही उदात्त स्वर को उदात्त अक्षर के ऊपर या तुरन्त आगे [']के चिह्न से द्योतित करें।

यदि ऊपर (संख्या ७) का सार हिन्दी से भिन्न किसी भाषा में है तो उस का हिन्दी अनुवाद दें। इस सार के अन्त में एक पूर्ण विराम लगाएँ।

णी—यदि कोई विद्वान् हिन्दी नहीं जानते हों और अपने किसी हिन्दी जानने वाले मित्र की सहायता से भी हिन्दी अनुवाद देने की स्थिति में न हों, तो वे उस का अंग्रेजी अनुवाद भेज दें। मन्दिर उस अंग्रेजी का हिन्दी रूपान्तर कर लेगा।

६. इस के तुरन्त नीचे अलग पंक्ति में, ब्लाक के प्रयोग के बिना इस स्थल पर मुद्रित होने के निमित्त देवनागरी लिपि में सारक के सुपाठ्य पूर्ण हस्ताक्षर/नाम दें।

०. उपयुक्त सूचनाओं के साथ अधोलिखित अतिरिक्त सामग्री भी अनुक्रमिकाओं के निर्माण के निमित्त (कुलस्केप आकार के कागज के आठवें भाग के बराबर के) पत्रांशों (= स्लिपों) पर दें :

i) उपनाम या नाम के अन्तिम भाग को पहले रख कर लेखक का नाम (उदाहरणार्थ यथा, शर्मा, रामपाल; कुमार, एस० आदि);

ii) प्रबन्ध के शीर्षक के आधारभूत पद या पदसमूह या शीर्षक का भाग (यदि एक से अधिक प्रविष्टियाँ अपेक्षित हों, तो प्रत्येक प्रविष्टि के लिए पृथक्-पृथक् पत्रांशों का प्रयोग करें);

iii) ऊपर संख्या ७ के मूल सार के ऐसे प्रमुख या आधारभूत पद जो ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयों को द्योतित करते हों जो प्रबन्ध में विवेचित हुए हों, परन्तु ग्रन्थ के शीर्षक के आधार, भूत पद/पदों, पदसमूह या अंश से द्योतित न होते हों, परन्तु शोधकों के लिए उपयोगी हों (प्रत्येक पद को अलग-अलग पत्रांशों पर लिखें);

iv) ऊपर (iii) में द्योतित पदों का ऊपर संख्या ८ के सार के हिन्दी अनुवाद में प्रयुक्त हिन्दी रूपान्तर (पूर्ववत् प्रत्येक को अलग-अलग पत्रांश पर लिखें)।

यह जान सके कि वह अपने अध्ययन की समस्या के समाधान के लिए आप के प्रबन्ध को पढ़ने के लिए व्यवस्था करे या नहीं। इस सार के अन्त में पूर्ण विराम लगाए।

यह सार पूरे शोधलेख के समान पठनीय और संसकृत होना चाहिए। यह शोधप्रबन्ध की भाषा में ही अपेक्षित है—चाहे वह कोई सी भी हो। उन सब भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि ही प्रयुक्त करें, जो सामान्यतः लैटिन या रोमन लिपि का प्रयोग नहीं करती हैं। स्पष्टता के लिए भिन्न-भिन्न पदों के बीच पर्याप्त स्थान छोड़ना चाहिए।

रोमन और देवनागरी—दोनों में ही उदात्त स्वर को उदात्त अक्षर के ऊपर या तुरन्त आगे [7] के चिह्न से द्योतित करें।

८. यदि ऊपर (संख्या ७) का सार हिन्दी से भिन्न किसी भाषा में है तो उस का हिन्दी अनुवाद दें। इस सार के अन्त में एक पूर्ण विराम लगाए।

टिप्पणी—यदि कोई विद्वान् हिन्दी नहीं जानते हों और अपने किसी हिन्दी जानने वाले मित्र की सहायता से भी हिन्दी अनुवाद देने की स्थिति में न हों, तो वे उस का अंग्रेजी अनुवाद भेज दें। मन्दिर उस अंग्रेजी का हिन्दी रूपान्तर कर लेगा।

९. इस के तुरन्त नीचे अलग पंक्ति में, ब्लाक के प्रयोग के बिना इस स्थल पर मुद्रित होने के निमित्त देवनागरी लिपि में सारक के सुपाठ्य पूर्ण हस्ताक्षर/नाम दें।

१०. उपयुक्त सूचनाओं के साथ अधोलिखित अतिरिक्त सामग्री भी अनुक्रमणिकाओं के निर्माण के निमित्त (फुलस्केप आकार के कागज के आठवें भाग के बराबर के) पत्रांशों (= स्लिपों) पर दें :

(i) उपनाम या नाम के अन्तिम भाग को पहले रख कर लेखक का नाम (उदाहरणार्थ यथा, जर्मा, रामपाल; कुमार, एस० आदि);

(ii) प्रबन्ध के शीर्षक के आवारभूत पद या पदसमूह या शीर्षक का भाग (यदि एक से अधिक प्रविष्टियाँ अपेक्षित हों, तो प्रत्येक प्रविष्टि के लिए पुथक्-पुथक् पत्रांशों का प्रयोग करें);

(iii) ऊपर संख्या ७ के मूल सार के ऐसे प्रमुख या आवारभूत पद जो ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयों को द्योतित करते हों जो प्रबन्ध में विवेचित हुए हों, परन्तु ग्रन्थ के शीर्षक के आवार, भूत पद/पदों, पदसमूह या अंश से द्योतित न होते हों, परन्तु शोधकों के लिए उपयोगी हों (प्रत्येक पद को अलग-अलग पत्रांशों पर लिखें);

(iv) ऊपर (iii) में छूटि गए पदों का ऊपर संख्या ८ के सार के हिन्दी अनुवाद में प्रयुक्त हिन्दी रूपान्तर (पूर्ववत् प्रत्येक को अलग-अलग पत्रांश पर लिखें)।

टप्पणी (i) एक पत्रांश (=स्लिप) पर एक ही नाम या पद (जैसी भी स्थिति हो) होना चाहिए ।

(ii) पत्रांश का आकार फुलस्केप कागज का आठवां भाग होना चाहिए ।

आ. ऊपर के निर्देशों के अनुसार तय्यार किए गए १९७० या उस के बाद प्रकाशित हुए अपनी रचनाओं और लेख आदि के भी ऐसे ही सार (दो पड़तों में) भेज सकते हैं । इन रचनाओं के सारों में ऊपर संख्या ४ की सामग्री के स्थान पर प्रकाशक का नाम और प्रकाशन का वर्ष इंगित करें । ग्रन्थ का मूल्य ऊपर संख्या ५ की प्रविष्टियों की समाप्ति पर, ग्रन्थ की भाषा के नाम से तुरन्त पहले लिखें । पत्रिकाओं आदि में प्रकाशित लेखों आदि के सारों में यहां पत्रिका आदि का नाम, उस का खण्ड, अंक (दोनों के बीच में फुलस्टोप लगाएं), तथा पत्रिका पर निर्दिष्ट तिथि दें । यदि प्रकाशन की तिथि उस तिथि से भिन्न हो जिस तिथि का वह अंक है, तो इस पिछली तिथि (—जिस तिथि का वह अंक है), को अंकित करें ।

इ. महीनों के नामों को वर्ष में उन की क्रमसंख्या से द्योतित करें । अर्थात् जनवरी, मार्च, अप्रैल, जून, अगस्त, अक्टूबर और दिसम्बर को १, २, ३, ४, ६, ८, १० और १२ से निर्दिष्ट करें । तिथि और मास के बीच तथा मास और वर्ष के बीच फुलस्टोप (.) दें और अन्त में सेमीकोलन (;) लगाएं ।

अनुक्रमणिका के लिए पत्रांश अप्रकाशित शोधप्रबन्धों के लिए ऊपर दिए गए निर्देशों के अनुसार बनाए जाएं । एक पत्रांश पर पत्रिका का नाम भी लिख कर भेजें । एक पत्रांश पर देवनागरी लिपि में अपना नाम भी लिख कर भेजें ।

रोमन लिपि में लिखे नामों और पदों को पत्रांशों पर भी रोमन लिपि में अंकित करें । शेष सब के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग करें ।

आवश्यक सूचना—यह कार्य शुद्ध आदरी है और इस के लिए किसी रूप में कोई पारिश्रमिक नहीं है । न प्रतिमुद्रण और न सार की प्रति भेजी जायगी । सम्पादक को पूर्ण अधिकार है कि वह प्राप्त सार को स्वीकार करे या अस्वीकार करे या परिवर्तित करे, जैसा भी वह उचित समझे । इस सहयोग के प्रति आभार सार के नीचे सारक का नाम छापने मात्र से व्यक्त किया जायगा । यदि सार का हिन्दी अनुवाद कराया जायगा, तो अनुवादक का नाम सारक के नाम के बाद उसी पंक्ति में दिया जायगा । यदि सम्पादक सार में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन या परिवर्धन करता है, तो उस का नाम भी सारक के नाम के बाद दिया जायगा ।

Guidelines for Abstraction

Indological scholars, researchers and authors

A. Can cooperate by sending **two copies** of the abstracts prepared on the style of abstracts nos. I. 129-134; 232 typed or written legibly (with double space in between the lines) on one side of the paper of their **unpublished theses** accepted for the M. A., Ph. D., D. Litt. or such other degrees for publication in Section I of the Bhāratī-Śodha-Sāra-Saṁgraha. The abstract should contain the following informations in the order indicated below. **A semi-colon must be placed at the end of each entry.**

1. Classification of the subject-matter of the thesis—(as, e. g., Veda—Ṛgveda, Culture, Religion etc. etc. with further classification as given in the abstracts in the first issue);
2. Full name or the title of the thesis;
3. Name and address of the **author** as given on the thesis (Place a coma after the name and different parts of the address and a semicolon at the end), name and designation etc. of the supervisor in large brackets;
4. Name of the University (which accepted the thesis), name of the degree for which accepted and the year of acceptance—each entry being separated by a coma, then a semicolon at the end of these entries. (Catalogue number of the University library for the thesis may also be given in brackets, if it is available, just after this information and a semicolon be placed at the close of the brackets);
5. Number of **pages**; if different parts or sections of the thesis contain independent pages, they should be indicated by a plus sign; now give the number of plates or illustrations etc., if any, in large brackets;
6. Language of the thesis (—Sanskrit, English, Hindi, Marathi, Tamil etc. etc. as the case may be);
7. Abstract of the thesis (as far as possible in about 200-250 words or less). In this abstract names of chapters, appendices etc. may be specified. If necessary chapterwise brief summary may be given in addition to the main conclusions arrived at in the work as a whole. This abstract should be so prepared as to give a clear idea to the reader about your approach, informations collected and the value of the thesis and your

conclusions to enable him to decide whether he should take steps to study your work in connection with the problem at his hand. A full stop should be placed at the end of this abstract.

This abstract should be readable and coherent like a full article and must be in the language of the thesis—whatever it may be. Devanagari Script must be used for all languages which do not ordinarily use the Latin or the Roman script. For the sake of clarity sufficient space should be given in between two words.

Acute accent should be indicated by the sign ['] placed above or just after the syllable concerned both in the Roman and the Devanagari scripts.

8. A Hindi translation of the above abstract (in no. 7 above), in case the abstract is in a language other than Hindi. Place a full stop at the end of this abstract.
- N. B. If a scholar does not know Hindi and is not in a position to supply the Hindi version even with the help of some of his Hindi knowing friend he may send an English translation which will be translated into Hindi by the Mandira.
9. Just below this in a separate line give full legible signatures name in Devanagari script of the abstractor to be printed at this place (without the use of a block).
 10. Along with the above information the following additional matter should also be supplied on separate slips (1/8 of a foolscap paper) for compiling the indices :
 - (i) Name of the author, using the surname or the last part of the name first (as e. g., Sharma, Ram Pal; Kumar, S.);
 - (ii) Key word/s, phrase, or part of the title of the thesis (separate slips should be used for each entry in case of more entries than one are needed or desired);
 - (iii) Such important or key words used in the original abstract (in no. 7 above) as indicate such important subjects treated in the thesis which are not reflected by the key word/s, phrase or part of the title, but, are useful to the researchers, using a separate slip for each separate word;
 - (iv) The Hindi version used in the Hindi abstract in no. 8 above of the words selected under (iii) above (each on a separate slip as before).

N. B. (i) One slip should carry only one name or word, as the case may be.

(ii) The size of the slip used should be 1/8 of a foolscap paper.

- B. Similar abstracts (in duplicate) of your works, papers etc. published in or after 1970 prepared on the above lines can also be sent. In the abstract of these works the name of the publisher and the year of publication should be given in place of the matter indicated in 4 above. The price of the work should be indicated at the end of entries in no. 5 above, just before the name of the language of the work. In case of papers etc. published in journals the name of the journal etc., its volume and issue numbers (with a full stop between them) and date indicated on the journal (in case the date of the publication of the journal is different from the date to which it relates or on which it was due, the latter, i. e., the date indicating the period to which it relates should be given).
- C. Names of months should be indicated by their serial number in the year, i. e., January, February, March, April, June, August, October and December be indicated as 1, 2, 3, 4, 6, 8, 10 and 12). A full stop should be placed between the date and the month and between the number of the month and that of the year which should be followed by a semi-colon.

Slips for indices should be prepared exactly on the lines specified under unpublished theses above. A slip indicating the name of the journal should also be sent. A slip containing your name in the Devanagari script must also be sent.

In slips Roman script should be used for words and names written in the Roman script and for all others Devnagari script should be used.

Important Note—This work is purely honorary and carries no remuneration in any form., nor even a reprint or a copy of the abstract. The editor reserves the full right to accept, reject or to modify the abstract as he may deem fit. The cooperation will be **acknowledged only** by printing the name of the abstractor below his/her abstract followed by the name of the translator if the abstract has to be translated into Hindi. If the editorial changes materially affect the abstract the name of the editor will also be indicated.

ससंक्षेप देवनागरी लिपि की पत्र-पत्रिकाएं आदि

इस सूची में प्रस्तुत अंक में प्रयुक्त पत्र-पत्रिकाओं आदि की तालिका दी गई है। नामों के आगे अंक और प्रकाशन-वत्सर का निर्देश है।

संक्षेप	पत्र-पत्रिकादि
आ. मा.	आर्य मार्तण्ड, अजमेर ५०.१६; २०; २१ आर्यों का चैतवाद; ब्रोकानेर १.१-२
उमकव.	उमेश मिश्र कौमोमोरेशन वाल्यूम, इलाहाबाद १९७०
एभाओरिड.	एनल्ज् ऑफ दी भाण्डारकर ओरियण्टल र्विचर्च इन्स्टीट्यूट, पूना कादम्बरी, मुञ्जु १९६६-७० कादम्बिनी, ३.१९७१
गुर.	गुरुकुलपत्रिका, कांगड़ी २२.६-३; ६-११.१९७०
गोपुविदिशोष.	गोरक्षपुरविश्वविद्यालय जोधपत्रिका, गोरक्षपुर, १९६०-६१
अतमससला	दी जर्नल श्रीफ दी तंजोर महाराजा सरफोजी सरस्वती महल लाडनेरी, तंजोर, २४. २; १९७१
जराडंहिरि.	जर्नल श्रीफ दी राजस्थान इन्स्टीट्यूट श्रीफ हिस्टोरिकल रिसर्च, जयपुर जिनवारी, जयपुर, २८. १-३; १-३. १९७१
जैमंगो.	जैन सन्देश (शोधांक), मयुरा, २६; ११. २. १९७१ जानेश्वर, ३. १; १९७१
न.घ.	नन्द-अनुसन्धान, जयपुर; १. १-५ नन्दचिन्तन, जयपुर, ३. २; ४. १९७१
दयानन्दा.	दयानन्द कानिज, अजमेर रजनजयन्ती १९७१ स्मारिका, प्राचार्य बाबू अभिनन्दन घन्टा, अजमेर
नभा.	नवमानन, १०-१२. १९७०; ४. १९७२
नभाटा.	नवनास्तदासन्ध, नई दिल्ली १७. १. १९७१
दुयिप.	दुयिप विद्यापीठ पत्रिका, मानसण्ड, पुणे, ३३; १९७०

- मजस्मा. महावीर जयन्ती स्मारिका, जयपुर, १९७०
- मागधम्, आरा, ४; ५. १९७०
- यूरासहिस. यूनिवर्सिटी ऑफ राजस्थान स्टडीज इन हिन्दी एण्ड संस्कृत, जयपुर, १९६७-१९६९
- राजस्थान यूनिवर्सिटी स्टडीज इन संस्कृत एण्ड हिन्दी, जयपुर
- राप. राजस्थानपत्रिका, जयपुर
- राप्राविप्रजो. का वार्षिक प्रतिवेदन राजस्थान प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान जोधपुर का वार्षिक प्रतिवेदन, १९६७-६९; जोधपुर
- लोककला, उदयपुर, २०; ७. १९७०
- विभाप. विश्वभारतीपत्रिका, शान्तिनिकेतन. ११. १; ४, ६. १९७०
- विभ. विश्वम्भरा, बीकानेर, ६. ३; १९७०
- वेवा. वेदवाणी, वहालगढ़, सोनीपत, २३. १-३; ११-१९७०-१. १९७१
- शोप. शोधपत्रिका २१. ३; ७-९. १९७०
- श्रमण, वाराणसी, ३. १९७१
- सप. समितिपत्रिका, १०. १-२; १-२. १९७१
- सस्मा. स्मारिका सम्बोधिका, जयपुर, १९७०, जैन मित्रमण्डल, कुन्दीगरों के भैरू जी का रास्ता जयपुर-३
- सागरिका, सागर, ९. २; २०२७ वि०
- साजैसंस्मा. श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैनसंघ, रांगडी मोहल्ला, बीकानेर
- सोवियत भूमि, ६. ३. १९७०; १८. ९. १९७०
- स्मारिका हि.वि.प.हा; हाहिविपस्मा. स्मारिका हिन्दु विश्वपरिषद्, हाड़ीती सम्मेलन, कोटा, १९७०
- स्वाहा, राजस्थान प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान, जोधपुर, १. १-३; १९६९
- हिटा. दो हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली

मजस्मा.	महावीर जयन्ती स्मारिका, जयपुर, १९७०
	मागवम्, आरा, ४; ५. १९७०
यूरासंहिस.	यूनिवर्सिटी ऑफ राजस्थान स्टडीज इन हिन्दी एण्ड संस्कृत, जयपुर, १९६७-१९६९
	राजस्थान यूनिवर्सिटी स्टडीज इन संस्कृत एण्ड हिन्दी, जयपुर
राप.	राजस्थानपत्रिका, जयपुर
राप्राविप्रजो. का वार्षिक प्रतिवेदन	राजस्थान प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान जोधपुर का वार्षिक प्रतिवेदन, १९६७-६९; जोधपुर
	लोककला, उदयपुर, २०; ७. १९७०
विभाप.	विश्वभारतीपत्रिका, शान्तिनिकेतन. ११. १; ४, ६. १९७०
विभ.	विश्वम्भरा, बीकानेर, ६. ३; १९७०
वेवा.	वेदवाणी, वहालगढ़, सोनीपत, २३. १-३; ११-१९७०-१. १९७१
शोप.	शोधपत्रिका २१. ३; ७-९. १९७०
	ध्रमण, वाराणसी, ३. १९७१
सप.	समित्तिपत्रिका, १०. १-२; १-२. १९७१
सस्मा.	स्मारिका सम्बोधिका, जयपुर, १९७०, जैन मित्रमण्डल, कुन्दीगरी के भैरु जी का रास्ता जयपुर-३
	सागरिका, सागर, ९. २; २०२७ वि०
साजसंस्मा.	श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैनसंघ, रांगडी मोहल्ला, बीकानेर
	सोवियत भूमि, ६. ३. १९७०; १८. ९. १९७०
स्मारिका हि.वि.प.हा; हाहिविपस्मा.	स्मारिका हिन्दु विश्वपरिपद्, हाड़ीती सम्मेलन, कोटा, १९७०
	स्वाहा, राजस्थान प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान, जोधपुर, १. १-३; १९६९
हिंदा.	दी हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली

भारतीशोधसारसंग्रह

वर्ष १]

अप्रैल, १९७१

[अंक १

१. वेद (1. Veda)

ऋग्वेद (Rgveda)

1. Two Anomalous Cases in the Pada-Pāṭha of the R̥g Veda; P.D. Navathe, Centre of Advanced Study in Sanskrit, University of Poona, Poona; JUPH., 33; 1970; 9-12; E. So far as the Pp. of the Rv. is concerned the rules for analysis of Saṁhitā words into Pp. are nowhere defined; yet it is certain that there are some underlying principles which it persistently follows. However, some deviations from the normal practice have occasionally occurred. The two instances discussed in the present note fairly illustrate the point: 1. *suśuvūṣaḥ* (Rv. 10. 94. 14c), Genitive sg. masc. of *suśuvānis-* should not have been analysed since, like many other similar unanalysed forms, it is made with the weak grade of the suffix. But it has been analysed as *susu/vūṣaḥ*, probably owing to the occurrence of a *v* as is found in forms like *sasavān* etc. This makes *vūṣaḥ* made up of *vūs* (the suffix) and *as* (the case-ending) which is evidently erroneous. In the second case *gartārūgiva*, the Pp., contrary to the general practice of separating *iva* from the inflected words with which it is compounded, has analysed it as *garta/ārūgiva*. This is the only instance where *iva* has not been separated by the Pp.

वात को पर्याप्त स्पष्ट कर देते हैं। १. सुशुवांसु—के पुल्लिङ्ग पठों एक वचन सुशुवुपः (ऋ १०.९४.१४ ग) को अवगृहीत नहीं करना चाहिए था। क्यों कि, अन्य बहुत से इस जैसे अनवगृहीत पदों के समान, यह प्रत्यय के दुर्बल क्रम से बना है। परन्तु, संभवतः ससवा'न् आदि रूपों के समान, इन में व् की स्थिति के कारण, यह पपा० में सुशुवुपः के रूप में अवगृहीत किया गया है। इस विश्लेषण से वुपः वुस् (प्रत्यय) और -अस् (विभक्ति) के योग से निष्पन्न ठहरता है, जो स्पष्ट ही अशुद्ध है। दूसरे उदाहरण गर्तारु'गिव में पपा० ने 'इव' को समस्त पदों से अवगृहीत करने की सामान्य प्रणाली के विपरीत इस का विश्लेषण गर्तारु'गिव किया है। यही केवल एक ऐसा स्थल है, जहाँ इव को पपा० में अवगृहीत नहीं किया गया है।

सुधीर कुमार गुप्त

२. उन्नति के पद्य पर; ले० मित्रसेन; प्र. भारतवर्षीय वैदिक सिद्धान्त परिषद्, अचल मार्ग, अलीगढ़; ०-६० पैसे; हि०; समीक्षक: भवानीनाल भारतीय, राजकीय कालिज, अजमेर; आ. मा., ५०. १६; १.१२.१९७०; १५; हि०। इस लघु कृति में अर्थ.

४. दाता की धनसम्पत्ति कभी कम नहीं होती; (वैदिक विनय से उद्धृत); वेवा० २३.२; १२.१९७०; १-२; हि० । न वा उ देवाः क्षुधमिद् आदि ऋ० १०.११७.१ का उपयुक्त शीर्षक के विषय का प्रकाशक हि० अ० और भावार्थ हैं ।

५. पञ्चवृत्ति मुख्य प्राण; गुप०, २३.१-२; ६-१०.१९७०; १०३; हि. । इस में ऋ० १.६.२७ के भाष्य के पंचवृत्ति मुख्य प्राण रूप अयास्य का भाव व्यक्त किया गया है। अयास्य प्राणों के केन्द्र में रहता है। इस से सम्बद्ध वाक् आन्तरिक—ब्राह्मी है। सूक्ष्म प्राण के केन्द्र-मस्तिष्क से उतरती हुई दिव्य वाणी सात धाराओं में बंट जाती है। इस भाव को एक चित्र द्वारा भी व्यक्त किया गया है।

६. पाणिग्रहण प्रतिज्ञा; ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, अज-मेर; आ. मा., ५०.२१; १.१.१९७१; ११-१२; हि. । यहां पर विवाहसंस्कार में प्रयुक्त कतिपय प्रतिज्ञा-मन्त्रों का पद्यों में अनुवाद सहित भाव दिया गया है।

७. प्रार्थना; अम्बादान आर्य, कविकुटीर, कुरुडायों (राजस्थान); आ. मा., ५०.२०; १५.१२.१९७०; १:१; हि. । इस में त्वं हि विश्वतः (ऋ० १.९७.६) का व्याख्यान और पद्यानुवाद हैं। पर-मात्मा के सत्वोपदेश से निष्पाप हो हम परमेश्वर को भक्ति और आज्ञापालन में नित्य तत्पर रहें।

८. वेद का अद्भुत बल—अर्थात् राष्ट्र का स्वरूप; ले. ब्रह्मानन्द जिज्ञासु; प्र. श्री हंसराज आर्य टुस्ट, जाखन मण्डी (जिला हिसार); ५० पैसे; समीक्षक: भवानीलाल भारतीय; आ. मा., ५०.२१; १.१.१९७१; १६.१; हि. । इस में 'चत्वारि शृंगा त्रयोऽस्य पादा' का राष्ट्रपरक व्याख्यान है।

९. वेदप्रवचन—अथेश्वर-स्तुति-प्रार्थनोपासना-मन्त्राः; युधिष्ठिर मीमांसक, सम्पादक वेदवाणी, सोनीपत; वेवा०, २३.३; १.१९७१; १७-२६; हि. । ईश्वर, स्तुति, प्रार्थना और उपासना का लक्षण बता और समझा कर ऋ० ६.६६.११ और ऋ० १.१७ के हिन्दी अनुवाद सहित 'विद्वानि देव' (य०३०.३)

का आध्यात्मिक, आधिदैविक और अधियज्ञ अनुवाद और व्याख्यान देते हुए इन तीनों का परस्पर सम्बन्ध और सब का अध्यात्म में पर्यवसान बताया गया है। सविता ईश्वर, सूर्य और अग्नि है, दुरित दुर्गुण और अन्धकार हैं। भद्र कल्याण और प्रकाश है।

१०. वेदवाणी; आ.मा., ५०.२१; १.१.१९७१; १:१; हि. । यहां ऋ० ७.८६.३. (ऋत्वः समह दीनता का शब्दार्थ और पद्यों में भाव दिए गए हैं। मन्त्र का आशय है कि "मैं ने अश्वित से फल-व्य-घात किया है। प्रभु मुझे सुखी करें।"

११. श्रुतिमुधा; गुप०, २३.३; ११.१९७०; ११५; हि. । इस में इदं वसो (ऋ० ८.२.१) का अनुवाद और व्याख्या हैं। इन्द्र का सोमपान मन का मस्तिष्क से सम्पर्क है। इस से ज्ञान प्राप्त होता है।

२२. सत्य की विजय ही स्थायी होती है; (वैदिक विनय से उद्धृत); वेवा०, २३.१; ११.१९७०; १-२; हि० । सा मा सत्योक्तिः (ऋ० १०.३७.२) का उपयुक्त आशय का अनुवाद और भावार्थ हैं।

१३. हिन्दी रुद्राष्टाध्यायी; प्र. वैदिक ज्ञान-भारती, ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, रतनगढ़ (राज-स्थान); मूल्य ३-५०; स. हि. । समीक्षक: दिवाकर शर्मा; विभ., ६.३; १९७० (२०२७ वि०.); ८६; हि. । यह रुद्रविषयक सूक्तों का मरल हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन है।

१४. हे मनुष्यो ! अपनी आत्मा को देखो; (वैदिक विनय में उद्धृत); वेवा०, २३.३; १.१९७१; १-२; हि. । यह अर्थ होता प्रथमः (ऋ० ६.६.४) ऋचा का अनुवाद और भावार्थ है। आत्मानि का हवन अनादि काल से चला आ रहा है। इसी हवन से समस्त ज्ञान बल और ऐश्वर्य का आदान मिल रहा है। यह अमर है और शरीर आदि में बढ़ता है और सब संसार को ध्याप्त कर लेता है। उसे देव कर अमर हो जाओ।

१५. अन्नदानप्रशंसा; रामचन्द्र वामन कुम्भारे, प्रोफेसर ऑफ संस्कृत, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली; यूरासंहिस., २; ७.१९६७; ६६-७१; हि. १ ऋ० १०.११७ को हिन्दी अनुवाद सहित प्रस्तुत कर उस में प्राप्त अन्नदान की महिमा के उपदेश की अथर्ववेद और उपनिषदों आदि के वाक्यों से पुष्टि करते हुए लेखक ने माना है कि प्राणियों को अन्न देना भगवान् को ही जिमाना है ।

१६. ऋग्वेद का इन्द्र, इन्द्राग्नी और वृषाकपि का सम्वाद; रामनाथ वेदालंकार; मुप०, २३.१-२; ६-१०.१९७०; ७०-७६; हि. १ लेखक ने विभिन्न आचार्यों के मतानुसार ऋ० १०.८६ के मन्त्रों के वक्तव्य बता कर इस सूक्त का कथानक, उस के आध्यात्मिक (-इन्द्र=आत्मा; इन्द्राग्नी=बुद्धि; वृषाकपि=मन; मृग=ग्रहकार; उक्षा=प्राण और इन्द्रियाँ), तिलक के अनुसार आधिदैविक (वृषाकपि=सूर्य; हरित मृग=मृगशीर्ष नक्षत्र; कुत्ता=श्वा नक्षत्र), स्कन्दाभिमत ऐतिहासिक (इन्द्राग्नी=इन्द्र की पत्नी; वृषाकपि=ऋषि), नैरुक्त (इन्द्राग्नी=माध्यमिक वाग्नी; इन्द्र=वैद्युत अग्नि) और राजनीतिक (इन्द्र=राष्ट्र का राजा; इन्द्राग्नी=राजपरिषद्, वृषाकपि=सामन्त राजा; सोम=कर; मृग=यामन्न का एक अधिकारी) अर्थ दिए गए हैं तथा सूक्त के सब मन्त्रों का समीक्षात्मक पाठि० सहित हि० अ० और मूल मन्त्र दिए गए हैं ।

कर के पाणिनि के सूत्र ३.२.१०६ और ५.१.११८ में प्रस्तुत व्याख्या को स्वीकार करता है और इस पंक्ति का यह अनुवाद करता है '(यम के लिए), जो निम्नतम प्रदेश (पितृलोक = प्रवतो महीं:)तक ले जाता रहा है ।'

18 **Apropos the Rg-veda V. 40;** V.G. Rahurkar, Deptt. of SKT & PKT. Languages, University of Poona, Poona-7; UMCV., 1970; 511-516; E. Study of Rv. V. 40 can help in determining the position of Atris in the social set up of those days. Stanzas 1-5 are an invocation to Indra and 6-9 describe sun's rescue by Atri from Svarbhānu. Atris achieved it with their magical power, an indispensable aid to Indra's valour. The solar eclipse was not total when Atris observed it; it came to an end soon and Atris came out victorious. Svarbhānu is not mentioned anywhere else in the Rg-veda and the Atharvaveda. Brāhmaṇas often allude to this event. The story appears in the Mahābhārata. This vedic phenomenon ultimately developed into the legend of Rāhu-ketu.

ऋ० ५.४० का अध्ययन तत्कालीन समाज-व्यवस्था में अत्रियों के स्थान के निर्णय में सहायक हो सकता है । मन्त्र १-५ में इन्द्र की स्तुति है, ६-९ में अत्रि द्वारा स्वर्भावु से सूर्य की रक्षा का वर्णन है । अत्रियों ने इस कर्म को इन्द्र के वीर्य को अपरिहार्य सहायक प्रग अपनी माया से सम्पन्न

देश की अवस्था ठीक करने और सुख-मृद्धि प्राप्त करने की इस सूक्त में वर्णित एकता ही एक मात्र ओषधि है।

२०. नासदीयसूक्तम् (भाववृत्तीयम्) (ऋ० १०. १२६); अरविन्दमतमनुसृत्य केनचित् लिखितम्; विषयसूच्यां त्वरविन्दस्यैव नामांकितमस्ति; गुण०, २३. १-२; ६-१०. १६७०; २२-३१; सं. । त्रैतवादमनुसृत्य मन्वाणामर्थं प्रदायारविन्दकृता नासदीयसूक्तव्याख्या प्रस्तासि । जगतोऽस्योत्पत्तिरवचेतनायाः समुद्रात् संकल्पजन्यस्पन्दनात् संजाता । एकं सत् स्वसंकल्पमात्रेण निमित्तोपादानकारणानि युगपदेव जनयति । तस्यात्मप्रकाश इयं सृष्टिः ।

मन्त्रों का त्रैतवादपरक अर्थ दे कर नासदीय सूक्त की अरविन्द की व्याख्या दी गई है। इस जगत् की उत्पत्ति अवचेतना के समुद्र से संकल्पजन्य स्पन्दन से हुई है। एकं सत् (=ब्रह्म) संकल्पमात्र से निमित्त और उपादान कारणों को एक साथ उत्पन्न कर देता है यह सृष्टि उसी का प्रकाश है।

२१. वैदिक अग्निप्रकाश; ले० स्वा० समर्पणानन्द; सम्पादकः इन्द्रराज; प्र. वर्णाश्रमसंघ, प्रभात आश्रम, टीकरी नेक; २० १-२५; हि०; समीक्षकः भवानी लाल भारतीय, राजकीय कालेज, अजमेर; आ. मा० ५०.१६; १.१२.१६७०; १५; हि. । स्वामी समर्पणानन्द के कुछ वेदमन्त्रों की व्याख्या के भाषणों का संग्रह है।

शब्दों का अध्ययन (Study of Words)

22. Tryambaka; S.K.Gupta, Reader in Sanskrit, Rajasthan University, Jaipur-4; 7th All Rajasthan Homoeopathic Medical Conference Souvenir 1970; 40-41: E It is in continuation of 'Coconut (Tryambaka) in the Rg-Veda is the Origin of Siva Cult' and points out the preparation of a homoeo irritation from coconut water and its efficacy in several diseases. Mityu in Rv. VII. 59. 12 means appendix in the human body.

यह पूर्व लेख 'ऋग्वेद में नारिकेल (अयम्बक) दिव पुत्रा का मूल है' का अनुवच्य है। इस में

नारिकेल के जल से होम्यो दवा के निर्माण और कतिपय रोगों पर इस दवा के अनुकूल प्रभाव का वर्णन है। ऋ. ७.५९.१२ में 'मृत्यु' मानवशरीर में स्थित उष्णक या अपैण्डिक्स का नाम है।

23. Bṛhaspati Und Indra; Au von Hanns-Peter Schmidt; Otto Harrassowitz, Wiesbaden; Reviewer: V. G. Rahurkar; ABORI., L. 1-IV; 1969; 109-112; E Schmidt offers a close and critical study of Bṛhaspati. He feels that Bṛhaspati has an evolving form completely accomplished by the time of the final redaction of the Rgveda. The Vala-myth is a world-creation myth. The author has discussed the specialities of Bṛhaspati punctuated with exact quotations from the Rgveda and other sources. Parallels from Greek and Avestan myths have also been cited.

हिन्दू ने बृहस्पति का समीक्षात्मक व्यापक अध्ययन प्रस्तुत किया है। उनका मत है कि बृहस्पति का रूप विकसनशील है जो ऋग्वेद के अन्तिम सम्पादन तक पूरा हो चुका था। बल का आख्यान सृष्टि की रचना का आख्यान है। लेखक ने बृहस्पति की विशेषताओं पर विचार किया है, जिस में ऋग्वेद आदि से पुष्कल प्रमाण दिए गए हैं। यूनानी और अवेस्ता देव-कथाओं से मिलते जुलते आख्यान भी दिये गये हैं।

२४. ब्रह्मगवी; वद्री प्रसाद पंचोली, प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, राजकीय कॉलेज, अजमेर; गु २३.१-२; ६-१०. १६७०; ८५-८७; हि. । ऋग्वेद में बृहती सृजनशक्ति का नाम है। पीछे के साहित्य में यह बृहती ही ब्राह्मी, ब्रह्मणी आदि के रूप में विकसित हुई है। बृहती √बृह् और √वृह् से उत्पन्न होने से बृहस्पति और ब्रह्मस्पति—दोनों के भावों को व्यक्त करता है। बृहद्विवा—बृहती सृजन की पूर्ववस्था है। यही अवे० में ब्रह्मगवी और ब्रह्मजाया है। यह दुर्ग्यं, स्वयम्भू, भूमण्डल में स्थित और यन्वाद्या है। यद्यदात्म में यह साश्रक की विरोधी अन्तर्वृत्तियों को नष्ट करती है। व्यवहार-जगत् में यह

मनुष्य को सफलता द्वारा दुर्घर्ष आत्मबल देती है जनता की बाणी का दवना अनुचित है ।

25 The Meaning of Vedic Kāru'; J. Gonda, van Hogendorpstrast 13, Utrecht; **UMCV**, 1970; 479-488; E. The author studies the uses of the vedic word Kāru'— and the Greek word kēruks and concludes that these two words, 'although their appellations were etymologically related, were, it is true, both of them "spokesmen", speaking, on behalf of patrons or others in public obviously being the most conspicuous part of their task. In detail their functions were widely different, those of the kēruks being more like the task of the sūta as represented by the authors of the brāhmaṇas Granting that in olden times no clear distinction was made between the man who composed poems, hymns or tales and the man who delivered them, the Vedic term kārú alone — for Greek kēruks does not support Schmitt's argument —, denoting the "proclaimer of praise", cannot prove the existence, in the common fatherland of all Indo-Europeans, of a poet, known by the name of *kāru-, and mainly characterised by his wanderings.'

में 'कारु' नाम से अभिज्ञात और प्रमुखतः अपने भ्रमणों से विशिष्ट कवि की सत्ता को प्रमाणित करने में समर्थ नहीं है ।

26. The Word 'Garta' in the Rg-veda; B. H. Kapadia, Vallabha Vidya-peeth, Vallabha Vidyanagar; **UMCV**, 1970; 521-526; E. From a discussion of the Vedic uses and interpretations of the word garta and its compounds, the author concludes that the 'word garta is found in all the three genders viz. m., f, and n. The meaning of the word has undergone gradual change.' It 'appears to have originally the meaning a chariot or an elevated seat in a chariot Then an elevated seat in the gambling hall on which a person is required to sit in order to tell the truth and truth alone Subsequently, it meant a house, then a pit or a hollow and even a cemetery. It is only in I. 124.7 that garta because of gartāruk can mean a board or a dais on which dice was thrown.'

गर्त शब्द और उस के समासों के प्रयोगों और भाष्यों के विवेचन से लेखक ने निष्कर्ष निकाला है 'कि गर्त शब्द तीनों ही लिंगों पं०, स्त्री और न. में

indicate that this word refers to a container for the purpose of drinking soma from (dhene); this container is such as it could kill, may be, by piercing (hanū); it could be taken up, could be placed to resemble the shoot of the soma-plant and it could be fixed and loosened. In the case of śipiviṣṭa also the original concept seems to be of the piercing horn, mixed with that of the pointed and virile male organ. This inference is supported by an interpretation or explanation of some related Vedic utterances.

शिप्र *√ शिप् (लु. क अच्. √ शिप् और अर्बस्ता पद शुक्र) से निष्पन्न हुआ है। इस का अर्थ 'शिरस्त्राण पर सींग के समान उच्छ्रय' है, क्यों कि इस लेख में अर्घ्योत इस शब्द के प्रयोग इंगित करते हैं कि यह शब्द सोमपान के निमित्त पात्रविशेष का संकेतक है; यह पात्र ऐसा है कि यह, हो सकता है, वीथ कर, बध कर सकता था; इसे उठाया जा सकता था, सोम के पोथे के तन्तु के सट्टा दिखाई पड़ने के लिए रक्खा जा सकता था और यह कसा या ढीला किया जा सकता था। शिपिविष्ट का मूल भाव भी खड़े हुए सशक्त पुरुष लिंग के भाव से मिश्रित वीथने वाला सींग रहा होगा। इस निष्कर्ष को कतिपय सम्बद्ध वैदिक उक्तियों के भाष्य या व्याख्यान से पुष्ट किया गया है।

28 **Vedic Sources of the Śārṅgaka Legend of the Mahābhārata;** Ram Gopal, Reader in Sanskrit, Punjab University, Chandigarh; UMCV, 1970; 397-401; E The Mahābhārata is rich in Vedic legends, names, metres and grammatical forms. It contains the legend of Śārṅgaka in I. 228-232. In this legend the Śārṅgaka sages are named as Jaritāri, Śārisṅkva, Stambamitra and Droṇa. Their father is Mandapāla and mother is Jarivā. The seers of Rv. X. 142 have been given as Jaritṛ, Śārisṅkva, Stambamitra and Droṇa. The first name differs in the two lists. The epic verses closely resemble the Mantras of the Yajurveda. However, there is no

trace of the epic story in the Rgveda. Śāyana has linked the epic story with Rv. X. 142 which can not be accepted for chronological reasons. Since the verses of this hymn are applied in prayers to ward off the dangers of Agni, it appears that the epic legend has been developed on the basis of Rv. X. 142 read with its application in ritual. It is also possible that there was some other Vedic legend which has given rise to the epic legend.

महाभारत वैदिक आख्यानों, नामों, छन्दों और व्याकरणिक रूपों में समृद्ध है। इस में १.२२८-२३२ में शाङ्गक का आख्यान आया है। यहां शाङ्गक ऋषियों के नाम जरितारि, सारिसृक्व, स्तम्बमित्र और द्रोण हैं। ऋ० १०.१४२ के ऋषि जरितृ, सारिसृक्व, स्तम्बमित्र और द्रोण दिए गए हैं। दोनों सूत्रियों के पहले नाम में भेद है। महाभारत के श्लोकों का यजुर्वेद के मन्त्रों से घनिष्ठ साम्य है। परन्तु इस महाभारतीय कथा का ऋग्वेद में कोई चिह्न नहीं है। सायण ने महाभारतीय आख्यान को ऋ. १०.१४२ से सम्बद्ध किया है जिसे तिथि-सम्बन्धी कारणों से स्वीकार नहीं किया जा सकता। क्यों कि इस सूक्त के मन्त्रों का प्रयोग अग्नि से भीति के निवारण की प्रार्थना में किया जाता है, ऐसा प्रतीत होता है कि यह महाभारतीय कथा ऋ. १०.१४२ और उस के कर्मकाण्ड में विनियोग के आधार पर विकसित हुई होगी। यह भी सम्भव है कि कोई अन्य वैदिक आख्यान रहा हो जिस से यह महाभारत का आख्यान विकसित हुआ है।

सुधीर कुमार गुप्त

२६. ऋग्वेदाचे द्रष्टे; व. ग. राहूरकर; ज्ञानेश्वर, ३.१; २.१६७१; १-१३; म. १ लेखक का पूर्व ग्रन्थ-Seers of the Rgveda, Poona, 1964. ऋग्वेदातील सूक्तों ज्यांनी "वाहिली" ग्रंथा ऋषींच्या वांगिक, सामाजिक, राजकीय इतिहास-विषयक इत्यादी प्रकारची माहिती मिळवण्याचा

imposed upon the archaic text an unnatural and unoriginal set of Samdhi rules and phonetic pronunciation (and later, consequently, transcription) which were completely at variance with the ṛṣi-kavis' own speech habits. It is now a product of pre- but semi-pāṇinian type of grammar. The essential genius of Indian literary transmission has always been not passively receptive but receptively dynamic and modifyingly redactional. This was due to the Indian cultural setting, transmission wear-and-tear and sacrificial decadence. The emergence of the various pāthas of the Ṛgveda explicitly imply the feeling of danger from wear and tear which must have set in at the time of their emergence. In their redaction the Samhitākāras besides effecting Samdhis etc. mentioned above, also changed the order of words. The original Ṛgvedic text should therefore, be reconstructed by restoring the metrical regularity etc. and four types of archaisms and for that sake all modifications of the text—especially in the word-order should be effected. The author has explained his method of reconstruction and its steps and has furnished a summary-demonstration of this method by offering reconstructed texts of some Ṛgvedic verses in Gāyatrī, Triṣṭubh and Jagatī metres. The paper also describes the nature, importance and quality of the eleven methodological and textual results obtained by the author from this and similar previous studies.

अब यह पूर्व—परन्तु अर्ध—पाणिनीय प्रकार की व्याकरण की निष्पत्ति है। भारतीय साहित्य संक्रामण सदा से ही, मूक ग्राहक न हो कर, ग्रहण में सशक्त और परिवर्तक शोधक-सम्पादक रहा है। इस के कारण भारतीय सांस्कृतिक व्यवस्था, संक्रामण में जीर्ण-शीर्ण हो जाना और याज्ञिक अधःपतन हैं। ऋग्वेद के विभिन्न पाठों का उद्गम स्पष्ट ही जीर्ण-शीर्ण होने के भय को व्यक्त करता है, जो उन पाठों के उद्गम काल में चालू हो चुका होगा। अपने शोधक सम्पादन में संहिताकारों ने, ऊपर वर्णित सन्धि आदि के अतिरिक्त, पदों के क्रम को भी बदल दिया। अतः ऋग्वेद के मूलपाठ की संरचना छान्दसिक व्यवस्था आदि को ठीक कर के तथा चार प्रकार की प्राचीनता को लागू कर के करनी चाहिए और इस के लिए पाठ में सर्वविध परिवर्तन, विशेष रूप से पदों के क्रम में हेर-फेर कर लेना चाहिए। लेखक ने पुनः संरचना की शैली और इस के सोपानों/क्रमों का व्याख्यान किया है और इस शैली का गायत्री, त्रिष्टुभ् और जगती छन्दों के कुछ ऋग्मन्त्रों के पुनर्निर्माण प्रस्तुत कर संक्षिप्त प्रदर्शन किया गया है। लेख में लेखक के प्रस्तुत और इसी प्रकार के पहले अध्ययनों से प्राप्त ग्यारह प्राणाली और पाठ सम्बन्धी निष्कर्षों के प्रकृति, महत्त्व और गुण का भी वर्णन किया

आत्मानुभव, सृष्टिक्रम, इतिहासज्ञान, आप्तजनो और सामान्य लोक के मत से होता है।

३६. श्री शूरजी आर्ष गुरुकुल "यज्ञतीर्थ" एटा (उ.प्र.) में अश्वमेध यज्ञ के स्वरूप का प्रदर्शन; ज्योतिस्वरूप आचार्य; आ.मा., ५०.२०; १५.१२. १९७०; १०; हि.। यह स्वामी ब्रह्मानन्द दण्डी के ८.११.१९७० के भाषण का सार है। अश्वमेध राष्ट्र और विश्व को धनधान्य से पूर्ण करना, और सार्वभौम सर्वहितकारी नियमों से राष्ट्र का पालन है, गोमेध वाणी आदि इन्द्रियों पर वश और गोरक्षा है तथा पुष्यमेध व्यक्ति का त्यागी हो अपने को ईश्वर के समर्पण करना और शव को जला देना है।

अथर्ववेद (Atharvaveda)

३७. श्रुतिसुधा; (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' से); गुप., २३.१-२; ६-१०.१९७०; १; हि.। यहां अवे. १०.७.२० (यस्माद्वो अपातक्षन्) का शब्दार्थ और भाव दिए गए हैं। ईश्वर वेदों का कर्ता है। वही उपासना के योग्य है।

३८. बृहस्पति द्वारा फालमणि-बन्धन; भगवद्भक्त वेदालंकार; गुप., २३.१-२; ६-१०.१९७०; ६७-१०२; हि.। यहां अवे. १०.६ का विश्लेषण और अध्ययन प्रस्तुत किए गए हैं। फालमणि का स्थान शरीर के अन्दर है। यह न अन्न है, न कुदाल, प्रत्युत मानव शरीरस्थ एक शक्ति है। देवों के अंश रूप फालमणियों से आविष्ट कृपिजन्य अन्न भी मणि है। भोजन द्वारा यह मणि शरीरस्थ देवों को प्राप्त हो जाता है। यह प्राप्ति अन्न के शरीर में वीर्य आदि में परिणत होने से होती है। वीर्य के शक्ति और इन्द्रिय केन्द्रों में पहुँचने पर आन्तरिक कृपिकर्म प्रवृत्त होता है। यहां अन्न ही अग्नि और कुदाल है। अग्नि ही खदिर है। इन्द्रिय प्रादि में दिव्य शक्ति ही अन्न है। इस अन्न रूप मणि को ही बृहस्पति सिद्धों को बांधता है- ऋग्वेद अन्नचर्य के पालन की निष्ठा देता है। उन में सर्वविध भूमि निवृत्ती है।

ब्राह्मण (Brāhmaṇas)

३९. सामविधानब्राह्मणम् with वेदार्थ-प्रकाश of सायणाचार्य and पदार्थमात्रविवृति of भरतस्वामिन्; Ed. B. R. Sharma, Tirupati, 1964; 15-00; Reviewer: V. G. Paranjape; ABORI., L. I-IV; 1969; 114-115; E. SVB. is edited with a new commentary by Bharata Svāmin along with that of Sāyana. Although a work of degenerate priesthood—a medley of Śrauta ceremonies, magical rites, kāmya ritual and rites for securing rewards yet its study with complete detachment is the prime need of the moment. This gives us a sample of painstaking scholarly work.

सायणभाष्य और भरतस्वामिन् के नए भाष्य के साथ सामविधान ब्राह्मण का सम्पादन है। यद्यपि यह पतित पौरोहित्य की रचना है जिस में श्रौत क्रियाओं, जादू-कर्म और लाभप्राप्ति के लिए काम्य विधि-विधानों की खिचड़ी है, तथापि पूर्ण अनासक्ति से इस का अध्ययन आज परम आवश्यक है।

40. Jaiminiyārṣeya-Jaiminiyopaniṣad Brāhmaṇa; Ed., Pub. B. R. Sharma, Director, Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, Tirupati; 24-00; Reviewer: C. G. Kashikar; ABORI., L. 1-IV; 105-108; E. The volume comprises two texts of the Jaiminiyas. The JĀBr. presents an exhaustive register of Gānas and their Ṛṣis. It is in sū-ra style. It differs from the Kauthuma Ārṣeya Brāhmaṇa mainly in its Gānas. The JUp. Br. may be regarded as a part of or an Appendix to the Jaiminiya Brāhmaṇa. It bears the character of an Upaniṣad rather than that of a Brāhmaṇa. It contains a few injunctive elements and several myths and legends particularly bringing out the significance of the Gayatri Sāman.

उन ग्रन्थ में जैमिनीयों के दो ब्राह्मणों का संग्रह है। जैमिनीयों के अन्तर्गत उन के ऋषियों का पूर्ण लेखा प्रस्तुत करता है। यह उपनिषद् भी है। कौथुम ब्राह्मण ब्राह्मण में उन का प्रमुख अंश गानों में है। जैमिनीयों के ब्राह्मण का

अंश या परिशिष्ट माना जा सकता है। इस की प्रकृति ब्राह्मण की अपेक्षा उपनिषद् की है। इस में कुछ विधि तत्त्व और बहुत सी कथाएं और आख्यान हैं, जो विशेष रूप से गायत्री सामन् के भाव की व्यक्त करते हैं।

४१. शतपथब्राह्मण की स्वरप्रक्रिया; बृजविहारी चौबे, प्राध्यापक, विश्वेश्वरानन्द इन्स्टीट्यूट ऑफ संस्कृत एण्ड इण्डोलोजिकल स्टडीज, (पंजाब यूनिवर्सिटी), होशियारपुर (पंजाब); यूरालसंहिस, १९६८-६९; ६१ ७३; हि. । सम्पूर्णा वैदिक वाङ्मय कुछ अपवादों के साथ स्वराङ्कित है। प्रायः संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक में एक ही प्रक्रिया मिलती है। परन्तु शतपथब्राह्मण (=श.) की स्वरप्रक्रिया सब संहिताओं और ब्राह्मण आदि से भिन्न है। वेबर, विश्वबन्धु, युधिष्ठिर मोमांसक, मैक्डोनल, केलण्ड और कीलहार्न की श. में स्वराङ्कनपद्धति एवं स्वरप्रक्रिया विषयक कल्पनार्थ (-विचार, व्याख्यान या लेख) परम्परा एवं शास्त्रीय सिद्धान्त के विपरीत हैं। श. 'में दो ही स्वर प्रचलित हैं— उदात्त और अनुदात्त। उदात्त और अनुदात्त का सन्धि से जो उदात्त स्वर उत्पन्न होता है उस को भापिक स्वर कहते हैं। जात्यादि स्वतन्त्र स्वरित भी भापिक कहलाते हैं। ये भापिक स्वर उदात्त ही होते हैं। भापिक स्वर से भिन्न संहिता में जो उदात्त होता है वह श. में अनुदात्त तथा संहिता में जो स्वरित एवं उदात्त होने हे वे श. में उदात्त हो जाते हैं।' उच्चारण और अर्थभेद से स्वरपरिवर्तन सब मानते हैं। याथाभेद और प्रक्रियाभेद से भी स्वरों में विषयय मिलता है। अतः स्वर के निर्णय में परम्परा ही प्रमाण है। उपर्युक्त श. की स्वर-प्रक्रिया कात्यायन श्रौतसूत्रादि से सम्मत है। संहिता के समान ही श. में उदात्त स्वर को बिना अंकित किये छोड़ दिया जाता है तथा अनुदात्त को वर्ग के नीचे एक पट्टी रेखा के द्वारा नकेतित किया जाता है। जात्यादि स्वतन्त्र स्वरित श. में उदात्त

ही माने जाते हैं, इस लिये इन के स्वराङ्कन का अलग प्रकार नहीं है। संहिता में जो वर्ण उदात्त था उस के नीचे श. में पट्टी रेखा का चिह्न देख कर तथा संहिता में जो अनुदात्त था श. में उस वर्ण के नीचे कोई चिह्न न देख कर वेबर, मैक्डोनल आदि विद्वानों ने अनुदात्त के चिह्न को उदात्त का चिह्न समझ लिया तथा अचिह्नित वर्णों को अनुदात्त समझ लिया, किन्तु उन की यह धारणा बिल्कुल गलत है। भापिक स्वर के लिये कोई चिह्न नहीं है।

४२. आलम्भ यज्ञ; बट्टीप्रसाद पंचोली, प्राध्यापक, राजकीय महाविद्यालय, किशनगढ़; यूरालसंहिस., २:७.१९६७; ४७-६३; हि. । देवपूजा, संगतिकरण और दानार्थक/यज्ञ से निष्पन्न यज्ञ को जैन, बौद्ध और वैदिक परम्परा में आध्यात्मिक तो माना ही गया है, वैदिक परम्परा में उस का जीवन के व्यावहारिक पक्ष से भी संबन्ध है। यज्ञ तो कर्म के लिए स्वार्थ की विचार की एकतानता की और साथ ही समष्टि के सन्दर्भ में अपने अधिकार के प्रति सत्य निष्ठा की संज्ञा है। प्राचीनों ने यज्ञ के तीन प्रमुख और इक्कीस अवान्तर प्रकारों में मनुष्यों के अनन्त कर्मों या यज्ञों को समाहित किया है। यज्ञ मन्त्रों से पदार्थ निर्माण, उन के उपभोग और उन की सत्ता की भावना की कल्पना से होते हैं। यज्ञ सब वर्णों से सम्बन्ध रखता है। क्षत्रियों का आलम्भयज्ञ से विशेष सम्बन्ध है। लौकिक और वैदिक साहित्य में आलम्भ का अर्थ छूना, पाना, व्यवस्था में रखना आदि हैं। इस का हिसा से कोई सम्बन्ध नहीं है। यज्ञों में न पशुहिंसा थी, न पुष्पहिंसा। यज्ञ ओषधियों से होता था। पशुओं और पुष्पों को यथायोग्य काम में लाना और व्यवस्था में रखना ही उन का आलम्भन है। पशु-हिंसा का बहिष्कार उल्लेख मान्य पड़ता है। अश्वमेध सौर मण्डन में चलने वाली क्रियाओं का प्रतीक है। गधालम्भ गो से दूध, दही और उपयोगी सामग्री प्राप्त करना आदि है। प्रतीक यज्ञों में पशु बलि के लिए पुरोडाश का प्रयोग होता था।

सब को वश में रखने का कार्य क्षत्रिय का था। अतः ब्राह्मण यज्ञ क्षत्रियों का कर्तव्य था। आजकल भी उद्घाटन समारोहों आदि के रूप में ब्राह्मण यज्ञ होते हैं। ब्राह्मण और आरम्भ एक ही हैं। ये पद 'कर्म', 'आरम्भ' आदि के द्योतक हैं।

43. Henoritualism of the Brāhmaṇa Texts; G. U. Thite, Centre of Advanced Study in Sanskrit, University of Poona, Poona; **JUPH.**, 33; 1970; 23-36; E. There is a general 'henoism' in Indian thinking. Hence anything which is the subject-matter at particular moment becomes the omnipotent, the highest, the only one identical with all etc for the time being This tendency is clearly seen in the careful descriptions and explanations of the ritual in the Brāhmaṇas which treat each and every detail in the ritual with utmost care and importance. The Brāhmaṇas glorify the ritual detail which is in the context as the only existing one forgetting that they have treated other preceding rites in the same manner. They identify these rites with worlds, Prāṇa, Vajra, year and so on and regard it as a means to attain heaven, to remove the asuras and so on. The paper calls this tendency 'henoritualism' and describes its various aspects like those mentioned above with examples and observes that this henoritualism is an important link between the ritualism and spiritualism of the Brāhmaṇa texts. It is also closely connected with the latent monism which is seen more prominently in the Upaniṣads and other literature.

भारतीय विचारधारा में एक को सर्वोपरि मानने की सामान्य प्रवृत्ति है। अतः कोई भी वस्तु जो किसी समय पर विचार का केन्द्र है, उस समय वही एक सर्वशक्तिमान्, सर्वोन्नत तथा सब के साथ तदात्मभूत मान ली जाती है। यह प्रवृत्ति ब्राह्मणों के क्रियाओं के वर्णनों और व्याख्यानों में स्पष्ट लक्षित होती है। ब्राह्मण कर्मकाण्ड के प्रत्येक विस्तार को बड़ी सावधानी और महिमा के साथ वर्णित करते हैं। ब्राह्मण वर्षमान क्रिया को एकमात्र महाबल के रूप में प्रदर्शित करने हे

और यह भूल जाते हैं कि उन्होंने ने उस पूर्व की क्रियाओं की भी इसी प्रकार स्तुति की है। वे इन क्रियाओं का लोकोप, प्राण, वज्र और संवत्सर आदि से तादात्म्य करते हैं और इसे स्वर्ग प्राप्ति और असुरों के अपाकरण आदि का साधन मानते हैं। यह लेख इस प्रवृत्ति को हीनोरिच्वलिज्म नाम देता है और जिस प्रकार के ऊपर वर्णित किए गए हैं इस प्रकार के इस प्रवृत्ति के विभिन्न पक्षों का सोदाहरण वर्णन करता है और मानता है कि यह हीनोरिच्वलिज्म ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड और अध्यात्म के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इस का उस अन्तर्हित अद्वैतवाद से भी गहरा सम्बन्ध है जो उपनिषदों और अन्य साहित्य में अधिक प्रमुख रूप में लक्षित होता है।

उपनिषद् (Upaniṣads)

40. Jaiminiyārṣeya-Jaiminiyopaniṣad-Brāhmaṇe Ed., Pub. B.R. Sharma, Director, Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, Tirupati; 24-00; Reviewer: C.G. Kashikar; **ABORI.**, L I-IV; 1969; 105-108; E.

४४. जीवन का लक्ष्य; जीवाराण पुरोहित श्री कर्णपुर; आ.मा., ५०.२०; १५.१२.१९७०; ४-५; हि.। यहां केनोपनिषद् २.२ (नाहं मन्ये सुवेदेति) के शब्दार्थ और भाव का व्याख्यान दिया गया है।

४५. श्वेताश्वतरोपनिषद्; ले. जगत् कुमार शास्त्री; प्र. मथुरा प्रकाशन, आर्य समाज, बाजार सीताराम, दिल्ली ६; रु. ४-००; हि.; समीक्षक: भवानीलाल भारतीय; आ.मा., ५०.१६; १.१२. १९७०; १५; हि.। प्रारम्भ के कनिषय मन्त्रों को विशद व्याख्या है, परन्तु पिछले अध्यायों में व्याख्या को सक्षिप्त कर दिया गया है।

46. Concept of Hamsa in the Upaniṣadic Literature; Anam Charan Swain, Poona; **JOI.**, XIX, 3; 3. 1970; 216-222; E. "In the R̥gveda the word hamsa besides denoting the swan was also used as a symbol of the sun. In the old upaniṣads" this "word came to mean both the individual self and the Supreme Self In the postvedic period, when purāṇic Hinduism was gaining strengt , hamsa

became a popular symbol, and signified the different techniques of yoga and meditation. It is the new upaniṣads which throw a flood of light on the concept of haṁsa and its development." In this connection the paper discusses the importance of 'Om', 'Om' pictured as haṁsa, Ajapā haṁsa-mantra and its tantric analysis and the characteristics of the haṁsa and parama haṁsa sannyāsins.

"ऋग्वेद में हंस शब्द हंस पक्षी का द्योतक होने के साथ सूर्य के प्रतीक के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है। पुराने उपनिषदों में यह जीव आत्मा और परम आत्मा का अर्थ देने लगा है। प्रत्यार्द्धिक काल में जब पौराणिक हिन्दु धर्म शक्तिशास्त्रों बन रहा था, हंस लोकप्रिय प्रतीक बन गया और योग तथा ध्यान की विविध विधियों का द्योतक हो गया। हंस की परिकल्पना और उस के विकास पर नए उपनिषद् पुष्प प्रकाश डालते हैं।" इस प्रसंग में लेख में 'ओम्' के महत्त्व, हंस रूप में चित्रित ओम्, अक्षया हंस मन्त्र और उस के तांत्रिक विशेषण तथा हंस और परमहंस सन्यासियों की विशेषताओं (या गुणों) का भी विचार किया गया है।

47. Pre-Śaṅkara Upaniṣadic Philosophy as Expounded by Kālidāsa; T. K. Gopala Swamy Iyengar, Department of Sanskrit, Sri Venkateswara University, Tirupati; UMCV, 1970; 179-186; E. Before the advent of Śaṅkarācārya the Vedānta philosophy and the Brahmasūtras were not very prominent. For an insight into the pre-Śaṅkara import of the Brahmasūtras, great poets like Kālidāsa are the only source. Kālidāsa has woven upaniṣadic thoughts into his works. He is a follower of the upaniṣadic conception of body-soul relationship (śarīra-śarīri-bhāva) between the Supreme Brahman and the entire sentient and insentient universe. This conception, the conception of antaryāmi-brāhmaṇa (BṛAUp.) and the summary teachings of the four chapters of the Brahmasūtra are clearly reflected in the nāndīs of his three drāmas as explained in this paper. Kālidāsa also implies that every word ultimately refers

to the Supreme Brahman. Kālidāsa does not conceive māyā or avidyā as enveloping the Supreme Being nor does he deny the reality of the world. He is, thus, a perfect realist and advocates the upaniṣadic conception of śarīra-śarīri-bhāva which admits unity in spite of diversity.

शंकराचार्य के प्रादुर्भाव से पूर्व वेदान्त दर्शन और ब्रह्मसूत्र बहुत प्रमुख नहीं थे। शंकर से पूर्व ब्रह्मसूत्रों के भाव के ज्ञान के लिए कालिदास जैसे महान् कवि ही स्रोत हैं। कालिदास ने अपनी रचनाओं में उपनिषदों के विचारों को परोसा है। वह परम ब्रह्म और समस्त जड़ वस्तु ब्रह्माण्ड के बीच उपनिषदों के शरीर-शरीरिभाव सम्बन्ध को मानते हैं। यह भाव, अन्तर्यामि-ब्राह्मण (बृहदारण्यक.), और ब्रह्मसूत्र के चार अध्यायों के संक्षिप्त विचार उन के तीन नाटकों की नान्दियों में इस लेख की व्याख्या के अनुसार स्पष्ट प्रति-विम्बित हो रहे हैं। कालिदास यह भी इंगित करते हैं कि प्रत्येक शब्द अन्ततोगत्वा परम ब्रह्म का संकेतक है। कालिदास परमात्मा के आच्छादक माया या अविद्या की कल्पना नहीं करते हैं। न वे जगत् की सत्यता का निराकरण करते हैं। इस प्रकार वे पूर्णतः यथार्थवादी हैं, उपनिषदों के शरीर-शरीरिभाव की परिकल्पना का प्रचार करते हैं, जो विभेदों के होते हुए भी ऐक्य को स्वीकारते हैं।

48. Problem of Biological Philosophy with regard to the Philosophy of the Upaniṣads; Bernhard Rensch, University of Münster, West Germany; IJHS, I.1; 5, 1966; 75-81; E. The basic thoughts of the Upaniṣads show a remarkable parallelism to modern aspects of science and natural philosophy. The old Indian philosophers were the first men who recognised the important fact that our sense data are only indications of the extra-mental reality, a statement which was established and investigated in detail by European thinkers like Descartes, Spinoza, Locke and their followers only in the seventeenth century. With doubt-

less certainty we can only pretend that we have psychic phenomena. When we try to find out what matter is like, we have to abstract from our feelings and from all senses qualities like colour, taste, smell, tones etc., characters which only run parallel to physiological processes in our sense organs and brains. But in this process of reduction we do not abstract from awareness as such (in its most general meaning). Hence all matter still remains a 'last something' endowed with a psychica character. This identistical and hylopsychistical standpoint is parallel to the old Indian ideas of ātman and brahman. It is strengthened by biological considerations about the phylogenetical development of psychic phenomena in animals, by statements of brain physiology and by the fact that physicists define matter mainly in terms of relations of energy". (Author's summary).

उत्पत्तियों के मूल विचारों का विज्ञान और दर्शन के आधुनिक पक्षों से विलक्षण साम्य है। प्राचीन भारतीय दार्शनिकों ने ही सर्वप्रथम इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को माना कि हमारे ऐन्द्रिय विषय प्रतिमानसिक सत्य के ही द्योतक हैं। डेस्कार्टेज, स्पिनोज़ा लोके और उन के अनुयायी आदि योरोपीय विचारकों ने तो इस विषय का प्रतिपादन और गवेषणा मन्त्रहर्षा शक्ती में की। निःसन्दिग्ध निश्चय में हम कह सकते हैं कि हम मानसिक दृश्यों का ही अनुभव करते हैं। जब हम यह जानना चाहते हैं कि द्रव्य क्या है, तो हम को अपने अनुभवों और रंग, स्वाद, गंध और स्पर्श आदि नमस्त इन्द्रिय गुणों में सूक्ष्मीकरण करना पड़ना है। ये विषय हमारे उद्देश्यों और मस्तिष्कों में शारीरिक प्रक्रियाओं के समानान्तर चलते हैं। परन्तु इस सूक्ष्मीकरण में हम (इस के परम नामान्वय प्रथम में) योग से धृक् नहीं होते हैं। अतः नम त द्रव्य प्रती भी मानसिक गुण में युक्त 'शेष कृद्' रह जाता है। यह वास्तव्यापारक और मनोहृत् स्वयंसी सिद्धान्त प्राप्त करने और प्रत्यक्ष के प्राचीन भारतीय विचारों के अनुभव है। उन की दृष्टि

पशुओं में पशुजाति सम्बन्धी मानसिक विषयों के विकास के प्राणिशास्त्रीय अध्ययनों, मस्तिष्क की रचना से सम्बन्धित कथनों और भौतिकीविज्ञानों के द्रव्य की प्रमुखतया शक्ति के रूप में परिभाषा से होती है।

सूत्र (Sūtras)

49. **Text-Critical Notes on the Vaitāna Śrauta Sūtra XXV-XLIII;** Hukum Chand Patyal, Poona; **JOL, XIX.4; 6, 1970; 319-330; E.** This paper contains a short account of the published editions of the text of the Vaitāna śrauta Sūtra (by R. Garbe and by Vishva Bandhu with the commentary of Ākṣepānuvidhi by Somāditya) and its English translations by W. Caland and S.N. Ghosal followed by a study of the Vaitāna text from the Text-critical point of view in which 112 readings have been examined pointing that in the light of this study both these editions can be improved.

इस लेख में (सोमादित्य की आक्षेपानुविधि नामक टीका सहित आर. गावें और विश्वबन्धु के (वैतान श्रौत सूत्र के पाठ के छपे संस्करणों, इस के डब्ल्यू कॅलण्ड और एस.एन. घोषाल के अंग्रेजी अनुवादों और वैतानपाठ के पाठालोचना की दृष्टि से अध्ययन का विवरण दिया गया है। इस अन्तिम अध्ययन में ११२ पाठों की परीक्षा की गई है और यह बताया गया है कि इस अध्ययन ककी दृष्टि में इन दोनों संस्करणों को सुधारा जा सकता है।

50. **The Text of Pāpmano Vinidhayaḥ with Commentaries;** C. G. Kashikar, CASS Univ. of Poona, Poona; **JUPH., 33; 1970; 39-60; E.** The text of the formulas called Pāpmano Vinidhayaḥ, purificatory in nature and preserved as a part of the Bauddh ŚS was published by W. Caland, then in the Śrauta Kośa Vol. I Kashikar has discovered two commentaries on these formulas viz., Subodhinī by Mahādeva Vājapeyayājñin and the other Siṅhānūvākabhāṣya (in m.s. क १),

published here for the first time on the basis of four mss. of the first and three mss. of the second commentary. The second commentary is inferior and is based on the first. These commentaries have helped in understanding the formulas and in fixing their text. Kashikar earlier published the results of his study in these two directions viz., English translation of the formulas, study of some vocables and readings. By reciting these formulas the sacrificer directs his evils or deficiencies towards objects or beings or regions as are characterised by those evils or deficiencies. The text edited here consists of the Mantras, their commentaries designated as सु and क, the variants found in the mss. of both the commentaries as also the different readings in the Mantras as published by Caland and Śrautakośa Vol. I. (The English introduction covers the Sanskrit introduction preceding the edited text. Hence abstract of the Sanskrit introduction has not been given here.)

शोधक फन वाले और बौधायन श्रौसू. के अंश के रूप में सुरक्षित पाप्मनो विविधयः सूत्र डब्ल्यू. कैलण्ड द्वारा और फिर श्रौतकोश भाग १ में प्रकाशित किए गए। काशीकर ने इन सूत्रों की दो टीकाएं खोज निकाली हैं—महादेव वाजपेययाजिन् की सुबोधिनी और दूसरी /हस्तलेख क १ में) सिद्धानुवाकभाष्य। ये दोनों यहां पहली बार प्रकाशित की गई हैं—पहली चार हने. के आधार पर और दूसरी तीन हने. के आधार पर। इन टीकाओं ने सूत्रों को समझने और उन के पाठ के निर्णय में सहायता की है। काशीकर ने पहले इन दोनों दिशाओं में अपने अध्ययन के परिणामों—अर्थात् सूत्रों के अंग्रेजी अनुवाद, कुछ पदों के पाठों और अध्ययनों को प्रकाशित किया था। इन सूत्रों के पाठ ने यजमान अपनी बुराइयों और कमियों को उन बुराइयों और कमियों से विनिष्ट पदावों, भूतों और प्रदेशों की ओर कर देना है। वहां प्रकाशित पाठ में मन्त्र, उन की मु

और क से इंगित टीकाएं, और दोनों टीकाओं तथा कैलण्ड और श्रौतकोश भाग १ में प्रकाशित मन्त्रों में प्राप्त पाठभेद हैं। [मूल पाठ से पूर्व प्रदत्त संस्कृत भूमिका के सब विषय अंग्रेजी भूमिका में आ गए हैं। अतः संस्कृत उद्धृतात का सार यहां नहीं दिया गया है।]

५१. जिज्ञासा और समाधान; युधिष्ठिर मीमांसक; वेवा., २३.३; १.१६७१; ४३-४६; हि.। युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा सम्पादित संस्कारविधि के प्राक्कथन में दो विधियों के अस्थान सन्निवेश विषयक लेख पर गुरुप्रताप की जिज्ञासात्मक आलोचना का समाधान इस लेख में प्रस्तुत किया गया है। अनेक विधियां अस्थान में निर्दिष्ट हैं, उन को यथास्थान प्रयुक्त करना चाहिए। कर्मकाण्ड ज्ञाता ही पौरोहित्य और ऋत्विक् कर्मों का अधिकारी है।

६. पाणिग्रहण प्रतिज्ञा; ब्रह्मानंद त्रिपाठी, अजमेर; आ.मा., ५०.२१; १.१.१६७१; १०-११; हि.।

३८. बृहस्पति द्वारा कालमणिवन्धन; भगवद्दत्त वेदालंकार; गुप., २३.१-२; ६-१०.१६७०; ६७-१०२; हि.।

सुधीर कुमार गुप्त

५२. मूलविधि: स्वरूप आण्ड उगम; प्रभाकर भा. मांडे; नभा., १०.१६७०; २१-२८; म.। धार्मिक विधियों का मूल विधि विश्वोत्पत्ति विषयक विधि है। जो विधि प्रचलित आहेत ते प्राचीन काळात प्रचलित अस लेलया राज्याभिषेक विधींचे आण्ड राज-वलिदान विधींचे अवशेष आहेत. समाजातील एखाद्या व्यक्तीला राजा किंवा देव मानून ल्याला वळी देण्यात यज्ञाचे मूल आहे. अश्व-मेधाचे उद्दिष्ट प्रजापतीचे संभरण करणे हे आहे. सर्व धार्मिक क्रियांचा उद्देश देवी शक्ति मिळवणे हा आहे.

धार्मिक विधियों की मूल विधि विश्वोत्पत्ति की विधि है। आज जो विधियां प्रचलित हैं, वे

प्राचीन काल में प्रचलित राज्याभिषेक विधियों के और राजवलिदान-विधियों के अवशेष हैं। समाज का किसी व्यक्ति को राजा या देव मान कर उस को बलि देने में यज्ञ का मूल है। अश्वमेध का लक्ष्य प्रजापति का संभरण है। सब धार्मिक क्रियाओं से दैवी शक्ति प्राप्त करना अभीष्ट है।

गणेश उमाकांत धिते

५३. संस्कारसमुच्चय; ले. मदनमोहन विद्यासागर; प्र. रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत; १२-००; समीक्षक: भवानीलाल भारतीय; आ.मा., ५०.२०; १५.१२.१९७०; १५:२-१६:१; हि.। यह दयानंद सरस्वती की संस्कारविधि से अनुभूति और सामग्री के आधार पर षोडश संस्कारों की तथा अनेक नौकिक कृत्यों की विधियों की निर्धारक स्वतन्त्र रचना है।

सुधीर कुमार गुप्त

54. **Accent in Sanskrit**; K. V. Abhyankar; **ABORI**, L. I-IV; 1969; 41-55; E. The author feels that the field of accent in Sanskrit has not been sufficiently explored. He, therefore, examines the problem from various angles and discusses a variety of problems connected with Sanskrit accent. He holds that the Rv. must have been recited with a stress. There are five types of accents—syllabic, sentential, metrical, modulatory and musical. The three accents udāta, anudāta and svarita with a difference in pitch, produced a musical effect, and hence, they can be called musical accents. The c accents later on developed into the seven musical notes. The present Saṃhitā text is only a presentation of the original metrical text in a different manner. It cannot be called a revision or redaction of the old text. Where one or more syllables are less, the number is completed by ह्रस्व or विश्लेषण. Where the syllable increases, it is reduced by reading two syllables as one—when two short syllables precede or follow a syllable with udāta accent or stress, the short vowel of one is lost. The author

examines the theory of and the reconstruction of the Rv. by Father Esteller, rejects it as unsound and lays down five important factors for the re-reading of the Rgvedic text.

लेखक मानते हैं कि संस्कृत में स्वर के क्षेत्र का पर्याप्त अनुसन्धान नहीं हुआ है। अतः वे इस विषय की अनेक दृष्टियों से परीक्षा करते हैं और संस्कृत स्वर से सम्बद्ध विभिन्न समस्याओं पर विचार करते हैं। वे मानते हैं कि ऋग्वेद का पाठ बलात्मकता से ही होता होगा। स्वर पांच प्रकार के हैं—अक्षर का, वाक्य का, छन्द का, ध्वनि के उत्तार—चढ़ाव का और संगीतात्मक। आरोह में भेद के कारण तीनों स्वर—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित संगीतात्मक प्रभाव उत्पन्न करते थे और इस लिए उन्हें संगीतात्मक कहा जा सकता है। ये स्वर बाद में संगीत के सात स्वरों में विकसित हो गए। उपलब्ध संहिता—पाठ मूल छान्दसिक पाठ को ही भिन्न रूप में प्रस्तुत करता है। इसे प्राचीन पाठ का संशोधन या नवीनीकरण नहीं कहा जा सकता है। जहाँ एक वा अक्षर कम होते हैं, वहाँ स्वरभक्ति या विश्लेषण से संख्या की पूर्ति कर ली जाती है। जहाँ अक्षर बढ़ते हैं, वहाँ दो अक्षरों को एक पढ़ कर संख्या घटा ली जाती है। जब किसी उदात्त या बलाघात से पहले या पीछे दो लघु अक्षर आते हैं, तो उन में से एक ह्रस्व स्वर का लोप हो जाता है। लेखक पादरी एस्टेलरके ऋग्वेद के पाठ के पुनर्निर्माण के मत और पुनर्निर्माण की भी समीक्षा करते हैं, इसे अग्रुक्त उद्धरण कर हेय बताते हैं और ऋग्वेद के पाठ के शोधन के लिए पांच महत्वपूर्ण नियम प्रस्तुत करते हैं।

55. **Udāta Accent Before And After The Age of the Veda Saṃhitās**; K. V. Abhayankar, Poona; **JOI**, XIX. 3; 3.1970; 213-215; E. Before the age of the Saṃhitās there was only one accent called Udāta or the stress accent on one syllable in a word, the other syllables being all unaccented. The Rv. was

recited in a strict verse-form with words uttered with the stress accent. Later on with the spread of Sanskrit among people using different styles of speech it became no longer possible to say which accent was a proper one. In poetic works and singing different types of accents came into use. In narration no accents were used. Accentuation, therefore, soon went completely out of use and posed a danger for the preservation of the Vedas. To preserve them they came to be recited in three tones--udātta, anudātta and svarita throughout the country.

संहिताग्रंथों के काल से पूर्व एक पद में एक ही अक्षर पर केवल उदात्त या बलाघात नामक एक ही स्वर रहता था, शेष सब अक्षर निघात रहते थे। ऋग्वेद का पाठ ठीक पद्यरूप में पदों के बलाघात स्वर के साथ किया जाता था। पीछे बोली की विभिन्न शैलियों का प्रयोग करने वाले लोगों में संस्कृत के प्रसार के साथ यह बताना सम्भव न रहा कि कौन सा स्वर ठीक है। काव्यकृतियों और गायन में विभिन्न प्रकार के स्वर प्रयोग में आने लगे। कथादि के वर्णन में किसी स्वर का प्रयोग नहीं होता था। परिणामतः स्वर शीघ्र पूर्णतः प्रयोग से उठ गया और वेदों की सुरक्षा के लिए समस्या बन गया। उन की सुरक्षा के लिए समस्त देश में उन का उच्चारण तीन स्वरों-उदात्त, अनुदात्त और स्वरित में किया जाने लगा।

56. A note on Pāṇini's Technical Vocabulary; George Cardona, Philadelphia (U. S. A.); *JOI*, XIX, 3; 1970; 195-212; E. "Early ritual literature shows no evidence of a standardized technical vocabulary which would reflect a syntactic analysis comparable to Pāṇini's. Nor would the general views of grammarians and ritualists support an assertion that the kāraka classification of Pāṇini represents an analysis based on the categories of the ritual. In the absence of documented evidence such a view is a mere conviction. This does not, of course, mean that Pāṇini did not know the ritual intimately; his own statements

prove the contrary. It does show, however, that quite aside from his being a product of his environment he was also a very astute grammarian. Let us not, for the sake of merely locating Pāṇini in some mystical Indian background, deny him this claim to greatness."

(Author's summary)

प्रारम्भिक कर्मकाण्डीय साहित्य में ऐसी किन्हीं स्थिर परिभाषाओं की साक्षी नहीं मिलती है, जो पाणिनि के सदृश कारकीय विश्लेषण को प्रतिबिम्बित करती हों। वैयाकरणों और कर्मकाण्डियों के सामान्य विचार भी इस बात की पुष्टि नहीं करते हैं कि पाणिनि का कारकों का वर्गीकरण कर्मकाण्ड के तत्त्वों के विश्लेषण का प्रतिनिधित्व करता है। ग्रन्थों की साक्षी के अभाव में ऐसा विचार केवल भावना ही है। परन्तु इस का यह अर्थ नहीं है कि पाणिनि कर्मकाण्ड को भली भाँति नहीं जानते थे। उन के अपने कथन इस के विरुद्ध साक्षी देते हैं। तो भी इस से यह सिद्ध होता है कि अपने वातावरण की उपज होने के साथ वह प्रकाण्ड वैयाकरण भी था। पाणिनि को किसी रहस्यवादी भारतीय पृष्ठभूमि में सिद्ध करने मात्र के लिए उसे इस महत्ता के अधिकार से वञ्चित नहीं करना चाहिए।

57. Authorship of a Vārttika from the Mahābhāṣya; S. D. Laddu, CASS., Univ of Poona, Poona; *JUPH*, 33; 1970; 13-22; E. Kielhorn has given two principles for judging whether a vārttika is by Kātyāyana or otherwise. According to his rules there should be a reference in the line Kelimara upasaṃkhyānam to the sūtra of Pāṇini under which it appears. No such reference is available here. Patañjali has not recognised the suffix kelimara. Uṇādi Sūtras recognise it but give a different accent. The use of the word upasaṃkhyānam in this line viewed in the light of its uses in Kātyāyana and Patañjali do not point to Kātyāyana's authorship of the line. The author finally concludes that this line does not

come from the pen of Kātyāyana but is framed later by Patañjali, and that this is one more instance of chance repetition at the hands of copyists being responsible for its having later come down wrongly as a vārttika of Kātyāyana.

कोई वार्तिक कात्यायन की है अथवा नहीं इस के निर्णय के लिए कील्टीर्न ने दो कसोटियाँ दी हैं। इन कसोटियों के अनुसार केलिमर उपसंख्यानम् पंक्ति में पाणिनि के उस सूत्र का निर्देश होना चाहिए जिस के अन्तर्गत यह पढ़ी गई है। यहाँ ऐसा कोई संकेत नहीं है। पतञ्जलि ने केलिमर प्रत्यय को मान्यता नहीं दी है। उणादि सूत्रों ने इस को माना है। परन्तु स्वर भिन्न दिया है। कात्यायन और पतञ्जलि के प्रयोगों की दृष्टि में परीक्षा करने पर इस पंक्ति में उपसंख्यानम् का प्रयोग इसे कात्यायन की रचना सिद्ध नहीं करता है। अन्त में लेखक निष्कर्ष निकालते हैं कि यह पंक्ति कात्यायन की लेखनी से नहीं आई है, बल्कि पीछे पतञ्जलि ने लिखी है, और कि यह एक और ऐसा उदाहरण है जहाँ लेखक द्वारा आकस्मिक पुनर्लेखन के कारण यह बाद में भूल से कात्यायन की वार्तिक के रूप में प्रचलित हो गई है।

58. A Brief Note on the Chronological Order of the Phīṭ-Sūtras, The Uṇādi-Sūtras and the Aṣṭādhyāyī; K. V. Abhayankar, Poona; JOI, XIX. 4; 8. 1970; 331-332; E. Pāṇini and his followers refer to the Uṇādi Sūtras directly and indirectly whereas the Uṇādis do not refer to Pāṇini. Uṇādis explain yoga-rūḍha words, while Pāṇini deals with yaugika words. Phīṭ Sūtras are very general rules about accent given by Śāntanava mere for the guidance of scholars in an age when Sanskrit was a spoken language. The chronology of the three works under discussion is thus: Phīṭ Sūtras, then the Uṇādi Sūtras and then the Aṣṭādhyāyī. In case of conflict the authority dealing with the type of the word under dispute should be accepted.

पाणिनि और उस के अनुयायियों ने उणादि सूत्रों की ओर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से निर्देश किया है, जब कि उणादियों ने पाणिनि की

ओर संकेत नहीं किया है। उणादि योगरूढ शब्दों का व्याख्यान करते हैं, जब कि पाणिनि यौगिक शब्दों का। फिट् सूत्र स्वरविषयक बहुत सामान्य नियम हैं जिन्हें शान्तनव ने उस काल के विद्वानों के पथप्रदर्शन के लिए निवद्ध किया था जब संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। अतः विचार्यमाण तीनों रचनाओं का रचनाक्रम इस प्रकार है—फिट् सूत्र, फिर उणादि सूत्र और फिर अष्टाध्यायी। तीनों में संघर्ष की स्थिति में वह प्रमाण मान्य होगा जिस के क्षेत्र के शब्द का विचार किया जा रहा है।

59. Some Views of Pāṇini And His Followers on Object Language and Meta Language; G. B. Palsule, CASS., Univ. of Poona, Poona; JUPH., 33; 1970; 1-7; E. 'The ancient Indian grammarians were aware of the form-denoting capacity of a word (Meta Language) as apart from its ordinary meaning-denoting capacity (Object Language). A word used in its form-denoting capacity was called swarūpa-padārthaka etc. as against the ordinary one which was called the artha-padārthaka. The term anukaraṇa which properly meant imitation, reproduction or quotation was also extended to such form-denoting words'. When a form-denoting word was used to convey its form, all distinctions of inflectional categories (which are based upon meaning) were effaced.

प्राचीन भारतीय वैयाकरण शब्द के सामान्य अर्थप्रकाशक पद (पदार्थभाषा) से भिन्न उस के अपने स्वरूपप्रकाशक पद (रूपभाषा) से परिचित थे। रूपघोतक पद में प्रयुक्त पद को स्वरूपपदार्थक कहते थे, जब कि सामान्य (अर्थ-प्रकाशक) पद को अर्थपदार्थक कहते थे। अनुकरण का वास्तविक अर्थ अनुहार, मूल रूप में कथन को कहना (-अनुकथन) या उद्धरण था। इस का प्रयोग इन प्रकार के स्वरूपघोतक शब्दों के लिए भी किया जाने लगा। जब किसी स्वरूपघोतक पद का प्रयोग अपने स्वयं के प्रकाशन के लिए किया जाता था, स्वरूपघोतक के समस्त भेद (विभक्ति आदि) (जो अर्थव्यय है) हट कर दिए जाने थे।

60. La Théorie Des Voix Du Verbe Dans L'École Pāṇinienne (Le 14 e Āhnikā); By Rosane Rocher, (Université Libre de Bruxelles: Travaux de la Faculté de Philosophie et Letters, To n. XXXV.); PP. 353; Bruxelles, Presses Universitaires de Bruxelles, 1968; Reviewer: T. Burrow; JRAS (GBI)., 1. 1970; 82-83; E. This work presents the teachings of Pāṇini and the works of his school represented by the Mahābhāṣya, the Kāśikā, the Dhātupāṭha and their commentaries, the Bhāṣāvṛtī, and the Durghaṭavṛtī on the uses of the Ātmanepada and the Parasmaipada. Here the original matter has been accurately paraphrased and rearranged under appropriate headings.

यह इति पाणिनि और महानाट्य, काशिका, धातुपाठ और इन की टीकाओं, भाषावृत्ति और दुर्घटवृत्ति रूप उन के अनुयायियों की रचनाओं की आत्मनेपद और परस्मैपद के प्रयोगों सम्बन्धी सिद्धांतों को प्रस्तुत करती है। यहाँ मूल मान्यों का सही अनुवाद किया गया है और उपयुक्त शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है।

कोषविद्या Lexicography)

61. A Comparative Dictionary of the Indo Aryan Languages; By R.L. Turner; Indexes, compiled by Dorothy Rivers Turner; PP. ix, 357; London, Oxford University Press; 1969; JRAS (GBI)., 1. 1970; 80-81; E. The publication of the dictionary was completed in 1966. Lady Turner has compiled the index volume listing "1,40,000 words quoted in the main dictionary for the purpose of comparison, arranged under the individual languages. The Pali and Prakrit words are listed first and after them the modern languages, arranged in geographical order, beginning with Gypsy in the west and ending with Sinhalese and Maldivian in the extreme south. In the case of some of the more important languages, which possess old literatures, there are sections representing the earlier stage of the languages, e.g. Old Bengali, Middle Bengali, Old Awadhi, Old Gujarati, Old Marathi"

कोष का प्रकाशन १९६६ में पूरा हो गया था। श्रीमती टर्नर ने परिशिष्ट लघु का संकलन किया है। इस में मूलकोष में उद्धृत १,४०,००० शब्दों को तुलना के प्रयोजन से विभिन्न भाषाओं के अन्तर्गत जमा कर अंकित किया गया है। पहले पालि और प्राकृत के शब्द रखे गए हैं और फिर पश्चिम में चक्रादी से आरम्भ कर के दूर दक्षिण में सिंहाली और मालदीवी पर समाप्त होने वाली आधुनिक भाषाओं को भौगोलिक क्रम से प्रतिबद्ध किया गया है। पुराने साहित्यों वाली कुछ महत्वपूर्ण भाषाओं के भाषा के पूर्वतर स्तरों का प्रतिनिधित्व करने वाले लघु भी दिए गए हैं, यथा पुरानी बंगाली, मध्य बंगाली, पुरानी अवधी, पुरानी गुजराती, पुरानी मराठी।

निर्वचन (Etymology)

६२. अक्षर-एक अध्ययन; शिवसागर विपाठी, प्राध्यापक सं. वि., राज. वि. वि., जयपुर; ब्रह्मसंहिता., १; ७.१९६७; २६-३८; हि.। 'अक्षर' शब्द स्थूलतः अविनाशी परम पुरुष (पर ब्रह्म) और 'सिलेबु' (Syllable) के अर्थों में प्रयुक्त होता रहा है। यह अर्थ वैदिक, उत्तर-वैदिक और पौराणिक निर्वचनों में सर्वथा पुष्ट है। फतह सिंह ने ऐसे पाँच निर्वचनों का अध्ययन कर इसे ✓ अक्षर उचित ही निष्पन्न माना है। लेखक ने महानाट्य और पुराणों को विशेष रूप से दृष्टि में रख कर इन निर्वचनों और 'अक्षर' के अर्थों का अध्ययन प्रस्तुत किया है। उपनिषदों के बाद के निर्वचनों ने इन के अर्थ-सौंदर्य को अधिक स्पष्ट कर दिया है। भाषा के क्षेत्र में यह विश्लेषण-प्रक्रिया का 'क्रोनीम' है, (परन्तु भाषादि रूप क्रोनीम नहीं है)।

63. A Note on the Epic Folk-Etymology of Rājān; Minoru Hara, Univ. of Tokyo; UMCV., 1970; 489-499; E. In Brāhmaṇa literature etymological approach to a word had a ritual, rather than a linguistic significance. The word and the object

denoted by it were a unity to the Indian ritualist. The analysis of a word means nothing to them but that of the object. The epics have sometimes adopted the style of the Brāhmaṇas and have sometimes differed in their etymologies which are found in the epics in quite a large number. A study of the folk etymological explanations found in Sanskrit literature sometimes enables us to discern what sort of concrete ideas the ancient Indians had about the given concepts, the name of which they attempted to analyse by their etymological devices. The author substantiates this observation by an analysis of the uses of the word rājan in the last portions of the Mbh. (12-18) and the whole Rāmāyaṇa. The word has been derived in most of the passages from the √ rāñj and indicates an emotional relation between the king and his subjects.

ब्राह्मण साहित्य के निर्वचनों का निगमन भाषावैज्ञानिक न हो कर कर्मकाण्डीय है। भारतीय कर्मकाण्डी के लिए शब्द और उस से द्योत्य पदार्थ एक ही थे। उन की दृष्टि में शब्द का विश्लेषण वस्तु का ही विश्लेषण था। वीरकाव्यों ने अपने निर्वचनों में अनेक बार ब्राह्मणों की शैली अपनाई है और कई बार उन से भिन्न शैली ली है। वीर-काव्यों में निर्वचन पुष्कल मात्रा में मिलते हैं। संस्कृत साहित्य में प्राप्त लौकिक नैरुक्त व्याख्यानों के अध्ययन से कई बार यह पता लगाना सम्भव होता है कि प्राचीन भारतीयों के उन प्रस्तुत परिकल्पनाओं के विषय में किस प्रकार के संहत विचार थे, जिन के नामों का वे अपने नैरुक्त उपकरणों से विश्लेषण करने का उपक्रम करते थे। लेराक ने इस कथन की पुष्टि महाभारत के अन्तिम भागों (१२-१८) और सम्पूर्ण रामायण में राजन् शब्द के प्रयोगों के विश्लेषण से की है। अधिकांश स्थानों पर इस शब्द को √रञ्ज से व्युत्पन्न कर राजा और उस की प्रजायों के बीच एक भावात्मक संबंध को दर्शाया गया है।

६४. सरस्वतीनन्दस्य व्युत्पत्तिविचारः;
रघुनाथ पेंरी, राजकीय महाविद्यालय, जोड़; गुप.,

२३.३; १०-११.१६७०; ११६-१२०; सं. १ √सृ (गतौ) इति निर्वचनात् समधिकवैज्ञानिकरूपेण सरस्वतीति शब्दो व्याख्यातुं शक्यते। यास्क-पाणिनि-सूर्यकान्त-कीथ-मैकडोनल-पुराणादीनां निर्वचनानि व्याख्यानानि च प्रत्याख्याय १. नद्यर्थे √सृ (स्वृ-गमने) इति २. वागर्थे √सृ < स्वृ (शब्दे) इति ३. देवतार्थे √सृ < स्वृ (स्वरे-स्तवने) इति ४. धेन्वर्थे √सृ < स्वृ (उपतापे) इति निर्वचनानि प्रस्तुतान्यत्र।

√सृ से निर्वचन की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक रीति से सरस्वती शब्द का निर्वचन संभव है। यास्क, पाणिनि, सूर्यकान्त, कीथ, मैकडोनल और पुराणों आदि के निर्वचनों का प्रत्याख्यान कर गति, शब्द, स्वर—स्तवन और उपताप अर्थों वाली √स्वृ >सृ से नदी, वाक्, देवता और गाय अर्थों में निर्वचन प्रस्तुत किए गए हैं।

65. (Letter dated 15-5-1965 in) Appendix (to Nature and Scope of Etymology in the Context of Vedic Words by S. K. Gupta); S. Varma, Honourary Incharge, V. V. R. I. Sub-office, 284 Sector 16 A, Chandigarh-2; URSHS., 1967-68; 81-89; E. This letter is an observation on S.K. Gupta's paper यास्क्रीय निर्वचन published in the वेदवाणी, वाराणसी (17.1-4). Here the writer explains the latest views of Etymology, particularly the Synchronistic approach to it, shows that each system evolves its own groups in order to explain a language from the inside out and observes that the practical problem is to prepare patterns of etymologies, which were already there in the Vedic language. They only need to be ascertained "to recode" them. It is true that the Vedic literature is the oldest literature in Indo-European. But some non-Vedic languages embody Indo-European forms much older than Vedic ones. In Indo-European languages, unrelated monosyllabic words are unthinkable. Vedic monosyllabic words can, therefore, be called monosyllabic correlates of vocabulary patterns. Most of such words in inflected languages are dissyllables.

Linguistic study of Vedic words can not be separated from literary evidences. Yāska's approach is entirely functional, purposive and consequently subjective.

यह पत्र वेदवाणी, वाराणसी (१७.१-४) में प्रकाशित स.क. गुप्त के लेख पर एक दृष्टि है। यहां लेखक निरुक्ति के नूतनतम विचारों, विशेष रूप से इस की ओर समकालिक पहुंच को स्पष्ट करते हैं। अन्दर से बाहर की ओर किसी भाषा के व्याख्यान के लिए प्रत्येक प्रणाली अपने वर्ग बनाती है। अतः व्यावहारिक समस्या निरुक्तियों के उन प्रतिरूपों को तय्यार करना है, जो वैदिक भाषा में पहले ही विद्यमान हैं। केवल पुनः वर्गीकृत करने के लिए उन का निर्धारण अपेक्षित है। यह सत्य है कि भारोपीय में वैदिक साहित्य प्राचीनतम साहित्य है। परन्तु कुछ अवैदिक भाषाओं में वैदिक भाषा के रूपों से बहुत अधिक प्राचीनतर भारोपीय रूप सुरक्षित हैं। भारोपीय भाषाओं में अतस्म्वद्ध एकाक्षर शब्द अचिन्त्य हैं। अतः एकाक्षर वैदिक शब्दों को शब्दों के प्रतिरूपों से तस्म्वद्ध ही माना जा सकता है। इन में से अधिकांश शब्द विभक्तिप्रधान भाषाओं में द्व्यक्षर हैं। वैदिक पदों का भाषाशास्त्रीय अध्ययन साहित्यिक साक्षी से विलग नहीं किया जा सकता है। यास्क की पद्धति व्यवहारमूलक, सहेतुक और इस कारण व्यक्ति-निष्ठ है।

66^a **Nature and Scope of Etymology in the Context of Vedic Words;** S. K. Gupta, Reader in Sanskrit, Rajasthan Univ., Jaipur; URSHS., 1967-68; 61-89; E. The paper is a sequel to S. Verma's letter dated 15. 5. 1965 printed in the Appendix offering some observations on the author's paper Yāskīya Nirvacana (Veda Vāṇī, Varanasi, 17.1-4) It examines the natures and approaches of both the ancient and modern sciences of etymology and concludes that the 'evidences in the modern study of etymology of Vedic words many a time are vitiated by imaginary and circumlocutory forms, principles and laws. The very existence of the I. E. language is doubt-

ful. Various stages of historical developments of I. E. languages and words and the factors leading to them cannot be ascertained with sufficient amount of accuracy and authenticity. Moreover, here the attention is mainly directed towards phonetic developments irrespective of semantic developments, while the Indian approach attaches secondary or no importance to phonetic developments. The modern study is useful and important from the view point of phonology but it is not very helpful for the interpretation of vedic words and texts. For this purpose one should adopt the approach of the ancient Indians, using the modern apparatus as a corroborating evidence, wherever it helps.'

यह लेख वेदवाणी वाराणसी १७.१-४ में छपे लेखक के लेख यास्क्रीय निर्वचन पर कुछ विचार प्रस्तुत करने वाले परिशिष्ट (ऊपर ६५ देखें) में छपे एस. वर्मा के पत्र दिनांक १५-५-१९६५ का परिणाम है। यहां निरुक्तिविषयक प्राचीन और अर्वाचीन—दोनों ही विज्ञानों की प्रकृति और पद्धतियों की परीक्षा की गई है और निष्कर्ष निकाला गया है कि वैदिक पदों के निर्वचनों के आधुनिक अध्ययन में साक्षियां अनेक बार काल्पनिक, घेरे में घूमने वाले रूपों, नियमों और सिद्धान्तों से दूषित हो जाती हैं। भारोपीय भाषा की सत्ता ही सन्दिग्ध है। भारोपीय शब्दों और भाषाओं के ऐतिहासिक विकास के विभिन्न स्तरों और उन के साधक तत्त्वों को पर्याप्त सूक्ष्मता और प्रामाणिकता से निर्धारित नहीं किया जा सकता है। अर्थात्, यहां ध्यान अर्थवैज्ञानिक विकासों की अपेक्षा के बिना ध्वनिसम्बन्धी विकासों पर केन्द्रित किया जाता है, जब कि भारतीय पद्धति ध्वन्यात्मक विकासों को गौरव या कोई महत्त्व नहीं देती है। आधुनिक अध्ययन ध्वनिविज्ञान की दृष्टि से उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है, परन्तु वैदिक शब्द और ग्रन्थों के अर्थ करने में यह बहुत सहायक नहीं है। इस प्रयोजन के लिए प्राचीन भारतीयों की पद्धति का ही अवलम्बन करना चाहिए। जहां सहायक हो,

वहाँ आधुनिक उपकरणों को पोषक साक्षी के रूप में काम में ले लेना चाहिए।

ज्योतिष (Astronomy)

67. The Brahmasiddhānta of Śākalya; D. G. Dhavale, Fergusson College, Poona; JUPH. 33; 970; 37-38; E. Out of the four Siddhāntas (astronomical works) the Brahmasiddhānta has invariably described itself as the dvitīya praśna at the end of all its chapters The author has secured a mss. of the work from South India in which there are many verses not found in the North Indian mss. A statement in this mss. leads to the conclusion that Sūrya Siddhānta was the first Praśna. The other praśnas were : 2. Brahmasiddhānta of Śākalya 3. Pauliśa Siddhānta 4. Somasiddhānta 5. Romaśasiddhānta 6. Garga-Saṃhitā 7. Some treatise attributed to Bṛhaspati 8. Vasiṣṭha Siddhānta. There was probably no astronomer named Śākalya. Someone has fathered his work on him.

(ज्योतिष के) चार सिद्धान्त (ग्रन्थों) में से ब्रह्मसिद्धान्त ने अपने को अपने सब ग्रन्थियों के अन्त में द्वितीय प्रश्न कहा है। लेखक को इस रचना का एक हले, दक्षिण भारत से मिला है जिस में ऐसे बहुत से पद्य हैं जो उत्तर भारतीय हले, में नहीं मिलते हैं। इस हले, के एक कथन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि सूर्यसिद्धान्त प्रथम प्रश्न था। अन्य प्रश्न थे—२. शाकल्य का ब्रह्मसिद्धान्त ३. पोलिशासिद्धान्त ४. सोमसिद्धान्त ५. रोमश-सिद्धान्त ६. गगंसंहिता ७. बृहस्पति से सम्बद्ध कोई ग्रन्थ ८. वसिष्ठसिद्धान्त। सम्भवतः शाकल्य नाम का कोई ज्योतिषी न था। किसी ने अपनी रचना को उस के नाम से सम्बद्ध कर दिया है।

सामान्य अध्ययन (General Studies)

वेदार्थ (Vedic Interpretation)

ज्ञानं सर्वेषामावश्यकम् । श्रुत्यर्थविज्ञानं तु त्रैवर्णिक-मानुषयोगि सम्प्रदायसिद्धं चेष्यते । शूद्रा वेदानधिकारिणः । पाश्चात्या वेदार्थं न जानन्ति । तुलनात्मकं व्याख्यानं नोचितम् । सायणभाष्यमेव पारमार्थिकं नान्यं नव्यं भाष्यम् ।

वेदों का अर्थ जानना सब के लिए आवश्यक है। यह अर्थज्ञान तीनों वर्गों के लिए उपयोगी और परम्परा के अनुसार होना चाहिए। शूद्रों को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं है। पाश्चात्य वेदार्थ नहीं जानते हैं। तुलनात्मक व्याख्यान अनुचित है। सायण का भाष्य ही पारमार्थिक है, अन्य नवीन भाष्य नहीं।

वेद का स्वरूप (Nature of Veda)

६६. महर्षि जैमिनि का वेद-विषयक सिद्धान्त ; जगत्कुमार शास्त्री, साधु सोम तीर्थ, देहली; ब्रा. मा., ५०-१६; १-१२. १६७०; ३-५; हि.। यहां पर मनु और उस के अनुयायी दयानन्द की वेद-विषयक मान्यता का कथन कर गंगाप्रसाद उपाध्याय के 'मीमांसाप्रदीप' में से वेदों की अपौरुषेयता और प्रामाणिकता पर जैमिनि के सिद्धान्त को उद्धृत किया गया है। जैमिनि के मत में वेद आप्तोपदेश और प्रामाणिक हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थ भी प्रमाण हैं, परन्तु वेद परम प्रमाण और धर्म के ज्ञापक हैं। यहां नित्य ग्रन्थों के नित्य शब्दों के साथ नित्य सम्बन्ध का ज्ञान होता है। शब्दार्थ सम्बन्ध नित्य है, शब्द भी नित्य है। ग्राहृति और जाति समानार्थक हैं। शब्दों के अपने ग्रन्थों के वाक्यगत क्रियावाचक शब्द से सम्बन्ध द्वारा वाक्य के ग्रन्थ का बोध होता है। काठक, तालापक आदि प्रवचनकर्त्ताओं के नाम हैं। मन्त्रों में व्यक्तियों के नाम नहीं हैं।

भवानो लाल भारतीय; आ. मा., ५०, १६; १-१२-७०; १५-१६; हि० । वेद के यथार्थ अर्थ के ज्ञान में बाधक अपूर्ववाद, विनियोगवाद और विकासवाद तथा साधक योगिकवाद, समकक्षवाद और विज्ञानवाद के परिचायक, ऋषि दयानन्द की वेदार्थक्रांति के महत्त्व के प्रतिपादक वेदसम्मेलन अम्बाला में स्वामी समर्पणानन्द के अध्यक्षीय भाषण का सम्पादन है ।

वैदिक देववाद (Vedic Mythology)

७१. अग्निसंहिता रहस्यविदां सिद्धान्तः (आयंपत्रिकायां प्रकाशिताग्निसूक्तानां प्रस्तावनातः संकलिताः संदर्भाः); अरविन्दः, अनुवादकस्य नाम न प्रक्तम्; गुप०, २३.१-२; ६-१०. १६७०; ४०-४४; सं. । वृहत्त्वं वास्तवमस्तित्वं ज्योतिरानन्द इति यज्ञस्य लक्ष्यम् । यज्ञः प्रयात्यारोहति च । अग्निना सत्तासमुद्रः समुत्तार्यः । शत्रवो दस्यवश्च जेतव्याः । वृत्रशुष्णादिराक्षसा. मानवान् पीडयन्ति । देवानां साहाय्येन ते निष्कासनीयाः । वेदोक्ता इन्द्रसोमवरुणादयो देवताः किल दिश्वव्यापि परम-देवस्य नामानि, शक्तयो व्यक्तित्वविशेषाश्च । एता अस्माकं दिव्याः सखायः । अस्माकं पूर्णतार्थं सर्वेषां देवत्वानां विकासोऽपरिहार्यः । एवमेव सत्यं, तेन चानन्दः, तत्र च निरपेक्षसती निस्सीमचेतन्यम् उपलभ्यते । पौराणिकत्रिमूर्तेर्मूलभूतास्तित्तो महादेवताः परमेश्वरस्य तिलो वृहत्तमशक्तय इमा क्रमोन्नतिमिममूर्ध्वान्मुखविकासं च साधयन्ति । ऋषयः केषांचिदाध्यात्मिकविजयविशेषाणां निदर्शनभूताः ।

यज्ञ का लक्ष्य विशालता, वास्तविक सत्ता, ज्योति और आनन्द हैं । यज्ञ गति करता है, (ऊपर की) चढ़ता है । अग्नि के द्वारा सत्ता के समुद्र को पार करना चाहिए । शत्रुओं और दस्युओं को जीतना चाहिए । बुध, शुक्र आदि राक्षस मानवों को पीड़ित करते हैं । देवताओं की सहायता से उन्हें नितान्त देना चाहिये । वैदिक इन्द्रादि देवता दिश्व-

व्यापी परम देव के नाम, शक्ति और व्यक्तिविशेष हैं । ये हमारे दिव्य पित्र हैं । अपनी पूर्णता के लिए सब देवभावों का विकास अनिवार्य है । इस प्रकार ही सत्य और उस से आनन्द और आनन्द में निरपेक्ष सत् का असीम चैतन्य प्राप्त हो सकता है । पौराणिक त्रिमूर्ति के देवता भी परमेश्वर की तीन विशाल शक्तियां हैं । ये उपर्युक्त क्रमोन्नति और ऊर्ध्व विकास को सिद्ध करती हैं । ऋषि आध्यात्मिक विजयों के द्योतक हैं ।

७२. तस्माद् देवस्य देवता; औदुम्बरकरः; गुप०, २३.१-२; ६-१०. १६७०; १४-२०; सं० । अत्र पौराणिकमतानुसारी वेदविचारो विहितः । वेदात् स्वर्गमोक्षयोजनं भवति । वेदाः अपौरुषेया । वेदकालनिराण्यो व्यर्थः । प्रतिसृष्टि ईश्वरो नित्य-सिद्धमेव वेदं प्रकाशयति । मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदः । वेदे कर्मोपासनाज्ञानेतिविधप्रतिपादकतया त्रिकाण्डो वेदः । तत्र अद्वैतवादः, प्रतीकोपासना च वरीवर्ति । सा एव मूर्तिपूजा । वेदोऽखिलो धर्म-मूलम् । तत्र स्त्रीः शूद्रांश्च विहाय सर्वेषामधिकारः । पुराणमीमांसादिशास्त्राणि धर्मप्रमाणानि सन्ति । वेदोपवेदेष्वेवैतदश विद्यारः सन्ति ।

इस में पौराणिक मतानुसार वेद का विचार है । वेद अपौरुषेय हैं । उन का कालनिराण्य आवश्यक नहीं है । ईश्वर हर सृष्टि में नित्यसिद्ध वेद को प्रकट करता है । मन्त्र और ब्राह्मण वेद हैं । वेद तीन काण्डों वाला है । वहाँ अद्वैतवाद और प्रतीकोपासना बहुशः मिलती है । यही मूर्तिपूजा है । वेद सब धर्मों का मूल है । स्त्री और शूद्रों को छोड़ कर सब का वेद में अधिकार है । पुराण और मीमांसा आदि शास्त्र धर्म के प्रमाण हैं । वेदों और उपवेदों में अठ रह विद्याएँ हैं ।

७३. वैदिक देववाद; सत्यकाम वर्मा; गुप०, १३. १-२; ६-१०. १६७०; १०४-११३; हि० । ऋग्वेद मे देवों के एकत्व की भावना रही प्रतीत नहीं होती । देवता तीन प्रकार के हैं-१. प्राकृतिक २. ऐतिहासिक व्यक्ति ३. भावात्मक । यास्क के

देवों और मन्त्रों के तीन-तीन प्रकारों के मूल में वे तीन प्रकार रहे होंगे। वे सब देवों को इन तीन पक्षों में लेना चाहते हैं। पादशास्त्रों ने यास्क के भाव को न समझ कर प्राकृतिक देवता ही माने हैं। सृष्टि के मूल तत्त्व को वेद ने पुरुष और आइस-लैंड के आदिमों ने इमिर कहा। नासदीय सूक्त और पुरुष सूक्त के समन्वित भाव का इमिर के वर्णन से घनिष्ठ साम्य है। वस्तुतः वैदिक देवकल्पना भी आदिम मानव की कल्पनाओं पर आश्रित है। प्रत्येक देवता के उपयुक्त तीन रूप हैं। वे तीनों रूप एक दूसरे में मिल गए हैं। परन्तु सब देवों के रूप में इन तीन प्रकारों को खोजना सम्भव नहीं। वैदिक देवों के स्वरूप के विश्लेषण से यह तथ्य सुव्यक्त है। अतः वैदिक देवकल्पना एक दृष्टिमात्र है जो एक मूलभूत सत्य को भिन्न-भिन्न रूपों में प्रस्तुत करती है। इस दृष्टि के 'कारण इतिहास, भूत जगत् या भाव जगत् से आई कोई भी वात, भाव, या व्यक्ति अपना नाम-रूप खो कर तीनों में से किसी भी रूप में वर्णित की जा सकती है।'

वैदिक दर्शन (Philosophy of the Veda)

४२. आलम्ब यज्ञ; वरी प्रसाद पंचोली, प्राध्यापक, राजकीय महाविद्यालय, किशनगढ़; पूरा-संहिता., २; ७.१६६७; ४३-६३; हि.।

74. Upaniṣadic Ātman and the Conception of Atmā in the Teachings of the Buddha; (Partly published in) Poona Orientalist, xxvii; 1964; 114-132; E. This paper seeks to present a comprehensive account of the Buddha's teachings with regard to the conception of Atmā and establishes that the Buddha did not negate the existence of Ātman, rather he repudiated the conceived identity of the Ātman with the body, the mind and the senses. The Buddha's view point has been compared with the Upaniṣadic concept of Ātman. The problem of the Avyākṛtas has also been tackled and it has been established that the Buddha recognised the conscious and enduring Ātman in ourselves.

यह लेख अत्ता के विषय में बुद्ध के विचारों का व्यापक आकलन प्रस्तुत करता है और दिखाता है कि बुद्ध आत्मा का नहीं, प्रत्युत शरीर, मन और इन्द्रियों से आत्मा के कल्पित तादात्म्य का निषेध करते हैं। बुद्ध के विचार की श्रौचनिपद आत्मविचार से तुलना की गई है। अव्याकृत समस्या का भी विचार किया गया है और यह प्रतिपादित किया गया है कि बुद्ध ने प्राणियों में चेतन नित्य (निर्विकल्प, निव) आत्म-तत्त्व की सत्ता मानी है।

करुणेश सुबल

१६. ऋग्वेद का इन्द्र, इन्द्राणी और वृषाकपि का सम्बाद; रामनाथ वेदालंकार; गुप०, २३.१-२; ६-१०.१६७०; ७०-७६; हि.।

७५. ऋग्वेद के ऋषि और उन का सन्देश और दर्शन; सुधीर कुमार गुप्त; १६६७; ६४; ५-००; हि., अ.। इस में लेखक ने दिखाया है कि वेदमन्त्रों के ऋषि, देवता और छन्द उन-उन मन्त्रों के अर्थों को बताने वाली परिभाषाएं हैं, व्यक्तिविशेषों, व्यक्तिविशेषों और अक्षरपरिभाषाओं के द्योतक पद नहीं हैं। दो परिशिष्टों में लेखक के शोधप्रबन्ध 'वेदभाष्यपद्धति को दयानन्द सरस्वती की देन' से ऋषियों और छन्दों के मन्त्रों को अर्थ की प्रकाशक परिभाषा मानने की पुष्टि में पुष्कल सामग्री भी प्रस्तुत की गई है। साथ में अंग्रेजी का मूल लेख भी दिया गया है।

अनिल कुमार गुप्त

46 Concept of Ātman in the Upaniṣadic Literature; Anand Charan Swain, Poona; JOL, XIX, 3; 3, 1976; 216-222; E.

४६. जीवन का लक्ष्य; जीवाराज पुरोहित; श्री कर्णपुर; आ.भा., ५०-२०; १५.१२.१६००; ४-५; हि.।

10. Jaiminiyār-cya-Jaiminiyopaniṣad Brāhmaṇe; Ed., Pub. B. R. Sharma, Director, Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, Tirupati; 24-60; Rev. C. G. Kashikar; ABORI, L. I-IV; 1-62; 105-106; E.

76. A Discourse on Saccidānanda; R. K. Garg, Deptt. of Philos., M. M. H. (P. G.) College, Ghaziabad (U. P.); UMCV., 1970; 65-80; E. The entire history of Indian philosophy, indeed, tells a story of Saccidānanda. Its concept finds its most exalted and perfect expression in Prasthāna trayī. Sat, cit and ānanda respectively relate to cognition, conation and affection. In an integrated personality all these three processes unite in a balanced, ordered, synthesised and proportionate degree. Indians have always lived a life of saccidānanda. The author now examines the metaphysical, religious and ethical senses of sat, metaphysical and epistemological and special senses of cit, and general and philosophical views about ānanda. Philosophically ānanda is identified with Brahman or Ātman. The Prasthāna trayī defines Brahman as Sat (Existence), Cit (Knowledge) and Ānanda (Bliss). This threefold nature of Brahman distinguishes Brahman from the nāma-rūpātma jagat which is unreal (anṛta), non-intelligent (jaḍa) and of the nature of suffering (duḥkha). These Sat, Cit and Ānanda are inseparable from Brahman, are not Its parts or properties or attributes, although they seem as if separable. Hence Saccidānanda is verily advaita (unique).

वस्तुतः समस्त भारतीय दर्शन सच्चिदानन्द की कहानी कहता है। प्रस्थानत्रयों में इस के भाव का परम उदात्त और पूर्ण प्रकाश हुआ है। सत्, चित् और आनन्द क्रमशः ज्ञान (अनुभव), इच्छा और राग से सम्बन्ध रखते हैं। पूर्ण आदर्श मानव में ये तीनों क्रियाएँ सन्तुलित, नियमित, संश्लिष्ट और समुचित मात्रा में पाई जाती हैं। भारतीयों ने सदा सच्चिदानन्द का जीवन बिताया है। अब केवल सत् के आध्यात्मिक, धार्मिक और नैतिक अर्थों, चित् के आध्यात्मिक, तात्त्विक और विशेष अर्थों तथा आनन्द के सामान्य और दार्शनिक विचारों की परीक्षा करते हैं। दार्शनिक दृष्टि से आनन्द का ब्रह्मन् और आत्मन् से तादात्म्य है। प्रस्थानत्रयों ने ब्रह्मन् को सत् (सत्ता), चित् (अन) और आनन्द (परम सुख) कहा है। ब्रह्मन्

की यह त्रिविध प्रकृति ब्रह्मन् की नामरूपात्मक जगत् से पृथक् करती है, जो असत्य (अनृत) जानहीन (जड़) और दुःख के स्वभाव वाला है। ये सत्, चित् और आनन्द ब्रह्म से अविभाज्य हैं, ये ब्रह्मन् के अंग, गुण या उपाधियाँ नहीं हैं, यद्यपि वे विभाज्य-से मालूम पड़ते हैं। अतः सच्चिदानन्द निःसन्देह अद्वैत (अनुपम) ही है।

सुधीर कुमार गुप्त

77. Try'ambaka (the Genesis of the Concept); Sadashiva Ambadas Dange, Bombay; JOL., XIX. 3; 3. 1970; 223-227; E. "The most original concept in the word tryambaka is that of the triple fire fostered by the triple water-mothers. This concept appears to be the most dominating one, and was later transferred to Rudra-Śiva, in one of the aspects of the cosmic fire. The fire is also prominently associated with Śiva in his form as try'ambaka being present in his third eye on the forehead. This brings us to the concept of ambaka as eye. Agni's constant association with waters as the light principle probably gave rise to the concept of the shining or seeing water-principle—the ambaka. Ambaka seems to refer to the cosmic light principle. In this way try'ambaka (one having three eyes) will be the cosmic waters. The concept of pervading light-eye in the cosmic waters is not clearly seen in the Vedic or the later Hindu mythology, though it is very well suggested. This concept is very finely present in the ancient Egyptian mythology."

त्र्यम्बक शब्द की सर्वाधिक मौलिक परिकल्पना तीन जल-माताओं द्वारा पोषित तीन अग्नियों की है। यह परिकल्पना परम प्रभावशाली रही मालूम पड़ती है और पीछे सृजक अग्नि के एक रूप में रुद्र-शिव को संक्रान्त हो गई। अग्नि भी त्र्यम्बक रूप वाले शिव के साथ उस के मस्तक की तीसरी आंख में उपस्थित होने के कारण प्रमुखता से सम्बद्ध है। यह हमें त्र्यम्बक की परिकल्पना-आंख पर ले आता है। प्रकाशतत्त्व के रूप में अग्नि के जलों के साथ सतत सम्बन्ध ने सम्भवतः त्र्यम्बक-

चमकते हुए या देखने वाले जलतत्त्व के भाव को जन्म दिया होगा। अम्वक सृजक प्रकाशतत्त्व का द्योतक प्रतीत होता है। इस प्रकार अम्वक (तीन आंखों वाला) सृजक जल होंगे। सृजक जलों में व्यापक प्रकाश - आंख की परिकल्पना वैदिक अथवा पिछले हिन्दू देवशास्त्र में स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ती है, तो भी यह अच्छी प्रकार इंगित हुई है। यह परिकल्पना प्राचीन मिथी देवशास्त्र में बहुत उच्च-मता से प्रस्तुत की गई है।

सुधीर कुमार गुप्त

२०. नासदीयसूक्तम् (भाववृत्तीयम्) (ऋ. १०. १२६); अरविन्दमतमनसूक्त्य केनचित् लिखितम्; विषयसूच्यां त्वरविन्दस्वव नामांकितमस्ति; गुप्त., २३.१२; २-१०.१९७०; २२-३१; सं. १

५. पञ्चवृत्तिमुह्य प्राण; गुप्त. २३.१-२; ६-१०.१९७०; १०३; हि. १

47. Pre-Sāṅkara Upaniṣadic Philosophy as Expounded by Kālidāsa; T. K. Gopala Swamy Iyengar, Deptt. of Skt., Venkat. Univ., Tirupati; UMCV, 1970; 179-186; E.

48. Problems of Biological Philosophy with regard to the Philosophy of the Upaniṣads; Bernhard Rensch, Unvi. of Münster, W. Germany; IJHS., I. 1; 5. 1966; 75-81; E.

78. Philosophical Concepts in the Hymn of Creation; Satya Prakash Singh, Aligarh (India); Rtam, I 2; 1970; 39-46; E. This paper gives an analysis and elucidation of the doctrines expounded in Rv. X. 129 under the following heads: 1. Idea of Transcendence 2. Negation of Space and Time 3. Implicit Immanence of the Divine in the apparently Non-Existent 4. Desire as the First Evolute of the Cosmic Mind 5. The Intuitive Method of Metaphysical knowledge 6. Antagonism between two orders of Cosmic Constituents and 7. The Final Scepticism. Incidentally the view point of C. G. Jung has also been referred to. In general philosophical interpretation of the hymn has been offered. The author

feels that the Vedic seers believed in the indeterminate nature of cosmic evolution.

प्रस्तुत निबन्ध में ऋ. १०.१२६ में प्रकाशित वादों का अवोदत्त शीर्षकों में विश्लेषण दिया गया है: १. अतिक्रान्त सत्ता की कल्पना २. रजस् और काल का निषेध ३. आपाततः असत् में दिव्य निर्विवाद सत्ता ४. सृजक मन का पहला विकास-काम ५. अव्यात्म ज्ञान की अन्तर्ज्ञान प्रणाली ६. सृजक तत्त्वों के दो क्रमों में विरोध और ७. अन्तिम संशयवाद। प्रसंगतः सी. जी. जंग के दृष्टिकोण का भी निर्देश किया गया है। सामान्य रूप से इस सूक्त का दार्शनिक भाष्य दिया गया है। लेखक का मत है कि वैदिक ऋषि सृष्टि के विकास को निश्चयात्मक अवधारण से अपेक्षित मानते थे।

करुणेश शुक्ल

23. Bṛhaspati Und Indra; Au von Hanns-Peter Schmidt: Otto Harrassowitz, Wiesbaden; Rev. V. G. Rahurkar; ABORI., L. I-IV; 1969; 109-112; E.

२४. ब्रह्मगवी; वद्रीप्रसाद पंचोली, अजमेर; गुप्त., २३.१-२; ६-१०.१९७०; ८५-८८; हि. १

७६. मीमांसादर्शने विधिविशेषः; रामशरण शास्त्री, शोधकः; सागरिका, ६.२; २०२७वि; १२६-१४१; सं. १ वेदकर्तुः विषये संक्षेपेण विविच्य विशेषतो (पूर्व-) मीमांसादर्शने प्रोत्लिखितानां पञ्च भेदानां-विधिमन्त्रानामधेयो निषेधोऽर्थवाद इत्यादीनां प्रपञ्चनम्। तथापि च विधिसामान्यस्य विधिविशेषस्य च सांगनिरूपणं शास्त्रीयञ्च विवेचनं सरलया भाष्योपस्थापितम्।

वेद के कर्ता के सम्बन्ध में विभिन्न दर्शनों के सिद्धान्तों का संक्षेप में उल्लेख करते हुए विशेष रूप से पूर्वमीमांसा दर्शन में निर्दिष्ट विधि, मन्त्र, नामधेय, निषेध तथा अर्थवाद आदि पांच भेदों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। वहाँ भी सामान्य विधि और विशेष विधि का सांग निरूपण और शास्त्रीय विवेचन सरल भाषा में किया गया है।

४५. श्वेताश्वतरोपनिषद्; ले. जगत्कुमार शास्त्री; प्र. मधुर प्रकाशन, आर्य समाज, बाजार सीताराम, दिल्ली ६; ४-००; हि.; समीक्षक: भवानीलाल भारतीय; आ.मा., ५०.१६; १.१२. १९७०; १५; हि. ।

३५. सत्य का अनुसन्धान कैसे करें ? जयदत्त शास्त्री; वेवा. २३.३; १.१९७१; ८-१६; हि. ।

75 Seers of the Rg-Veda and Their Message and Philosophy; S.K. Gupta, Reader in Sanskrit, Raj Univ, Jaipur-4; 1967; 64; Rs 8.00; E., H. The author shows that the names of seers, deities and metres associated with the vedic verses are terms coined to indicate the senses of the verses in which they were explained. In two appendices some more evidences in support of this view have been collected from the author's doctoral thesis 'Dayānanda's Contribution to Vedic Exegesis'.

हिन्दी सार के लिए ऊपर सं. ७५ देखें ।

अनिल कुमार गुप्त

43 Henoritualism of the Brāhmaṇa Texts; G. U. Thite, CASS, Univ. of Poona; JUPH, 33; 1970; 23 36; E.

१४. हे मनुष्यो ! अपनी आत्मा को देखो; वैदिक विनय से उद्धृत; वेवा., २३.३; १.१९७१; १-२; हि. ।

सांस्कृतिक अध्ययन (Cultural Study)

३६. श्रीशुरजी आर्ष गुल्कुल "यज्ञतोय" एटा (उ.प्र.) में अश्वमेध यज्ञ के वैदिक स्वरूप का प्रदर्शन; ज्योतिस्वरुन; आ.मा., ५०-२०; १५.१२. १९७०; १०; हि. ।

८०. एक आध्यात्मिक विवेचन-ऋतुराज वसंत; रामनागपण शर्मा, भू. पू. उपनिदेशक, शिक्षा विभाग (राजस्थान); राजस्थान पत्रिका, ३१.१. १९७१; ३ ४; हि. । गारदा को पूजनविधि है— नाथ मुन्ना पंचमो । गारदा श्री है जो गप्प को एनरवैजानी बनाने वाली प्राणानुगत बौद्धिक ज्ञान-विभूति है । इनका समकथ जीवों के प्राणदान और

मर्त्यलोक के सृजक, संचालक और संहारक द्वादश आदित्य अमृत प्राण सूर्य से है । इस सूर्य को सत्, हिरण्यगर्भ, स्वयंभू और परमेष्ठी लोकों से शक्ति और स्वरूप मिलता है । सूर्य के ऊपर पराशक्ति सरस्वती है । ब्रह्म के गुप्त स्वरूप को प्रकृति के समान वसन्त मानव में देवत्व को उत्पन्न करती है । पुष्य त्रैलोक से परे तुरीय व्यापक आत्मतत्त्व का आत्म-स्वरूप अंश ही है । विद्या शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा में समस्वरता और राष्ट्र को अम्युदय देती है । धर्म के कारण ही सृष्टिप्रक्रिया ध्रुव तत्त्व-अन्तर्दामी संकर्षण शक्ति के सहारे गतिशील है । पृथ्वी दैनिक, वार्षिक और अयन गतियां करती है । अयन गति का सम्बन्ध वसन्त और वसन्त संपात से है । वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा में ही सूर्य और चन्द्र से राम और कृष्ण के जैसे गुण प्राप्त होते हैं ।

अनिल कुमार गुप्त

१६ ओषधि; मुंशी राम शर्मा, आर्यनगर, कानपुर; गुप०, २३.१-२; ६-१०.१९७०; ८६-६३; हि. ।

८१. कालिदास पर ऋग्वेद का प्रभाव; निगम शर्मा; गुप०, २३.१-२; ६-१०.१९७०; ८०-८५; हि. । ऋग्वेद से मन्त्र उद्धृत करते हुए कालिदास के, प्रमुख रूप से रघुवंश के तथा अभिज्ञान शाकुन्तल और मेघदूत के, भावों से सोदरण धनिष्ठ साम्य बताया गया है ।

अनिल कुमार गुप्त

८२. धर्म के हिन्दू सिद्धान्त की उत्पत्ति एवं विकास; रणजितसिंह, प्राध्यापक इति. वि., इलाहाबाद वि. वि., इलाहाबाद; उमकव., १९७०; ३०१-३२६; हि. । लेखक ने ऋ० में ऋत, सत्य, धर्म और धर्मन् के स्वरूपों का विवेचन कर, उन सब के 'धर्म' के अन्तर्गत समा जाने और उस से ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों, गृह्य, श्रौत और धर्म सूत्रों, नृत्तियों, रामायण, महाभारत, पुराणों और दर्शन ग्रन्थों में धर्म के स्वरूप के क्रमिक विकास और उन-उन ग्रन्थों के धर्मविषयक विचारों का वर्णन

किया है। प्रसंगतः आधुनिक विद्वानों के विचार भी दिए हैं। प्रक्रिया विधि का भी वर्णन किया है। तात्त्विक, नैतिक और सामाजिक दृष्टियों से वर्म का स्वरूप व्यक्त करते हुए लेखक ने निष्कर्ष निकाला है कि “वर्म का अर्थ बहुत व्यापक है। यह मानव जीवन एवं विश्व समाज के आधारभूत सिद्धान्तों का सामूहिक रूप होने के कारण मानव वर्म माना गया है। सामान्य रूप से समस्त क्रिया-कलापों एवं सम्बन्धों में वर्म व्यक्ति समाज और ब्रह्माण्ड व्यवस्था के साथ-साथ सुसंचालित करने वाला नियामक तत्त्व माना जा सकता है। वर्म के ब्रह्मिः प्रकाश बहिरंग उतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जितना कि स्वतः वर्म का सिद्धान्त। वर्म का तात्त्विक स्वरूप शाश्वत है जो कि उस का अन्तरंग स्वरूप है। पर देशकालादि के भेद के कारण उस के व्यावहारिक एवं बहिरंग स्वरूप भिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

सुबोध कुमार गुप्त

८३. प्राचीन भारत में गोमांस एक समीक्षा; प्र. मोतीलाल जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर; पृष्ठ २३६; २-००; हि.; समीक्षक: गुप०, २३-३; १०-११.१९७०; १३४; सं.। पुराकाल आर्यजनेषु गोमांसभक्षणं सर्वथापि नास्तीत्। यद्यप्यत्र संस्कृत-वाङ्मयादेर्भूयसी सामग्री संकलिता तथाप्यन्यदपि बहु वस्तव्यं विद्यते।

प्राचीन काल में आर्य जाति में गोमांस का भक्षण विस्तृत नहीं था। यद्यपि यहाँ संस्कृत साहित्य आदि में भारी सामग्री इकट्ठी की गई है, तथापि और भी बहुत कुछ कहने योग्य है।

सुधीर गुप्त

वाद (-अनासक्त भाव से कर्म करना, आशावाद, समन्वय-प्रवृत्ति और निवृत्ति का, प्रेय और श्रेय का, परिग्रह और उत्सर्ग का, वर्म, अर्थ और काम का) वेद, वर्ण-आश्रम और पुरुषार्थ की त्रयी भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व हैं। वर्ण गुणकर्मनुसार थे। कालान्तर में जन्मगत हो गए। वर्णों और आश्रमों की उत्पत्ति विकास और कर्मों का विशेष वर्णन किया गया है।

सुकेशी रानी गुप्ता

८५. मेघदूत की वैदिक पृष्ठभूमि और उस का सांस्कृतिक सन्देश; सुधीर कुमार गुप्त; भारती मन्दिर, नई वस्ती, खुरजा; ५.१९५४; १-३६; ०-२०; हि.। इस में मेघदूत में संकेतित रतिदेव, बलराम का सूतवध और सारस्वत जलों का सेवन, त्रिपुरविजय, क्रौञ्चभेदन, देवताओं की यौवनावस्था, देवता और अप्सराएं, शिव और कुवेर के पौराणिक आख्यानों की वैदिक पृष्ठभूमि दे कर उस के सन्देश की उद्घाटना की गई है। यक्ष, मघोनः, कामरूपम्, पयोद, श्रद्धवानाः, अतिथिः, स्त्रीणाम्, सवितुः, सुरपति, तोय, पादान्, जल, अनिल, भतुः पदों का व्याख्यान किया गया है और बताया गया है कि कालिदास की व्यञ्जना का योगिक वैदिक व्याख्यान शैली से विशेष स्पष्टीकरण होता है।

सुबोध कुमार गुप्त

८६. योगः; भगवदाचार्यः; गुप०, २३.१-२; २-१०.१९७०; ४७-४९; सं.। योगदर्शनानुसारि योगस्वरूपं व्याख्याय सनाप्यं सभावं वा मन्यान् वेदेभ्य उद्धृत्य तत्रास्य स्वपरस्त्व्य, योगदर्शनस्य दमा-विद्याद्बोपचित्तश्रद्धावमादिपरिभाषाणां कासांचित् क्रियाणां च सद्भावः प्रतिपादितः। विषयस्वास्थ्य वेदे क्रमेण वर्णनं नोपपन्नम्। परं पत्रञ्जलिना

मन्त्र उद्धृत कर के वहाँ इस का स्वरूप तथा योग-दर्शन की दम, अविद्या, द्वेष, चित्त, श्रद्धा और यम आदि परिभाषाओं और कुछ क्रियाओं की सत्ता प्रनिपादित की गई है। इस विषय का वेद में क्रम से वर्णन नहीं मिलता है। परन्तु वेदों से योग के तत्त्व ले कर ही पतञ्जलि ने अपने दर्शन की रचना की है।

सुधीर कुमार गुप्त

87. Recognition of Merit in Caste System in Ancient India; Jogiraj Basu, Professor and Head of the Department of Sanskrit, Gauhati Univ., Gauhati; UMCV., 1970; 685-694; E. The author holds that merit was the important factor in determining castes in ancient India. Caste was identified with character. Several examples like those of Kavaṣa, Mahidāsa, Viśvāmītra, Agniśeṣa and others mentioned in the Bhāgavata Purāṇa and non-Brahmaṇa teachers have been cited and evidences in the form of utterances or rules from Āpastamba Dharma Sūtra, Manu, Mahābhārata, Buddha and Gītā have also been adduced in support of this view.

लेखक मानते हैं कि प्राचीन भारत में वर्ण-निर्णय में गुरु महत्त्वपूर्ण तत्त्व था। चरित्र ही वर्ण था। भागवत पुराण में वर्णित कवच, महिदास, विश्वामित्र, अग्निशेष आदि बहुत से और अनेकों ब्राह्मण आचार्यों के बहुत से उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं तथा इस मत की पुष्टि में आपस्तम्ब धर्मसूत्र, मनु, महाभारत, बुद्ध और गीता से कथनों के रूप में साक्षियाँ भी दी गई हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

८८. वैदिक युग के आर्य जीवन की अभि-साधारण; तन्वीचन्द्र मिश्र; विभ. ६३; १६७० (२०२७ वि.); ७-८; हि.। आर्यजीवन सर्वाङ्गीण उन्नति का अभिन्नापी था। वह मानसिक और सांकेतिक शक्तियों प्राप्त कर विजयो होने की कामना रखता था।

सुकेशी रानी गुप्ता

८९. वैदिक वाङ्मय में गोहत्या या गोरक्षा? जयदेव, गुडकुलकांगड़ी हरिद्वार; गुप., २३-२; १०-११.१६७०; १४२-१४६; हि.। वेद में गौ अभ्या अही और अदिति है। उस के बच का विधान नहीं है। अनेक मन्त्रों में बच न करने को कहा गया है। इस की पुष्टि में अनेकों मन्त्र हिन्दी भावानुवाद सहित दिए गए हैं। गोघाती को दण्ड का विधान है। पशुओं के अंगों से यज्ञ करने वाले गृह्य और दण्ड्य हैं। गौ के दूध आदि का प्रयोग ही गोमेव है।

सुकेशी रानी गुप्ता

९०. वैदिक दृष्टि विज्ञान; वीरसेन वेदश्री; प्र. वेद सदन, महारानी रोड़, इन्दौर-२ (म.प्र.); ४-५३६; हि.।

लेखक का विचार है कि अनावृष्टि जन्म जला-भाव को वेद में वर्णित यज्ञ द्वारा यदेच्छ वर्ण करा के दूर किया जा सकता है। विषय के व्यापक इस विवेचन में जल की प्राप्ति के स्रोत, जलों के नाम, रूप और प्रकार, यज्ञ द्वारा अन्तर्गम में लक्षण क्रिया, तापमान का ठीक रखना, ताप से वायु में गति, घृताहुति से वाष्प में घनत्व वृद्धि, यज्ञ से ऋषि उत्पादन में वृद्धि और वायव्य लाद की अधिक क्रियाशीलता और सामर्थ्य आदि अनेकों विषयों पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। आदि और अन्त में लेखक ने अपने कार्यकलापों का वर्णन किया है।

सुकेशी रानी गुप्ता

९१. श्रीगोस्वामी तुलसीदासचरितं महा-काव्यम्; ले. हरिप्रसाद द्विवेदी; प्र. वेदवेन शर्मा, मन्वी भारतीय साहित्य संघ, आर्य औपशालय, नदरई गेट, कासगंज, जिला एटा, (उ.प्र.); १-००; तन्वीचक्र. भगवद्गीता; गुप, २३.१-२; ६-१०.१६७०; ६८; सं.। गोस्वामिनृतुलसीदासचरितात्मके संस्कृत-महाकाव्ये ऽदिन्मन् यद्यत्र वेदमन्त्राणां तदर्थानां तदर्थभावानां वा समावेशः कृतो विद्यते।

गोस्वामी तुलसीदास के चरित पर इस संस्कृत महाकाव्य में जहाँ-तहाँ वेदमन्त्रों, उन के अंशों या भावों का सन्निवेश किया गया है।

सुकेशी रानी गुप्ता

६२. संयोजक का वक्तव्य; फतहसिंह, कोटा; स्मारिका हि.वि.प., १९७०; ३३-४१; हि.। हिन्दू को अपने मूल मन्त्र 'एकं सत्' को अपनाना है। हिन्दु सिन्धुघाटी के हिन्दु से है। उस में समस्त विश्व को हिलाने की क्षमता है। ऋ. १०.६ में सिन्धुद्वीप सात-सात नदियों के तीन वर्गों से युक्त भारतवर्ष ही है। वहाँ त्रिलोचिस्तान से ब्रह्मा तक का चित्र है। हिन्दुकुश हिन्दु + कृप् से बना है। यह जड़ता के नाश और सिन्धु के निर्माण का प्रतीक है। परशु इसी भाव का दक्षिण पूर्व में प्रचलित प्रतीक है। हिन्दुत्व हिंसा का नाशक, सब को सम मानने वाला, राष्ट्रीय संस्कृति का पर्याय, जयन-यजन और भजन प्रक्रियाओं वाला, विश्व-मानुष और विश्वमना की कल्पना वाला, वृणा और अस्पृश्यता और अराष्ट्रीय विचारधारा और तत्त्वों का विरोधी है।

६४. सिन्धुघाटी की लिपि में ब्राह्मणों और उपनिषदों के प्रतीक; फतहसिंह, जोधपुर; स्वाहा, १.१; १९६९ (ग्रन्थांक १०५); १-५ + १-७६; चित्रादि के पृष्ठ ५ + १२; सिन्धुघाटी लिपि के अव्ययन सम्बन्धी पूर्व प्रयासों का समीक्षात्मक वर्णन कर के लेखक ने अपने प्रयासों और प्रणाली का वर्णन करते हुए उन के परिणामों का परिचय प्रस्तुत किया है। इस लेख में लगभग ५०० मुद्राचित्रों और मुद्रालेखों का परिचय, सिन्धुघाटी की लिपि, सिन्धुघाटी का अवर्ण, वरुण और वृत्र, दक्षिणावर्त और वामावर्त, स्वस्तिक-द्रव्य तथा क्रॉस, क्रॉस और मन, मानव व्यक्तित्व का मन में परिवेष्टन, वृत्रवरुण मानव, मानव व्यक्तित्व के तीन पक्ष, द्विशृंगी पशु और पुरुष, द्विशृंगी पशु और वृक्ष, अज्ञात अग्नि, अश्वत्थ वृक्ष, अश्वत्थवृक्ष की गौ, गोधा और महिष, ओंकारभेद, वपट् और वृपट्, यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे, विदेह जनक - ज्ञान और कर्म का समन्वय, यथा देहे तथा देशे, स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः, इन्द्रावरुणी सम्राजौ, भारत राष्ट्र के विभिन्न घटक, ब्रह्म देश या वर्मा, भारतीय प्रदेशों के नामोल्लेख का अभिप्राय, तामिल तथा बौद्ध

मिलते हैं। यहाँ उपलब्ध तद्वनं, षण्ण् और प्रणव आदि षण्ण् की ब्राह्मणग्रन्थों की व्युत्पत्तियों और समीकरण पर विनक्षण प्रकाश मिलता है जो भारतीय योग, मन्त्र, तन्त्र, आगम, पुराण, शैव और शाक्त मतों के वैदिक परम्परा से सम्बन्ध को व्यक्त करता है। सिन्धुघाटी चित्रों आदि में चित्रित सन्ध्या वैदिक है और उस में आरण्यकों और उपनिषदों के समान वैदिक देवों का आध्यात्मिक और आधिदैविक भाव लिया गया है। इन सिन्धुघाटी चित्रों के लेखों की भाषा निःसन्देह संस्कृत है, जिस की अपनी कुछ विशेषताएं हैं। सिन्धुघाटी की मुद्राओं का प्रयोग भूर्जपत्र आदि पर मुद्रण के लिए होता होगा और इस प्रकार यह विश्व का सर्वप्रथम मुद्रणालय हो सकता है। लेख के अन्त में पृ. ६२-७६ तक सिन्धुघाटी के २४१ मुद्रालेखों का देवनागरी में पाठ दिया गया है। इन के आगे १२ पृष्ठों में ५८ मुद्राचित्र हैं। प्रारम्भिक अंश में पृ. ५ से आगे ५ पृष्ठों में सिन्धुघाटी की लिपियों के चित्र दिए गए हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

ऐतिहासिक अध्ययन (Historical Study)

१५. ऋग्वेद का परिचय; सुधीर कुमार गुप्त; प्र. भामग्रन्था.; पृ० ७३; १-५०; हि.। इस में वैदिक साहित्य पर विहगम दृष्टि डालते हुए ऋग्वेद के काल, संघटना, धर्म, संस्कृति और व्याख्यानपद्धति आदि ऋग्वेद से सम्बन्धित सब विषयों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। लेखक के मन में बंगमण्डलों और अर्वाचीन और प्राचीन मण्डलों के विभाजन में दो नई युक्तियां प्रयत्न नहीं हैं। ऋग्वेद का धर्म एकेश्वरवादी है। वेद की व्याख्यान की वैदिक साहित्य में प्राप्त नहीं ही उपलब्ध है।

सुकेशी रानी गुप्ता

२२. ऋग्वेदके शब्द; व. ग. राहूकर; ज्ञानेश्वर, ३.१; २.१९७१; १-२३; म.।

२०. क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है? के नमनगोपाल नाथी बंध;

प्र. संस्कृत विभाग, हंसराज कालिज, नई दिल्ली; २-५०; हि.; समीक्षक: भवानी लाल भारतीय; आ. मा., ५०.१६; १.१२.१९७०; १६; हि.।

२६. जलप्लावन - एक ऐतिहासिक घटना; द्वारका प्रसाद सक्सेना, रीडर, मेरठ वि. वि., मेरठ; उमकव., १९७०; ७४७-७५५; हि। ग्रोध, प्रलय और डेल्यूज आदि नामों से अभिहित जलप्लावन मानव के प्रारम्भिक इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इस का वर्णन (लेख में दिए गए संक्षिप्त विवरण के अनुसार) विश्व भर के साहित्य में मिलता है। दक्षिणी एशिया के वर्णनों में समस्त पृथ्वी के डूबने और तत्कालीन सृष्टि के नाश का वर्णन है, उत्तरी एशिया में चीन, जापान आदि के साहित्यों में पूर्ण विनाश का वर्णन नहीं है। यूरोप में भी पूर्ण विनाश की ओर संकेत अल्प हैं और अफ्रीका के साहित्य में नहीं के बराबर हैं। इस विवरण से यह सुव्यक्त है कि आधुनिक मानव-सृष्टि के विकास से पूर्व अवश्य कोई ऐसी जलप्लावन सम्बन्धी घटना घटी जिस में तत्कालीन सब मानव-सृष्टि नष्ट हो गई और एक अवशिष्ट पुरुष से वर्तमान सृष्टि का विकास हुआ।

सुकेशी रानी गुप्ता

97. The Aryan Problem; S. K. Gupta, Reader in Skt., R-2, Univ. Colony, Jaipur-4; UMCV., 1970; 737-742; E. In this brief paper the author has referred to anthropological and geological evidences on the subject, has examined at some length and interpreted the evidences of the Rgveda and has concluded that "there is no Aryan Problem as such, whether racial, cultural or 'linguistic'. It is all a creation of the 19th and the 20th centuries in particular and is based in the sense of superiority and purity in the minds and thinking of a group of people. The original home of the first man was some where in the Himalayas in Northern India from where all existing races of the world have dispersed and inhabited various lands."

इस संश्लिष्ट लेख में लेखक ने प्रकृत विषय पर मानव शास्त्रीय और भूगर्भशास्त्रीय प्रमाणों का निर्देश किया है, ऋग्वेद की साक्षी का कुछ विस्तार से परीक्षण और भाष्य प्रस्तुत किया है और निष्कर्ष निकाला है कि "जातीय, सांस्कृतिक या भाषा शास्त्रीय कौसी भी कोई आर्यसमस्या नहीं है। यह विशेष रूप से १९वीं और बीसवीं शतियों की देन है और लोगों के एक वर्ग के मनों और चिन्तन में उच्चता और पवित्रता की कल्पना पर आश्रित है। आदिम मानव का मूल निवासस्थान उत्तर भारत में हिमालय पर कहीं था, जहाँ से संसार को विद्यमान सब जातियाँ अलग हुई हैं और विभिन्न देशों में बसी हैं।"

सुबोध कुमार गुप्त

31. *Fresh Light on the Battle of Ten Kings*; P. L. Bhargava, Prof. and Head Skt Deptt., Univ. of Raj., Jaipur; *URSHS.*, 2; 7 1967; 25-28; E.

६८. भारतीय इतिहास का मूल स्रोत वेद; रामगोपाल अय्यर; गुरुकुल कांगड़ी वि. वि.; गुप०, २३.१-२; ६-१०; १९७०; ६३-६६; हि. 1 भारतीय इतिहास के ज्ञान का मूल साहित्यिक स्रोत वेद है। वहाँ से धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों का, प्रमुखतः ऋग्वेद के आधार पर, कहीं-कहीं उद्धरण और प्रमाणों सहित वर्णन दिया गया है। प्रश्न में वैदिक साहित्य की चार विशेषताएँ— १. भ्रम प्रधानता २. गद्यांश की प्रमुखता ३. भाषा की स्पष्टता और गतिशीलता तथा ४. प्रतीकों द्वारा प्रयुक्त भाषा की साकारता बताई है।

भी नहीं है। द्रविड दक्षिण-पूर्व एशिया के आस्ट्रेलिया और न्यूगिनी से आए और दक्षिण और लंका में बसे। हरि-वानर, ऋक्ष, राक्षस, अमुर आर्य ही थे। आर्य नेता अगस्त्य ने द्रविड़ों को व्याकरण और साहित्य का प्रवृत्ति दी। द्रविड़ ही निपाद हैं। आर्य द्रविड़ संग्राम केवल पाश्चात्यों के मस्तिष्क की उपज है, वास्तविक नहीं। देवानुर संग्राम के समय आर्य और निपादों का एकीकरण या मेल हुआ। दोनों ने मिल कर सेतु बनाया। यह काम आज भी चालू है जिसे पाश्चात्यों का काल्पनिक 'इतिहास' झकझोरता रहता है।

अनिल कुमार गुप्त

100. *Some Aspects of the History of Hinduism* by R. N. Dandekar; Publication No. 3, Class B, of the CASS., Univ. of Poona, 1967, Pp. 142; Reviewer: V. M. Bedekar; *ABORI*, L. I-IV; 1969; 121-125; E. The review offers an appreciative detailed summary of the work which surveys the history of Hinduism from its prevedic Indus religion to modern times in five chapters—'Protohistoric Hinduism The Vedic Interlude, Classical Hinduism and Hinduism and Modern Culture'. The author holds that the Indus religion gave rise to Hinduism, Jainism and Buddhism. Vedism is only an interlude and its impact has been of superficial nature. Hinduism has the inherent capacity to adjust itself with modern culture easily and without violating its essential character in any way.

किए बिना अपने को आधुनिक संस्कृति से समन्वित करने की स्वाभाविक शक्ति है।

अनिल कुमार गुप्त
१०१. वेदानां धरातलं सूक्ष्मम्; भगवद्भक्तो

वेदालकारः; गुप०, २३.३; १०-११.१६७०; १२५-१२७; स. । वेदानां धरातलं=वर्ण्यविषयः सूक्ष्मं जगदस्ति । तत्र सूक्ष्माः शक्तय एव देवताः । इदं स्थूल जगत् तासां शक्तीनामायतनमात्रम् । वेदस्था देवताः स्थूलजगतो व्यापारान् स्थूलाकृति-व्याजेन गोप्या वृत्त्या एव वर्णयन्ति । एकस्य शब्दस्यानेकार्थत्वं, कयाया रूपकत्वं, लुप्तोपमालंकारादिकञ्चेत्यादीनि प्रच्छन्नरहस्यगर्भितानि दृष्टि-जातानि वेदानामव्ययनस्याभिव्यञ्जयन्ति देवतानां सूत्रात्मकत्व सूक्ष्मतां च ताताम् । वेदे सर्वा विद्याः सन्ति । तत्र पदार्थानां गुणधर्माणां वर्णनं बीज-रूपेणान्यादिदेवतापदैर्विहितम् । एषामेव देवानां वर्णनं व्याजेन यत्रतत्र स्थूलाकृतीनामपि संग्रहणं ध्रुतिष्ववलोक्यते । पुरावृत्तादीन्वपि गोप्या वृत्त्या निगूढभावात् प्रकाशयन्ति । वेदस्तु सर्वसूत्राणामपि परमसूत्रमन्तर्यामिणं भगवन्तमेव प्रतिपादयति ।

वेदों का धरातल=वर्ण्य विषय सूक्ष्म जगत् है । वहाँ सूक्ष्म शक्तियाँ ही देवता हैं । यह स्थूल जगत् उन का आयतन ही है । वेदों के देवता स्थूल जगत् के व्यापारों को स्थूल रूप के माध्यम से गोणी वृत्ति से ही वर्णित करते हैं । एक शब्द के अनेक अर्थ होना, कयाओं के रूपक, लुप्तोपमा आदि अलंकार आदि वेदों के अव्ययन में गूढ़ रहस्य से भरी हुई दृष्टियों को, और उन देवताओं की सूत्रात्मकता और सूक्ष्मता को अभिव्यक्त करते हैं । वेद में नय विद्याएँ हैं । वहाँ अग्नि आदि देवता पदों के द्वारा पदार्थों के गुण धर्मों का वर्णन बीज रूप में किया गया है । इन देवताओं के वर्णन के वहाने जहाँ-तहाँ वेदों में स्थूल रूपों का प्रहण भी देखा जाता है । पुरावृत्त आदि भी गोणी वृत्ति से गूढ़ भावों को व्यक्त करते हैं । वेद सब सूत्रों के परम सूत्र, प्रन्तर्पानी भगवान् का ही प्रतिपादन करते हैं ।

सुधीर कुमार गुप्त

३७. श्रुतिसुधा; (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका से); गुप०, २३:१-२; ६-१०; १६७०; १; हि. ।

राजनीति (Polity)

१०२. जोश के साथ होश की आवश्यकता; युधिष्ठिर मीमांसक; वेवा, २३.२; १२.१६७०; ३-५; हि. । अग्निवेश और इन्द्रवेश का 'राजधर्म' में प्रकाशित 'जन्माधिकारवाद' अर्बदिक है । वैदिक राजनीति सुधारवादी, वर्णाश्रम धर्म पर आश्रित, जन और राष्ट्रहित में व्ययतर धनिकवर्ग को मान्यता देने वाली है । प्राचीन भारतीय राजनीति के कतिपय स्रोतों का भी इस लेख में परिगणन किया गया है ।

अनिल कुमार गुप्त

१०३. राष्ट्रगोपः पुरोहितः; सांबदीक्षितः गोकर्ण; गुप०, २३.१-२; ६-१०.१६७०; २-५; सं० । वेद-भारत-चाणक्यादिभिः प्रत्तं पुरोहितवर्णनं सोद्वरणं प्रदाय, पुरोहितस्य व्युत्पत्ति व्याख्यान स्कन्दसायणयोः पुरोहितशब्दस्य व्याख्यानं प्रस्तूय पुरोहितस्य राष्ट्ररक्षणपरत्वं प्रतिपादितमस्ति ।

वेद, महाभारत और चाणक्य आदि द्वारा दिये गये पुरोहित के लक्षण, पुरोहित पद की व्युत्पत्ति तथा स्कन्द और सायण के पुरोहित के व्याख्यानों को प्रस्तुत कर पुरोहित 'राष्ट्र का रक्षक होता है' यह प्रतिपादित किया गया है ।

सुधीर कुमार गुप्त

१०४. राष्ट्रतन्त्रम् (भाषानुवादसहितम्;) लक्ष्मी नारायण शुक्ल; प्र. ललितमोहनशुक्लः मदन-मोहनशुक्लद्वय, गोरक्षपुरम्; प्रथम संस्करणम्; पृष्ठानि ४+७६; २-००; सं०, हि. । अत्र मूल-शील-करणाचरण-विमर्शाद्येषु पञ्चसु अध्यायेषु भारतीयसंस्कृते राष्ट्रतन्त्रस्य वा समासेनानुष्टुप्प्रायः सरलसंस्कृतभाषोपनिबद्धः पद्यदिक्चरणं विहितमस्ति । राष्ट्रस्य मूलं संस्कृतिः, सा च मेवाजन्त्या आप्तानुभवपोषिता नियमा एव । सदाचारादिभिर्धर्मज्ञानं भवति । धृतिस्मृत्यादिकमस्माकं पावनी

पैतृकी मन्मतिः सदा रक्षणीया । आरोग्यभोजन-
शिक्षामुरक्षारक्षणावाः पञ्च शीलानि । संविधान-
जनन-जननप्रतिभिः जीर्णं रक्ष्यते । अर्थस्य महद्
गौरवमनः सोऽर्थं मुमुक्षादतीतः । अथ्यात्मविचारो-
ऽपि दिनगमावश्यकः । यतः सोऽथ्यत्र विहित ।

यहाँ मूल, शील, करण, आचरण और विमर्श नामक पाँच अध्यायों में भारतीय संस्कृति या राष्ट्र-
तन्त्र का संक्षेप से अनुष्टुप्प्रधान मूल संस्कृत भाषा
में ग्ने पद्यों में चित्रण किया गया है । राष्ट्र का
मूल संस्कृति है और वह बुद्धिजन्य, आप्त जनों के
अनुभव से सिद्ध नियम ही है । धर्मज्ञान सदाचार
आदि से होता है । श्रुति और स्मृति आदि हमारी
पवित्र पैतृक मन्मति सदा रक्षा के योग्य है ।
आरोग्य, भोजन, शिक्षा, मुरक्षा और राष्ट्रियता
पाँच शील हैं । इन की रक्षा संविधान, जनमत और
जनतन्त्र आदि से होती है । अर्थ का महान् गौरव
है । यतः अर्थ (= धन) अथ्या प्रकार संग्रह करना
चाहिए । अथ्यात्मविचार भी परम आवश्यक है ।
यतः वह भी यहाँ प्रस्तुत किया गया है ।

भाषाशास्त्रीय ग्रन्थयन (Linguistic Studies)

twin brother or siter.' a in ajāmi indica-
tes the idea either a 'foolish twin' or a
'twin not of the same class or species.'
Upajana here means 'prefix' and refers
to a- in ajāmi in the sense of bāliśa or
asamānajātiya.

लेखक ने मूलप, दुर्ग, स्कन्द-महेश्वर और गँध
के नि. ४.१.४६ में जामि और अजामि के वास्कीय
व्याख्यान के भाष्यों की व्याख्या प्रस्तुत की है ।
लेखक इन आचार्यों ने मतभेद रखते हैं और मानते हैं
कि वास्क ने इस पद का निर्वचन तो नि. ३.६ में
दे दिया है । विचार्यमाण सत्त्वर्भ में वास्क जामि
और अजामि को नपुंसक में व्याख्यान करने हैं ।
वास्क के अनुभार जामि का अर्थ केवल अतिरेक
'आधिक्य, अर्थ; यमज भाई या बहन' है । अजामि
में अ 'मूर्ख यमज' या 'अनमान (-भिन्न) जाति का
यमज' भाव को इंगित करना है । यहाँ उपजन का
अर्थ उपसर्ग है और मूर्ख या भिन्न जाति के अर्थ में
अजामि के 'अ' का निर्देशक है ।

106. A Note on the Rgvedic
Āśuśukṣaṇiḥ; Siddh Nath Shukla, Poona;
JOL, XIX. 4; 6 1970; 315-318.; E. The
author states the etymologies and inter-

युक्त ✓ युच् के द्विर्वचन रूप से व्युत्पत्ति को स्वीकार किया है। इस प्रकार यह पद 'सत्र और चमकने वाला या सत्र और पवित्र करने वाला' अर्थ का वाचक है। इस समास का पदपाठ या ऽ युयुक्षणिः दिखाया जा सकता है।

107. Patañjali's Vyākaraṇa-Mahābhāṣya, Samarthāhnikā (P. 2. 1. 1); Ed. S. D. Joshi; Pub. CASS., Class C.No. 3, Univ. of Poona; 1968; Rev. K. A. Subramania Iyer; ABORI, L.I-IV; 1969; 101 104; E. It is a very valuable translation in simple English with a profusion of numbers embracing five ancient works—sūtras etc. Many subtleties brought in are quite illuminating. Some printing errors exist but do not detract the value of the work, which is divided into 4 sections 1. Introduction 2. the text of the Sūtra, Vārtikas and Bhāṣya 3. Translation of 2 and of selected passages from the Pradīpa and Uddyota, together with 177 explanatory Notes, 581 footnotes, inclusive of the passages selected from Pradīpa and Uddyota for translation 4. Index of Sanskrit and English words The introduction gives the features of Patañjali's style, analysis of the contents of the Samarthāhnikā, observes that Kātyāyana has given a philosophical bias to the discussion and concludes with a note on the text and translation. The text of the Mahābhāṣya has been divided into 213 paragraphs with a heading for each. The reviewer has given an account of some translations of the Mahābhāṣya and illustrated some good points of the editor's treatment.

यह नए नए अंग्रेजी में निदोक्त अंकों की बहु-संख्या वाला, पाँच कृतियों—सूत्र आदि का समावेशक अत्यंत उपयोगी अनुवाद है। यहाँ समाविष्ट अंकों की संख्याएँ पर्याप्त जानकारी देती हैं। व्यापक की कुछ सूत्रों का अनुवाद इन उपयोगी रचनाओं के मूल्यों को कम नहीं कर पा रही है। यह कृति ४ भागों में विभक्त है—१. सूत्रिका २. सूत्र, वार्तिक और भाष्य का पाठ ३. इन पाठों का तथा प्रदीप और उद्योत में

चुने हुए अंशों का अनुवाद तथा अनुवाद के लिए चुने गए प्रदीप और उद्योत के अंशों सहित १७७ व्याख्यात्मक और ५८१ पादटिप्पणियाँ ४. संस्कृत और अंग्रेजी शब्दों की अनुक्रमणिका ५. भूमिका में पतञ्जलि की शैली की विशेषताएँ, समर्थार्थिक के विषयों का विश्लेषण दे कर कहा गया है कि कात्यायन ने विचार को दार्शनिक रूप दिया है। अन्त में पाठ और अनुवाद विषयक कथन किया गया है। महाभाष्य के पाठ को २१३ संदर्भों में विभक्त कर प्रत्येक के लिए शीर्षक दिए गए हैं। समीक्षक ने महाभाष्य के कुछ अनुवादों का विवरण और सम्पादक के कार्य की कुछ विशेषताओं का दिग्दर्शन कराया है।

25. The Meaning of Vedic kārū; J. Gonda, van Hogendorpstrast 13, Utrecht; UMCV., 1970; 479-488; E.

26. The Word "Gārta" in the Rgveda; B. H. Kapadia, Vallabha Vidyapeeth, Vallabha Vidya Nagar; UMCV., 1970; 521-526; E.

४१. शतपथब्राह्मण की स्वरप्रक्रिया; वृज-विहारी चौबे, प्राध्यापक, विश्वेश्वरानन्द इन्स्टीट्यूट ऑफ़ संस्कृत एण्ड इण्डोलोजिकल स्टडीज, (पंजाब यूनिवर्सिटी), होशियारपुर (पंजाब); यूएसए, १९६८-६९; ६१-७३; हि. १

27. Śiprin And Śipivīṣṭa; Sadashiv Ambadas Dange, Palsole's Bungalow, Near Ram Krishna Ashram Dhantoli, Nagpur; UMCV., 1970; 501-510; E.

१०८. श्रीमहोपाध्यायभर्तृहरिकृतश्रीमहाभाष्यदीपिका; सम्पादक: के. वी. अश्वक्कर और वी० पी० निमये; एभाओरिड०, ५०.१-४; १९६९; १८६-३१२; सं० १. पूर्वोक्तोपे पञ्चाह्निकानि सम्पादितानि । अत्र प्रथमस्य प्रथमपादे पठेत् सप्तमं चैत्याह्निकद्वयं सम्पादितम् । यावन्ती च सम्प्रत्यधिगतहस्तविहितद्वये तावन्ती संस्करण-

पूर्वकं महता यत्नेन कष्टेन च संपादिता दीपिकेयं समाप्तिमगात् ।'

इस से पूर्व के अंकों में पांच आह्निक सम्पादित किए जा चुके हैं । इस में प्रथम के पहले पाद के छठे और सातव आह्निकों का सम्पादन है । इस समय तक प्राप्त दो हस्तलेखों में इस दीपिका का जितना अंश मिला है, उतना बड़े यत्न और कष्ट के साथ शोध कर पूरा सम्पादित हो गया है ।

सुधीर कुमार गुप्त

१०६. संस्कृतव्याकरणातील क्रियाविशेषणांची विभक्ति व लिंग; म. दा. साठे; नवभारत, १०. १९७०; २६-३०; म० । मृदु पचति, सुखं स्वपिपि इत्यादी वाक्यात मृदु, सुखम् इत्यादी क्रियाविशेषणांनां कर्म मानून द्वितीया विभक्ति केली जाते. नागेश भट्टाच्या मतानुसार कर्माशी व्यपदेशिवद् भावाने संबद्ध असल्यामुळे मृदु वगैरे शब्दांना कर्मत्व प्राप्त होते .

मृदु पचति, सुखं स्वपिति आदि वाक्यों में मृदु, सुखम् आदि क्रियाविशेषणों को कर्म मान कर द्वितीया विभक्ति की जाती है । नागेश भट्ट के अनुसार कर्म से व्यपदेशिवद्भाव में सम्बद्ध होने से मृदु आदि शब्दों को कर्मत्व प्राप्त होता है ।

गणेश उमाकान्त धिटे

author has described and examined the evidences on the subject of the R̥gveda, the Upaniṣads, the Sāṃkhya, the Vaiśeṣika and Āyurveda and has observed that 'the Indian thinkers had put forward a coherent elemental theory of matter much earlier than the Ionians. The five elements are pṛthvi, ap, tejas, vāyu and ākāśa. The paper describes their origins and the influence of this theory on medical science, in particular.

“अपनिपद मूल वाले पांच भूतों के भारतीय वाद ने पदार्थ-विज्ञानों, विशेष रूप से, द्रव्य और ओषधि से सम्बद्ध शास्त्रों के कतिपय सिद्धान्तों के विकास में अपना योगदान किया है । वैज्ञानिक विचारों के इतिहास में यह वाद पुनर्मूल्यांकन के योग्य है क्योंकि यह यूनानियों के भूतवाद का अग्रगामी प्रतीत होता है ।” इस सम्बन्ध में लेखक ने इस विषय पर ऋग्वेद, उपनिषदों, सांख्य, वैशेषिक और आयुर्वेद की साक्षियों का वर्णन और परीक्षण किया है और माना है कि ‘आयोनियन (=यूनानियों) से बहुत पहले ही भारतीय विचारकों ने द्रव्य-विषयक सुसम्बद्ध भूतवाद प्रस्तुत कर दिया था ।’ पांच भूत पृथिवी, अप्, तेजस्, वायु और आकाश हैं । लेख में इन की उत्पत्ति और विशेष रूप से आयुर्वेद पर इन वाद के प्रभाव का वर्णन किया गया है ।

ageless problem. The paper discusses the four main stages in the development of cosmogonic theory in the west, particularly with reference to the mechanical and structural contents. The universe, according to Rgvedic seer-poets is the actualized body of Supreme Imagination. The conception of the cosmos as the outcome of the juxtaposition of the infinite and the finite is clearly brought out in the Vedic passages. The co-presence of the infinite and the finite is described as *ritam* or cosmic order and *satyam* or Ultimate Reality. This Reality is itself space, time and circumstance. The original status of Reality is spaceless and timeless. Space is Reality in its self-extended status, and time the same Reality in self-extended movement. The two are the dual aspects of the same activity of self-extension. From this stand-point, the paper discusses among others the vedic concepts concerning the solar symbol, cosmic wheel, cosmic tree and lotus in their spatial as well as temporal aspects."

(Author's Summary)

देश और काल का वाद सृष्टिविद्या का अभिन्न अंग है और विभिन्न कालों में तथा भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में उपलक्षित देश और काल के सिद्धान्तों में भारी मतभेद सृष्टिविद्या के मतों के भेद के अनुरूप है। ऋग्वेद के सृष्टि (—नासदीय), सुक्त से आइन्स्टाइन और होयल जैसे महान् वैज्ञानिकों के आधुनिकतम चिन्तनों तक इस कालहीन समस्या के समाधान के प्रयासों का एक लम्बा रोजक लेखा फँसा हुआ है। पश्चिम में, विशेष रूप से, यांत्रिक और नैसर्गवात्मक तत्त्वों के संदर्भ में, सृष्टिविद्या विषयक वाद के विकास में प्राप्त चार प्रमुख स्तरों का विचार किया गया है। ऋग्वेद के ऋषि-कवियों के अनुसार ब्रह्माण्ड परम काल से सत्य नशु है। इसी के प्रथम और नवीन ही सन्निधि में विकसित होने का भाव वैदिक काल में स्पष्ट लक्षित होता है। प्रथम और नवीन ही युगान् सृष्टि की सृष्टि-विद्या और मन्वन्त परम सत्यता

कहा गया है। यह सत्यता स्वयं ही अन्तरिक्ष, काल और स्थिति है। सत्यता की मूल अवस्थिति देश और काल से अनवच्छिन्न (=हीन) है। देश अपनी स्वप्रसारित अवस्थिति में सत्यता ही है और काल वही सत्यता स्वप्रसारित गति है। दोनों स्व-प्रसारण की एक ही प्रक्रिया के दो रूप हैं। इस दृष्टि से लेख में अन्य विषयों के साथ सूर्य के प्रतीक ब्रह्मचक्र, वनस्पति (=ब्रह्मवृक्ष) और पुष्कर की वैदिक परिकल्पनाओं का उन के देश और काल सम्बन्धी रूपों में विवेचन किया गया है। (लेखक का सार)

सुधीर कुमार गुप्त

११२. चन्द्रसम्बन्धी कुछ अनुसन्धेय मान्यताएं; विद्याधर शास्त्री, सम्पादक, विश्वम्भरा, हिन्दी विश्वभारती अनुसन्धान परिषद्, नागरी भण्डार, बांकापुर (राज.); विभ०, ६.३; १९७० (२०२७ वि.); ५७-५८; हि.। वैदिक मत में चन्द्र आप्य (जलीय) गुण से युक्त है। चन्द्र में प्रतिमास कम्पन होता है। अपोलो ११ द्वारा आनीत चन्द्रधूलि में पर्याप्त आक्सीजन (—जल का एक आवश्यक तत्त्व) विद्यमान है। प्रतिमास पृथिवी के सयोग से विशेष अवसर पर चन्द्र सदैव कम्पित होता है। इस कम्पन का स्वरूप मृग्य है कि वह सदैव एक समान होता है अथवा भिन्न-भिन्न प्रकार का।

अनिल कुमार गुप्त

११३. चन्द्रसम्बन्धी वैदिक विज्ञान की सहायक एक नवीन उपलब्धि; संयोजक, हिन्दी विश्वभारती चन्द्रान्वेषण विभाग; विभ०, ६.३; १९७० (२०२७ वि.); ३१-३२; हि.। चन्द्रधूलि में आक्सीजन की पर्याप्त मात्रा है, इटली के वैज्ञानिकों की इस खोज की सूचना देते हुए कहा गया है कि वेदानुसार चन्द्र आप्य है। जल में आक्सीजन भी होती है।

अनिल कुमार गुप्त

13. **Apropos The Rgveda V. 40;** V. G. Rahurkar, Deptt. of Skt. and Pkt. Languages, Univ. of Poona-7; UMCV., 1970; 511-516; E.

114. **Astronomy in Ancient And Medieval India;** Kripa Shankar Shukla, Deptt. of Mathematics, Lucknow Univ., Lucknow; **IJHS.**, 4. 1-2; 5, 11. 1969; 99-106; E. "Glimpses of the ancient Hindu astronomy are found in the Vedas and the Vedic literature. The Vedāṅga-jyotiṣa (c. 500 B. C.), which exclusively deals with Vedic astronomy shows that the Vedic seers were well versed in the motion of the Sun and the Moon and had developed a luni-solar calendar to regulate their activities. Further progress in the field of Hindu astronomy is recorded by the five well-known Siddhāntas summarized by Varāhamihira in his Pañca-siddhāntikā. These Siddhāntas were the result of the great Renaissance in Hindu Gaṇita which began some time before the beginning of the Christian era. Renaissance in Hindu astronomy which seems to have begun in the third or fourth century A. D. continued right up to the twelfth century A. D. The Āryabhaṭīya of Āryabhaṭa I (c. A. D. 476) is the earliest preserved work on astronomy written during this period. Of subsequent works, the notable ones are the Brāhmasphuṭa-siddhānta of Brahmagupta (A. D. 628), the Śiṣya-dhivṛddhidā of Lalla (c. A. D. 749), the Vateśvara-siddhānta of Vateśvara (A. D. 904), the Siddhānta-śekhara of Śiṣya (c. A. D. 1039) and the Siddhānta-Śiromani of Bhāskara II (A. D. 1150) "

(Author's Summary)

हिन्दू ज्योतिष के क्षेत्र की ग्रामि की प्रगति ब्रह्मिहिर द्वारा अपनी पञ्चसिद्धान्तिका में सारीकृत सुप्रसिद्ध पांच सिद्धान्तों में मिलती है। ये (पांच) सिद्धान्त ईसा के युग से कुछ काल पूर्व प्रारम्भ हुए हिन्दू गणित के महान् अभ्युत्थान का परिणाम हैं। हिन्दू ज्योतिष का अभ्युत्थान, जो ईसा की तीसरी और चौथी शती में प्रारम्भ हुआ प्रतीत होता है, ईसा की बारहवीं शती तक चलता रहा। इस काल में लिखा गया आर्यभट (जन्म ४७६ ई.) का आर्यभटीय ही सब से पुराना ग्रन्थ मुरखित रहा है। इस के बाद की रचनाओं में ब्रह्मगुप्त (६२८ ई.) का ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, लल्ल (शती ७४९ ई.) का शिष्यधिवृद्धि, वटेश्वर (९०४ ई.) का वटेश्वर-सिद्धान्त, श्रीपति (शती १०३९ ई०) का सिद्धान्त-शेखर और भास्कर २ (११५०) का सिद्धान्तशिरोमणि उल्लेख हैं।"

सुधीर कुमार गुप्त

होते हैं। तान्त्रिकाओं और सूत्रियों में उन के विषय में पर्वान्त सूचना भी उपलब्ध नहीं होती है।”

[लिखक का सार]

116 **Vedic Mathematics or Sixteen Simple Mathematical Formulae From the Vedas** by Jagadguru Swāmī Śrī Bhārati Kṛṣṇa Tīrthaji Mahārāja, Shankarāchārya of Govardhana Maṭha, Puri, B-naras Hindu University, Varanasi 5; PP 18+xxx+1a-1e+367; Rs. 10-00; Rev Amulya Kumar Bag; *IJHS*, 3.1;5 1968; 59-60; E. “The work is based on 16 cryptic sūtras with a number of corollaries giving radiant abbreviated form of methods for varieties of mathematical calculations which would be otherwise performed by long and tedious current methods. These sūtras and corollaries have been derived from the Av. The Introductory contains a biographical sketch of the author. The text contains the 16 sūtras and their sub-corollaries to each and a prolegomena by the author. This is then followed by 40 chapters dealing with the application of the sūtras and sub sūtra for various types of mathematical processes like decimal fraction, multiplication, division, factorization, solutions to different equations differential calculus, square cube, square root, cube root etc.

रचना १६ सूत्रों पर आधारित है जिन के साथ विभिन्न प्रकार की गणितीय गणनाओं की विधियों के प्रक्षिप्त नक्षिप्त रूप प्रस्तुत करने वाले प्रमेयों उपप्रमेय भी हैं। (उन विधियों के अभाव में) ये गणनाएँ प्रचलित तन्त्रों अथवा जनक विधियों से करना पड़ती। ये सूत्र और उपप्रमेय अथवा निकाले गए हैं। भूमिका में लेखक का जीवनपरिचय है। पुनः १६ सूत्रों का पाठ, उन सब के उपप्रमेय और अर्थों की प्रस्तावनाएँ हैं। इन के बाद इन में १० अध्याय विभिन्न गणनाओं और इन के उपप्रमेयों का अनुसंधान, गुणन, विभाजन, गुणनगणना, विभिन्न समीकरणों के नाश, चयन कथन, वर्ग, घन, वर्ग मूल, घन मूल आदि विविध प्रकार की गणितीय प्रक्रियाओं में प्रस्तुत विज्ञान गद्या है।

117 **Origin and Tradition of Alchemy:** Priyada Ranjan Ray, 50/1, Hindustan Park, Calcutta 29; *IJHS*, 2.1;5. 1967; 1-21; E. “The paper presents a comparative account of the ‘Origin and Tradition of Alchemy in different countries with particular reference to India. It is shown that alchemy had an independent origin in Alexandria, China and India, though there must have been an exchange of ideas among these countries in course of time. The Arabian alchemy, though basically Greek in origin, was also influenced in certain aspects by the ideas derived from the Chinese and Indian traditions in this field. Alchemy in India had a continuous evolutionary growth starting from the early Vedic Age down to the end of the sixteenth century. Indian alchemy was, however, tinged and urged by spiritual aspirations, transmutation or gold-making being a later phase of its development during the Tantric period.”

(Author's Summary)

लेख में भारत के विशेष संदर्भ में, विभिन्न देशों में रसेश्वर विद्या (—कौमिया) की उत्पत्ति और परम्परा का तुलनात्मक विवरण दिया गया है। यह दिखाया गया है कि रसेश्वर विद्या (=कौमिया) की सिकन्दरिया चीन और भारत में स्वतन्त्र उत्पत्ति हुई है। भले ही समयक्रम में इन देशों में विचारों का आदानप्रदान अवश्य रहा होगा। मूलतः यूनानी होने पर भी अरब की रसेश्वर विद्या (=कौमिया) अनेक धाराओं में इस क्षेत्र में चीनी और भारतीय परम्परा के विचारों से भी प्रभावित थी। भारत में रसेश्वर विद्या (=कौमिया) की प्राचीन वैदिक युग से प्रारम्भ कर सोलहवीं शताब्दी तक सतत विकासोन्मुखी वृद्धि रही है। तो भी भारतीय रसेश्वर विद्या (=कौमिया) आध्यात्मिक आशाओं से रञ्जित और प्रेरित रही है। धानुपरिवर्तन अथवा मूर्तान्तरिक तान्त्रिक युग का पीछे के (काल का) विकास है।

118. **The Theory of Chemical Combination in Ancient Philosophies;** Priyadarajan Ray, *History of Science in India Ancient Period* (Unit I), 1 Park Street, Calcutta 16; *IJHS.*, I. 1; 5, 1966; 1-14; E. "The atomic nature of matter and the union and collocation of the atoms to form large aggregates of molecules, both homogeneous and heterogeneous, constituted the basic and fundamental postulates guiding the Indian thought in their attempt to find out a rational explanation of the nature of the universe and of cosmic evolution. Science, in the strictest sense, can never be dissociated from philosophy and is in fact a branch of the latter and known as natural philosophy. The present paper is an attempt to make an analysis of the views of the early Indian philosophers regarding atoms and their combinations in the context of the modern scientific knowledge and in comparison with those of the contemporary Greeks.

(Author's Summary)

IJHS., 21; 5.1967; 25-46 (including Appendix); E In the Vedic literature we meet with descriptions of the structure of the human body, which reveal that the anatomical knowledge of the ancient Indians was of no mean order. In the present paper an account of this knowledge has been reported along with the developed in other contemporary nations of the world. Descriptions are found in the Vedic literature of all the important bones and other bodily parts which conform more or less to our modern knowledge. This description shows an evolution of the anatomical knowledge of the ancient Indians. The *Saṁhitās* represent a description of the general structure of the human body. In the *Bṛāhmanas* a detailed account of chest, neck, back portion of the body, ribs, abdominal portion and the hand is found to occur. A similar account of human heart, nervous system, sense-organs is given in the *Āraṇakas* and the *Upaniṣads*."

(Author's Summary)

Medical Conference Souvenir, 1970; 40-41; E.

48. **Problems of Biological Philosophy with regard to the Philosophy of the Upaniṣads**; Bernhard Rensch, Univ. of Münster, W. Germany; *IJHS.*, I. 1; 5. 1966; 75-81; E.

120. **Methods for Sterilization and Conception in Ancient India and Medieval India**; Bhagwan Dash, Senior Research Officer, Ministry of Health, F P & U D, Nirman Bhavan, New Delhi; *IJHS.*, 3 1; 5. 1968; 9-24; E. "In ancient and medieval India, population growth was not a problem. A family without children, specially without a son, did not enjoy respect from the society. But there are authentic references to prove that people in those days had a liking to have a small and happy family. Only one son of noble character was preferred to many sons without such character. That apart certain categories of people did not like to have children. Sexual abstinence was the important weapon to achieve this. People used mantra, talisman, (mechanical devices), oral and local drugs and such other artificial devices to prevent conception after conjugation. Even (vasectomy, removal of uterus) and intra-uterine contraceptive devices were practised in those days."

(Author's Summary)

(Matter in the parantheses does not appear to have been presented in the paper)

प्राचीन और मध्य भारत में जनसंख्या की वृद्धि ही समस्या नहीं थी। मन्तानहीन, विधेयकः पुत्रहीन परिवार को समाज में प्रादर नहीं मिलता था। परन्तु यह निश्चि के लिए प्राणात्मिक लेख है कि उन समय लोग छोटे और सुखी परिवार को पसन्द करते थे। उदात्त परिवार का एक पुत्र वरिष्ठ-पुत्र प्रवर्ती में प्रकटा माना जाता था। यह तो प्रमाण है, कुछ समय के लोग मन्तान की इच्छा नहीं करते थे। उन ही निश्चि के लिए मेधुनपरिवार का भी कुछ उदाहरण था। मेधुन के बाद गर्भ

रहने से रोकने के लिए लोग मन्त्र, ताबीज, (यान्त्रिक नाथन), खाने और लगाने की औषधियों और इस प्रकार के अन्य कृत्रिम उपायों का प्रयोग करते थे। उस समय (नसबन्दी, बच्चेदानी का निकालना) और दोनि के भीतर प्रयुक्त गर्भनिरोधक नाथनों का प्रयोग करते थे।

(लेखक का सार)

(कोष्ठगत विषय लेख में प्रस्तुत किया मान्य नहीं पड़ता है।)

121. **Methods of Sterilization and Sex-Determination in the Atharva Veda and in the Brhadāranyakopaniṣad**; Mira Roy, History of Sciences in India, Ancient Period (Unit I), 1 Park Street, Calcutta 16; *IJHS.*, 1 2; 11 1966; 91-97; E. "The Av. and the Br ĀUp. refer to some surgical methods and certain herbal drugs, as well as some dietary preparations for the sterilization of man and woman and also for ensuring the birth of a particular sex and endowed with faculties according to one's desire." "The Br ĀUp. prescribes some semi-psychological processes also."

"अथर्वे और बृहदार. में पुरुषों और स्त्रियों को बन्ध्या करने और अपनी इच्छा के अनुसार पुणों से युक्त निगदिनेय की मन्तान प्राप्त करने के लिए कुछ मन्त्रक्रियाओं, कुछ औषधियों तथा कुछ विशेष प्रकार के भोजनों के प्रयोगों के निर्देश मिलते हैं।" बृहदार. ने कुछ अर्धमनोवैज्ञानिक प्रयोगों का भी विधान किया है।

कला और शिल्प (Art and Craft)

122. **Pottery in The Vedic Literature**; C.G. Kashikar, CASS., Poona Univ., Poona; *IJHS.*, 4 1-2; 5, 11. 1969; 15-26; E. In the Vedic age—from the Saṃhitā period (2000 B.C.) to the Sūtra period (A.D. 300) 'pottery was used for different purposes on different occasions. Not only do we find names of different earthen pots, but the process of manufacture of at least some of them is laid down in more or less details in the

Brāhmanas and Sūtras. The paper records the information, supported by actual citations of the various earthen implements culled from the various literary works. The study includes a comparison of the information available in different Vedic texts.' The author has described at length the preparation of cauldron (ukhā) according to various authorities. Next in importance from the point of view of description is the preparation of mahāvīra.

वैदिक युग में, संहिताकाल (२००० ई० पू०) में मुद्रकाल (३०० ई०) तक 'विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार के मृत्पात्रों का प्रयोग होता था। वहां केवल विभिन्न मृत्पात्रों के नाम ही नहीं मिलते हैं, प्रत्युत क्रम में क्रम कुछ के बनाने की विधि ब्राह्मणों और सूत्रों में क्रम वा अधिक विस्तार से बताई गई है। लेख में विभिन्न साहित्यिक कृतियों से संगृहीत विभिन्न मिट्टी के उपकरणों के मूल वर्णन से पुष्ट यह जानकारी निवद्ध की गई है। उन अध्ययन में विभिन्न वैदिक रचनाओं में प्राप्त जानकारी की तुलना भी की गई है।' लेखक ने विभिन्न ग्रन्थों के अनुसार उद्योग के निर्माण का संक्षेपान्वय वर्णन किया है। वर्णन के अन्त में द्वाारा महत्त्व महावीर के निर्माण का है।

Sanskrit texts, particularly the Arthashastra."

(Author's Summary)

पूर्व पाषाण युग, उत्तरपाषाण युग और ताम्र-युग की अवधि तक देश के विभिन्न भागों में खोदी गई सम्प्रदायें इंगित करती हैं कि खनिज विज्ञान एक महत्त्वपूर्ण उद्योग था। पीछे के काल में, विभिन्न कालों का संस्कृत साहित्य खनिजों और खनिजों के संग्रहों का वर्णन करता है। इन खोजों से प्राप्त जानकारी को क्रमिक रूप से प्रस्तुत किया गया है, जिससे प्राचीन भारत में खनिज विद्या का चित्र उपस्थित हो जाता है। खुदाइयों में प्राप्त वस्तुओं के खनिज गान्धीय और शिलालेखीय अध्ययनों और संस्कृत साहित्य में, विशेष रूप से अर्थशास्त्र में दिए गए कुछ कच्चे खनिजों के गुणों के आधार पर कुछ खनिजों के सम्भावित खोजों के विषय में सुझाव दिए गए हैं।

124. Some Aspects of Glass Manufacturing in Ancient India; Vijay Govind, National Commission for the Compilation of History of Sciences in India, National Institute of Sciences of India; IJHS, 5.2;11 1970; 281-308; E. "The art of the manufacturing of glass

whose fusion under different heating temperature imparted coloured glaze and chemical durability. The author also refutes the theory of Assyrian origin of Indian glass making and maintains its indigenous origin. The Indians had also developed the methods of decolouring, moulding, annealing and working glass techniques and were a source of emulation to the outside world.

शीशा बनाने की कला में प्राचीन भारत में उच्च स्तर का तकनीकी कौशल था। यह कला संसार के अन्य भागों में शतक २५०० ई. पू. और १५५० ई० पू० के काल में ज्ञात थी। परन्तु भारत में, इस का ज्ञान, पर्याप्त पीछे अर्थात् ई० पू० प्रथम सहस्राब्दी के प्रथम पाद में हुआ। पुरातत्त्व की साक्षियाँ बहुत से खोदे गए स्थानों से, प्रमुख रूप से सजावट के लिए प्रयुक्त, विभिन्न शीशे और शीशे सहस्र वस्तुओं की सत्ता की पुष्टि करती हैं। साहित्यिक स्रोत और लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों के विवरण पुरातत्त्व के स्रोतों की पुष्टि करते हैं। वे प्राचीन भारत में शीशा बनाने के तकनीकी विकास के विभिन्न रूपों को भी बताते हैं। उन के शुद्ध और अशुद्ध रूपों के रासायनिक अध्ययन तकनीकी कौशल की प्राप्ति को इंगित करते हैं और शीशे की वस्तुओं को उन यात्विक औषधियों से रंगने के उन्नत ज्ञान पर तीव्र प्रकाश डालते हैं जिन का तपाने के विभिन्न तापमानों के अन्तर्गत समान रंगीन चमक और रासायनिक स्थिरता ला देता था। केवल भारतीय शीशा बनाने के असीरियाई वाद का भी उल्लेख करते हैं और इस काम की भारतीय उत्पत्ति को मान्यता देते हैं। भारतीयों ने रंग उतारने, धाकने, पानी चढ़ाने और ताम लहंगे की जोड़े की तकनीकी का भी विकास कर लिया था और वायु संसार के लिए अनुकूल के फेरसामय दे।

सुधीर कुमार गुप्त

संकलन (Selections)

१२५. वैश्वभारती; सुधीर कुमार गुप्तः, जयपुरे राजस्थानविश्वविद्यालयस्य संस्कृतविभागे प्रवाचकः; प्र. भामशशाः; १९६८; १२ आ + ९६ + ५२अ + २; अजिल्द ४-००; सजिल्द ४-८०; स., हि.। इस में संक्षिप्त भूमिका, अनुवाद और टिप्पणियों सहित ऋ. ३.६२.१०; ५.८२.५; य. ३६.२४; ऐ. ३३.३; श. १.८.१. १-५; तैउ. अनुवाक ९ और ईशोपनिषद् संकलित किए गए हैं। प्रत्येक अंश की भूमिकाएं अलग-अलग हैं। टीका लेखक की अपनी है। सर्वत्र दयानन्दीय विचारों को भी प्रस्तुत किया गया है। टिप्पणियों में व्याख्या और व्याकरण दी गई है। प्रत्येक अंश को एक-एक शीपक भी दिया गया है। ग्रन्थान्त में शब्दानुक्रमणिका और एक पाठक की सम्मति और सुझाव पत्र दिए गए हैं।

सुकेशी रानी गुप्ता

१२६. वेदलावण्यम्; सुधीर कुमार गुप्तः, आचार्य, सं. वि., गोरखपुर वि. वि., गोरखपुर; प्र. भामशशाः, ४ हीरापुरी, गोरखपुर; २ + ४ + ५७ + २७ + ८९ + ७२ + ८४ + ९० अ; अजिल्द ८-५०; वस्त्रवद्ध १०-५०; सं., हि.। इस में दो भाग हैं - १. वारस्करीयोपनयनसूत्राणि २. ऋक्सूक्तानि। उपनयनसूत्रों की भूमिका में उपनयन विधि के इतिहास और लुलनात्मक अध्ययन के साथ-साथ शूद्रों के उपनयन की समस्या पर विचार करते हुए ले० ने शूद्र को ऋषि पद का पर्याय माना है और तीनों वर्गों के श्रेष्ठ व्यक्तियों को ऋषि = शूद्र बत या है। मूल पाठ के अनुवाद और टिप्पणियों में नवीनता है। ऋक्सूक्तों में ऋग्वेद सम्बन्धी तत्र विषयों पर आधुनिक और प्राचीन विचारों के साथ लेखक के विचारों से युक्त भूमिका के साथ सायणभाष्य, शाब्दिक हिन्दी अनुवाद, टिप्पणियों और पदपाठ सहित ऋ. १.१५४; २.१२ और १०.९० (नथा य. ३१) का संकलन किया

गया है। अनुवाद में मादणु आदि ने अनेकमः भेद है। टिप्पणियों में प्राचीन और आधुनिक मतों के संग्रह, मर्मःशा और लेखक के भाष्य और मुद्राव हैं। ग्रन्थान्त में वैदिक व्याकरण, स्वर और पदपाठ पर तीन परिशिष्ट, मन्त्रानुक्रमणिका, टिप्पणियों में व्याख्यान पदों की अनुक्रमणिका और संक्षेपविवरण दिए गए हैं।

सुकेशी रानी गुप्ता

१२३. वेदशास्त्राव्यायम् द्वितीयो भागः; मुवीरकुमार गुप्त, आचार्य नं. वि., गोरखपुर वि. वि. गोरखपुर; भासग्रन्थ., ४ हीरापुरी, गोरखपुर; २ + २ + १४ + ६०; ३-००; सं.; हि.। इस में प्रजापति और वाक् के स्वरूप की परिचायक भूमिका के साथ ऋ. १०.१२१ और १२५ का पदपाठ, मादणुभाष्य, मादिक हिन्दी अनुवाद, टिप्पणियों, मन्त्रानुक्रमणिका, पदानुक्रमणिका और संक्षेपविवरण सहित सम्पादन है। अनुवाद और टिप्पणियों में लेखक ने बहुतमः प्रवर्तन विचार प्रस्तुत किए हैं। ऋ. १०.१२१.३ में गाय प्रकार के प्राणों माने हैं। वनस्पतियों में प्राण है, जीव नहीं है।

सब वेदों में श्रद्धा रखें और उस की सत्यता (-प्रामाणिकता) को स्वीकार कर लें।

सुकेशी रानी गुप्ता

१२६. ऋग्वेद में गीतस्त्व; (टंकित); वरी प्रसाद पंचोत्री, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, राजकीय कालिज, किशनगढ़ (राज.); राज. वि. वि. द्वारा पीएच. डी. (सं.) की उपाधि के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध, १९६५; हि.। ग्रन्थ भूमिका से प्रारम्भ होता है, जो ग्रन्थ की प्रस्तावना भी है। इस के बाद ग्रन्थ का मार, रूपरेखा, विषयमूची और पुस्तकतालिका है। मूल ग्रन्थ में दस अध्याय हैं, जिन में नमस्त भारतीय साहित्य में गाय की महिमा, गो शब्द के विभिन्न अर्थ (अ. १), संहिताओं में गो शब्द के अर्थों का विकास (अ. २), पशु रूप गाय (अ. ३), देवता रूप में गाय और उस का दक्षिणा, पृथिन आदि देवियों और तीर देवीं और मध्यलोक के देवीं से सम्बन्ध (अ. ४-५), यज्ञ और गाय (अ. ६), गोरहृत्स्य (अ. ७), गाय की प्रतीक (अ. ८), गाय की परिकल्पना या तत्त्व (अ. ९) और

ऋग्वेद में व्यापक रूप से प्रयुक्त हैं। जैसे गो, अश्व, वीर आदि भौतिक पदार्थों के साथ ही धी, मति, शची, ऋत, सत्य आदि सूक्ष्म तत्त्वों का भी धन के अर्थ में प्रयोग हुआ है। इन विभिन्न धननामों के विवेचन से यही निष्कर्ष प्राप्त होता है कि सभी धन एक हैं, जो अद्वैत रूप में महाधन अथवा ब्रह्म कहलाते हैं। मनुष्य के मनोमय से ले कर अन्नमय कोप तक तथा अनेक धनों के रूप में यही महाधन विभक्त हो रहा है। लेखिका के मत में वैदिक ऋषि ऊँचे आध्यात्मिकवादी भी थे। अद्वैत सत् का अंश होने से इन्द्र जीवात्मा ही है जो प्रकाश के आवरणक तत्त्वों का नाश करता है और अन्त में आनन्द को प्राप्त कर लेता है। वे मानती हैं कि समस्त ऋग्वेद में भाव का ऐक्य है और अर्वाचीन तथा प्राचीन अंश वाली आधुनिक मान्यता भाव की दृष्टि से सगत मालूम नहीं पड़ती है।

श्रीति प्रभा गोयल

131. *R̥sis of the R̥gveda*; (Typed); Laxmi Narain Sharma; Thesis approved by the Rajasthan Univ. for the Ph. D Degree (Skt.), 1962-63; 6+9+393+5; हि. इन का लक्ष्य ऋग्वेद के ऋषि परिवारों पर समष्टि रूप से विचार करना है, जिसे स्वारह अध्यायों में सम्पन्न किया गया है। ऋषि, ऋषियों के प्रकार आदि सामान्य विषयों पर विचार कर (प्र. १), गुल्मद (प्र. २), विश्वामित्र (प्र. ३), यामदेव (प्र. ४), अत्रि (प्र. ५), भरद्वाज (प्र. ६), बनिष्ठ (प्र. ७), कष्य (प्र. ८) और उन के परिवारों का विभिन्न ऋग्वेद अध्याय में अवशिष्ट ऋषि-परिवारों (—प्रगिरा और प्रगन्ध) का विचार किया गया है। वैदिक वर्णों के साथ पुराणों और महाकाव्यों आदि के वर्णों का भी विवेचन किया गया है और ऋषियों के आध्यात्मिक पक्ष को स्पष्ट किया गया है। अन्त अध्याय में ऋषि रूप में वर्णित आदि देवियों पर विचार कर अन्तिम एका-

दश अध्याय में ऋग्वेद में ऋषितत्त्व की ऊँचाई की गई है। लेखक की मान्यता है कि सर्वानुक्रमणों में निर्दिष्ट वैदिक ऋषि मनुष्येतर हैं, मन्त्र के शब्द या अर्थ का संकेत करने वाले हैं, ऋषि सामान्य की कल्पना के मूल में ज्ञान या प्राण या क्रिया के तन्तु अथवा अन्य कोई चेतन तत्त्व रहा है। उन की आध्यात्मिक व्याख्या के लिए पुष्कल सामग्री है। विश्वामित्र आदि ऋषियों का प्राण, वाक् आदि से तादात्म्य है। उन में नानात्व में भी एकता है।

सुधीर कुमार गुप्त

132. *Kausheetaki Brahm na ka Sanskritik Evam Aitihāsik Adhyāyana*; (1 type); Sudarshan Kumar Scod; Ph. D (Skt) Thesis approved by the Kurukshetra Univ., 1969; E. The thesis presents a cultural and historical study of the Kausīaki Brāhmaṇa in 8 Chapters—1. Religion and thics 2. Social 3. Economic conditions 4. Education 5. Agriculture 6. Political conditions 7. Minerals, Flora and Fauna 8. Calendar besides summary, introductory, bibliography; index and contents. The author has often traced the history of topics discussed from the Rv. to the KB.

यह प्रबन्ध सार, प्रस्तावना, पुस्तकतालिका, अनुक्रमणिका और विषयसूची दे कर १. धर्म और आचार २. सामाजिक ३. आर्थिक स्थितियाँ ४. शिक्षा ५. ऋषि ६. राजनीतिक स्थितियाँ ७. खनिज, पशुपक्षी, वनस्पति ८. पञ्चांग—इन आठ अध्यायों में कोषीतकित्वाहण का सांस्कृतिक और ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। लेखक ने अनेक बार विचार्यमाण विषयों का ऋ. से कोषीतकित्वाहण तक इतिहास भी दिया है।

१३३. *मंत्रायणी संहिता का एक अध्ययन*; (टंकित); देवकुमारी, अध्यक्षा, सं. वि., गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर (राज.); पीएच. डी. (सं.) का शोधप्रबन्ध, राज. वि. वि., १९६८; ३६६ + ६५; हि.। इस कृति में भूमिगत,

विषयमूर्त्ती, संक्षेपमूर्त्ती, पुस्तकतालिका और तीन परिशिष्टों सहित आठ अध्यायों में मस. की यज्ञ-प्रक्रिया का क्रमबद्ध रूप प्रस्तुत किया गया है। संहिता, ब्राह्मण और सूत्र में विषयताओं का समाधान या संगति और यथास्थान अन्य संहिताओं की विधि से समन्वय भी किए गए हैं। यज्ञ के विभिन्न पदार्थों में सम्बन्ध या तादात्म्य, मन्त्रों का यज्ञ में विनियोग और उपाययोजना के आधारों का भी विवेचन किया गया है। अन्त में यज्ञ सम्बन्धी परिभाषाओं की व्याख्यात्मक तालिका तथा मसं. के पद्यांशों और निर्वचनों का संकलन जोड़े हुए हैं।

१३४. वेदभाष्यपद्धति को दयानन्द सरस्वती को देन; (टीकित); सुधीर कुमार गुप्त, प्रोफेसर व अध्यापक, सं. वि., एन. आर. ई. सी. कॉलेज, खुरजा (उ. प्र.); राज. वि. वि. का पीएच. डी. (सं.) का शोधप्रबन्ध, १९५७; ६८५; हि.। ग्रन्थ में ४० अध्यायों में दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्यों की सत्यता का मूल्यांकन और देन प्रस्तुत करते हुए उसे परम्परागत, वैज्ञानिक, श्रेयगर्भिता का प्रकाशक और

शास्त्राणं वेदव्याख्यानं हं। निघण्टु में एकपदिक में संकलित पद 'पद' शब्द के पर्याय हैं। मन्त्रों में श्रद्धालता और अनभिज्ञेयता विचारणीय हैं। वहां अनेकों विद्याओं की सत्ता है।

समाचार (News)

१३५. वैदिक अनुसन्धान के लिए द्वात्रवृत्ति; वेवा०; २३.३; १.१९७१; ४७; हि.। ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज से सम्बद्ध वैदिक अनुसन्धान कार्य के लिए श्रीमती परोपकारिणी सभा अजमेर १५०-०० मासिक द्वात्रवृत्ति देगी।

सुधीर कुमार गुप्त

परिशिष्ट (Appendix)

विलम्ब में प्राप्त सार (Abstracts received late)

१३६. ऋग्वेदे पितृस्वरूपम्; दत्तात्रेयबालकृष्ण क्षीरसागर, शोधद्वात्र, सं. वि., जोधपुर वि. वि.; सागरिका, ६.२; १८७-१८६; सं.। लौकिक-

मनुष्य पितर कहलाते हैं। पितृशब्द का आशय पालक तथा उत्पादन करने में समर्थ है। नंपूर्ण नंमार में पालनादि गुणों से युवक जो एक शक्ति है, वह रिता कहलाती है। इस के भिन्न-भिन्न रूप ही पितर हैं।

प्रभाकर शर्मा

१३७. ऋग्वेदसंस्काराः; प्रह्लादकुमारः; सागरिका, ६-२; १६१-१७३; नं.। अत्र ऋग्वेदस्य नामान्यपरिचयं प्रस्तूय मन्त्रोद्धारपूर्वकं साहित्यशास्त्रीयं समालोचनं विहितमस्ति। वैदिककवेः काव्यीयचेतनाया वर्णनं शृङ्गारादीनां सोद्धारणविवेचनम्, एवं खलु न केवलमृग्वेदे काव्यतत्त्वानामस्ति त्वमेव प्रस्तूय तस्य महाकाव्यत्वमपि सिद्धम्। अन्वकारेषु च शब्दान्कारणां, तत्रापि च वृत्त्यनुप्रास-द्वेकानुप्रास-यमकानाम्, अर्थान्कारेषु च श्लेषस्य, नवीनकारोपजीव्यभूताया उपमायाः, रूपकस्य, अतिशयोक्तेः, व्यतिरेकस्य, विशेषोक्तेः, विभावनायाः, पर्यायोक्तेः, अप्रस्तुतप्रशंसायाः, अर्थान्तरन्यासस्य, काव्यनिष्पन्नस्य, आन्तिमत्, निदर्शनायाः, विरोधाभानादीनाञ्चानेकेषामलङ्काराणां निरूपणं कृतमस्ति।

यहां ऋग्वेद का नामान्य परिचय प्रस्तुत कर के मन्त्रोद्धारपूर्वक साहित्यशास्त्रीय समालोचना उपस्थित की गई है। वैदिक कवि की काव्यचेतना का वर्णन, शृंगार आदि रम्यो का सोद्धारण विवेचन, और उन प्रकार न केवल काव्यशास्त्रीय तन्त्रों का अस्तित्व ही अपि नु उन का महाकाव्यत्व भी सिद्ध किया गया है। प्रवहारी में शब्दान्कारणों का, उन में भी वृत्त्यनुप्रास, द्वेकानुप्रास और यमक का, अर्थान्कारों में श्लेष, समी प्रशंसाओं की उपजीव्यता का, रूपक, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, विशेषोक्ति, विभावना, पर्यायोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसा, अर्थान्तरन्यास, काव्यनिष्पन्न, आन्तिमत्, निदर्शना, विरोधाभान आदि रम्यो प्रवहारी का निरूपण किया गया है।

प्रभाकर शर्मा

१३८. कठोपनिषद्; भाष्यकारः ब्रह्ममित्रः अवस्थी, इन्दुप्रकाशनम्, दिल्ली ७; १९६६; ४-००; सं., हि; समीधा; सागरिका, ६.२; २०२७ वि.; २१७; सं.। अत्र हिन्दीभाषायां मूलग्रन्थस्य सुबोध-रत्या व्याख्या प्रस्तुता वर्तते। अनेकेषु स्थलेषु लेखनेन शंकररामानुजादीनां परम्परागता व्याख्या अस्वीकृत्य अभिनवा सरणिः समाश्रिता।

यहां हिन्दी भाषा में मूल ग्रन्थ की सुबोध रीति से व्याख्या प्रस्तुत की गई है। अनेक स्थलों पर लेखक ने शंकर रामानुज आदि की परम्परागत व्याख्या को अस्वीकृत कर नवीन मार्ग का अवलम्बन किया है।

प्रभाकर शर्मा

१३९. वैदिकसाहित्यसौदामिनीः वागीश्वरः; गुप्त., २३.१-२; ६-१०.१६७०; ५०-६६; सं.। गद्यपद्यात्मकोऽयं लेखोऽपूर्वः। अस्मिन्नेके द्विवेद्योन्मेषी प्रज्ञा स्तः। प्रथमे परमात्मनो वेदकाव्यकर्तुः कवित्वस्य, साहित्यस्य सच्चिदानन्दरूपतायाः, प्रतिभाप्रभावप्रज्ञाकल्पनाभावनादीनां, काव्यकारण-चतुष्टयस्य च निरूपणमुपलभ्यते। द्वितीये उन्मेषे गव्दार्ययोः काव्यत्व, रसचमत्कारयोर्भेदः, प्राचीनाचार्यकृतकाव्यलक्षणविवेचनपुरःसरं केषांचन मन्त्राणां भावकाव्यत्वं तत्र देवादिविषयरतेः सद्भावाद्, केषाञ्चन मन्त्राणां च चमत्कारप्राणचित्रकाव्यत्वं निरूपितानि सन्ति।

गद्य और पद्य में लिखा गया यह लेख अपूर्ण है। इस अंक में दो ही उन्मेष दिए गए हैं। पहले में वेद रूप काव्य के रचयिता परमात्मा के कवित्व, साहित्य के सच्चिदानन्द रूप होने, प्रतिभा के प्रभाव, प्रज्ञा, कल्पना और भावना आदि का, काव्यरचना के चार कारणों का निरूपण पाया जाता है। दूसरे उन्मेष में शब्द और अर्थ के काव्यत्व, रस और चमत्कार का भेद, प्राचीन प्राचार्यों द्वारा दिए गए काव्य के लक्षण का विवेचन कर के कुछ मन्त्रों में देव आदि विषयक

रति के होने के कारण उन मन्त्रों का भावकाव्यत्व और कुछ मन्त्रों का चमत्कारप्रधान त्रिककाव्यत्व निरूपित किए गए हैं ।

सुधीर कुमार गुप्त

१४०. यमयमीसंवाद (ऋ. १०.१०); उपा वि. करवेळकर; नभा., ४.१९७१; ४१-४७; म. । जुळया वंशुभगिनीं पासून मानवाची उत्पत्ति असे मानले जाते. भारतीयसंस्कृतीत यम हा मनुष्य-जातीचा पिता नाही; तर मनु. यम चन्द्र असून यमी राशि आहे ।

यमल वन्शु भगिनी से मानव का निर्माण हुआ ऐसा माना जाता है । पर भारतीय संस्कृति में यम मानव का पिता नहीं, बल्कि मनु है । लेखिका के मतानुसार यम चन्द्र है और यमी राशि है ।

समीक्षा उपर्युक्त छिने

पर प्रकाशित अध्ययन संकलित किए गए हैं । (वी. एम. देवेकर) । खण्ड १ में विषयों की विविधता है । वहां पुष्कल उद्धरण और मूल स्रोतों से प्रमाण दिए गए हैं । धर्मशास्त्र साहित्य के अतिरिक्त लेखक ने संस्कृत नाटकों और वीर काव्यों आदि में सामग्री ली है । (पी.एल. भागव) ।

सुधीर कुमार गुप्त

८२. धर्म के हिन्दू सिद्धान्त की उत्पत्ति एवं विकास; एण्जोनसिंह, प्राध्यापक इतिहास विभाग, इलाहाबाद वि. वि.; उमकव., १९७० ३०१-३२९; हि. ।

प्रस्तुत करने में स्वतन्त्र लेखक ने अपने को व्यावहारिक गीतियों को पढ़ने में ही सीमित रखने का प्रयत्न किया है। सम्पत्ति के विभाजन में विवाद उपस्थित हो जाने पर, कृति का निष्कर्ष है कि सम्पत्ति को माम और बड़े में बराबर-बराबर बांट देना ही उपयुक्त है।

143. **State of Criminal Law in Manusmṛiti**: R. S. Betai, Reader in Skr., Gujarat Vidyapitha, Ahmedabad; **UMCV**, 1970; 279-300; E. Neither *Manu* nor *Yājñavalkya* separates civil from criminal titles of laws, even though both are conscious of the positive distinction between the two and attach special importance to criminal side by way of laying down severe punishments for criminal offences and rules for their trial. *Manu* calls criminal proceeding as *kaṭaka śodhana*. The author discusses *Manu's* treatment of criminal law under four heads: (1) Ideals at the root of law. Here he deals with king, court, traditional law, purpose of criminal trials and punishments and allied matters. (2) punishments and penances. *Manu* feels suffering punishment for an offence makes one pure. He, therefore, lays down *prāyaścitta* for some offences and severe punishment for some, working round a reformatory theory brought out in this paper. He believes in the rehabilitation and reformation of criminals. (3) Punishments not primitive. The author justifies *Manu's* approach and disagrees with those who call *Manu's* law of punishment severe. (4) Punishments vary according to caste. Owing to the supremacy of *Brāhmanas* in all fields, preferential treatment was accorded to them. The author feels this was not proper and law should have been the same for all.

कर फौजदारी पक्ष को विशेष महत्त्व देते हैं। मनु फौजदारी व्यवहारों को कण्टकशोधन कहते हैं। लेखक ने मनु की फौजदारी विधि का चार जीर्णको में अध्ययन किया है—१. विधिनियम के मूल में आदर्श। इस में उस ने राजा, सभा, परम्परागत नियम, फौजदारी मुकदमों की जांच, दण्ड और सम्बद्ध विषयों का विवेचन किया है। (२) दण्ड और प्रायश्चित्त—मनु मानते हैं कि अपराध के लिए दण्ड भोग कर मानव पवित्र हो जाता है। अतः उस ने कुछ अपराधों के लिए प्रायश्चित्त और कुछ के लिए कठोर दण्ड का विधान किया है। इस में वे इन लेख में वर्णित सुधारक सिद्धान्त की परिधि में कार्य करते हैं। वे अपराधियों के पुनःस्थापन और सुधार में विश्वास रखते हैं। (३) दण्ड अपरिष्कृत नहीं है। लेखक मनु की प्रणाली का समर्थन करते हैं और उन से मतभेद रखते हैं जो मनु के दण्डविधान को कठोर बताते हैं। (४) दण्ड जाति के अनुसार बदलता है। सब क्षेत्रों में ब्राह्मणों के ऊँचा होने के कारण उन के साथ विशेष व्यवहार किया गया है। लेखक का विचार है कि यह अनुचित था और विधि नव के लिए समान होनी चाहिए थी।

१४३. **स्मृतिचन्द्रिक (Smṛti-Candrikā)** Title Page and Introduction; V. Chocklingam, Tamil Pandita, Saraswati Mahal Library, Tanjore; **JTMSSML**, XXIV. 2; 1971; 1-8; The text portion of this Tamil serial was completed in the last issue. This work is a digest in Tamil and translates the law codes of the famous 18 Sanskrit Smṛtis of *Manu*, *Vasiṣṭha*, *Yājñavalkya*, *Bṛhaspati*, *Kātyāyana*, *Nārada* and others. It gives the more important and common rules of conduct, social, economical and moral and the penalties prescribed for the violation of these rules. Some of the topics dealt with are the execution of the documents, their varieties and validity, rights of occupation and enjoyment of property, the role, requisites and examination of

witnesses, breach of contracts, rules relating to servants and slaves, wages, conduct of courtezans and illegal sales. The compilation in Tamil of Hindu Law and its Jurisprudence is for administrative purposes. The introduction published in this issue deals at length with the scope of the literature called smṛtis and contains the lists of the famous ancient seers, enumerated variously and a brief analysis of the contents of the work. (From the Journal's Editorial Notes)

तमिल की इस रचना का पाठ पिछले अंक में पूरा हो गया था। यह रचना तमिल में सार है और मनु, वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, बृहस्पति, कात्यायन, नारद और अन्यो की संस्कृत की प्रसिद्ध १८ स्मृतियों के विधिनियमों का अनुवाद प्रस्तुत करती है। यह ग्रथिक महत्त्व वाले आचारसम्बन्धी, सामाजिक, याथिक और नैतिक सामान्य नियमों और इन के उल्लंघन के लिए निर्धारित दण्डों को देती है। इन में वर्णित कतिपय विषय वे हैं—अभिलेखों का सम्पादन, उन के भेद और प्रामाणिकता, सम्पत्ति के धारण और उपभोग के अधिकार, साक्षियों के कर्तव्य, गुण और परीक्षा, संविदा का भंग, भूकों और दासों सम्बन्धी नियम, वेतन, वेदयात्रों का व्यवहार और प्रबंध विषय। तमिल में हिन्दु स्मृति और धर्मशास्त्र का संग्रह प्रजासैनिक कार्यों के लिए किया गया है। इन अंक में प्रकाशित प्रस्तावना स्मृति नामक साहित्य के क्षेत्र का अधिकार विवेचन करती है। इन में विविध प्रकार के परिचित प्रसिद्ध पुराने ग्रन्थों की सूची और इन ग्रन्थ के विषयों का अधिकार विवेचन भी दिए गए हैं। (परिचय की सम्पादन की विषयों में)

वीरकाव्य (Epics)

रामायण (Rāmāyaṇa)

process of exaltation in the Uttara Kāṇḍa. In the central and original part (Kāṇḍas 2-6) Rāvaṇa is not known to Rāma, Jaṭāyu, Kabandha, Sugriva and others. Only Sampāti knows. This indicates that the Rāmāyaṇa was originally a product of relatively simple baraic or even folkloric story-telling'. Rāma is forgetful, ignorant of Kubera's story and has an unpleasant side of his character (in his treatment to Śūrpaṅkhā). Authenticity of some texts has also been discussed.

उत्तरकाण्ड में रावण का महत्त्वपूर्ण उदानीकरण हुआ है। मुख्य मूल भाग (काण्ड २-६) में राम, जटायु, कबन्ध, सुग्रीव और अन्य भी रावण से अनभिज्ञ हैं। केवल संपति ही जानता है। इस से ज्ञात होता है कि रामायण मूलतः अपेक्षाकृत सरल चारण का लोककथा की उपज है। राम भुलकड और कुबेर की कथा से अनभिज्ञ है। (शूर्पाणा) से व्यवहार में राम के चरित में दोष भी है। कुछ पाठों की प्रामाणिकता पर भी विचार किया गया है।

महाभारत (Mahābhārata)

146 Kubera in Sanskrit Literature, with Special Reference to the Mahābhārata (From an Earth-Spirit to a God); V. M. Bedeker, B. O. R. I., Poona 4; UMCV., 1970; 425-451; E. Kubera had a humble beginning and godhead was conferred upon him only in later part of his career. In the Vedic literature Kubera was a spirit of hiding and 'concealment'. He was associated with Isāna or Siva. He then attained to godhead. He is a non-Vedic folk deity. In the Mbh. he has a love of place, inaccessible to men. He is a master of the art of concealing and revealing objects. He gradually attains the status of an immortal god. He has an intimate

151. **Social World in The Mahābhārata**; A D. Pulkar. B O R I., Poona; UMCV., 197; 575-580; **The Age of Bhārata War (1000 B C.)** is characterised by polyandry and niyoga. Social conditions of the age of the composition of the epic (3rd C. B. C. to 2nd C.A.D.) are the same as portrayed in their contemporary sources. Besides four castes some mixed castes were also known. Generally the caste depended upon character, but many a time on birth also. Gurukula system was in vogue. Women received education. Brāhma, kṣātra, Gāndharva, Āsura and Rākṣasa forms of marriage were current. Inter caste marriage and remarriage in some cases took place. Saṃnyāsa gradually came to be reserved for Brāhmanas. Attitude to women was liberal. Some kind of purdah was observed in some royal families. Some glimpses of rural life are available. Meat-eating and use of liquor were not uncommon. Dead were generally cremated. Dāsas and Dāsīs are frequently mentioned. Some of them were learned,

दासियों का वहुधा उल्लेख आया है। उन में से कुछ विद्वान् थीं।

गीता (Gītā)

152. **Quest for the Original Gītā**; G. S. Khair; Pub. Somaiya Publications Pvt. Ltd., Bombay 14; 1969; i-xiv+248; 32-00; V. M. Bedekar; **ABORI**, L I-IV; 1969; 129-131; The thesis propounded in this work was published in Marathi in 1967 (See *Mūla Gītecā Śodha*). The present Gītā presents a mixed fare contributed by three different authors belonging chronologically to three different periods. The first composed about 100 verses and preached niṣkāma karman. The second also composed about 100 verses and supplemented the gospel of action. The third composed about 375 verses and interspersed them at various places. The thesis is supported by keen analysis, extensive tables and appendices. Scholars may differ from the author. He has, however, blazed a refreshingly fresh, if not a new, trail in the recent studies on

लेख में वर्णित) अत्यल्प प्रक्षेप हैं। प्रस्तुत सांख्यिक विश्लेषण के बाद कुछ प्रयोगों के विषय में निष्कर्ष दिए गए हैं, जिन में से कुछ की तुलना अम्बा और नल की संख्याओं से की गई है। गीता १०.२२; .२५ और .३१ के आधार पर मोर्टन मानते हैं कि गीता का लेखक सामवेदी भागव था। १०.३१ का राम सम्भवतः २०० ई० पू० में परशुराम हो सकता है। क्यों कि गीता २१२ ई० पू० में वन्दु रक्षक, का मृत्यु पर पाटलीपुत्र की स्थिति को प्रतिबिम्बित करता है, अतः लेखक सुझाव देते हैं कि गीता २१० और २०० ई० पू० के बीच रची गई होगी।

सुधीर कुमार गुप्त, करुणेश शुक्ल
पुराण (Purāṇa)

१५५. अंग्रेजी राज्य और पुराण; नन्दकुमार शास्त्री, प्राध्यापक शारदा सदन कालिङ्ग, मुकुन्दगढ़; मूलासंहिता, २; ७. १९६७; ६४-६७; हि.। भागवत पुराण १२.१.३० के आधार पर भागवत में अंग्रेजी राज्य का वर्णन नहीं माना जा सकता। यहाँ यवन का अर्थ यूनानी है। तुम्हें शकों का बोधक है। गुरुण्ड अपपाठ है। गुड पाठ मुण्ड है। यह अंग्रेजों का वाचक नहीं है। यह 'स्वामी' अर्थ का वाचक शक शब्द है और शक राजाओं का शोक है। पुराणों में विक्रम की चौथी शती में प्राये का इतिहास नहीं है। वहाँ पाकिस्तान का कोई उल्लेख नहीं है।

सुधीर कुमार गुप्त

३२. इन्द्रस्याहल्याजारस्त्वविषये वेदान्तः ; वेत्तरमस्य शास्त्री जामदग्नः, गोरुगणेशवासी; गुण, २३.१-२; २-१०. १९७०; ४५-४६; ५.।

146 Kubera in Sanskrit Literature, with Special Reference to the Mahābhārata (From an Earth-spirit to a God; V. M. Bedekar, B O R. I., Bombay; UMCV; 1970; 425-451. E.

१५३. पुराणों के कतिपय साध्यात्मक प्रकरण; 1: शारदा सदन; विम.। ६.३; १९७० (२०२०-वि.);

३-६; हि.। विम. १.१ में कालिदास के ऋतुसंहार और मेघदूत पर ब्रह्मवैवर्त की प्रतिच्छाया देखें। पुराणों के साध्यात्मक वर्णनों का रसास्वादन सम्भव है। अनुष्टुप् छन्द में वीरभावों का उद्बोधन, और भक्ति का उद्रेक लक्षित होते हैं। वहाँ अनुप्रासों और उपमाओं का चमत्कार है। शेष छन्द भी वाक्यसौंदर्य से पूर्ण हैं। ब्रह्मपुराण और पद्मपुराण के कतिपय स्थलों के अध्ययन से उपयुक्त कथनों को पुष्ट किया गया है।

157. The Vāmana Purāṇa Critically edited by Anand Swarup Gupta; Published by All India Kashinaj Trust, Fort, Ram Nagar, Varanasi. 1967; Demv 4, PP LXX+778+113; 125-00; Reviewer A.D. P.; ABORI; L. I-IV 1969; 116-118; E. The review contains an account of the training in critical editing of the editor, the mss. utilized, the possible places for search of printed editions, classification of mss. and testimonia. It discusses two principles of critical editing followed by the editor, the problem of Sāromāhātmya and concludes with a statement of the main contents and commendation of the edition in which the text of the Vāmana Purāṇa has been critically edited with the help of 20 mss., printed texts and other testimonia according to 21 principles. Sāromāhātmya has been rightly retained at its original place. The edition contains an introduction in English and also in Sanskrit, concordance with other editions, Adhyāya-Contents of the text, four appendices and two verse indices. Substitution of correct forms for some grammatically wrong forms is open to objection. The reviewer has made some more observations by way of suggestions and criticism.

समीक्षा में सम्पादक की आलोचनात्मक सम्पादन की शिक्षा, प्रयुक्त दृष्टान्त और उन के वर्गीकरण, छपे संस्करणों की त्रुटि के लिए सम्भावित स्थान और पाठमाधियों का विवरण है। उन में सम्पादक द्वारा प्रस्तुत आलोचनात्मक सम्पादन के दो विधानों और नागोमाहृत्य की समस्या पर विचार किया है और संस्करण के प्रमुख विषय

श्रीर संस्करण की संस्तुति दिए हैं। इस संस्करण में वामन पुराण का पाठ २० हस्तलेखों, छठे दृष्ट पाठों और २१ नियमों के अनुसार अन्य माक्षियों के आधार पर आलोचनात्मक सम्पादन किया गया है। सारोमाहात्म्य को अपने मूल स्थान पर ठीक ही रखा गया है। संस्करण में अंग्रेजी और संस्कृत में एक भूमिका, दूसरे संस्करणों से समतातातिका, मूल पाठ के अन्वयविषय, चार परिशिष्ट और दो पद्यानुक्रमिकाएँ दिए गए हैं। व्याकरण के अनुसार कुछ प्रमुद्ध हों के स्थान पर मुद्ध रूप का रखना आपत्तिजनक है। समीक्षक ने मुक्ताव और आलोचना के रूप में कुछ और विचार भी दिए हैं।

१५८. श्रुतं ताराबुधचन्द्रतत्त्वम्; वेंकटरमण शास्त्री जामदग्न्य, गोकर्णक्षेत्र; गुण०, २३-१-२; ६-१०.१९७०; ३६; सं०। अथ बुधेन संवित्, चन्द्रेण मनः, नारादा वाक्, तारापतिना जीवोऽभि-
प्रेतः। चन्द्रस्य नारादाश्च योगे बुधः संजायते।

बुध जान का, चन्द्र मन का, तारा वाणी की और नारापति जीव के वाचक हैं। चन्द्र और तारा के मेल में बुध उत्पन्न होता है।

लौकिक संस्कृत भाषा और साहित्य (Classical Sanskrit Language and Literature)

इस कृति का यह बहुत उत्तम और पूर्ण आलोचनात्मक संस्करण है। अनुक्रमिकाओं तथा कतिपय पाठालोचक टिप्पणियों ने संस्करण को बहुत उपयोगी बना दिया है। समीक्षक ने जा।कीहरणम् की उपलब्धि और प्रकाशन का इतिहास दिया है, और कुछ पाठों और अनुवादों पर विचार किया है जहाँ वह सम्पादकों से मतभेद रखता है। मुद्रण की कुछ भूल भी इंगित की गई हैं। सम्पादकों की ग्रन्थ की भूमिका बहुत उपयोगी है।

१६०. परशुरामदिग्विजयमहाकाव्यम्; दञ्जू-
राम शास्त्री; प्र० साहित्य भण्डार, मुनाप बाजार,
मेरठ; २-००; म०; समीक्षकः लक्ष्मीचन्द्र मिश्र;
विभ०, ६-३; १९७० (२०२७ वि०); ५६; हि०।
वाल्मीकि और व्यास के अनुरूप अनुष्टुप् छन्द में
वीर भाव का प्रकाशक परशुराम के चरित्र का
चित्रक संस्कृत महाकाव्य है।

सुवीर कुमार गुप्त

१६१. महाकवि कालिदास के महाकाव्यों का
सारगन्धित रूपान्तर व अनुकरण काव्य; प्रभाकर
शर्मा, मीरपुर; पूरासंहिता., १९६५-६६; ७२-८२;
हि०। महाकवि कालिदास एवं वाल्मीकि की अमर
दृष्टियों को आधार बना कर राजगुरु नीतारान
अन्तर्गत पर्वगाँवर तथा राजवंश सम्बन्धित अन्त

पद्य में प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने इस लेख में सारदातकम् के रघुवंश और कुमारसंभव के सारों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

मनमोहन अग्रवाल

११. श्रीगोस्वामितुलसीदासचरितं महाकाव्यम्; ले० हरिप्रसाद द्विवेदी; प्र० वेदव्रत शर्मा, मन्त्री भारतीय साहित्य संघ, ग्रायं औपधालय, नदरई गेट, कासगंज, जिला एटा, उ० प्र०; १-००; समीक्षक: भगवद्दत्तः; गुप० २३.१-२; ६-१०.१९७०; ६८; सं० ।

१६२. श्रीनेहूरुचरितम् (महाकाव्यम्) ब्रह्मानन्द-शुक्लः, प्रधानाचार्यः साहित्यविभागाध्यक्षश्च, श्री-राधाकृष्ण-संस्कृतकालिजः, खुर्जा; प्रस्तावनालेखकः कर्णसिंहः, पयटननागरिकोड्डयनमन्त्री, भारतशासनस्य; हिन्दीविद्युत्कारः कृष्णकान्त-शुक्लः, सं० वि०, बरेली-कालिजः, बरेली; वितरकः, सारदासदन, ३८ राधाकृष्ण, खुर्जा (उ०प्र०); सजिल्द १२ ००; यजिल्द १०-००; २२ + २४०; सं०, हि० । अस्मिन् महाकाव्ये हिन्दीविवृतियुक्ते अष्टादशसर्गेषु सरलया ललितया च भाषयोपनिबद्धेषु श्रीनेहूरुमहाभागस्य जन्मानुष्ठुपर्वतं समस्तजीवनवृत्तमुपवर्णितमस्ति । एतस्या भूमिकाया रमंगचन्द्रशुक्लेन नेहूरुचरित-प्रणेतृब्रह्मानन्दशुक्लस्य तत्कालीनां च संस्कृतभाषया परिचयो वर्तते । अत्र तेन महाकाव्यस्यास्य विशति-पर्वेषु नारः, सोशहरणमस्य समाप्तेन विशिष्टनायि निहितौ ।

१६३. "सीताचरितम्— एकं राष्ट्रियं महाकाव्यम्; रहस विहारी द्विवेदी; शोधछात्रः, जबलपुर-विश्वविद्यालये संस्कृतविभागे; सागरिका, ६.२; २०२७ वि०; १९७-२०४; सं० । अत्राचरितप्रकाशितरेवाप्रसादद्विवेदिप्रणीतसीताचरितमहाकाव्यस्य परिचयो वर्तते । सीताया उत्तरं चरितमाश्रित्य प्रणीतमिदं संस्कृतसाहित्ये नारी-प्रधानं प्रथमं महाकाव्यम् । अत्र राष्ट्रियता सर्वत्रोच्छ्रलन्ती दृश्यते । सा च यावत् हिमालयात् कन्याकुमारीं यावत् सम्पूर्णं राष्ट्रमप्यात्मीयत्वेनानु-वध्नाति । लेखेऽस्मिन् भारतस्य भूगोलः सांस्कृतिकं स्वरूपं राष्ट्रभक्तेर्विधिः संदर्भा विश्वबन्धुत्वमिति विषया सीताचरिताद् वाक्यानुद्बूय प्रतिपादिताः ।

यहां हाल में प्रकाशित रेवाप्रसाद द्विवेदी रचित सीताचरित महाकाव्य का परिचय है। सीता के उत्तरचरित को ले कर रचा गया यह संस्कृत साहित्य में पहला नारीप्रधान महाकाव्य है। यहां राष्ट्रियता सर्वत्र उमड़ रही है। यह हिमालय से कन्याकुमारी तक सनस्त राष्ट्र में आत्मीयता रखती है। इस लेख में भारत का भूगोल, सांस्कृतिक स्वरूप, राष्ट्रभक्ति के विविध संदर्भ और विश्व-बन्धुत्व विषयों का सीताचरित से वाक्य उद्धृत कर प्रतिपादन किया गया है।

मुक्तक काव्य (Lyric Poetry)

हासोपहासकाव्यानि न सन्ति । कण्टकाञ्जलिस्तमभावं
दूरीकरोति । अत्र एतादृशकाव्यानामभावस्य कारणं
व्याख्याय ग्रन्थस्य विषयस्य सारोऽपि प्रस्तुतः ।
मंगलकरो मराठीभाषायां 'परिहास आग्नि
उपहास' इत्यत्र परिहासोपहासयोः स्वरूपं त्रिविच्य,
तयोः कण्टकाञ्जली स्थिति, वांश्चन शब्दप्रयोगांश्च
विश्लेषति । कण्टकाञ्जुनः संस्कृतभाषायां मधुरेण
कथामुखेन ग्रन्थप्रणयनकारणप्रयोजने तथाधुनिकशब्द-
प्रयोगं कण्टकतन्त्रोचित्यं च व्याख्याति । ग्रन्थे चादौ
मुख्ये, ततो रामराज्य-पञ्चशील-धर्मातीत-
जगदेकराष्ट्र-विपाक-लोकप्रणो-जीवनोद्योग-विद्या-
विद्यार्थि-गार्हस्थ्य - तत्त्ववित् - पद्धतिपञ्चजलिवन्धे
परिशिष्टे च विविधान् परश्चतुःषष्ट्यधिकैक-
शताधुनिकविषयानवलम्ब्यांश्चमराठीभाषान्तरयुतानि
परिहासोपहासपूर्णानि शाद्वलविक्रीडितवृत्ते संस्कृत-
भाषया रचितानि पद्यानि वर्तन्ते ।

सहित शाद्वलविक्रीडित छन्द में परिहास ग्रीर उप-
हास से परिपूर्ण संस्कृत भाषा में निर्मित पद्य हैं ।

सुधीर कुमार गुप्त

१६५. चैतन्यगृहनीतिशतकम्; चैतन्यः, गुप०,
२३-३; १०-११.१६७०; १२८; सं० । अनुकूलां
पतिव्रतां स्त्रियमधिकृत्य स्तवनपरा एकोनत्रिंश-
च्छ्लोकाः सन्ति ।

अनुकूल पतिव्रता पत्नी की प्रशंसा में २६
श्लोक हैं ।

१६६. जगन्मन्दनम्; बुद्धदेवः; गुप०, २३.१-२;
६-१०. १६७०; ३१; सं० । अमायामपि सन्व्यापा-
मपि किमुतोपस्यपि ज्योतिर्मयं सुखप्रदं सुगन्धि च
जगन्मामानन्दयतु ।

अमावास्या में, सन्व्या में ग्रीर उपा में प्रकाश-
मय, सुखदायक ग्रीर सुगन्धवाला जगत् मुझे

सन्ति । ग्रन्थान्ते तिस्रोऽनुक्रमणिका वर्तन्ते—एका पद्यानां तालिका, द्वितीया गीतानां विषयान् कालांश्च बोधयति, तृतीया च जवाहरोक्तानां विषयान् निगमयति । आदौ लेखकेनांग्लभाषायां रचनायाः परिचयो व्यधायि ।

यहां जवाहर के विभिन्न विषयों पर प्रकट किए गए भाव और विचार मुल्लित संस्कृत भाषा में राग और ताल से अनुगत गीतियों में पूर्वजवाहर, उत्तरजवाहर और उपसंहार नामक तीन खण्डों में प्रस्तुत किए गए हैं । ग्रन्थ के अन्त में तीन अनुक्रमणिकाएं हैं—एक पद्यों की तालिका है, दूसरी गीतियों के विषयों और कालों का और तीसरी जवाहर के वचनों के विषयों का बोध कराती है । आदि में लेखक ने अंग्रेजी में रचना का परिचय दिया है ।

१६६. भारतदशादर्शनम्; सत्यव्रतः, माटुंगा, बम्बई; गुप०, २३.१-२; ६-१०.१६७०; २१; सं. । भारते उदात्तगुणानां नाशस्य, दुर्गुणानामुत्पत्ते-देशस्य तत्कारणाद् दुर्दशायाः पद्यमयं निबन्धनमत्र ।

यहां भारत में उदात्त गुणों के नाश, दुर्गुणों की उत्पत्ति और इस कारण देश की दुर्दशा का पद्यात्मक चित्रण किया गया है ।

१०३. राष्ट्रतन्त्रम् (भाषानुवादसहितम्); लक्ष्मीनारायण शुक्ल; प्र. ललित मोहन शुक्ल, मदनमोहन शुक्लच, गोरखपुरम्; प्रथम संस्करणम्; ४+७६; २-००; सं., हि. ।

१७०. चिन्मयः; धर्मदेवो विद्यामानण्डः (देव-मुनिवानप्रस्थः), ज्वानापुरम्; गुप०, २३.१-२; ६-१०.१६७०; ३२; सं० । अत्र परमेशसविधे भक्तिप्राप्त्यनुद्दिष्टवो ज्ञानहीनजनोऽरण्यचित्तप्राप्तये प्रवृत्तानां कर्तुं सामर्थ्याय प्रार्थनास्ति ।

इस में परमात्मा से भक्ति, धर्म और बुद्धि के लिए, ज्ञानहीन जनो के उत्थार की सक्ति पाने के लिए और अज्ञान के धारण बनाने की सामर्थ्य के लिए प्रार्थना है ।

१७१. मित्राचार्यः, (त्रिनिदादसंग्रहः); दृष्टान्तानः,

दिल्ली—विश्वविद्यालय—पन्नालाल—गिरधरलाल—दयानन्द—एग्लो—वैदिक महाविद्यालये संस्कृताध्यापकः; प्र. वासुदेव प्रकाशन, मॉडल टाउन, दिल्ली—६; २०२२ वि. माघे; ८+७२; ४-५०; सं० । प्रस्तावनालेखकौ रामगोपालो रसिकविहारी जोशी च, लेखकस्य किञ्चिद्ब्रह्मव्यमप्यादौ वर्तते । अत्र कवेः नूतनशैल्यां कुत्रचिद् उग्रशब्दार्थयोः, कुत्रचिच्च कोमलपदार्थयोः विविधान् विवेकानन्द—लाजपतराय—प्राकृतदृश्य—कंकालाद्येकपठिः साम्प्रतिकान् विषयानवलम्ब्य छन्दोऽभिगडमुक्ताः कविताः सन्ति ।

प्रस्तावनाओं के लेखक रामगोपाल और रसिक विहारी जोशी हैं । आरम्भ में लेखक का 'कुछ कथनीय' भी है । यहां कवि की नई शैली में कहीं उग्र शब्द और अर्थ में और कहीं कोमल पदों और अर्थों में विविध विवेकानन्द, लाजपतराय, प्राकृतिक दृश्य, कंकाल आदि ६१ आधुनिक विषयों पर छन्दों के बन्धन से मुक्त कविताएं हैं ।

१७२. सा ध्यायते रहसि भारतभव्यभूमिः; अमरनाथ पाण्डेयः, काशी विद्यापीठः; गुप०, २३.३; १०-११.१६७०; १२४; सं० । पद्यपञ्चमित भारत-भूमेः स्तवनम् ।

यहां पांच पद्यों में भारत भूमि की स्तुति है ।

सुभाषितसंग्रह (Anthologies)

१७३. कविभारती कुसुमांजलिः (तृतीयो भागः); सम्पादकाः बटुक नाथ खिस्ते-रतिनाथ भा ज्योतिर्मित्र—शिवदत्तशर्मचतुर्वेदाः प्र. कविभारती, डी. १४/५०, काश्मीर हाऊस, टेढीनीम, वाराणसी; ३-००; समीक्षकः भगवदत्तः; गुप०, २३.१-२; ६-१०.१६७०; ६७; सं० । अत्र सर्वाण्येव पद्यानि सुरचिराणि कामप्यनिर्वचनीयं सुस्वादुरसमभिव्यञ्जयन्ति । सन्त्यत्र चहूनां प्रौढपाण्डित्ययुक्तानां कविकोविदानां स्त्रीपुरुषाणां रचना ।

इस में सभी पद्य अत्यन्त सुन्दर हैं और अर्थपूर्ण-नीय मुग्धुर रस की सृष्टि करते हैं । इस में बहुत से प्रौढ़ पण्डित कविकोविद स्त्री और पुरुषों की रचनाएं हैं ।

174. *Cāṅakya-Niti-Text-Tradition*; Ludwik Sternbach; Pub. V. V. R. I., Hoshiarpur; PP. ccvii—392 (Part I) and cxxix—274 (Part II); Rev. P L. Bhargava; *URSHS.*, 2; 7,1967; 130-131; E. This critical edition is based on 75 mss. and 100 editions. The aphorisms of Cāṅakya are available and can be divided into six versions only. The edition contains an extremely informative introduction, the reconstructed text (6 versions, 2 of which are in Part II) and *pratīka* index (in each part). In every stanza syllables joined by *saṁdhi* rules have been shown separately also within brackets.

इस प्राचीननात्मक संस्करण का आधार ७५ हने. और १६० संस्करण हैं। चाणक्य के सूत्र केवल छे पाठों में मिलने हैं और विभक्त किए जा सकते हैं। इस संस्करण में एक परम मूलक भूमिका, (६ पाठों का, जिन में से दो भाग २ में हैं) पुनर्निर्मित पाठ और (प्रत्येक भाग में) प्रतीक अनुक्रमणिकाएँ हैं। प्रत्येक पद्य में सन्धि के नियमों से जुड़े हुए अक्षरों को कोष्ठों में अलग भी दिखाया है।

with M. Rāmakṛṣṇa Kavi and places the compiler of *Dvi* in the 9th or early 10th c. *Dvi* is a typical selection of gnomic verses collected from various sources. All the verses compiled in *Dvi* are in *Ārya* metre. Four verses in *anuṣṭup* and one in irregular *Āryā* metres attributed to *Sundarapāṇḍya* are given in Appendix 2. Some verses of *Dvi* have been ascribed in the *Subhāṣita Saṁgrahas* to various poets like *Ravigupta*. These *saṁgrahas* do not mention *Sundarapāṇḍya*. Analysis of *Dvi* verses given in Appendix I and in this paper indicates that *Dvi* includes verses belonging to the end of the 16th c. The author, from an analysis of the verses of *Dvi*, which could be found in other primary and secondary sources deduces "that *Dvi* was a typical work of compilation of younger origin ascribed to *Sundarapāṇḍya*" belonging to 9th or 10th c. A.D. . He is none of the earliest poets bearing the same name. Appendix 3 gives "a correlation of verses ascribed in *SRHT* to *Sundarapāṇḍya* and found in *Dvi* or in annex II."

लेख संशोधनों की सूची, के० एम० शर्मा, एम० जी० नरहरि के निर्वाहपट्टिका (द्वि०) के संस्कर-

सुन्दरपाण्ड्य के नाम से सम्बद्ध किया गया अर्वाचीन उत्पत्ति वाला ९ वीं या १० वीं शती ईसा के प्रारम्भ का आदर्श संकलन ग्रन्थ है। वह सुन्दरपाण्ड्य नाम के प्राचीन कवियों में से नहीं है। परिशिष्ट ३ में सुन्दरपाण्ड्य से सम्बद्ध सूचितरत्नहार और द्वि० अथवा अनुबन्ध २ में प्राप्त पद्यों का पारस्परिक सम्बन्ध दिखाया गया है।

१७७. चाणो; ले० कर्णराजशेषगिरिरावः; प्र० ग्रन्थभारतीप्रकाशनमन्दिरम्, जाण्डुपेट, चीराला (आ० प्र०); १-००; समीक्षकः भगवद्दत्तः; गुण०, २३ १-२; ९-१०, १९७०; ६८; सं०। अत्र बहून् विययानाश्रित्य सरलानि बालेभ्योऽपि बोधगम्यानि पद्यानि संग्रथितानि।

इस में बहुत से विषयों पर सरल, बालकों को भी समझ में आ जाने वाले पद्य रचे गए हैं।

१७८. विजयपत्रम् (जुफरनामा); ले० गुरुगोविन्दसिंह; अनुवादकः आचार्यधर्मन्द्रनाथ; भूमिका ले० जाकिरहुसैन; प्र० निखिलभारतीयभाषापीठप्रकाशन, जयपुर; क-फ+२६८; २०-०० (३ डालर); फा., सं., हि., अं.। अस्मिन् ग्रन्थे गुरुगोविन्दसिंहेन प्रेषितम् श्रीरंगजेवस्य दक्षिणप्रदेशे तत्समक्षमुपस्थानु-मादिगतः पत्रस्य फारसीभाषायामुत्तरमस्ति। तच्चायं सस्कृतपद्येष्वनूदितं कविना। हिन्दीभूमिकायां गुरुगोविन्दसिंहस्य जीवनवृत्तं ग्रन्थस्य चास्य परिचयो वर्तते। ग्रार्थे पद्यद्वये गुरोः संकल्पः, तत्. पद्यद्वये क्षत्रियरूपे परमात्मनः स्तुतिः, तत्तदश्रीरंगजेवस्य योगान् दुष्कर्माण्यस्वाचारादयोद्धाट्य तेषां प्रतिहार करिष्यामि त्वञ्चापि स्वकर्मणां फलं भोगसीधुनामस्ति।

है। पहले दो पद्यों में गुरु का संकल्प है, दूसरे दो पद्यों में क्षत्रिय रूप में परमात्मा की स्तुति की गई है। फिर श्रीरंगजेव के दोषों, दुष्कर्मों और अत्याचारों को प्रकट कर 'उन का प्रतिकार कहेगा और तू भी अपने कर्मों का फल भोगेगा' यह कहा गया है।

179. *The Vyāsa-Subhāṣita-Saṃgraha* critically edited for the first time by Ludwik Sternbach. Hon. Prof. of Dharma Śāstra and Ancient Indian Culture, New York; Pub. Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi; PP. xxxvi + 50; 10-00; Rev. B. N. Bhatt; **JOI**, XIX 4; 6. 1970; 50-451; E. The editor has collected references from diverse sources. He has highlighted the way of methodical study of the *Subhāṣitas*.

सम्पादक ने विभिन्न स्रोतों से संकेत संकलित किए हैं। उस ने सुभाषितों के विधिवत् अध्ययन पर बल दिया है।

180. *The Subhāṣita-Saṃgrahas As Treasuries of Cāṇakya's Sayings*; Ludwik Sternbach; Pub. V.V.R.I., Hoshiarpur; 1966; PP. i-viii + 187; 25-00; Rev. V.M. Bedekar; **ABORI**, L. I-IV, 1969; 128; E. Cāṇakya's sayings were very popular in 14th and 15th centuries. Most of them originated in his *Rājjanīti-śāstra*. The anthologies contain a large number of Cāṇakya's sayings, some of which are not found in any of the known collections of Cāṇakya's aphorisms. The present work presents Cāṇakya's sayings found in anthologies in a tabular form.

१४ वीं और १५ वीं शती में चाणक्य की सूचितयां बहुत लोकप्रिय थीं। उन में से अधिकांश

स्तोत्र (Hymns)

181. **The Mahimnastava** edited, translated and pre-ented in illustrations by W. Norman Brown; Pub. American Institute of Indian Studies, Poona; 1965; P P 1-37+3+81 Illustrations; 10-00 (10 s \$ 1-50); Rev. V. M. Bedekar; **ABORI**, L. I-IV; 1969; 127-128; E. It is an illustrated de-luxe edition based on all available material. Its authorship cannot be decided. Its date has been pushed back to the early 9th c.

समस्त उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह एक चित्रित उत्तम संस्करण है। इस का कर्तृत्व स्थिर करना सम्भव नहीं है। इस की तिथि पीछे ९ वीं शती के पूर्वार्ध तक ले जाई गई है।

सुधीर कुमार गुप्त

१८२. श्रीकनकधारास्तवनम्; ले० वेदान्त-देशिकः; सम्पादकः कृष्णमूर्ति; भूमिकाले० वीर-राघवाचार्य; समीक्षा; सागरिका, ६-२; २०२७ वि.; २१६; सं. । श्रृंगलतेलुगुभाषानुवादसंवलितार्गदं स्तोत्रं वेदान्तदेशिकस्य काव्यकलाया अनुत्तम-निदर्शनं विद्यते । भूमिकायां वीरराघवानाथेण मस्कृतस्तोत्रसाहित्यस्य सामान्यपरिचयेन वेदान्त-देशिकस्य चरित्रं कृतित्वमपि च निरूपितम् ।

श्रृंगेजी तथा तेलुगु-शैली भाषाओं में प्रनूदित यह वेदान्तदेशिक का स्तोत्र काव्यकला का प्रत्युत्तम निदर्शन है। भूमिका में वीरराघवाचार्य ने मस्कृत स्तोत्र साहित्य के सामान्य परिचय के साथ वेदान्त-देशिक का चरित्र प्रौर कृतित्व भी निरूपित किया है।

सरस श्रृंगेजी अनुवाद से विभूषित यह रचना वेदान्तदेशिक की भावप्रचलता को स्पष्टतः प्रस्तुत करती है।

प्रभाकर शर्मा

१८४. तिवमहिम्नः स्तोत्रम्; सम्पादकः प्रका-शकश्च पी० कृष्णमूर्तिः, ५६७० सेण्टमारी रोड, सिकन्दराबाद (आ० प्र०); भूमिकाले०-वेंकटरावः; समीक्षा; सागरिका, ६.२; २०२७ वि.; २१६-२१६; सं. । स्तोत्रमिदं तेलुगुलिप्यां सरलसरसांग्ला-नुवादसहितं प्रकाशयतामुपनीतम् । श्रृंगेव सौंदर्यलहरी, भजगोविन्दम्, मुकुन्दमाला—आद्यशंकराचार्यविर-चितानि त्रीण्यपि स्तोत्राणि श्रृंग्लानुवादसहितानि प्रकाशितानि ।

यह स्तोत्र तेलुगु लिपि में सरल व सरस श्रृंगेजी अनुवाद सहित प्रकाशित किया गया है। आद्य शंकराचार्यकृत सौंदर्यलहरी, भज गोविन्दम् तथा मुकुन्दमाला—इन तीनों स्तोत्रों को भी यहाँ श्रृंगेजी अनुवाद सहित प्रकाशित किया गया है।

प्रभाकर शर्मा

गद्य (Prose)

१८५. टालस्टायक्यास्तप्तकम्; अनुवादकः भागीरथप्रसादत्रिपाठी; प्र० चोचन्वाविद्याभवनम्; १९७०; ३-५०; समीक्षा; सागरिका, ६.२; २०२७ वि.; २१७; सं. । पुस्तकेऽस्मिन् विद्वत्पिस्तातक्या-कारस्य टालस्टायस्य सप्त प्रेरणाप्रदाः कथाः सुरगिराभूय संकलिताः ।

२१६; सं० । ग्रन्थेऽस्मिन् शोधपूर्णाः संस्कृतछात्राणां कृते त्वतीवोपयोगार्हाः ६८ निबन्धाः सन्ति ।

इस ग्रन्थ में शोधपूर्ण और संस्कृत के छात्रों के लिए परम उपयोगी ६८ निबन्ध हैं ।

प्रभाकर शर्मा

१८७. दण्डिविरचिते दशकुमारचरिते पूर्वपीठिकायां प्रथम उच्छ्वास्तः; लेखक सम्पादकानुवादक सुवीरकुमार गुप्त, प्रवाचक (रीडर), सं० वि०, राज० वि० वि०, जयपुर (राज०); प्र० भामशशा०, नूतन संस्करण; १२ + २ + ८६ + २७ + ४२अ + ४; अजिल्द ३-८०; सजिल्द ४-६०; सं०, हि० । यह विस्तृत भूमिका, मूलपाठ, पाठभेद, संक्षिप्त संस्कृत-व्याख्यान, शाब्दिक हिन्दी अनुवाद, व्याख्यात्मक और व्याकरणविषयक टिप्पणियों, हिन्दी अनुवाद सहित भट्ट नारायणकृत पूर्ववृत्तान्त, शब्दकोष और अनुक्रमणिकाओं से युक्त संस्करण है । भूमिका में गद्य और गद्यकाव्य के लक्षण, भेद, इतिहास, दण्डों की समस्या, जीवन, तियि, रचनाओं, शैली, गुण, दोष, कहानीकला, चरित्रचित्रण, समाज-चित्रण, तुलनात्मक अध्ययन, वर्णनप्रतिभा आदि का विवेचन किया गया है ।

अनिल कुमार गुप्त

पाठ और पाठभेदों से युक्त सम्पादन है । भूमिका में गद्य, गद्यकाव्य, दण्डों, उस की समस्या, तियि, रचनाओं, शैली, गुणदोष, कहानीकला, चरित्रचित्रण, समाजचित्रण, तुलनात्मक अध्ययन और वर्णन प्रतिभा आदि का विवेचन किया गया है । मूलपाठ और अनुवाद में संदर्भों पर क्रमिक संख्या और उन के विषय के द्योतक शीर्षक कोष्ठों में दिए गए हैं ।

अनिल कुमार गुप्त

१८८. वाणविरचितायां कादम्बर्यां शुकनासोपदेशः; लेखक, सम्पादक तथा अनुवादक सुवीरकुमार गुप्त, प्रवाचक (रीडर), सं० वि०, राज० वि० वि०, जयपुर (राज०); १९६७; १६ + २ + ११५ + ४४ + ५२ अ; अजिल्द ४-००; सजिल्द ४-८०; सं०, हि० । यह कादम्बर्यी के शुकनासोपदेश का विस्तृत भूमिका, मूलपाठ, पाठभेद, विस्तृत अभिनव अनिला संस्कृत टीका, शाब्दिक हिन्दी अनुवाद, भाव, व्याख्यात्मक और व्याकरणविषयक विस्तृत टिप्पणियों, अलङ्कारशास्त्र के प्रारम्भिक परिचय और टिप्पणियां में व्याख्यात पदों की अनुक्रमणिका से युक्त सम्पादन है । आरम्भ में संस्कृत और हिन्दी के विषयों की अनुक्रमणिकाएँ हैं । मूल और अनुवाद में संदर्भों के विषय के परिचायक उपयुक्त शीर्षक

राष्ट्रप्रतिनिधियों का जम्बूद्वीपवासियों बन्धुत्वबंधनाय
निर्गया इत्येते विषया अत्र प्रस्तुताः सन्ति ।

चीनों के आक्रमण को आधार बना कर रचे गए इन नाटक का यह भात हृदयों का तीक्ष्ण
ग्रक है । संसद् में विदेश नीति पर विचार,
चीनियों द्वारा आक्रमण के लिए निर्गय, उन को
आमुरी योजना, सैनिक शक्ति को बढ़ाने के लिए
अनिवार्य सैनिक शिक्षा के प्रस्ताव की स्वीकृति,
सिंहपुर के सम्मेलन में विभिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधि-
यों का जम्बूद्वीप (भारत)वासियों से भाईचारा
बढ़ाने का निर्णय—ये विषय यहाँ प्रस्तुत किए
गए हैं ।

सुधीर कुमार गुप्त

का रामसभासिद्धान्त नाटक चन्द्रलोक और पृथिवी-
लोक के रामकालीन सम्बन्धों और रामकथा का
नाटकीय निवन्धन प्रस्तुत करता है । चन्द्रलोक
का वर्णन माण्डव्यसंहितागुप्तरी दिया गया है ।
ग्रन्थ का एक ही हल्ले है, जिस का यहाँ विवरण
दिया गया है ।

सुधीर कुमार गुप्त

१६३. शङ्करकालीनरत्नसंवादननाटकम्—
शाहमहाराज प्रणीतम्; सम्पादक एन. विश्व-
नाथन, लेखुगुपडित, समला.; जतंससप्तमला.,
२४.२; १६७१; १०१-१२०; सं. । नाटकमिदं
विगतितमांकात् सप्येणु प्रकाशं भवति । अस्मिन्नंके
चेद पूर्तिमगात् । इदं त्वागविनोदचिप्रवन्धेऽद-

८१. कालिदास पर ऋग्वेद का प्रभाव; निगम शर्मा; गुप्त., २३.१-२; ६-१०. १९७०; ८०-८५; हि.।

१९७ कालिद सीयं काव्यजगत्; राधावल्लभ त्रिपाठी शोधदात्र, सागर वि.वि.; सागरिका, ६.२; १४३-१५१; सं.। लेखेऽस्मिन् लेखेकेन कालिदासस्य सर्वा रचना विषयोक्त्य समालोचितं, तत्र च महाकवे वादिदस्य शृंगारचित्रणं, विप्रलम्भवर्णनायामप्युपमाविच्छित्तिः, आनन्दमयं सीहार्दमयं च वस्तुवर्णनं, भौतिकवस्तुवस्तुतम्यानिर्वचनीयपदार्थस्थ 'प्रेम' इति सविशेषमुल्लेखनीयानि।

इस लेख में लेखक ने कालिदास के सब ग्रन्थों का समालोचन प्रस्तुत किया है। वहाँ महाकवि कालिदास के शृंगार का चित्रण, विप्रलम्भ के वर्णन में भी उपमा की छटा, आनन्द और सीहार्द पूर्ण वस्तुओं का वर्णन, भौतिक वस्तुओं में श्रोत-प्रोत अव्याच्येय भाव ही प्रेम है ये विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रभाकर शर्मा

medallion and the reflection of Tamil invasion of Ceylon in 43 B. C. in Kālidāsa's statement of Aja inspiring fear in the heart of the King of Lañkā indicate that "there are greater possibilities of Kālidāsa having flourished in the first century B. C. than in the 4th Century A. D."

लेखक कालिदास की ५८ ई. पू. और ४थी ई. शती की तिथियों के पक्ष और विपक्ष में युक्तियों का विश्लेषण करते हैं, ४ थी शती ई. की तिथि का खण्डन करते हैं और प्रथम शती ई. पू. का समर्थन करते हैं। धेरावती के आधार पर गर्द-भिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य की सत्ता मानते हैं। इस वृत्त की पुष्टि पुराणों से और कुछ अभिलेखों और मुद्रालेखों की साक्षियों से होती है। यह प्रमाणित नहीं किया गया है कि विक्रम संवत् विक्रमादित्य ने प्रवृत्त नहीं किया था। हूण नाम कालिदास ने चोरकाव्यों से लिया है। अग्नि-मित्र के शासन का गहरा ज्ञान, उज्जयिनी राज्य के लिए अच्युती नाम, अच्युती में उदयन की कथाओं की लोकप्रियता, जिनालेखीय गद्य की अपेक्षा उन के

poet's embassy to Kuntala is the earliest one. Various explanations offered by scholars of this tradition have been discussed and rejected by the author. He surmises the story of Kālidāsa for some-time in Vidarbha providing him an opportunity to see Rāmgiri enabling him to write the Meghadūtam and the SB. He, therefore, feels that Kālidāsa lived in about 400 A. D.

प्रभाकर शर्मा

लेखक पूर्व राष्ट्रकूटों की उन के दानपत्रों के आधार पर खोज का निर्देश करते हैं। वे कुन्तल में राज्य करते थे। यह दक्षिणी मराठा देश था। वाकाटक विदर्भ में राज्य करते थे। पूर्वराष्ट्रकूट राजा देवराज और वाकाटक राजा प्रवरसेन चन्द्रगुप्त २ के समकालीन थे। कालिदास को कुन्तलनाभा में दूत बना कर भेजा गया था। उस ने कुन्तलेश्वरशैल्य (कुदो.) की रचना की। उस ने राजा प्रवरसेन २ के लिए सेवुवन्ध रचा। कुछ साहित्य शास्त्र के ग्रन्थों ने कुदो. से एक पत्र का निर्देश किया है जो कालिदास के शैल्य काल की एक चटना का वर्णन करता है। कवि के कुन्तल में शैल्य को कथा सत्य से पुरानी है। कालिदास ने विद्वानों द्वारा शत परम्परा के विभिन्न ध्यानधानों का विचार कर सञ्चन किया है। वे संभावना करते हैं कि कालिदास कुछ समय विदर्भ में रहे होंगे, जहाँ उन्हें रामगिरि को देखने और मेघदूत और सेवुवन्ध विचारने का अवसर मिला। यद्यपि उनका विचार है कि कालिदास ४०० ई. के आसपास रहे होंगे।

it was pointed out that K. has taken the basic idea of RS. from the Viṣṇudharmottarapurāṇa (VDP). The author here compares some verses of the later work (VDP) with the relevant verses of RS. and concludes a close affinity /similarity between the two. K., therefore, belongs to the Gupta age when the VDP was composed. This purāṇa specifically mentions Apabhraṃśa music of endless variety. Apabhraṃśa could be used in dramas by children, women, low people and eunuchs. K., therefore, knew Apabhraṃśa and used it in his Vikramorvaśiyam. This VDP. also helps us to solve the mystery of the names of K. and Vikrama by observing that proper names of some men ended in 'dāsa' and those of kings in 'Vikrama'. The word 'dāsa' and 'Vikrama', therefore, do not lead to any definite information.

यह लेख लेखक के कालिदास (का.) के ऋतु-संहार (ऋतं.) के स्रोत पर पूर्वतर लेख (जगन्भास्करिड., २२.१-२: ११.१९६५—२.१९६६). के क्रम में है। उस में यह इंगित किया गया था कि का. ने ऋतं. का मूल विचार विष्णुधर्मोत्तरपुराण (विष्णु.) से लिया है। लेखक ने यहाँ विष्णु. के कुछ पद्यों की ऋतं. के सम्बन्ध पद्यों से तुलना की है और दोनों के बीच घनिष्ट सम्बन्ध/साम्य का निष्कर्ष निकाला है। अतः का. गुप्त काल में हुए जब विष्णु. की रचना हुई। यह पुराण अनन्त प्रकार के आसन्न संगीत का विशेष उल्लेख करता है। नाटकों में वन्दे, स्त्रियाँ, नौप गुण और नपुंसक आसन्न का प्रयोग कर सकते थे। अतः का. अपभ्रंश जानने से दोन कर्मों से रच

२०३. विद्वसालभञ्जिकेतील ऐतिहासिक समस्या; वि. वा. मिरासी; नभा., ४.१९७१; १-६; न. १। ह्या लेखालेखकाने बुद्धप्रकाशाच्या मलास (डॉ. मिरासी फॅलिसिटेशन हॉस्पिटल पा. ४०६ व पुढे) विरोध केला आहे. बुद्धप्रकाशाच्या मते वीरपाल म्हणजे राष्ट्रकूट नृपति वडिंग, तृतीय अमोघवर्ष नाही. लेखकाच्या मते विद्वसालभञ्जिकेतील इयादक ऐतिहासिक असावे. वीरपाल म्हणजेच कुन्तलाधिपति वडिंग अमोघवर्ष असे मिरासीचे मत आहे.

इस लेख में लेखक ने बुद्धप्रकाश के मत का (देखिये डॉ. मिरासी फॅलिसिटेशन हॉस्पिटल पा. ४०६ और आगे) खंडन किया है। बुद्धप्रकाश के मत से वीरपाल और राष्ट्रकूट नृपति वडिंग, तृतीय अमोघवर्ष एक नहीं। लेखक के मतानुसार वीरपाल ही कुन्तलाधिपति वडिंग अमोघवर्ष है।

यह मृच्छकटिक ही मूल चादत का पुनर्निर्मित रूप है। उपलब्ध चादत केरल के रंगमञ्च के उपयोग के अनुकूल डाला हुआ मूल चादत का संस्करण है।

सुधीर कुमार गुप्त

205 Sanskrit Place Names from Inscriptions : A. Scharpé, Gent-Amsterdam; Pradīdānam, 1968; 615-627; E. There is much inconsistency in the spellings of place names in epigraphical and archaeological literature. The location of their corresponding places is often vague and unreliable. Spellings adopted by the survey of India should be adopted. The paper records in alphabetical order a list of some words along with their sources, dates etc.

therefore, be interpreted other-wise. Just as the Saṅgamaṇiya gem brought the earlier two unions in the same way this time the gem brought out the events by its magical efficacy and Nārada appeared on the scene with Indra's anugraha. The poet's skill has effected this in a very clever way. If this interpretation is not done the Saṅgamaṇiya gem will become useless and inefficacious and the Muni's voice will become false.

की उपाधि के लिए स्वीकृत प्रबन्ध-भवभूति की नाट्यकला : प्रयोग और उपलब्धियाँ-का परिवर्तित और परिवर्धित रूपान्तर है। इस में छै अड्यायों में भवभूति के समय तथा जीवनी, उन के नाटकों का रचनाकाल, संस्कृत नाटकों के आधारभूत सिद्धान्त, भवभूति के पूर्ववर्ती नाटककार, महावीरचरित और उस के पाठ से सम्बन्धित समस्याएँ, नाटकों की वस्तु और उस का निर्वाह, राम का चरित्रचित्रण, प्रकृति

प्राचीन कामशास्त्र के ले. दत्तक के अनेक उद्धरणों का उल्लेख मिलता है, चूंकि वात्स्यायन ने भी दत्तक का उल्लेख किया है, अतः दत्तक वात्स्यायन से पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार हरिश्चन्द्र नामक वैद्य भी विवेचनीय है। इस प्रकार ले. ने चतुर्भाषी के रचनाकाल की पूर्वसीमा दत्तक के उद्धरणों के अनुसार तथा परवर्ती सीमा ग्यारहवीं शताब्दी में विद्यमान अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, कुन्तक आदि अलङ्कारशास्त्रियों के निर्देशानुसार निश्चित की है। अतः इस का रचनाकाल ५वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।

प्रभाकर शर्मा

और दक्षिण भारत के राज्यों के राजनीतिक संघर्षों के सम्बन्ध में अभिलेखों और अन्य स्रोतों की, उस के अपने ग्रन्थों में कथनों से पुष्ट साक्षियां सूचित करती हैं कि इन घटनाओं ने कवि के जीवन, कृतियों और राजभक्ति पर भारी प्रभाव डाला है। उस ने कन्नौज के राजा मिहिर भोज की सभा में अपना साहित्यिक जीवन आरम्भ किया। यहाँ उस ने युवराज महेन्द्रपाल को पढ़ाया, जिस के शासनकाल में कवि ने पहले बालरामायण और फिर कपूरमञ्जरी लिखीं। महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद वह राष्ट्रकूट राजा इन्द्र ३ के पास चला गया। यहाँ कवि ने बर्जा-रेड्डी प्रशस्तियां लिखीं।

भिखागी, तान्त्रिक, पुजारी, जुआरी, ज्योतिषी और वाराङ्गना आदि देश और समाज के लिए अभिशाप हैं। अकर्मण्य और हिसापरायण विद्यार्थी राष्ट्र का कल्याण और अभ्युदय नहीं कर सकता है। उसे बाह्य और आन्तरिक उन्नति के लिए कर्मठ, जिज्ञासु और शास्त्राध्ययन में दत्तचित्त होना चाहिए। वृद्ध-विवाह हास्य का जनक है—हेय है। बहुत सन्तति वाला महान् पापी है। शासन को सब के साथ न्याय करना चाहिए। तभी विश्वशान्ति हो सकेगी। उपयुक्त भावों को परखने पर क्षेमेन्द्र कट्टर भारतीय समाजवादी सिद्ध होते हैं।

214. Kavīndrācārya Saraswatī, A **Native of Mahārāṣṭra**; M. D. Paradkar, Univ. of Bombay; **UMCV**, 1970; 377-380; E. Kavīndrācārya was a learned Paṇḍita of the 17th century. He was well versed in Literature, Music, Astrology, Āyurveda, Darśanas, Veda, Kāvya, Nāṭaka and Alaṅkāra. He successfully led a deputation to Shah Jahan which earned him eulogies and congratulations. Some of his eulogies have been collected in Kavīndrācārya Saahaswatī, according to these collections of eulogies, lived on the banks of Godāvarī and was a resident of Mahārāṣṭra as is indicated by his use of spoken Marāṭhī words like चञ्चो, ढोल and वांव.

कवीन्द्राचार्य १७वीं शती का विज्ञ पण्डित था। वह साहित्य, संगीत, ज्योतिष, आयुर्वेद, दर्शन, वेद, काव्य, नाटक और अलंकार में प्रवीण था। वह साहजहां के पास एक सफल प्रतिनिधिमण्डल ले गया, जिस पर इन्हें प्रशस्तियां और बधाईयां मिलीं। उस की कुछ प्रशस्तियां कवीन्द्रचन्द्रोदय और कवीन्द्रचन्द्रिका में संकलित हैं। प्रशस्तियों के इन संग्रहों के अनुसार कुछ (ग्रॉफ़ेस्ट के मत में ५) कृतियों का ल० कवीन्द्राचार्य सरस्वती गोदावरी के तीर पर रहता था और महाराष्ट्र का निवासी था, जैसा उस के बोलचाल की मराठी के चञ्चो, ढोल

और वांव आदि शब्दों के प्रयोग से ज्ञात होता है। सुधीर कुमार गुप्त

२१५. रामकृष्ण कादम्ब—नवयुग के एक अज्ञात कवि तथा उन की अप्रकाशित रचनाएं; रमेशचन्द्र पुरोहित, सिन्दिया ग्रॉफ़िण्टल इंस्टिट्यूट, उज्जैन; यूरासंहिस., २; ७.१९६७; ७२-८२; हि.। रामकृष्ण कादम्ब अज्ञात कवि रहे हैं। ग्रॉफ़ेस्ट ने अपनी हले० सूची में इन की दो रचनाओं का नाम दिया है। कृष्णमाचारी आदि को इस कवि के विषय में ठीक ज्ञान नहीं है। इस की रचनाएं शक १७२५ से शक १७६२ के बीच की मिलती हैं। इन की रचनाओं की ऐतिहासिक आलोचना से भी ये १८-१९ वीं शती के सन्धिकाल के ठहरते हैं। इन की रचनाएं १. दत्तकोल्लास २. अदितिकुण्डलाहरण नाटक ३. पृथ्वीवृत्तम् ४. रामावयवमंजरी ५. चित्रशतक ६. नृसिंहविजयकाव्य ७. नैपथ्यचरित टीका ८. चम्पूभारतटीका—विषमपदवृत्ति ९. श्रीमद् भागवततात्पर्यमञ्जरी हले० में ही उपलब्ध हैं। एक दसवीं रचना 'कुशलवचरित नाटक' भी इन की मानी जा सकती है। लेख में इन सब रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। कुशलवचरित की अदितिकुण्डलाहरण से तुलना कर दोनों में साम्य के आधार पर दोनों को एक कवि की रचना माना है। अदितिकुण्डलाहरण का अधिक विस्तार से वर्णन है। यह रानी लक्ष्मीबाई की याद दिला देता है। दत्तकोल्लास संभवतः डलहौजी के दत्तक पुत्रों को अमान्य करने के विरोध में लिखा गया था।

अनिल कुमार गुप्त

२१६. आशुकवि पं० श्री हरिशास्त्री जी और उन का काव्य सौष्ठव; नारायण शास्त्री कांकर; विभ०, ६.३; १९७० (२०२७ वि०); ७५-८०; हि०। कवि हरि का संक्षिप्त जीवनवृत्त दे कर उन की संस्कृत और हिन्दी की रचनाओं का परिचय

दिया गया है। कुछ फुटकर पद्यों द्वारा उन का काव्य-सांख्य निरूपित किया गया है।

अनिल कुमार गुप्त

गीतिकाव्य (Lyric Poetry)

२१७. अनन्तकालस्य सांस्कृतिकपृष्ठभूमिः; अजमलशास्त्री, प्रवाचकः; नागपुर वि. वि., नागपुरम्; भागधम्, ४;५.१९७०; ८४-९५; सं० । संस्कृतगीतिकविषु चत्वारमहकस्याद्वितीयं स्थानम् । अस्य मुक्तका. स्वेष्टु प्रख्यापयमाना. सन्ति । अयं काव्यमारी अक्षय्य प्रतिभाति । अस्य समवदचाष्टम-

संस्करण मिलते हैं जिन में इलोको की संख्या और क्रम समान नहीं हैं। यह शतक नागरिक संस्कृति की उत्पत्ति है। यह सामान्य जन द्वारा अनुभूत शृंगार भावनाओं और स्थितियों का समस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत करता है। नैतिक दृष्टि से अमरक शतक उच्च धरातल पर है। यहाँ केवल प्रेम के जीवन का शब्दचित्र विषय होने से स्त्रियों के परिवान, आभूषण, प्रसाधन, केयविन्यास जैसे विषय यत्रतत्र बिखरे हुए हैं। तत्कालीन समाज के संघटन पर विशेष जानकारी नहीं मिलती है। शिकार प्रमुख व्यवसाय था। तीर्थयात्रा लोकप्रिय थी।

गोविन्दस्य चादर्शभूतास्ति । अत्र पद्यानि सुकोमलानि, प्रसादगुणगुम्फितानि, प्रणयरससिक्तानि, सार्थकपद-युक्तानि छन्दोलयानुसारीणि सन्ति । आर्यासप्त-शत्याः साफल्ये हेतुत्रयं विद्यते—१. व्यञ्जकपद्धत्या-श्रयणम् २. असमासभूयिष्ठत्वम् ३. अनुप्रासिक विन्यासश्चेति । अस्य काव्यस्य वैशिष्ट्याकलनेन रसं प्रत्याग्रह इत्यादयः सप्त सिद्धान्ताः निर्धारयितुं शक्यन्ते । लेखकेन गीतगोविन्देन सहात्रास्या. आर्या-सप्तशत्यास्तुलना सविशेषं विहिता । आर्यासप्तशत्याः क्रमे लिखिता विश्वेश्वरपण्डितस्याार्यासप्तशती गोवर्ध-नस्य रचनायाः तुला नाधिरोहति । हिन्दीकविग्रहाी अपि गोवर्धनस्य ऋणी ।

आर्यासप्तशती नाम से दो काव्य प्रसिद्ध हैं— एक गोवर्धनाचार्य द्वारा रचित और दूसरा विश्वेश्वर पण्डित द्वारा रचित । मान्यता है कि गोवर्धनाचार्य ११ वीं शती ईसा में बंगाल में लक्ष्मणसेन की सभा में था । आर्यासप्तशती की यह विशेषता है कि यह सप्तशती एक ही कवि का योजनाबद्ध निर्माण है । आर्या जैसे छोटे छन्द में प्राकृत शैली पर स्वाभाविक सौन्दर्य से युक्त निर्माण संस्कृत साहित्य में अद्वितीय है । पश्चात्य साहित्य में जो गीतिकाव्य है वैसी काव्यशैली संस्कृत में नहीं है । फिर भी संस्कृत साहित्य के कुछ ग्रन्थों की पश्चात्य काव्यों के आदर्शों पर आलोचना की गई है । उन में गोवर्धन की आर्यासप्तशती परम सफल और गीतगोविन्द का भी आदर्श है । यहां पद्य सुकोमल, प्रसादगुण, शृंगार रस और सार्थक पदों से युक्त छन्द के लयानुसार हैं । आर्यासप्तशती की सफलता में तीन हेतु हैं— व्यञ्जक शैली का प्रयोग २. समासों का अभाव और अनुप्रास का प्रयोग । इस काव्य के वैशिष्ट्य को आंकने पर रस के प्रति आग्रह आदि सात सिद्धान्त निकलते हैं । ले० ने यहां गीतगोविन्द के साथ भी आर्यासप्तशती की तुलना की है । आर्या-सप्तशती की परम्परा में लिखी विश्वेश्वर पण्डित की आर्यासप्तशती गोवर्धन की रचना के तुल्य नहीं है ।

हिन्दी का कवि विद्गारो भी आर्यासप्तशती (गोवर्धन) का ऋणी है ।

मणिसंकर शुक्ल, अनिल कुमार गुप्त

२१६. कतिपयाधुनिकसंस्कृतगीतिकारा ; चन्द्र-देवराय , प्राध्यापकः, संस्कृत-प्राकृत-विभागः, एच० डी० जेन कालेजः, आरा; माघधर्मः ४; ५ १२७०; ११०-११२; सं० । आधुनिककालेऽपि केचन गीति-काव्यकाराः सन्ति । तत्र सी० डी० देशमुख-वे० राघव-चन्द्रधरशर्मा-जानकीवल्लभ - प्रभातमिश्राणां कृतीनां गीतिकाव्यगुणानां चात्र परिचयो दत्तः । देशमुखः सव्यु. परिणये मंगलाभिनवेशं दर्शयति । राघवस्य 'मेधाविनि तन्तुत्रये' इति अनुवादकृतौ मौलिकता विद्यते । चन्द्रधरशर्मा गालिवकवितानां संस्कृतरूपान्तरं प्रस्तूय एकां नवां परम्परामुद्घाटित-वान् । श्रद्धाभरणे खण्डकाव्ये मानवश्रद्धेडा मानव-चैतन्यविषयवृत्तीनां त्रीणि प्रतीकानि सन्ति । स्तोत्रत्रयीयां काव्यतत्त्वैः सह संगीततत्त्वान्यपि सन्ति । जानकीवल्लभः हिन्दीसंस्कृतयोः प्रभातमिश्रस्य संस्कृतस्य गीतकारो ।

आधुनिक काल में भी कुछ गीतिकाव्य लेखक हैं । उन में सी. डी. देशमुख, वे. राघव, चन्द्रधर शर्मा, जानकीवल्लभ और प्रभातमिश्र का रचनाओं और गीतिकाव्यगुणों का यद्वा परिचय दिया गया है । देशमुख मित्र के विवाह में मंगल की कामना को अभिव्यक्त करते हैं । राघव के 'मेधावी जुलाहा' अनुवाद में मौलिकता है । चन्द्रधर शर्मा ने गालिव की कविताओं का संस्कृत में अनुवाद कर के एक नई परम्परा डाली है । श्रद्धाभरण खण्डकाव्य में मानव, श्रद्धा और इडा मानव, चैतन्य और विषय-वृत्तियों की तीन प्रतीकें हैं । स्तोत्रत्रयी में काव्य-तत्त्वों के साथ संगीततत्त्व भी हैं । जानकीवल्लभ हिन्दी और संस्कृत के तथा प्रभातमिश्र संस्कृत के गीतिकार हैं ।

मणिसंकर शुक्ल, अनिल कुमार गुप्त

२२०. गीतगोविन्दम्: एकं दार्शनिकं मनोवैज्ञानिकञ्च विश्लेषणम्; दशरथसिंहः, प्राध्यापको दर्शनविभागः, एच० डी० जैन कालेजः, आरा; मागधम्, ४; ५.१९७०; ७८-८३; सं. । गीतगोविन्दमूनतः प्रबन्धकाव्यमस्ति यस्मिन् राधाकृष्णयोर्मिथ्यमेव प्रेमलीलायाः सरसवर्णनमुपन्यस्तम् । कविः कामजनितमुखस्य ईश्वरभक्त्या सामञ्जस्यं स्थापयति । स ईश्वरमेव परमसत्तां स्वीकरोति । ईश्वरः परमदयानुर्वायिप्रियदच । आदशंपुरुषः कृष्णोऽपि एनादृश एव । जयदेवः ईश्वरप्राप्तौ वासनात्मकप्रतिमानां तद्विधायिणां वर्णनं च साधनं स्वीकृतवान् । ईश्वरसम्बन्धिनीनां प्रतिमानां मुह्यतो लेखेऽस्मिन् व्याख्यानेषु त्रिषु स्रोपानेषु स्थितिरस्ति । एभिः स्रोपानैरन्तिमरूपेण भक्तस्य ध्यानमीश्वर एव लग्नं भवति । पूर्णं भवतेः पूर्णता । अतएव ईश्वरभक्तये कामप्रतिमाप्रयोग उचितगोच स्वीकृतः जयदेवेन । निरालम्ब आधुनिकतानुसारमणि विवेचनं कृतमस्ति । जयदेवस्य दर्शनाय स 'ईश्वरोन्मुखमुखावाद' इति नाम

२२१. गीतिपरम्परायां रामगीतगोविन्दम्; कमलाकान्त उपाध्यायः; मागधम्, ४; ५.१९७०; १००-१०६; सं० । रागरागिन्यादिविशिष्टसंगीतस्य व्रजभूत उत्तमो वेदः । तत इयं संगीतपरम्परा सततं प्रवहति । तस्मात् संगीतादेव गीतिकाव्यम् विकसितम् । तत्र द्वादशत्रयोदशस्रष्टशतकयोर्मध्ये मैथिलः कश्चिद् द्वितीयो जयदेवः अन्याभी रचनाभिः सह रामगीतगोविन्दं नाम रमणीयं गीतिकाव्यं रचितवान् । इदं पट्टसर्गत्मकं काव्यमस्ति । अत्र चतुर्विंशतिः गीतानि सन्ति । ग्रन्थेऽस्मिन् रामायणवदवतारहेतुं प्रतिपाद्य कविः रामजन्मादारम्य आराज्यतिलकं कथां उपनिबध्नाति । प्रसङ्गसंगत्यं मध्ये मध्ये गीतगोविन्दवत् महाकविर्विभिन्नेषु मालववसन्त-गुर्जरादिषु राजेषु बहूनि रम्याणि पद्यानि प्रायुञ्जत ।

राग-रागिनियों से युक्त संगीत का वीज लोत वेद ही है । जहाँ से संगीत को यह परम्परा सतत चह रही है । इस संगीत से ही गीतिकाव्य का

be reminding the later to mind his own business. Verse 746 (740) refers to the similitude of a land-sighting bird, returning to the ship's mast after hovering around in all directions. This similitude is based on India's ancient contacts with Ceylon through sea route.

लेख में गाथासप्तशती के दो पद्यों-१६१ और ७४० (७४६) पर विचार किया गया है। पद्य १६१ में प्रपालिका का यात्री के प्रति शृंगार-भाव द्योतन कल्पित करना आवश्यक नहीं। पहली जल के अनावश्यक व्यय को बचाने में सावधान रही हो सकती है अथवा वह दूसरे को अपने काम का ध्यान करने की याद दिला रही हो सकती है। पद्य ७४६ (७४०) में भूमि को खोजने वाले और सब दिशाओं में चारों ओर मंडरा कर जहाज के कूपदण्ड (-मस्तूल) पर लौट आने वाले पक्षी की उपमा है। यह उपमा समुद्र मार्ग से भारत के लंका से प्राचीन सम्पर्कों पर आश्रित है।

सुधीर कुमार गुप्त

२२३. 'राष्ट्रवाणी' तथा तस्या अमरगायकः कविः 'प्रणयी'; राजारामजैनः; मागधम्, ४; ५. १९७०; ६६-६६; सं०। गीतगोविन्दपरम्पराया निर्वाहो 'राष्ट्रवाण्या' अमरगायकेन रामनाथपाठक-प्रणयिना सुन्दररूपेण कृतः। राष्ट्रवाण्याः सर्वाणि गीतानि षोडशमात्रासु चतुर्दशमात्रासु च निवृद्धानि सन्ति। वसन्तगुर्जरीरागादौ च मधुरतया गीयन्ते। सहजरूपेण संगीतस्य समस्ता विशेषता राष्ट्रवाण्यां समाहिताः सन्ति। सर्वाणि गीतानि आत्मनिष्ठता-स्वप्ति भावप्रधानानि सन्ति। अत्र प्रत्येकं गीतं स्वतन्त्रमस्ति तथा व्यक्तित्वप्रधानं वर्तते। कविना हिन्दीगीतवत् प्रत्येकगीते रससंचाराय ध्रुवपदनियो-जनं व्यवधायि। सर्वेषां गीतानां सम्बन्धः आधुनिक जीवनस्य समस्याभिः सह विद्यते। कविः राष्ट्रस्य समाजस्य समस्यानां वैयक्तिकसमस्यानाञ्च समा-धानं गीतेषु प्रस्तुतवान्। अत्र भारतीयसंस्कृतेः समस्तान्धुपादानान्येकत्रीकृतानि। भारतस्य पवित्र-

ताया जयघोषः, भौगोलिकसीमाया विशालता, गंगा-गीता दानवीर-राष्ट्रोद्धारकनायकादीनां, कालिदास-तुलसीदासादिकविविलासानां च स्मरणं विहितानि। वर्तमाने काले द्वित्रेषु संस्कृतगीतिकविषु कवेः प्रणयिनः स्थानं कोमलकान्तपदावलीनामाधुनीतकार-रूपेण मूर्धन्यमस्ति।

गीतगोविन्द की परम्परा का निवाह राष्ट्रवाणी के अमर गायक रामनाथ पाठक प्रणयी ने सुन्दर रूप में किया है। राष्ट्रवाणी के सब गीत १६ और १४ मात्राओं में निवृद्ध हैं और वसन्त और गुर्जरी आदि रागों में मधुरता से गाए जाते हैं। स्वाभाविक रूप में ही संगीत की सब विशेषताएं राष्ट्रवाणी में सूंथ दी गई हैं। आत्मनिष्ठताओं के होने पर भी सब गीत भावप्रधान हैं। यहाँ प्रत्येक गीत स्वतन्त्र और भावप्रधान है। कवि ने हिन्दी के गीतों के समान प्रत्येक गीत में रस डालने के लिए ध्रुवपद का प्रयोग किया है। सब गीतों का सम्बन्ध आधुनिक जीवन की समस्याओं से है। कवि ने राष्ट्र, समाज और व्यक्ति की समस्याओं का समाधान गीतों में दिया है। यहाँ भारतीय संस्कृति के सब उपादान इकट्ठे कर दिए गए हैं। भारत की पवित्रता का जयघोष, भौगोलिक सीमा की विशालता, गंगा, गीता, दानवीर और राष्ट्र के उद्धारक नेता आदि का, कालिदास और तुलसीदास आदि कवियों के विलासों का भी स्मरण किया गया है। आजकल के दो तीन संस्कृत के गीतिकवियों में प्रणयी कवि का स्थान कोमल और सुन्दर पदावलियों के आधुनीतकार के रूप में मूर्धन्य है।

मणिसंकर शुक्ल, अनिल कुमार गुप्त

२२४. संस्कृतगीतिकाच्ययुः एकं पर्यालोचनम्; रञ्जनमूरिदेव, पाटलिपुत्रम्; मागधम्, ४; ५. १९७०; ६५-७१; सं०। नेतद्वचनमुचितं यदावुनिकैर्धै स्वोत्तमनिष्ठ-नेयत्व-स्वतःस्फुरित-सहजानुभूतित्वादि-गुणसंबलितानां गीतिकाव्यसंज्ञितानां रचनानां संस्कृतसाहित्ये सर्वथा नैर्धन्यमस्तीति। लेखकः

अन्येषां प्रभावः, संस्कृतगीतिकाव्यस्य प्रदानम्, पञ्चमे संस्कृतेः परिभाषा, संस्कृतगीतिकाव्यस्य सांस्कृतिक विवेचनमिति बहवो विषयाः सोदाहरणं सप्रमाणं च परिशीलिताः । ग्रन्थान्ते पञ्चसु परिशिष्टेषु अनुचिन्तने समागतग्रन्थतत्काराणां, समाहितानां काव्यकलात्मकपारिभाषिकशब्दानां, व्यक्ति-देवतानां, देशनगरग्रामवनपर्वतनदीनाम्नां सांस्कृतिक-शब्दानां च तालिकाः प्रक्ताः सन्ति ।

इस में पांच अध्याय हैं । पहले में गीतिकाव्य के स्वरूप, तत्त्व और भेद, दूसरे में सं. गीतिकाव्य (गीका.) की उत्पत्ति, ऋ. से गीतगोविन्द तक विकास, तीसरे में प्रमुख नाटकों, स्तोत्रों, मेघदूत, पार्श्वाम्युदय, अमरक शतक, गीतगोविन्द, रामगीत-गोविन्द, गीतिगिरीश, गीतवीतराग इन के काव्य-मूल्य और गीतितत्त्व, चौथे में वाक् की उत्पत्ति, सं. गीका. के आदान का विश्लेषण, उस पर थेर-थेरो गायत्रियों का और अज्जालग के प्रभाव, मेघदूत आदि पर दूसरों का प्रभाव सं. गीका. का प्रदान, पांचवें में संस्कृति की परिभाषा और सं. गीका. का विवेचन ऐसे बहुत से विषयों का उदाहरण सहित निरूपण किया गया है । ग्रन्थ के अन्त में पांच परिशिष्टों में उपयुक्त अध्ययन में आए ग्रन्थ, ग्रन्थकार, काव्य और कला विषयक परिभाषाओं, व्यक्ति, देवता, देश, नगर, ग्राम, वन, पर्वत और नदियों के नाम और सांस्कृतिक शब्दों की तालिकाएँ दी गई हैं ।

सुधीर कुमार गुप्त

सामान्य अध्ययन (General Study)

२२७. संस्कृत भाषा और साहित्य को आर्य-समाज की देन; भवानीलालभारतीय, मन्त्री आर्य प्रतिनिधिसभा, राज., प्राध्यापक हिन्दी वि., राजकीय कालिज, द्रजमेर; दकास्मा., १९७०; ३१-३३; हि. । इस लघु लेख में आर्यसमाज के प्रवर्तक दयानन्द और विश्वेश्वर की कुछ संस्कृत रचनाओं के नाम दिए हैं ।

अनिल कुमार गुप्त

२२८. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (द्वितीय परिवर्धित संस्करण प्रथम भाग); रामजी उपाध्याय; प्र. रामनारायणलाल बेनी माधव, इलाहाबाद; १२-००; हि.; समीक्षा; सागरिका, ६.२; २०२७ वि.; २१५; सं. । हिन्दीभाषायां संस्कृतसाहित्येतिहासग्रन्थानां नास्वभावः, किन्तु प्रकृतप्रवन्धे कानिचिद् वैशिष्ट्यानि समुल्लसन्ति ।

हिन्दी भाषा में संस्कृत साहित्य के इतिहास ग्रन्थों का अभाव नहीं है तथापि इस ग्रन्थ में कुछ विशेषताएँ हैं ।

प्रभाकर शर्मा

२२९. संस्कृतसाहित्येतिहासे नामसाम्यस्य समस्या; सीताराम दांतरे; सागरिका, ६.२; २०६-२१३; सं. । संस्कृतसाहित्येतिहासानुशिलनेन ज्ञायते-यद् बहवः शब्दाः समानाभिधाः सन्ति । लेखेऽस्मिन् एतस्य कारणानि प्रभावाः समाधानोपाया निदर्शन-पुरस्सरं विवेचिताः सन्ति । निदर्शनानि च लेखकेन स्वैयशोधप्रवन्धे विवेचिथान्येवोपस्थापितानि ।

सं० साहित्य के इतिहास का अनुशीलन करने पर यह मालूम होता है कि बहुत से कवि समान नामधारी हैं । इस लेख में इस के कारण, प्रभाव, समाधान के उपाय, निदर्शनपूर्वक विवेचित किए गए हैं । लेखक ने अपने शोधप्रवन्ध में विवेचित निदर्शनों को ही उद्धृत किया है ।

प्रभाकर शर्मा

२३०. सप्तावकीयम्; नेमिचन्द्र शास्त्री, आर्य; मागधम्, ४; ५.१९७०; ११३-११८; सं. । अत्र मगधविश्वविद्यालयस्य आरास्थ-जैनकालिज-संस्कृत-प्राकृतभागे विविधैर्जनैः कृतस्य शोधकार्यस्य विवरणं प्रक्तमस्ति ।

इस में मगध वि.वि. के जैन कालिज आर्य के सं. और प्राकृत भाग में अनेक व्यक्तियों द्वारा किए गए शोध का विवरण दिया गया है ।

मरिशंकर शुक्ल, अनिल कुमार गुप्त

of poetry and then of arts like Music and painting. It was an objective concept from Bharata to Bhāmaha. It assumed a purely subjective character from Abhinavagupta to Viśvanātha under the influence of Śaiva Advaita philosophy. In this form Rasa is a state of transcendental joy achieved by means of art through the medium of sublimated emotions. The author now examines the relation between an emotional experience and an aesthetic experience, the essential nature of the aesthetic experience and the nature of aesthetic pleasure (which is the essence of aesthetic experience) and finally concludes that the aesthetic experience is "a complex experience, pleasant in essence, in which the emotional and intellectual elements are blended in a subtle harmony. It has a separate identity because it is more refined than the emotional pleasure and more colourful than the emotional pleasure."

ले० ने सौन्दर्यानुभूति के स्वरूप का विवेचन किया है, जिसे भारत में रस कहा गया है, जो मूलतः नाटक का आधारभूत गुण था, फिर काव्य का और फिर संगीत और चित्रकला सदृश कलाओं का। भरत से भामह तक वस्तुनिष्ठ इस ने जैव अद्वैत दर्शन के प्रभाव से अभिनव गुप्त से विश्वनाथ तक आत्मनिष्ठ रूप प्राप्त कर लिया। इस अवस्था में रस कला के द्वारा उदात्तीभूत भावों के माध्यम से प्राप्त अलौकिक आनन्द की स्थिति है। अब ले० भाव और रस को अनुभूतियों के सम्बन्ध, रस की सारभूत प्रकृति (या स्वरूप) और (सौन्दर्यानुभूति के सार) रसानन्द के स्वरूप की परीक्षा करते हैं और अन्त में निष्कर्ष निकालते हैं कि सौन्दर्यानुभूति एक मिश्रित अनुभव है, जो तत्त्वतः आनन्दात्मक है जिस में भावात्मक और बौद्धिक तत्त्वों का सूक्ष्म सम्बन्ध (या सामरस्य) है। इस का पृथक् अभिज्ञान है, वयों कि यह भावजन्य सुख से अतिक परिष्कृत और अधिक रागयुक्त है।

२३६. पण्डितराजजगन्नाथस्य रसनिरूपण-पद्धतिः; रभेदा चन्द्र शास्त्री, वनस्थली; यूरासंहिस.,

१९६८-६९; २१-२५; सं. । स्वकीये रसगंगाधरे जगन्नाथो रसनिरूपणप्रस्तावे एकादशमतानि संगृह्य स्वप्रतिभाकौशलेन तेषां सम्यक् विवेचना-पूर्वकं समालोचनामचीकरत् । अस्मिन् निबन्धे तत्समालोचनासारः संक्षिप्य प्रदर्शितः ।

जगन्नाथ ने अपने रसगंगाधर में रसनिरूपण प्रकरण में ग्यारह मतों की आलोचना की है। इस लेख में उस आलोचना का सार संक्षिप्त कर के प्रस्तुत किया गया है।

सुधीर कुमार गुप्त

२३७. मम्मटाभिमतं लक्षणायाः पङ्क्तिव्यव-
हेत्वलंकारश्च; रेवाप्रसाद द्विवेदी, साहित्यविभागा-
ध्यक्षः, हिन्दू विश्वविद्यालयीयसंस्कृतमहाविद्यालये,
वाराणसी-५; सागरिका, ६.२; २०२७ विसं;
११३-१२८; सं. । अस्मिन् लेखे मम्मटाचार्यस्य
लक्षणाया लक्षणादिकं प्रस्तुत्य लक्षणायाः पङ्क्तिव्यव-
विषये चण्डीदासप्रदीपकारगोकुलनाथोपाध्यायप्रभृतीनां
मतवैविध्यविवेचनं विधाय, गोकुलनाथादिभिरुपगत-
लक्षणाभेदगणनाक्रमो मम्मटस्याभिमतः इति
सिद्धान्तो निर्धारितः । एवं लक्षणायाः १. शुद्धा
सोपादाना २. शुद्धा सलक्षणा ३. शुद्धा सारोपा
४. शुद्धा साध्यवसाना ५. गौरी सारोपा ६. गौरी
साध्यवसाना चेति पङ्क्तिभेदा मम्मटस्याभिमताः ।

इस लेख में मम्मटाचार्य के लक्षणा के लक्षण आदि को प्रस्तुत कर लक्षणा के छे भेदों के सम्बन्ध में चण्डीदास, प्रदीपकार, गोकुलनाथ उपाध्याय आदि के विविध मतों का निरूपण कर, गोकुल नाथ आदि द्वारा अपनाया गया लक्षणा के भेदों की गणना का प्रकार मम्मट को मान्य है, यह सिद्धान्त प्रति-पादित किया गया है। इस प्रकार लक्षणा के १. शुद्धा सोपादाना २. शुद्धा सलक्षणा ३. शुद्धा सारोपा ४. शुद्धा साध्यवसाना ५. गौरी सारोपा ६. गौरी साध्यवसाना ये छे भेद मम्मट को अभीष्ट हैं।

प्रभाकर शर्मा

238. **The Rasagaṅgādhara on the Definition and Source of Poetry;** M.V Patwardhan, Poona and J.L. Masson, Toronto; **JOI**, XIX. 4;6. 1970; 416-427; E. The authors here present an English translation (with 25 critical and explanatory notes) of the first two sections of the Rasagaṅgādhara dealing with Jagannātha's definition of poetry and his remarks on the source of poetry. In the concluding remarks to this translation the authors say that in the passages given in this paper Jagannātha does not offer any new ideas. 'Most of the startling things Jagannātha says are taken directly from the Dhavanyālocana of Abhinavagupta.' Jagannātha earned his fame from the abstruse language in which he puts every thing. It has allowed him a certain precision and formal nicety lacking in earlier works.

इस में ले० जगन्नाथ के काव्य के लक्षण और काव्य के स्रोत पर उस के विचारों के वाहक रस-गंगाधर के पहले दो भागों का २५ आलोचनात्मक और व्याख्यात्मक टिप्पणियों के साथ अंग्रेजी में अनुवाद प्रस्तुत करते हैं। इस अनुवाद के उपसंहार में ले० कहते हैं कि इस लेख में प्रदत्त संदर्भों में जगन्नाथ कोई नई बात नहीं कहते हैं। "अधिकांश चौकाने वाली बातें, जो जगन्नाथ कहते हैं, वे अभिनव गुप्त के ध्वन्यालोचन से ली गई हैं।" जगन्नाथ की प्रतिद्धि का कारण उस की गूढ़ भाषा है जिस में वह सब कुछ व्यक्त करता है। इस ने उसे कुछ सूक्ष्मता और रूपगत सौन्दर्य प्रदान कर दिया है, जो पूर्वतर ग्रन्थों में नहीं हैं।

सापेक्ष साधारणीकरण मानना आवश्यक है।

गणेश उमाकान्त थिटे

२४०. रस सिद्धान्त में आनन्दतत्त्व के प्रतिष्ठापक दर्शन; रमाशंकर जैतली, सं. वि., राज. वि. वि., जयपुर; **यूरासंहिस.**, १९६८-६९; १३-१६; हि. । रस सिद्धान्ततः आनन्दात्मक है। आनन्द मूलतः विश्व में प्रतिष्ठित है। साहित्य के रस में आनन्द की प्रतिष्ठा करने वाले मुख्यतः तीन दर्शन हैं—१. काश्मीर का अद्वैत मूलक शैव दर्शन २. अद्वैत वेदान्त तथा ३. सांख्य दर्शन। शैव दर्शन के अनुसार आत्मा चेतन और आनन्दमय है। वेदान्त की मान्यता है कि समस्त भूत आनन्द से उत्पन्न होते हैं, आनन्द से ज्ञात हो कर ही जीवित रहते हैं और अन्त में आनन्द में ही समाहित हो जाते हैं। आनन्द ही ब्रह्म है। सांख्य दर्शन द्वैतवाद और यथार्थता को मान्यता देता है। सांख्य प्रकृति को पूर्णतः सुन्दर नहीं मानता है। वेदान्त विश्व के प्रत्येक कण को सुन्दर और आनन्दमय बताता है। सांख्य की कलादृष्टि कल्पना में सुख पाती है, वेदान्त की दृष्टि इसी जगत् में रह कर अपने परिमित प्रमातृ भाव को विगलित कर के क्षण भर के लिए ही मूलानन्द का अनुभव कराती है। इन दोनों ही दर्शनों से कलाकार को अनासक्त दृष्टि मिलती है। इन तीनों दार्शनिक दृष्टियों ने रसाचार्यों को उन की रचि के अनुसार प्रभावित किया है।

मनमोहन अग्रवाल

vadgtā compelled rhetoricians like Ānanda-
vardhana to admit another rasa—the
Śānta rasa. Abhinavagupta declared this
Rasa as par excellence and all the rasas
its variations. In this context the status of
Bhakti was determined by Vopadeva,
author of Mukṭāphala and his commen-
tator Hemādri. They made out a case for
Bhakti as rasa par excellence and all other
rasas its variations. The philosophical
explanation of Bhakti given by them
characterised this rasa capable of mass
appeal. Bhakti is of various types. Śuddha
is Perfect. All the rest are mixed. Bhakti
'is the experience of delight brought about
by hearing or reading the accounts of the
Lord or Lord's devotees, coming under,
one of the well known nine heads of rasa.'
Vopadeva and Hemādri have influenced
later writers like Rūpa and Jīva Goswā-
min who departing from the approach of
Vopadeva have declared śṛṅgāra as the
rasarāja. Bhaktisūtra completely follows
the lead of Vopadeva and Hemādri (as
illustrated in the paper). This shift of
importance from secular to religious
poetry by the 13th century is a signal con-
tribution of Deccan to the history of
criticism in India,

प्रारम्भ में धार्मिक साहित्य सर्वप्रमुख था ।
परन्तु काव्य-शास्त्रियों और लौकिक साहित्य के
विकास के युग में धार्मिक साहित्य को काव्य नहीं
माना गया । शान्त और भक्ति का रसों की योजना
में कोई स्थान न था क्योंकि शय स्थायी भाव न
था, अतः वे सब को प्रभावित नहीं कर सकते थे ।
महा० और भगवद्गीता जैसे धार्मिक साहित्य
ने आनन्दवर्धन जैसे काव्यशास्त्रियों को एक अन्य
रस—शान्त रस को मान्यता देने के लिए विवश कर
दिया । अभिनव गुप्त ने इसे रसरज घोषित कर
अन्य सब रसों को इसी के विभिन्न रूपान्तर बताया ।
इस सन्दर्भ में मुक्ताफल के ले. वोपदेव, और उस
के टीकाकर हेमाद्रि ने भक्ति का स्थान निर्धारित
किया । उन्होंने ने भक्ति रस को रसरज और अन्य
रसों के उस के रूपान्तर होने का प्रतिपादन किया ।
उन के द्वारा दिए गए भक्ति के दार्शनिक व्याख्यान

ने भक्ति को सामान्य जन के अनुभव के योग्य
प्रतिपादित किया । भक्ति अनेकविध है । शुद्ध निर्मल
(या पूर्ण) है । शेष सब मिश्रित हैं । भक्ति भगवान्
या भगवान् के भक्तों के चरित के सुनने या पढ़ने से
आनन्द की प्राप्ति है और इस प्रकार यह प्रसिद्ध नौ
रसों के अन्तर्गत आ जाता है । वोपदेव और हेमाद्रि
ने अपने वाद के लेखकों रूप और जीव गोस्वामिन्
आदि को प्रभावित किया है, इन्होंने ने वोपदेव की
सरणि से कुछ हट कर शृंगार को रसरज माना
है । (इस ले. के प्रतिपादन के अनुसार) भक्तिसूत्र
वोपदेव और हेमाद्रि का अनुसरण करते हैं । १३वीं
शती तक लौकिक से धार्मिक काव्य की ओर संक्र-
मण भारत में आलोचना के इतिहास में दक्कन
की सर्वप्रमुख देन है ।

सुवीर कुमार गुप्त

242. Vopadeva and Hemādri on
the Bhakti-Rasa; V. Raghavan, Retired
Prof. & Hd., Skt. Dept., Madras Univ.,
Madras; UMCV., 1970; 793; E. The
author disagrees with K. Krishnamurti's
statement in JGJRI., XXV, 1-4 (Pages
404-409 of UMCV., 1970) that in the
Śṛṅgāra Prakāśa he (Raghavan) makes a
passing reference to Hemādri and states
that necessary justice has been done by
the author (Raghavan) in his works-
'The Number of Rasas'; 'Spiritual Heri-
tage of Tyagaraja.'

ले. जगभारिड., २५.१-४ (उमकद., १९७०,
पृ० ४०४-४०९) में कं. कृष्णमूर्ति के लेख कि
शृंगारप्रकाश में राघवन ने हेमाद्रि का चलता-फिरता
निर्देश किया है' से मतभेद व्यक्त करता है कि उस
ने अपनी रचनाओं 'रसों की संख्या' और 'त्यागराज
की आध्यात्मिक परम्परा (या देन)' में उचित न्याय
कर दिया है ।

243. Śāntarasa and Abhinava-
gupta's Philosophy of Aesthetics; J.
L. Masson and M. V. Patavardhan; Pub.
B. O. R. I., Poona; 2. 1969; PP. 18+
206; 25-00; Rev. D. R. Mankad; JOI,
XIX. 3; 3.1970; 309-311; E. The authors

have given 11 relevant Skt. passages on Śānta rasa from the Nāṭyaśāstra, Kāvya-lāṅkāra, Dhvanyāloka, Locana, Abhinava-bhāratī, Daśarūpaka and its commentary, Sāhityadarpaṇa and Rasagaṅgādhara with translations, notes and introductory discussions. In a sense it supplements the studies of Gnoli. The introduction deals with topics like the religious and philosophical basis of Abhinavagupta's poetic theories, obscenity in literature and influence of different authors on Abhinava.

ले. ने नाट्यशास्त्र, काव्यालंकार, ध्वन्यालोक, लोचन, अभिनवभारती, दशरूपक और उस की टीका, साहित्यदर्पण और रसगंगाधर से अतृवाद, टिप्पणियों और परिचयात्मक विवेचना सहित शान्तरस पर ११ सम्बद्ध सन्दर्भ दिए हैं। एक दृष्टि से यह मनीषी के अध्ययनों की पूर्ति करता है। प्रस्तावना में अभिनव गुप्त के काव्यसिद्धान्तों के वार्तिक और दार्शनिक आधारों, साहित्य में प्रयोज्यता और अभिनव पर विभिन्न ले. के प्रभाव आदि विषयों का विवेचन किया गया है।

अलंकार (Figures of Speech)

२४४. वस्तुवर्णनकारदर्शनम्; ले., प्र., ग्रह्यान्वय-वर्णा, संस्कृतविभागाध्यक्षः, राजकीयमहाविद्यालयः, प्रजनेरः, १९६६; ४ + २ + ५४ + ३; ४-००; सं.। "काव्यस्य वस्तुजगता सह सम्बन्ध इति तद्गतानाम-लंकाराणामपि स इति स्थितम्। एतं सर्वेष्वलंकारेषु एतत्संबन्धाविद्येति केवलनास्य सम्बन्धस्य वैशिष्ट्येन प्रतीतिरिति ले.प्र. प्राधान्येन निरूप्यते।" अलंकार-स्वरूपम्, अलंकारस्य लोकात्म्यम्, लोकसम्बन्ध-रन्धा अलंकारगता विभिन्नाः प्रतीतिः, वाच्यगतां दशार्थानुभूति, तर्कमूलक-विशेष्यमूलक-लोकनियम-मूलकानंतादान्, अर्थानंतादान्, लोकसम्बन्धाभावे काव्यस्य निरूप्यतेति विचारं २३ अलंकारा-निरूपिताः सन्ति। तदाशुमानस्य काव्यविशेष-परिचरस्य चार्थनिरूपणां काव्यविशेष-कारणत्वस्य विवेचनमपि कृतमिति।

"काव्य का वस्तु जगत् से सम्बन्ध है, इस कारण काव्य में प्रयुक्त अलंकारों का भी वस्तु जगत् से सम्बन्ध निश्चित है। इस प्रकार सब अलंकारों में इन सम्बन्ध के अविच्छिन्न होने पर भी कुछ (अलंकारों) में इस सम्बन्ध का विशेष बोध होता है। उन का ही यहाँ प्रमुख रूप से निरूपण किया गया है।" इस में अलंकार के स्वरूप, अर्थालंकार का लोक से सम्बन्ध, लोक से सम्बन्ध के कारण उत्पन्न अर्थालंकारों में विद्यमान विभिन्न बोध, वाच्यगत दशार्थता की अनुभूति, तर्कमूलक विशेष-मूलक और लोकनियममूलक अलंकारों, शब्दालंकारों, लोक से सम्बन्ध के अभाव में काव्य की निम्नकोटिता का विचार कर के २३ अर्थालंकारों का निरूपण किया है। वहाँ अनुमान के काव्यलिग में और परिकर के अर्थान्तरन्यास में या काव्यलिग में अन्तर्भाव का विवेचन भी किया गया है।

२४५. स्वभावोक्ति का शैली पक्ष; मथुरेश्वर-तन्दन कुलश्रेष्ठ, सी-८३/ए, वापुनगर, जयपुर-४; विभ., ६.३; १९७० (२०२७ वि.); ३३-५२; हि.। वर्ण्यविषयों की दृष्टि से स्वभावोक्ति काव्य का पर्याय है। अग्राम्यत्व, पुष्टार्थ, चादत्व, चमत्कार और अद्भुतार्थ दोनों में समान गुण हैं। परन्तु निरूपिता और चित्रोदात्तता स्वभावोक्ति के स्वरूप को परिचायक और काव्य से भेदक शैलियाँ या विशेषताएँ हैं। स्वभावोक्ति की कुछ अन्य विशेष-ताएँ हैं—निरलंकृतता, लक्षित विम्बविधान, सारस्य, इतिवृत्तात्मकता, परिगणना और अर्थभासकता। ले. ने यहाँ इन का हिन्दी काव्य से उद्धरण पूर्वक स्वरूप विवेचन किया है। उस का मत है कि प्रतीकात्मक रहस्यवादी कविता स्वभावोक्ति से भिन्न है।

नाट्य शास्त्र (Dramaturgy)

246. The Daśarūpaka of Dhanañ-jaya with the commentary Avaloka by Dhanika and the Sub-Commentary Laghutiṅkā by Bhaṭṭaṅsiṃha; Edited

with Introduction and Notes by I. Venkatacharya, Assistant Prof. of Skt., Toronto; Rev. V. M. Kulkarni; **JOL**, XIX, 3; 3, 1970; 298-800; E. Here is an attempt to present Prākṛta passages in their correct form. The Laghuṭīkā published here for the first time is a brief but learned commentary and furnishes many correct readings both in the Daśarūpaka and the Avaloka. The editor's notes to this Laghuṭīkā are useful in understanding the text. The index of verses at the end gives their sources wherever possible. The reviewer has given his views on two or three points.

इस में प्राकृत अंशों को उन के शुद्ध रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यहाँ सर्व-प्रथम प्रकाशित लघुटीका संक्षिप्त परन्तु वैदुष्यपूर्ण टीका है और दशरूपक तथा अवलोक दोनों में ही बहुत से शुद्ध पाठों को उपस्थित करती है। इस लघु टीका पर सम्पादक की टिप्पणियाँ मूल पाठ को समझने में उपयोगी हैं। अन्त में पद्यों की अनुक्रमणिका में यथासम्भव उन के स्रोतों का निर्देश किया गया है। समीक्षक ने दो तीन-विषयों पर अपने विचार भी व्यक्त किए हैं।

247. **Further Light on the Apabhraṃśa Verse quoted in the Avaloka on Daśarūpaka, IV., 34; A N. Upadhye; ABORI., L I-IV, 1969; 91-94; E. Prév. Ref T. Venkatacharya, 'An Appraisal of the Hindi 'Daśarūpaka', (JUGau)(A) (Vol. II, PP. 126f).'** The author discusses the reading of the verse 'अप्राहणाहु' etc. examines the views of various scholars and accepts P. L. Vaidya's reading and interpretation as final and decisive. The author has also translated and explained the verse.

सिं. -- 'एन एपाराइज़ल औफ दी हिन्दी दश-रूपक'; टी. वैकटाचार्य, जयगो (प्रा), २, पृ. १२६। ले. ने 'अप्राहणाहु' आदि पद्य के पाठ का विवेचन करते हुए विभिन्न विद्वानों के विचारों की समीक्षा कर पी. एन. वैद्य के पाठ और भाव को

अन्तिम और निर्णायक माना है। ले. ने पद्य का अनुवाद और व्याख्या भी दिए हैं।

२४८. आचार्य धनञ्जय कृत हिन्दी दशरूपक; अनुवादक गोविन्द त्रिगुणायत, अध्यक्ष, सं. वि., के. जी. के. कालेज, मुरादाबाद; प्र. साहित्य निकेतन, कानपुर; १९६६; ६+२+४२२; ७-५०; सं., हि.। इस में धनञ्जय के दशरूपक का अवलोक संस्कृत टीका और हिन्दी अनुवाद सहित सम्पादन है। ग्रन्थारम्भ में ३७ पृष्ठों की भूमिका में ग्रन्थकार का परिचय दे कर दशरूपक के प्रतिपाद्य विषयों- १. नाट्य, नृत्य और नृत्त २. वस्तु ३. दशरूपक ४. नायक-नायिका-भेद ५. नाट्यवृत्तियों ६. नाटक के पूर्व प्रयुक्त विशेषताओं और ७. रससिद्धान्त का संक्षेप में हिन्दी में विवरण दिया गया है।

249. **The Nāṭyaśāstra, Vol I (Chapters I-XXVII).** The original Sanskrit Text; 1967; i-lxxxvii+239; 40-00.

250. **The Nāṭyaśāstra, Vol. I. (Chapters I-XXVII)** translated into English from the original Sanskrit with an Introduction, various Notes and Index; 1967; i-Lxix + 587; 60-00.

Both edited and translated by Man Mohan Ghosh; Pub. Manisha Granthalaya Pr. Ltd., Bankim Chatterjee Street, Calcutta 12; Rev. V. M. Bedekar; ABORI., L. I-IV; 1969; 131-133; E. The editor has not been able to collate mss. discovered during the last thirty years. He feels little improvement can be expected from the collation of these mss. He follows Grosset's method and principles of text reconstruction. He has sometimes differed from Grosset. The author has also suggested several emendations in the text. The English Translation has been revised and supplemented with notes. Introduction to the text discusses textual problems, gives a resume of the literature on Ancient Indian drama and examines the problems of the date of the Nāṭyaśāstra. Introduction to English Translation covers various subjects (list given by the

reviewer). This volume has a very useful general and Skt. Index. Numbering of verses 58-61 in this translation is incorrect.

सम्पादक ने पिछले तीस वर्षों में प्राप्त हुए हले. का मिलान नहीं किया है। उन का विचार है कि इन हले. के मिलान से बहुत अल्प-सा सुधार सम्भव है। पाठ के पुनर्निर्माण में ले. ग्रीसेट की प्रणाली और सिद्धान्तों पर चलते हैं। वह अनेक बार ग्रीसेट से मतभेद रखता है। ले. ने मूल पाठ में कुछ सुधारों के भी सुझाव दिए हैं। अंग्रेजी अनुवाद का शोधन कर उसे टिप्पणियों से पूरा कर दिया गया है। मूल की भूमिका में पाठ की समस्याओं पर विचार किया गया है, प्राचीन भारतीय नाटक से सम्बद्ध साहित्य का संक्षिप्त परिचय दिया गया है और नाट्य शास्त्र की तिथि की समस्या की परीक्षा की गई है। अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में (समीक्षक द्वारा प्रदत्त सूची के) विविध विषयों पर विचार किया गया है। इस खण्ड में एक बहुत उपयोगी सामान्य और संस्कृत अनुक्रमणिका है। इस अनुवाद में ५८-६१ पद्यों की संख्या अशुद्ध है।

२५१. भरतमुनिकृतनाट्यशास्त्र; अनुवादक भोलानाथ शर्मा, अध्यक्ष, सं. वि., वरेली कालेज, वरेली; प्र. साहित्य निकेतन, कानपुर; १९६०; २+२+४६+११२; २-७५; सं., हि.। इस में नाट्यशास्त्र के प्रथम तीन अध्यायों का मूल पाठ, उस का हि.अ. और विवरण दिए गए हैं। ग्रन्थारम्भ में ४४ पृष्ठों में हिन्दी में भरत की समस्या, नाट्यशास्त्र का महत्त्व, विषय, रचना-काल, तत्सम्बन्धी साहित्य की परम्परा, नाट्य की उत्पत्ति और भारतीय रंगमंच विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

सुधीर कुमार गुप्त

२५२ भारतीय नाट्यशास्त्र और ट्रेजेडी; दिनेश अग्रवाल; यूरसंहित., १९६८-६९; १६९-१७९; हि.। "यदि समग्र भावात्मक एवं साहि-

त्यिक प्रभाव को दृष्टि में रख कर अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट है कि 'ट्रेजिक' नाटक भारतीय काव्यशास्त्र से अपरिचित नहीं कहा जा सकता। इस निष्कर्ष की पुष्टि में ले० ने ट्रेजेडी शब्द के हिन्दी अनुवादों—त्रासदी, मरणान्त और दुःखान्त की समीक्षा करते हुए अरस्तू के ट्रेजेडी विषयक विचारों को प्रस्तुत करते हुए बताया है कि ट्रेजेडी में विशेष प्रकार की भय और त्रास के भावों से उदित भाव दशा पैदा की जाती है। वहां काव्यात्मक न्याय का हनन दिखाना आवश्यक है, जिस का आद्यन्त बने रहना आवश्यक नहीं। अन्त में काव्योचित न्याय का पुनः स्थापन किया जा सकता है। आध्यात्मिक या नायकोचित महानता के अंश के अनुरूप ही नाटक को ट्रेजिक कहा जा सकता है। इस कसौटी पर आंकने में संस्कृत के बहुत से नाटक ट्रेजेडी की कोटि में आ जाते हैं। ले० ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् के विश्लेषण से उसे ट्रेजेडी प्रमाणित किया है।

सुधीर कुमार गुप्त, मनमोहन अग्रवाल

२५३. रासलीला: परम्परा एवं विकास;

अज्ञात, लखनऊ; लोककला, २०; ७.१९७०; ७४-९२; हि.। चार चित्रों से युक्त इस लेख में अज्ञात ने अन्य विद्वानों को अभिमत रस, रासक, नाट्य-रासक, रासो, रहस आदि के रासलीला से साम्य को भ्रान्तिपरक माना है। रासलीला या महारास नृत्य-गीत की एक स्वतन्त्र और आध्यात्मिक नाट्यपद्धति है। रासलीला का प्रारम्भ वाई० मनकद के अनुसार गुजराती के संत कवि नरसी मेहता ने किया था। बंगाल में चैतन्य महाप्रभु और उन की शिष्यमण्डली ने जयदेवकृत 'गीत-गोविन्द' के आधार पर साभिनय कृष्णलीला का प्रवर्तन किया। हिन्दी (ब्रज भाषा) में रासलीला के प्रारम्भ पर विद्वानों में मतभेद है। इन में विजयेन्द्र स्नातक का मत ठीक मालूम पड़ता है कि हितहरिवंदा ने प्रथम रासमण्डली की स्थापना कर

निपट अशुभी वास्तविकता के तनावों के चित्रण के लिए प्रत्येक रचनाकार असामान्य कथनविधियों को अपनाता है। सब कुछ होते हुए भी ध्वन्यालोक की विभाजनवादी विधि आज के प्रसंग में अननुकूल है। केवल ध्वनिवाद की अन्तर्दृष्टियाँ सामयिक साहित्य और कला की सांकेतिकता को समझने में सहायक हो सकती हैं। सामयिक आलोचना में कृतिपरकता की प्रवृत्ति के बढ़ाव के कारण शब्दार्थ निर्णय, रीतिविचार और शब्दशक्ति विवेचन का उपयोग प्रमाणित होने जा रहा है। अतः युगानुरूप बदलते हुए सामयिक साहित्य और कला के विकासपरक अध्ययन के लिए युगानुरूप प्रभावों अथवा युगविशेष के ढाँचे और उस के ऊपरी आधार को अवधान में रख कर द्वन्द्वात्मक ऐतिहासिक विधि को अपनाता होगा। किन्तु भारतीय काव्यशास्त्र के मानव के भावात्मक स्तर और उस के रूपायन से सम्बन्धित संकेतों और अन्तर्दृष्टियों के सृजनात्मक उपयोग द्वारा सामयिक कला और साहित्य का अध्ययन किया जा सकता है।

अनिल कुमार गुप्त

धर्म और दर्शन

(Religion & Philosophy)

ईरानी मत (Zoroastrianism)

257. **God And Evil : Zoroaster And Barth**; Eldon R. Hay; **Dalhousie Review**, 49. 3; (Autumn 1969); 369-376; E. Comparative study of the views of Zoroaster (6th C.B.C.) and Barth (20th c.) on Evil and God has been presented here. Zoroastrianism is the religion of free will *par excellence*. Ahura creates two secondary spirits who make decisive choices for themselves—the one for good, the other for evil. Man chooses either of them. Ahura is thus Supreme and Good ultimately triumphs over the Evil Spirit who is no phantom—his path is a live option for every person. Barth holds that God's two hands right and left represent good and evil. God permits evil. Both

the hands are parts of God and are not independent entities. There are, thus, certain similarities between the two—(i) there is a desire to proclaim God's holiness, the reality of evil, the subordination of evil to good, the responsibility of man, the ultimate triumph of God and the good. Barth also offers a 'careful distinction and qualified differentiation between the "shadow" side of creation and nothingness' (--the left hand).

इस में ज़ोरोएस्टर और वार्थ के ईश्वर और पाप विषयक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। ईरानी धर्म सर्वाधिक स्वतंत्र इच्छा का है। अहुर दो गौण आत्माएं उत्पन्न करता है, जो अपने-अपने लिए निश्चयात्मक चुनाव करती हैं—एक पुण्य के लिए और दूसरी पाप के लिए। मनुष्य दोनों में से एक को चुन लेता है। इस प्रकार अहुर सर्वोपरि है और अन्त में पुण्य पाप पर विजय पाता है। पाप आभास मात्र नहीं है। उस का मार्ग प्रत्येक मानव के लिए सजीव विकल्प है। वार्थ के मत में ईश्वर के दाएँ और बाएँ हाथ पुण्य और पाप हैं। ईश्वर पाप की अनुमति देता है। दोनों हाथ ईश्वर के अंग हैं और पृथक् सत्ताएं नहीं हैं। इस प्रकार दोनों में कुछ साम्य हैं—ईश्वर की पवित्रता, पाप की यथार्थता, पाप के पुण्य के अर्थान होने, मनुष्य के दायित्व तथा ईश्वर और पुण्य की अन्ततोगत्वा विजय की घोषणा की (दोनों में) कामना है। वार्थ मूल्य (--बाएँ हाथ) और सृष्टि की छाया के बीच स्पष्ट अन्तर और समुण्य भेद भी प्रस्तुत करते हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

जैनमत (Jainism)

२५८. अनेकांतवाद और स्यादवाद; के भुजवली शास्त्री; सार्जसंस्म., १९७०; ८१-८६; हि.। पदार्थ अन्तर्धर्मात्मक है। एक वस्तु में दो विरोधी धर्म किसी क्षण अग्रेषा से रह सकते हैं, यह अग्रेषा दृष्टि ही अनेकांतवाद है। जब वाणी द्वारा

इस तथ्य को अभिव्यक्त किया जाता है, तब वह स्याद्वाद कहलाता है। स्याद् शब्द का अर्थ है एक अपेक्षा से, वाद का अर्थ है कथन करना। अपेक्षाविशेष से अन्य अपेक्षाओं का निराकरण नहीं करते हुए प्रतिपादन करना स्याद्-वाद है। त्रिनोवा भावे ने इसे मध्यस्थता की दृष्टि या सत्याग्रही दृष्टि कहा है। यह एक प्रकार से जीवन-व्यवहार का सिद्धान्त है। इसे जीवन में उतारने से व्यक्ति अपनी असहिष्णुता को दूर कर सारे धर्मों को समन्वय दृष्टि से देखने लग जाता है। सप्तमंगी और सप्तनय द्वारा इसे स्पष्ट समझा जा सकता है।

नरेन्द्र भानावत

२५६. अर्चना और आलोक; सम्पादिका कमला जैन 'जीजी'; प्र. श्री वर्धमान श्वे. स्था. जैन श्रावक संघ, विजयनगर (अजमेर); १४.११.१९७०; ४०४; ५-००; समीक्षक अजित शुक्देव, अमरा, २२.५; ३.१९७१; ३३; हि.। इस में महासती उमराव कुंवर 'अर्चना' के इक्कीस प्रेरणादायी प्रवचनों का संग्रह है, जो सामाजिक, आध्यात्मिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय प्रगतिशील विचारों से श्रोतप्रोत हैं। इन प्रवचनों में विभिन्न संस्कृतियों के तत्त्व भी समन्वित हैं।

सुबोध कुमार गुप्त

२६०. अहिल्या स्मारिका; सम्पादक स. का. दीक्षित, रामसेवक गर्ग एवं हीरालाल शर्मा; प्र. खासगी ट्रस्ट, इन्दौर; ८.१९७०; १००; २-५०; समीक्षा; जैसंशो., २६; ११.२.१९७१; २३०; हि.। इस में इन्दौर राज्य एवं चरित नायिका से सम्बन्धित २० लेखों का चयन है। इन्दौर राज्य की सर्वतो-मुखी प्रगति के इतिहास में जैनों का पर्याप्त योगदान होने पर भी उन का कोई उल्लेख नहीं है।

सुधीर कुमार गुप्त

२६१. आचारांग सूत्र और अहिंसा; परमेश्वर दास जैन; सस्मा., १९७०; ६५-१०२; हि.। जैन द्वादशांगों में आचारांग प्रथम अंग सूत्र माना

गया है। यह सूत्र निग्रन्थ श्रमणों के आचार सम्बन्धी नियमों का प्रतिपादक है। इस सूत्र के प्रथम अध्याय का नाम शरय परिज्ञा है जिस का अर्थ होता है पट्काय के जीवों की हिंसा से विरत होना। पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, अग्नि-कायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक और वायु-कायिक ये पट्कायिक जीव माने गये हैं। वायु के लिये इन की हिंसा वर्जित है। इस अहिंसा महाव्रत को पुष्ट करने के लिये ग्रन्थ को द्वितीय श्रुत स्कंध में ईर्मा समिति, भाषा समिति, एषणा समिति आदि पांच भावनाओं का वर्णन किया गया है।

नरेन्द्र भानावत

२६२. इन्द्रभूति गौतमः एक अनुशीलन; ले. गरुडामुनि शास्त्री; सम्पादक श्रीचन्द्र सुराता 'सरस'; प्र० सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी, आगरा; १०. १९७०; १६०; ४.००; समीक्षक अजित शुक्देव; अमरा, २२.५; ३.१९७१; ३२; हि.। इस में गौतम सम्बन्धी अनेक चर्चाएँ हैं। इन्द्रभूति गौतम के सम्बन्ध में गहराई से चर्चा है। उस के व्यक्तित्व पर प्रथम बार प्रकाश डाला गया है। पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट में गणधरों का लेखा, गौतम रास और महावीर स्वामी की चौढालियों को संकलित किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से और भी बहुत कुछ कहा जाने योग्य रह गया है।

सुधीर कुमार गुप्त

२६३. ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ महापुराण ऑफ पुष्पदन्त; ले. (श्रीमती) रत्ना नगेश श्रियन; प्र. ला. द. भा. विद्यामन्दिर, अहमदाबाद; १९६६; ३५०; ३०-००; समीक्षा; जैसंशो., २६; ११.२.१९७१; २२४; हि.। यह पुष्पदन्त के महापुराण एवं अन्य ग्रन्थों में प्रयुक्त लगभग १५०० श्लोक तथा अन्य विरल शब्द प्रयोगों का आलोचनात्मक अध्ययन है। प्रारम्भ में दलमुख मालवाणिया, भयाणी और ले. के प्राक्कथन, अन्त में दो परिशिष्ट और शब्दानुक्रमिका हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

२६४. कर्मवाद व अन्य वाद; मोहन लाल मेहता; अमरा, २२.५; ३.१९७१; ११-२०; हि. । कुछ विचारकों ने कर्मवाद के अतिरिक्त कालवाद, स्वभाववाद, नियतिवाद, यदृच्छावाद, भूतवाद, पुरुषवाद, दैववाद और पुरुषार्थवाद की स्थापना की। यहाँ इन वादों (कर्मवाद को छोड़कर) की व्याख्या की गई है। इन मतों के अनुसार संसार में जो कुछ भी होता है उस का एक मात्र घटक अपने-अपने वाद के अनुरूप या तो काल है या स्वभाव है, या नियति है, या यदृच्छा-अकारण ही है। भूतवादियों के मत में जड़-चेतन सब कुछ चार भूतों से उत्पन्न होता है। ब्रह्मवाद में ब्रह्म ही जगत् का निमित्त और उपादान कारण है। ईश्वरवाद में ईश्वर जगत् का निमित्त कारण, नियंत्रक और नियामक है। दैववाद में प्राणी अपने कर्मों का अत्यन्त और एकान्तिक पराधीन है। पुरुषार्थवाद इष्टानिष्ट की प्राप्ति बुद्धिपूर्वक प्रयत्न से मानता है। जैन सिद्धान्त काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत कर्म और पुरुषार्थ सभी को संसार की घटनाओं का घटक मानता है। जगत् का नियामक ईश्वर नहीं है, कर्म है। कर्म मूर्त है और उस का अस्तित्व है। आत्मा अमूर्त होने पर भी, कर्मपरिणाम होने से मूर्त भी है। कर्म, आत्मा और शरीर का सम्बन्ध अनादि है।

सुधीर कुमार गुप्त, मनमोहन अप्रवाल

२६५. क्रियाकोश; सम्पादक मोहन लाल वांठिया एवं श्रीचन्द्र चौरड़िया; प्र. जैन दर्शन समिति, कलकत्ता; ४००; १५-००; समीक्षा; जैसंशो, २६; ११.२.१९७१; २२४; हि. । इस में जैन दशमलव वर्गीकरण संख्या १२२२ तथा १३०१ हैं। प्राचीन जैन साहित्य में क्रिया शब्द दो अर्थों में आया है—१. कर्मवाद में 'कर्मबन्धनिबन्ध-भूता' के और २. क्रियावाद में 'मोक्षमार्गवाहका' के अर्थ में। इस कोष में इन दोनों के लिये अलग-अलग संख्या दी गई है। इस में प्रधानतः श्वेताम्बर

आगमों को लिया गया है, कहीं-कहीं कुछ दिगम्बर शास्त्रों का भी प्रयोग किया गया है। प्रारम्भ में उपाध्याय अमर मुनि की उपयोगी भूमिका भी है।

सुधीर कुमार गुप्त

२६६. जर्मन इन्डोलोजी, पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट; प्र० शकुन्तला पट्टिनिगि हाउस, बम्बई; १९६६; ६२.; समीक्षा; जैसंशो., २६; ११.२.१९७१; २२६; हि. । इस में १५ शीर्षकों में विभिन्न जर्मन विद्वानों द्वारा भारतीय विद्या के विभिन्न अंगों पर किये गये कार्य का विवरण है। १० लेख एच. वान. स्टोटेनकान और ५ लेख जी. डी. सोन्थेमेर ने लिखे हैं। लेखांक १० में जर्मन भाषा में अथवा जर्मनों द्वारा जैन धर्म पर किये गये कार्य का संक्षिप्त वर्णन है।

सुधीर कुमार गुप्त

२६७ जैन आगमों में तत्कालीन भिन्न-भिन्न दार्शनिक विचारधारायें; जितेन्द्र जेटली; सस्मा., १९७०; ३२-३५; हि. । भगवान् महावीर के मूल उपदेशों के प्राचीनतम आधार, श्वेताम्बर सम्प्रदाय के जैन आगमों के रूप में उपलब्ध हैं। इन में सूत्र-कृतांग सब से अधिक प्राचीन माना जाता है। अन्य आगम हैं—स्थानांग, भगवती, उत्तराध्यायन, अनुयोगद्वार, नंदी सूत्र आदि। प्रस्तुत लेख में यथा-प्रसंग उदाहरण देते हुये लेखक ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि उक्त आगमों में यत्र-तत्र आत्मा-द्वैतवादी, कूटस्थ आत्मवादी सांख्य, आत्मपण्डवादी वैशेषिक, नैयायिक आदि विचारधाराओं के उल्लेख मिलते हैं।

नरेन्द्र भानावत

२६८. जैनदर्शन में प्रतिपादित कर्मवाद; प्रेम-सुमन जैन, जैन कालेज, बोकानेर; साजसंस्मा., १९७०; १३६-१४५; हि. । जैन धर्म में जिसे कर्म कहा गया है, उसी से मिलते-जुलते अर्थ में ग्रन्थ दर्शनों में कर्म के लिये भाषा, अक्षिया, प्रकृति, वासना आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। जैन दर्शन

प्रस्तुत करता है। अमृतचन्द्र सूर समयसार के सर्वोपरि व्याख्याताओं में है।

सुधीर कुमार गुप्त

२७७. तिळकुरल (तमिल वेद)—एक जैन रचना; मुनि नगराज; सस्मा., १९७०; ३६-४४; हि. । 'तिळकुरल' कुरल छन्द में लिखा गया तमिल भाषा का एक नीतिकार्य है। इस में १३३ अध्याय हैं और एक एक अध्याय में दस-दस कुरल छन्दों के क्रम में कुल १३३० कुरल हैं। धर्म, अर्थ और काम इस ग्रन्थ के मूलभूत आधार हैं। जनश्रुति के अनुसार इस के रचयिता तिळवल्लुवर माने जाते हैं जो कवीर की तरह जुलाहे थे। मुनि श्री नगराज जी ने यथाप्रसंग उदाहरण दे कर स्पष्ट किया है कि वास्तव में 'तिळकुरल' एक जैन रचना है और इस के रचयिता हैं प्रथम शती के जैनाचार्य कुन्दकुन्द। तिळवल्लुवर इन्हीं कुन्दकुन्द के शिष्य थे। गुरु ने अपनी रचना इन्हें सौंपते हुए आदेश दिया कि इस ग्रन्थ के नैतिक सिद्धान्तों का प्रचार करो। सार्वभौम नैतिक सिद्धान्तों के कारण ही यह रचना तमिल वेद के रूप में समाहत है। लेख में स्थान-स्थान पर किवदन्तियां भी दी गई हैं।

नरेन्द्र भानावत

२७८. निलकमंजरी सार; ले० पल्लवान वनपाल; सम्पादक नारायण मणिलाल कन्सारा; प्र. ला. द. भा. विद्यामन्दिर, अहमदाबाद; १९६६; १४०; १२-००; समीक्षा; जैसंशो., २६; ११.२. १९७१; २२३; हि. । यह वनपाल की निलकमंजरी का किसी अन्य वनपाल द्वारा पद्यमय सार है। इस का काल १२०५ ई० है। सम्पादक द्वारा ४० पृष्ठों को अथेरी प्रस्तावना में रचना में सम्बन्धित सभी आवश्यक तथ्यों की उपयुगी विवेचना की गई है। सम्पादक के मन में निलकमंजरी पर आधारित रचनाओं में यह नार. सर्वोत्कृष्ट है।

सुधीर कुमार गुप्त

२७९. तीर्थराज अयोध्या; विमल कुमार जैन

सौरया, निहाल चन्द जैन; प्र० स्वामी समन्त भद्र, सरस्वती सदन, मडावरा, भांसी; १९७०; ६०; ०-५५; समीक्षा; जैसंशो., २६; ११.२.१९७१; २३०; हि. । अयोध्या तीर्थ की परिचायिका रचना है।

२८०. दिव्य जीवन; ले. मुनि भजन लाल; सम्पादक भवानी शंकर त्रिवेदी; प्र० श्री रतन चन्द्राय भरतमुनि जैन छतरी, दोघट (मेरठ); १७६; समीक्षा; जैसंशो., २६; ११.२.१९७१; २२८ हि.; इस में ले. ने अपने आम्नाय गुरु रतनचन्द्र जी का विस्तृत जीवन चरित दिया है। अन्त के अध्यायों में महावीर के वाद गौतम गणधर से मुनि लाल चन्द्र पर्यन्त अपने आम्नाय में मान्य गुरुपरम्परा भी दी है।

२८१. नमस्कारचिन्तामणि; ले. मुनि कुन्दकुन्दविजय; अनुवादक चान्दमल सीयाणी; प्र. श्री जिनदत्त सूरि मण्डल अजमेर; १९६६; २००; ५०-००; समीक्षा; जैसंशो., २६; ११.२. १९७१; २२६; हि. । यह गुजराती की पुस्तक का हि. अ. है। महामन्य नवकार के विषय में पर्याप्त विस्तृत विवेचन किया गया है। रचना भक्तिप्रधान है। जैन दृष्टि से नाम, जप, एवं नामस्मरण का महत्त्व भी भली भांति दिखाया गया है। अन्त में अनेक स्तोत्र, पाठादि भी हैं। आरम्भ में प्रस्तावना आदि हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

२८२. पंचाध्यायी का कर्तृत्व; ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ; जैसंशो., २६; ११.२.१९७१; १९४-१९८; हि०। ले० ने मखनलाल के मत की समीक्षा कर बताया है कि पंचाध्यायी के रचयिता अमृतचन्द्राचार्य नहीं हैं, प्रत्युत जैसा जुगल किशोर मुन्तार ने माना है इस के रचयिता लाटी-पाण्डे राजमल्ल हैं। ले० ने इन का व्यक्तित्व भी निर्धारित किया है। ये जम्बूस्वामीचरित और छन्दोविद्या के

भी रचयिता राजस्थानी स्वतन्त्र विचरणशील विद्वान् थे ।

कस्तूर चन्द कासलीवाल

२८३. पिच्छि-कमण्डलु; विद्यानन्द मुनि; प्र० जयपुर प्रिन्टर्स, मिर्जा इस्माइल रोड, जयपुर-१ (राज०); १९६७: क—ज + २२०; ३-००; हि. । अंतरङ्ग नामक ले० की प्रस्तावना श्रीर चंनमुखदास के प्रथम संस्करण (१९६४) के दो शब्दों के बाद ले० के इस लोक और परलोक के समन्वयकारक १८ लेख हैं—जिनेन्द्रभक्ति; गुरुसंस्था का महत्त्व; नरजन्म और उस की सार्थकता; जैनधर्म में नारी का महत्त्व; निग्रन्थ मुनि; मनोविज्ञान मोमांसा; चारित्र्य विना मुक्ति नहीं; पिच्छि और कमण्डलु; शब्द और भाषा; वस्तुत्व कला; मोह और मोक्ष, लेखनकला; साहित्य, स्वाध्याय और जीवन; समाज, संस्कृति और सम्यता; वर्षायोग; धर्म और पन्थ; दीक्षा-ग्रहण—विधि और सल्लेखना ग्रन्थगत विषय आत्मा के लिये सोपान मार्ग मात्र के सृजक हैं। साधना-वस्था के लिये वह आदेय है, सिद्धावस्था में आत्मा ही उपादेय है। महाप्रती तपस्वी बन्धनकारक राग-मार्ग को त्याग कर मुक्तिप्रद त्याग का श्रवणमन्त्र कर परम लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार और कैवल्याधिगम की सिद्ध में रत रहते हैं। जैसंशो. २६; ११.२. १९७१; २२७; हि० में समीक्षा भी देखें।

सुधीर कुमार गुप्त

२८४. पुराने घाट नई सोडियां; ले. नेमिचन्द्र दासनी; प्र. ग्रहिसा मन्दिर प्रकाशन, दिल्ली; १९७०; २५५; ५-००; समीक्षा; जैसंशो, २६; ११.२.१९७१; २२६; हि० । इस में ११ पुरातन प्राकृत जैन कथाओं को नये रूप में प्रस्तुत किया गया है। पुरोपाक में इन के शिल्प आदि का भी विवेचन किया गया है।

सुधीर कुमार गुप्त

२८५. प्राकृत जैन कथासाहित्य; देवेन्द्र मुनि शास्त्री; धमण, २२.५; ३.१९७१; ३-१०; हि० । धमण भगवान् महावीर धर्म-दर्शन व आध्यात्म

के गम्भीर प्ररूपक ही न थे वरन् एक सफल कथाकार भी थे। नायाधम्मकहा, उत्तराध्ययन, विपाक आदि में विपुल रूपक एवं कथायें संकलित थीं। अनुयोगों का परिचय दे कर ले० ने बताया है कि आगम साहित्य की कुछ कहानियां भिन्न नामों से या रूपान्तर से वैदिक, बौद्ध एवं विदेशी साहित्य में भी मिलती हैं। मूल आगम साहित्य ने कथासाहित्य का वर्गीकरण अर्थकथा, धर्मकथा और कामकथा के रूप में किया है। परवर्ती साहित्य में विषय, पात्र, शैली और भाषा की दृष्टि से भेद-प्रभेद किये गये हैं। आचार्य हरिभद्र ने विषय की दृष्टि से अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा और मिश्रकथा—ये चार भेद किए हैं। पात्रों के आधार से दिव्य, मानुष और दिव्यमानुष—ये तीन भेद कथा के किए गये हैं। शैली की दृष्टि से सकल कथा, खण्ड कथा, उल्लाप कथा, परिहास कथा और संकीर्ण कथा—ये पांच भेद किये गये हैं। आगम कालीन कथाओं में उपमाओं और दृष्टान्तों का श्रवणमन्त्र ले कर जन-जीवन को धर्म-सिद्धान्तों की ओर आकर्षित किया है। इन कथाओं की उत्पत्ति, उपमात, रूपक और प्रतीकों के आधार पर हुई है। पात्र, विषय, प्रवृत्ति, वातावरण, उद्देश्य, रूप, गठन एवं नीति संश्लेष प्रभृति सभी दृष्टियों से आगमिक कथाओं की अपेक्षा व्याख्या साहित्य की कथाओं में विशेषता व नवीनता आई है। आगम युग की कथायें चरित्रप्रधान होने से विशेष विस्तार वाली होती थीं तथा व्याख्या साहित्य की कथायें संक्षिप्त, ऐतिहासिक, अथं ऐतिहासिक, पौराणिक सभी प्रकार की हैं।

[लेख अपूर्ण है]

मनमोहन श्रप्रवाल

२८६. प्राचीन तमिल कवयित्री 'श्रीवे'; रमा कान्त जैन, जैसंशो., २६; ११.२.१९७१; २१२-२१३; हि० । प्रस्तुत लेख में तमिल भाषा की कवयित्री 'श्रीवे' पर तथ्यपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई है। २० शीरीराजन के नद्यों में 'श्रीवे' याद संप्रकाशित साधु कवयित्री तथा जन साधारण के

देश का कथन किया गया है। ग्रन्थ में १४ परिच्छेद हैं—१. परिचय २. वैदिक दर्शन ३. पुनर्निर्माण काल का दर्शन ४. भारतीय दर्शन के नास्तिक सम्प्रदाय (चार्वाक, जैन, बौद्ध) ५. साँझ और योग दर्शन ६. न्याय और वैशेषिक ७. पूर्व और उत्तर मीमांसाएं ८. अन्य सम्प्रदाय (तन्त्र—वैष्णव, शाक्त, शैव) ९. भारतीय दर्शन की संकीर्ण धाराएं (ब्रह्माकुमारी, आनन्दभार्य सम्प्रदाय) १०. प्राचीन दर्शनों का समन्वित रूप—दयानन्द सरस्वती का दर्शन ११. प्रकीर्ण दार्शनिक सम्प्रदाय (—बौद्ध और जैनतन्त्र, महेश योगी) १२. वैदेशिक दर्शन (गरसी, ईसाई और इस्लामी) १३. भारतीय दर्शन का इतिहास और साहित्य १४. भारतीय दर्शन का युगानुग दर्शन से सम्बन्ध। अन्त में ९ परिशिष्टों में कतिपय दार्शनिक विषयों के चित्र और स्पष्टीकरण आदि हैं। परिशिष्ट ९ में आधुनिक दार्शनिक विन्तन की प्रकृतियों में अरविन्द, गान्धी और सरस्वती के दर्शनों का परिचय दिया गया है। इस प्रकार इस में वेद से आज तक के वैदिक और अवैदिक, नास्तिक और नास्तिक देशी और विदेशी भारतीय दर्शनों का विवरण है। अन्त में नानों, विषयों और शब्दों की अनुक्रमणिका दी गई है। उपजीव्य पुस्तक सूची भी दी गई है।

अनिल कुमार गुप्त

२६६. महावीर स्वामी; अमरा, २२.५: ३. १९७१; १-२: प्रा: हि०। महावीर के उपदेशों में सात मूल प्रश्नों के श्लोक हिंदी अनुवाद सहित संकलित किये गए हैं। अनुप्य जन्म तब निजता है जब पापों का वेग कुछ कम हो जाता है और अन्तरात्मा मुक्ति को प्राप्त हो जाती है। प्राप्ति अन्त में कर्मों के अनुसार विभिन्न गौण जातियों—योनिओं में जन्म लेता है और दुःख भोगता रहता है। सत्कार इन जातियों से भरा पड़ा है।

सुधीर कुमार गुप्त

२६७. मेजा चांदनपुर के महावीर का; गजानन्द उद्योगिता; राय०, ११.४.१९७१; ३: ५-८; ४:

१-३; हि०। यह मेले के स्थान का वर्णन, एक भूमिगत प्रतिमा के चमत्कार से जनशः मन्दिर के निर्माण, प्रबन्ध सन्निधि और उस के कार्यों का विवरण है। यहाँ का मन्दिर हिन्दु-मुस्लिम निर्माण-कला का मिश्रित नमूना है। दीवारों पर जैन कथाओं के भित्तिचित्र हैं। इन की कला जयपुरी है। दस वेदियों में तीर्थंकरों की मूर्तियाँ हैं। मूल प्रतिमा लाल पत्थर की १४०० वर्ष पुरानी है। मन्दिर के प्रांगण में ५२ फीट ऊँचा नान स्तम्भ है।

अनिल कुमार गुप्त

२६८. युक्त्यनुशासनम् (उत्तरार्ध); ले. समन्त-भद्राचार्य; विवेचक: मूलचन्द शास्त्री; सम्पादक: भु. शीतलसागर; प्रस्तावना ले० दरबारी लाल कोठिया; प्र० श्री दि० जैन पुस्तकालय, सांगानेर; १९६६; २१५; १-००; समीक्षा; जैतेशो., २६; ११.२-१९७१; २२५; हि०। इस भाग में मूल रचना की ३६-६५ कारिकाओं के अन्वय, हि० अ० और भावार्थ दिये गए हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

२६९. रत्नाकरावतारिका भाग ३; ले० रत्न-प्रभ भूति; सम्पादक दशरथ लालबेरिया; प्र० ला० द० भा० विद्या मन्दिर, अहमदाबाद; १९६६; २३५; १-००; समीक्षा; जैतेशो., २६; ११.२-१९७१; २२३-२२४; हि०। यह "आचार्य वादिदेवमुक्ति मुक्तिद्वय न्याय ग्रन्थ, प्रमाण नयतत्वालोचन की टीका का तीसरा भाग है। साथ में मूल ग्रन्थ की राजशेखरकूरिकृत पत्रिका, जिनचन्द्रकृत टिप्पण तथा मुनि मलयविजयकृत गुजराती अनुवाद हैं। अन्त में ग्यारह उपयोगी परिशिष्ट और अनुक्रमणिकाएँ आदि हैं और प्रारम्भ में मालबेरिया जी की २४ पृष्ठ की विद्वत्तापूर्ण गुजराती प्रस्तावना है जिन में जैन प्रमाण विद्या-प्रमाण, नव. प्रमाण विषय, प्रमाण कल, प्रमाता आदि का, प्रमाणनय-तत्वालोचन-प्रमाणनय-व्याख्याकार के रूप में गुजरात में प्रमाण विद्या का प्रवर्तार, उस के टीका, टिप्पण आदि, कर्ता वादिदेवमुक्ति, उनकी

शिव्य परम्परा, टीकाकार, प्रस्तुत टीका आदि प्रायः समस्त सम्बन्धित विषयों पर प्रकाश डाला गया है ।'

सुधीर कुमार गुप्त

३००. राजस्थान के प्राचीन जैन साहित्यकार; चम्पालाल सिंघई; सस्मा०, १९७०; ११३-११६; हि० । इस निबन्ध में ले० ने राजस्थान के सकल-कीर्ति, ब्रह्म जिन दास, सोमकीर्ति, ज्ञानभूषण, ब्रह्म वृचराज, शुभचन्द्र, वीरचन्द्र, सुमतिकीर्ति, रायमल, रत्नकीर्ति, कुमुदचन्द्र, अमयचन्द्र, धर्मचन्द्र, सुरेन्द्र-कीर्ति, चन्द्रकीर्ति, नरेन्द्र कीर्ति, ब्रह्म धर्मसानी, ब्रह्म सुमतिसागर, त्रिभुवनकीर्ति, रत्नचन्द्र, ब्रह्म अजित, कल्याणकीर्ति, महीचन्द्र, ब्रह्म कपूरचन्द्र, हर्षकीर्ति, सकलभूषण, राजचन्द्र, ब्रह्म विद्यासागर, विद्या-भूषण, तानकीर्ति आदि जैन विद्वानों का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुये उनके ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है ।

शान्ता भानावत

३०१. रात्रिभोजन; इन्द्रलाल शास्त्री; प्र० इन्द्र एण्ड कम्पनी, जयपुर; १९६६; ६६; ०-६०; समीक्षा; जैसंशो., २६; ११.२.१९७१; २२८; हि० । ले० ने रात्रिभोजन के दोषों की युक्ति, दृष्टान्त तथा जैन और अजैन शास्त्रों के प्रमाणों द्वारा प्रकट किया है और जैनधर्म के रात्रिभोजननिषेध का औचित्य सिद्ध किया है ।

सुधीर कुमार गुप्त

३०२. रामकथा; ले० गुणभद्र जैन; सम्पादन पन्नालाल जैन; प्र० जैन साहित्य प्रकाशन, देहली; १९७०; ३२७; प्रमूल्य; समीक्षा; जैसंशो., २२; ११.२.१९७१; २२७-२२८; हि० । इस में विमल सूरि के पञ्चचरित, रविदेव के पञ्चचरित और स्वयंभू की रामायण की रामकथा को १६ सर्गों में लड़ी घौली हिन्दी पद्य में प्रस्तुत किया है । इस के ये भाग है । पूर्वार्द्ध में १२ सर्ग हैं और उत्तरार्द्ध में ४ सर्ग हैं ।

३०३. रहेल खण्ड कुमायुं जैन डायरेक्ट्री; संयोजक एवं संग्रहकर्ता; उग्रसेन जैन सम्पादक : ज्योति प्रसाद जैन; प्र० रहेल खण्ड कुमायुं जैन परिपद्, काशीपुर; १९७०; १७०; ५-००; समीक्षा; जैसंशो., २६; ११.२.१९७१; २२६; हि० । इस के प्रारम्भ में सम्पादक ने ३२ पृष्ठ की भूमिका में रहेल खण्ड-कुमायुं प्रदेश के जैन धार्मिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पर प्रकाश डाला है । डायरेक्ट्री ३ खण्डों में विभाजित है । प्रथम खण्ड में ४ लेख हैं, द्वितीय में इस क्षेत्र के लगभग ६० विभिन्न स्थानों के जैनों का पृथक्-पृथक्-विवरण, जनसंख्या आदि और तृतीय खण्ड में ६ परिशिष्टों में आवश्यक तालिकायें हैं । लगभग सौ चित्र हैं ।

304. Was It Permissible For a Saṁnyāsi (Monk) To Revert To Lay Life? Y. Krishan; ABORI., L. I-IV; 1969; 75-89; E. Indian law and customs did not permit a monk to become a house holder. Renunciation of layman's life is considered civil death and the monk is deprived of all types of civil rights. This is the case with Hindu, Jain and Buddhist monks. But in other Asian countries renunciation does not deprive monks of their civil rights. In Ceylon monks can own and inherit property. In Burma stress is laid on intention and hence temporary withdrawal from the world for celibacy has grown up recently. In China monks owned property. In Tibet monks can go back with their superior's permission, work over land and can own property. They can amass great wealth. Some are married openly. "Thus the legal and social systems of India and of the countries of Asia which were dominated by the religions and cultures of India, were quite different. This explains why the reversion of the saṁnyāsis and bhikṣus of India to lay life, the life of a house holder, was barred, but this was permissible, nay was frequent, in countries which cultivated the Indian institution of parivrajakas."

भारतीय विधिविधान संन्यासी की गृहस्थ में आने की अनुमति नहीं देते हैं । गृहस्थ से संन्यास

एण्ड वेस्ट' में जैन विषयक निर्देशों का उल्लेख किया गया है।

कस्तूरचन्द कासलीवाल

३१०. श्री चन्द्रलेखर पार्श्वनाथ दि. जैन प्रति-
शय-क्षेत्र का संक्षिप्त इतिहास; ले० सम्पादक
हरक चन्द सेठी; प्र० भूरामल गोधा, मन्वी क्षेत्र;
१९६६; ६०; १-००; समीक्षा; जैसंशो., २६;
११.२.१९७१; २३०; हि०। इस में शीर्षकगत
इतिहास के अतिरिक्त क्षेत्र सम्बन्धी पूजापाठ, स्तोत्र
और विनती आदि भी हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

३११. श्री रामसेन के गुह; चन्दलाल,
प्रतापगढ़; जैसंशो., २६; ११.२.१९७१; २१०-
२११; हि०। दिगम्बर सम्प्रदाय में रामसेन नान
के कितने ही आचार्य हो गये हैं लेकिन इन सबमें
सर्वाधिक ख्याति प्राप्त काष्ठा-संघ, मन्वी तट गच्छ
विद्यागुरु के प्रवर्तक रामसेन हुए जिन्होंने 'तत्त्वानु-
शासन' ग्रन्थ की रचना तथा नरसिंहपुरा जाति की
स्थापना की थी। ले० ने प्रस्तुत शोधलेख में
रामसेन के गुह के नाम पर विस्तृत तथ्यों के आधार
पर विचार किया है और अब तक प्रचलित नागसेन
के स्थान पर नोपसेन के नाम की सिद्धि की है।

कस्तूर चन्द कासलीवाल

३१२. समयसार; प्रवचनकार; स्व० गणेश
प्रसाद वर्गी; सम्पादक: पन्नालाल; प्र० गणेश
प्रसाद वर्गी ग्रन्थमाला, वाराणसी; १९६६; ४५६;
१२-००; समीक्षा; जैसंशो., २६; ११.२.१९७१;
२२५; हि०। इस में कुन्द कुंदाचार्य के समय प्राभृत
परवर्गी जी के माधवार प्रवचनों का संकलन है।
सम्पादकीय बालम्ब, प्रस्तावना, जगमोहननाथ के
प्राक्कथन के अतिरिक्त ५ परिशिष्ट भी हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

३१३. सर्वसमन्वयकारक ब्रह्मसंभार; मुजरा
मान गोस्वामी; विभा., ६.३; १९७० (२०२०
वि०); ६०; हि०। इस में विजापूर धर्म के मुख

शास्त्रों के और विज्ञान के चिन्तनों के समन्वय-
कारक ब्रह्मसंभार की संक्षिप्त व्याख्या है।

सुधीर कुमार गुप्त

३१४. सर्वोदय तीर्थ-जैन धर्म; वर्धमान
पार्श्वनाथ शास्त्री; साजसंस्मा., १९७०; ७३-७६;
हि०। समन्तभद्र ने अपने ग्रंथ 'युक्तानुशासन' में
जैनधर्म को सर्वोदयतीर्थ कहा है क्योंकि इसमें लोक
के सब जीवों के अन्वुदय का साधन प्रतिपादित
किया गया है। जैन धर्म में जीवात्मा को परमात्मा
बनने का अधिकार देते हुये स्पष्ट किया गया है कि
आत्मा स्वयं ही पुनर्पार्थ बन से स्वयं का उद्धार
करके परमात्मापद में पहुँच सकता है। इस धर्म
के दो भाग हैं। प्रथम आचारधर्म में अहिंसा, सत्य,
मंथम, तप, त्याग, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि का
और द्वितीय विचारधर्म ने अनेकान्त—स्याद्वाद का
प्रतिपादन किया गया है। धर्म में बताया गया है
कि संसार-दुःख का मूल मिथ्यादर्शन है जिसकी
निवृत्ति तत्र अज्ञानरूपी सम्बन्धन की प्राप्ति से
ही सभव है।

नरेन्द्र भानावत

३१५. साधना पथ की अमर साधिका; ले०
साध्वी सरला एवं साध्वी चन्दना; भूमिका अमर
मुनि; सम्पादक : श्री चन्द मुराना 'नरस'; प्र०
जैन महिला समिति, दिल्ली ६; प्रथम संस्करण
४.११.१९७०; ५-००; समीक्षा: अजित शुक्रदेव
थमर, २२.५; ३. १९७१; ३२-३३; हि०।
इस में महाकवी पन्नादेवी जी के जीवन चरित
की सफलता के साथ चित्रित करने का प्रयान किया
है। इन के प्रवचनों को भी संकलित किया गया है।

सुधीर कुमार गुप्त

३१६. साधुनागी जैन समाज : संक्षिप्त
दिग्दर्शन; देवकुमार जैन, पीणनेर; साजसंस्मा.,
१९७०; १-२४; हि०। साधुनागी समाज का
सुजापार नामु है जो अहिंसा, सत्य, प्रत्येक, श्रद्धा-
धर्म, दक्षिण, आदि २७ गुणों का प्रारम्भ होता

है। इस नाशुभमार्ग पर प्रवृत्ति करने वाले साधुमार्गी कहलाते हैं। जब-जब इस मार्ग में विकृति आई उसे दूर करने के लिये जो महापुरुष पैदा हुये वे इस संघ के अग्रुआ के रूप में विख्यात हुए। ऐतिहासिक अव्ययन की दृष्टि से प्राग् ऐतिहासिक काल में भगवान् ऋषभदेव ने अरिष्टनेमि तक २१ तीर्थङ्कर हुए और ऐतिहासिक काल में भगवान् पार्श्वनाथ, भगवान् महावीर और उसके बाद विभिन्न आचार्य हुए। भगवान् महावीर के बाद सुवर्मा के देवद्वि-गणि क्षमाश्रमण नामक २७ आचार्यों का परिचय है। देवद्वि गणि के बाद दो भिन्न पाठ परम्परायें चलीं। जान जो ऋषि के समय सोलहवीं शती में लोकावाह ने धार्मिक-सामाजिक क्रांति की और उनके उपदेश ने ४५० व्यक्ति दीक्षित हुये। १०० वर्ष बाद आचार में फिर शिथिलता आने पर वनमिह्वी, लवर्जा, आदि जैसे क्रियोद्धारक संत पैदा हुये। लेख के अन्त में इनकी परम्परा के नानानाल का परिचय दिया गया है।

नरेन्द्र भानावत

कृतांग के मूल रूप में नय-निक्षेप के भेदों का वर्णन नहीं मिलता पर गंकराचार्य ने अपनी वृत्ति में नय के सात भेदों नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरुद्ध और एवंभूत तथा निक्षेपों नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव का स्वरूप समझाया है, उसी के आधार पर लेखिका ने इनका तथा सप्त भंगी का परिचय दिया है।

नरेन्द्र भानावत

३१८. हिन्दी विश्वभारती विचार कक्ष (स्वावीन दिवस गोष्ठी); गिरवारी लाल व्यास; विभ०, ६. ३(१९७०; २०२७ वि०); ३२; हि०। दर्शन में तर्क और विश्वास का समन्वय होता है। विज्ञान दर्शन का ही साधन है। (यह गोष्ठी का प्रतिवेदन मात्र है)।

अनिल कुमार गुप्त

बौद्ध मत (Buddhism)

३१९. अद्वय और अद्वैत : एक समोक्षात्मक टिप्पणी; करगेश शुक्ल, गोरखपुर, भारत; गोपु-विशेषोप; १९६६-७०; १०-१५; हि०। प्रस्तुत

प्रस्तुत निदम्ब बुद्ध के आत्मा (पानि अन्ता-) विषयक मत को उल्लिखित करता है और व्यवस्था-दिष्ट करता है कि बुद्ध ने आत्मा के अस्तित्व का निषेध नहीं किया, अर्थात् उस ने केवल उस के अहम्, इन्द्रिय, गरीर प्रभृति के माध्यम विकल्पित तादात्म्य का निषेध किया।

कल्पेश शुक्ल

३२१. चीन की तुङ्, ह्वाङ्, बोद्ध गुफाओं की यात्रा; बॉरन इण्डिया देव वर्मा; विभाष., ११.१; ४.६.१२०; ७२-८४; हि०। लेख अपूर्ण है। इस में निरञ्जन प्रमाद, निदेशक पुरातत्त्वविभाग, भारत सरकार के साथ ले० के तुङ्, ह्वाङ्, गुफाओं में बोद्ध चित्रों के अध्ययन के लिए की गई यात्रा का विवरण है। ले० ने इस यात्रा में 'हाउ टु रीक चाइनीज' से बहुत सहायता प्राप्त की और केंदन में सन्-यात-देव का स्मारक, कम्प्लेक्स का प्राचीन मन्दिर, अनायववर, प्राचीन सम्राटों के विस्तृत चौहद्दी वाले राजप्रमाद, उत्तरो-सि उपवन, व्हाइट पेंगोज, ऐतिहासिक प्रदर्शनालय और टेम्पल ऑफ़ हैवन आदि स्थान देखे।

राम कुमार गुप्त

322. Diñnāga's Remarks on the Concept of Anumeya; Bimal Krishna Matilal, Associate Prof., Deptt. of East Asian Studies, Univ. of Toronto, Toronto 5, Ontario Canada; UMCV., 1970; 151-160; E. The present paper gives an elucidation to the views of Diñnāga with regard to anumeya as enunciated in his now lost Pramāṇasamuccaya on the basis of four verses of this work quoted in the Nyāya-Vārtika-tātparyāṭīkā and explained in Diñnāga's Svavṛtti survived in its Tibetan translation. The author presents an explanatory translation of these four verses, discusses their interpretation by Uddyotakara, Randle and others and shows that they have misunderstood and misinterpreted Diñnāga's views. Diñnāga regards inference as a function of three terms. He holds that "the invariable connection of the inferential mark, smoke, with the property fire is seen in

other places; and the inferential mark, being well established in such other places, leads us to infer the present property-possessor (dharmin), viz., the mountain, possessing the property fire."

यह लेख तिब्बती अनुवाद में उपलब्ध दिङ्नाग की स्ववृत्ति में व्याख्यात, न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका में उद्धृत दिङ्नाग के अथ लुप्त प्रमाणसमुच्चय की चार कारिकाओं के आचार पर इस (प्रमाण समुच्चय) में वर्णित दिङ्नाग के अनुमेय सम्बन्धी विचारों का स्पष्टीकरण करता है। ले० इन चार कारिकाओं का व्याख्यापरक अनुवाद देता है, उद्योतकर, रेण्डल और अन्यो के इन (कारिकाओं) के भाष्यों की समीक्षा करता है और दिखाता है कि उन्होंने ने दिङ्नाग के विचारों को अशुद्ध रूप में समझा और व्याख्यात किया है। दिङ्नाग अनुमेय के तीन आचार मानता है। उस का मत है कि "धर्म अग्नि के साथ अनुमानिक चिह्न धूम का सतत सम्बन्ध अन्य स्थानों पर भी देखा जाता है; और इन अन्य स्थानों में अनुमानिक चिह्न मत्ती-नांति सिद्ध होने के कारण प्रस्तुत वर्मा—अग्नि गुण वाले (अग्निमान्) पर्वत का अनुमान करा देता है।

सुधीर कुमार गुप्त, कल्पेश शुक्ल

३२५: भारतीय दर्शन के सम्प्रदाय; सुधीर कुमार गुप्त, प्रवाचक, सं० वि०, राज० वि० वि०, जयपुर; भाष्यप्रसा., १९६६; १६ अ+२२५+४५; ५-००; ६-००; ७-५०; हि०।

३२३. मूल सांख्य भाष्या की पोथी 'काम्पा चाता'; राही कौण्डिन्य; शोष०, २१.३; ७, ८. १२७०; ३६-४२; हि०। 'काम्पा चाता' का अर्थ कल्प का इतिहास है। इस की पाश्चिमिनि नारायण पुर, उत्तर-मत्तीनपुर (धम्म), बरसान्धि गाव, बोद्ध विशार में है। इस में मारिपुत्र ने बुद्ध से सृष्टि विज्ञान के बारे में प्रश्न किया है। उन के उत्तर में बुद्ध ने कल्प का इतिहास कहा है।

सुधीर कुमार गुप्त

324. Life in North-Eastern India in Pre-Mauryan Times (with special reference to C. 600 B. C.—325 B. C.); Madan Mohan Singh; Pub. Motilal Banarasi Das, Delhi; 1967; xxv-308; 25-00; Rev. Thomas R. Trautmann; **JRAS (GBI)**; 1. 1970; 83; E. It gives a descriptive account of life in the majjhima desa of the Buddhists between the times of the Tathāgata and the advent of the Mauryan Empire. Its main source is the Pāli Canon including the Jātakas. It also draws on Jain and Brāhmaṇical sources. The author gives very useful and interesting collections of data on topics of which we have less detailed knowledge.

यहाँ तथगत और भौरी साम्राज्य की स्थापना के बीच के काल के बौद्धों के मज्झिम देश के जीवन-वृत्त का वर्णन है। इस का प्रमुख आधार जातकों सहित पालि धर्म-साहित्य है। इस ने जैन और ब्राह्मण स्रोतों का भी प्रयोग किया है। ले० ने ऐसे विषयों पर बहुत उपयोगी और रोचक आधार-सामग्री दी है जिन पर कम विस्तृत ज्ञान उपलब्ध है।

प्रोतिप्रभा गोयल, अनिल कुमार गुप्त

304. Was It Permissible For a Samnyāsi (Monk) To Revert To Lay Life?; Y. Krishna; **ABORI**, L. I-IV; 1969; 75-89; E.

325. The Vedānta Philosophy as was Revealed in Buddhist Scriptures; Nākāmurā Vidyā Vācaspati, Tokyo Univ., Japan; **Pañcāmṛtam**, 1968; 1-74; E. Vedānta (V.) is rivalled by Buddhism. Originated in Upaniṣadic thoughts which it endeavours to systematise, some systems of V. have been greatly influenced by Buddhism. Buddhists, however, pay little or no attention to it and do not regard it as an important school. A study of references to Vedāntavādins and Aupaniṣads (or Aupaniṣadika) minutely criticised in Chinese translated Buddhist canon helps in the organisation of a summary outline of the history of the development of early V. thought. Early Buddhist canon does not mention Upaniṣad-, but describes ideal Aupaniṣada

wandering priests. Widely prevalent ideas similar to those of the Upaniṣads are mentioned and then rejected. The V. school had not yet been formulated. In the Buddhist technical treatises of the period of sectarian antagonism, passages from the Brāhmaṇas and Upaniṣads are quoted and the phrase 'The Vedas say' has been used. The Vedāntic thought of this age seems to be the amalgamated thought of both the V. and the Sāṃkhya. In some what later centuries, the Mahāyāna Sūtras refer to the thought of the Upaniṣads and the V. as heretical doctrines. These Sūtras have sometimes been influenced by the Vedāntic thought. Nāgārjuna is not indebted to the Upaniṣads He appears to have influenced the V. Āryadeva's Śāstra has presented Upaniṣadic and orthodox Brāhmaṇical ideas in details. Maitreyanatha has discussed the views of the Īśvarādikāraṇavādins who come closest to the V. He and other Yogācāra scholars have not mentioned V. Bhavya has described and criticised the V. philosophy of his day. The author presents this description as he has done in the case of preceding cases cited above and concludes that the Vedāntic doctrines treated by Bhavya indicate no other outstanding traces of an advance in thought to be seen in the Upaniṣadic doctrines. The Vedāntins were forming a new philosophical system based upon the Upaniṣadic canon which was regarded as an absolute authority. The author finally observes that the picture of V. school gathered from Buddhist sources is in remarkable agreement with that drawn from Jain sources.

बौद्ध मत वेदान्त (वे०) का प्रतिद्वन्द्वी है। वे० औपनिषद विचारों से उद्भूत हुआ। यह इन विचारों को सुव्यवस्थित करने का प्रयास करता है। तथापि वे० की कुछ संस्थाएं बौद्धमत से बहुत प्रभावित हैं। परन्तु बौद्ध वे० पर बहुत कम श्रवण का कोई व्यन नहीं देते हैं और इसे महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय नहीं मानते हैं। चीनी में अनुदित बौद्ध शास्त्रों में सूक्ष्मता से निराकृत वेदान्तवादियों और औपनिषदों

(या श्रीपनिपदिक) के उल्लेख प्रारम्भिक वे. विचार के विकास के इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा के निर्माण में सहायक हैं। प्राचीन बौद्धशास्त्र उपनिषदों का उल्लेख नहीं करते हैं, परन्तु आदर्श श्रीपनिपद घुमवकड़ पुरोहितों (=संन्यासियों) का वर्णन करते हैं। उपनिषदों से मिलते-जुलते सुप्रचलित विचारों के उल्लेख और खण्डन किए गए हैं। वे० सम्प्रदाय अभी निर्मित नहीं हुआ था। साम्प्रदायिक वैमनस्य के युग के बौद्ध शास्त्रों ने ब्राह्मणों और उपनिषदों से अंश उद्धृत किए हैं और 'वेद कहते हैं' पदावली का प्रयोग किया है। इस काल का वेदान्त चिन्तन वे. और सांख्य के विचारों का मिश्रित रूप है। कुछ पिछली शक्तियों में महायान सूत्रों ने उपनिषदों और वे. के विचारों को नास्तिकवाद कहा है। अनेकशः इन सूत्रों पर वेदान्त का प्रभाव पड़ा है। नागाजुन उपनिषदों का ऋणी नहीं है। उसने वे. को प्रभावित किया मालूम पड़ता है। आयंदेव के शास्त्र ने उपनिषदों और आरितक ब्राह्मण विचारों को विस्तार से दिया है। मंत्रेयनाथ ने वे० से मिलते-जुलते ईश्वरादिकारणवादियों के विचारों का विवेचन किया है। उसने और योगाचार के अन्य आचार्यों ने वे. का उल्लेख नहीं किया है। भव्य ने अपने कान के वे० दर्शन का वर्णन और आलोचना किए हैं। ले० उस के वर्णन को प्रस्तुत करता है, जैसा कि उसने ऊपर वर्णित स्थितियों में किया है और निष्कर्ष निकाला है कि भव्य द्वारा वर्णित वेदान्त निदान्त में श्रीपनिपद मतों में उल्लेख विचारों में विकास का कोई प्रमुख इंगित नहीं है। वेदान्ती उपनिषदों को परम प्रमाण मानते थे और उन के आधार पर एक नया दार्शनिक सम्प्रदाय रचा कर रहे थे। अन्त में ले० का कहना है कि बौद्ध लोगों ने प्राप्त वे० सम्प्रदाय का चित्रण जैन श्रोतों में प्राप्त दर्शन से विशेषण समानता रखता है।

सुधीर कुमार गुप्त

३२६. शङ्कर और नागार्जुन का तुलनात्मक अध्ययन; करुणेश शुक्ल; गोरखपुर वि० वि० की पी-एच० डी० उपाधि के लिये स्वीकृत शोध-प्रबंध; १९६२; हि०। प्रस्तुत ग्रन्थ में अद्वैत वेदान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य शङ्कर एवं बौद्ध माध्यमिक अद्वयवाद के संस्थापक आचार्य नागार्जुन के दार्शनिक सिद्धान्तों की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। बौद्धवाद और ब्राह्मणवाद के सम्बन्ध एवं उन की समान वैदिक पृष्ठभूमि का विवेचन कर यह प्रतिपादित किया गया है कि शङ्कर को प्रच्छन्न बौद्ध कहना उनके अद्वैतवादी श्रीपनिपद दृष्टिकोण के वास्तविक स्वरूप के आकलन का अभाव मात्र है। वस्तुतः ये पूर्णतः श्रीपनिपद परम्परा के पोषक थे। नागार्जुन तथा उन के पूर्वगामी बुद्ध भी वैदिक परम्परा से प्रभावित रहे। नागार्जुन और शङ्कर की परम्परा और सरणि में भेद है, तत्त्वदर्शन की व्याख्यान-पद्धति में भेद है। तत्त्वबोध की दृष्टि से कोई मौलिक भेद उनके दर्शनों में नहीं है।

करुणेश शुक्ल

327. *Some Missing Portions of the Gotra Bhūmi*; Karunesh Shukla, Deptt of Skt, Univ. of Gorakhpur, Gorakhpur; UMCV., 1970; 129-137; E. The paper analyses the main contents of Gotrabhūmi (a part of, Śrāvaka-bhūmi of Yogācārabhūmiśāstra of Asaṅga) into 1. Prefatory remarks 2. definition of gotrabhūmi 3. definition of gotra 4. eight causes of the non-acquisition of Nirvāṇa 5. marks of pudgālas in the gotra stage and the gotra-bhūmi. These have further been analysed in details. A sufficient portion of the contents of gotra bhūmi is missing from the solitary mss. of this work. The author presents the reconstructed Skt. text of this missing portion on the basis of the Tibetan translation, adding footnotes, where necessary.

इन में (अन्य के गोत्राधारभूमिशास्त्र की धावकभूमि के एक घटा) गोत्रभूमि के मुख्य विषयों

का १. प्रस्तावना २. गोत्रभूमि और ३. गोत्र की परिभाषा ४. निर्वाण की अप्राप्ति के आठ कारण ५. गोत्रावतार और गोत्रभूमि में पुद्गल के लिंगों में विभाजन किया गया है। इन सब का पुनः सविस्तार विश्लेषण दिया गया है। इस कृति के एक मात्र हले. में से गोत्रभूमि के विषयों का पर्याप्त अंश लुप्त है। ले. ने यथावश्यक पाठि. देते हुए तिब्बती अनुवाद के आधार पर इस लुप्त अंश का संस्कृत में पुनर्निर्माण करने का प्रयास किया है।

सुधीर कुमार गुप्त, प्रीतिप्रभा गोयल

328. *Studies in the Buddhistic Culture of India* (during the 7th and 8th Centuries A. D.); Lalmani Joshi; Pub. MLBD; 1967; i-xli-538; 30-00; Rev. V. M. Bedeker; ABORI., L. 1-IV; 1969; 133-135; E. The work purports to present authentic materials for the historical construction and critical appreciation of some aspects of Buddhistic culture in India during the 7th and 8th centuries A. D. The subject and the period elected by the author are highly significant and meritorious from the point of view of the cultural history of India. It was the age when some master minds were struggling hard for the defence of their doctrines. The work deals with a variety of topics (list given in the review). The author has based his study on Chinese records, Tibetan annals and Indian literary and archaeological sources. Notes and references have been given at the end of each chapter in support of the statements made there. There are a very detailed bibliography and an index of proper names. The author has advocated some controversial views about the decline of Buddhism and the date of the origin of the Upaniṣads.

इस रचना का लक्ष्य ७ वीं और ८ वीं शती ई० के मध्य भारत में बौद्ध संस्कृति के कुछ पक्षों का ऐतिहासिक पुनर्गठन और गुणसमीक्षा है। ले० द्वारा चुना गया यह विषय और काल भारत के सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से निजान्त अत्यंत महत्त्वपूर्ण और गौरवनाली है। यह वह समय था, जब कुछ प्रबुद्ध विचारक अपने सिद्धांतों की रक्षा के लिए कड़ा

संघर्ष कर रहे थे। इस में (समीक्षा में दिए गए) विविध विषयों का विवेचन है। ले. ने अपने अध्ययन का आधार चीनी अभिलेखों, तिब्बती इतिवृत्तों और भारतीय साहित्यिक एवं पुरातत्त्व सम्बन्धी स्रोतों को बनाया है। मूल में दिए गए सिद्धान्तों के अनुपोषण में प्रत्येक अध्याय के अन्त में टिप्पणियाँ एवं सन्दर्भ दिए गए हैं। बहुत विस्तृत पुस्तक-सूची में व्यक्तियों की तालिका भी है। ले० ने बौद्ध धर्म की क्रमशः अवन्ति और उपनिषदों की उत्पत्ति के समयनिर्धारण के सम्बन्ध में कुछ विवादास्पद मत प्रतिपादित किए हैं।

सुधीर कुमार गुप्त, प्रीतिप्रभा गोयल
(Sāṃkhya)

329. *On the Interpretation of a Kārikā of Īśvara-kṛṣṇa*; V. Varadachari; Reader in Skt., Sri Venkateswara Univ. College, Tirupati (A.P.); UMCV., 1970; 81-85; E. In this paper the 6th verse of the Sāṃkhya Kārikā (viz. सामान्यतस्तु हृष्टदतीन्द्रियाणां प्रसिद्धिरनुमानात्) has been interpreted afresh and the scope of the three means of acquiring valid knowledge—Perception, Inference and authority has been discussed. The Author accepts Umesh Mishra's interpretation of this verse and attempts its explanation. He finally concludes: 'The interpretation that is offered here to this kārikā shows that both pramāṇavyavasthā and pramāṇasamplava should apply here. The restricted employment of the three pramāṇas cannot apply to the vyakta, avyakta and jñā of the Sāṃkhya reality and so pramāṇa-vyavasthā cannot fully apply. While vyakta is cognised by perception and inference, avyakta could be apprehended only by inference and the self is to be known only through Āgama. There is, therefore, pramāṇa-vyavasthā in the case of avyakta and self and pramāṇa-samplava is applicable to avyakta alone'.

प्रस्तुत लेख में ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका की छठवीं कारिका की पुनः व्याख्या कर प्रत्यक्ष, अनुमान और आप्तगम—इन तीन प्रमाणों के

क्षेत्र पर भी विचार किया गया है। ले. ने उमेश मिश्र के भाष्य को स्वीकार करते हुए उस की व्याख्या की है और अन्तिम निष्कर्ष निकाला है कि "इस कारिका का यहां जो भाष्य किया गया है उस से स्पष्ट है कि प्रमाणव्यवस्था एवं प्रमाण-संप्लव दोनों ही यहां लागू होने चाहिए। सांख्य सत्ता के व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ पर तीन प्रमाणों का सीमित प्रयोग नहीं किया जा सकता, अतः यहां प्रमाण-व्यवस्था पूर्णतः लागू नहीं हो सकती है। जब कि व्यक्त को प्रत्यक्ष और अनुमान से जाना जाता है, अव्यक्त को केवल अनुमान से ही, और आत्मा को केवल आगम से ही जाना जा सकता है। अतः अव्यक्त और आत्मन् के ज्ञान में प्रमाण-व्यवस्था एवं केवल व्यक्त के ज्ञान में प्रमाणसंप्लव का प्रयोग किया गया है।"

सुधीरकुमार गुप्त, करुणेश शुक्ल, प्रीतिप्रभा गोयल

३३०. क्या उपनिषद् सांख्यपरक हैं; रमेश चन्द्र, दर्शन वि०, राज० वि० वि०, जयपुर; तत्त्व-चिन्तन, ३.२.४. १६७१; १०६-११६; हि०। साधारणतः सभी मुख्य एकादश या त्रयोदश उप-निषदों और विनोपतः श्वेताश्वतर सांख्य परक नहीं है, अपितु वे अद्वैतपरक है। श्वेताश्वतर में सांख्य मत वाले कपिल और सांख्य का नाम देखकर और अन्य तत्त्वों की भी चर्चा देखकर इसे सांख्य का उत्तम स्थल मान लेते हैं। यह ठीक नहीं। इस उपनिषद् की मूल दृष्टि अद्वैत परक ही है। यहां प्रकृति पुरुष के अधीन है उसी का सृजन है। यह पुरुष सांख्य का निष्किय पुरुष नहीं है, वरन् यही ब्रह्म है, महेश्वर है और प्रकृति इसी से उत्पन्न एक सत्ता है। यहां कपिल का हिरण्यगर्भ और सांख्य का प्रथम मान हैं। यहां जैकोधी के इस मत का भी उल्लेख किया है नवा है कि सांख्य भौतिकवाद से उत्पन्न हुआ है।

रमेश चन्द्र

२६७. जैन ग्रन्थों में तत्कालीन प्रचलित

भिन्न-भिन्न दार्शनिक विचारधाराएं; जितेंद्र जेटली; सस्मा०, १७६०; ३२-३५; हि०।

२६५. भारतीय दर्शन के सम्प्रदाय; सुधीर कुमार गुप्त, प्रवाचक, संवि०, राज० वि० वि०, जयपुर; भामशशा०; १६६६; १६६+२८८+४३; ५-००; ६-००; ७-५०; हि०।

331. *Sāṃkhya And The Taoism of Ancient China.*, Anima Sen Gupta, Patna (Bihar); *JOI.*, XIX. 3; 3. 1970; 228-233; E. The author brings out several points of similarities in the naturalistic traits between the philosophies of Sāṃkhya and Taoism, particularly, in the conception of Prakṛti and Tao, and evolution, dissolution, and newness of creation. Some points of difference, like the plurality of souls and salvation have also been made. Sāṃkhya influence on Taoism is not altogether ruled out, even though Sāṃkhya philosophers have never been missionaries.

ले० ने सांख्य और ताम्रो दर्शनों की प्राकृतिक प्रवृत्तियों में, विशेष रूप से प्रकृति और ताऊ की तथा सृष्टि के विकास, प्रलय और नवीनता की परिकल्पनाओं में अनेकों समानताएं दिखाई हैं। भेद के कुछ बिन्दु, तथा आत्माओं का बहुत्व एवं मोक्ष भी उल्लिखित किये गये हैं। यद्यपि सांख्यिक कभी भी प्रचारक नहीं रहे हैं, तथापि ताम्रो दर्शन पर सांख्य के प्रभाव का नितान्त निषेध नहीं किया जा सकता है।

सुधीर कुमार गुप्त, प्रीतिप्रभा गोयल
योग (Yoga)

३३२. प्रार्थना योग : जगत्कुमार शास्त्री, दिल्ली; आ. मा., ५०.२१; १.१.१६७१; २-४; हि.। "आत्मचिन्तन और ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना के कर्मसमुच्चय को ही सन्ध्या, ब्रह्मयज्ञ या प्रार्थना-योग कहते हैं।" इस का हृदय से सतत अनुष्ठान करने से सत्य, गानन्द, आत्मपिरवाप्त्यारि उत्तम लाभ प्राप्त होते हैं। अन्त में प्रार्थना के पाठ दिए गए हैं।

प्रतिज्ञा कुनार गुप्त

३३३. ब्रह्मयज्ञ; रामेश्वरदयाल गुप्त, त्रिसिपल टेलीकॉम ट्रेनिंग सेंटर, आदर्शानगर जयपुर-४; आर्यों का वैतवाद, १.२; १.२.१६७१; १-१५३ (= १५४); हि. । इस में सन्या की आदर्शकता और महत्त्व, आर्यों के लान और चक्ति ओऽन् और गायत्री का महत्त्व, वैदिक सन्या के मन्त्रों की ऋषिद्वय व्याख्या, हिन्दी गद्य और पद्य में अनुवाद, उन पर विचरद टिप्पणियाँ, प्राणायाम और योग का विवेचन किया गया है । ले. मानते हैं कि मन्त्रों को वैज्ञानिक ढंग से प्रयुक्त करने पर विशेष लाभ होता है क्यों कि इस में मन विज्ञानमय कोष में और बुद्धि आनन्दमय कोष में प्रवेश करता है । ईश्वरमक्ति जड़ की पूजा नहीं है । इस में स्वाहा और योग शक्तों, सात व्याहृतियों, शरीरस्य दस वायुओं, नेत्रि आदि पद कर्मों, नासदीय सूक्त के उत्त्व, सगुणानिर्गुणोपासना और न्यून का स्वरूप आदि पर नी विचार प्रस्तुत किए गए हैं ।

सुधीरकुमार गुप्त

२६५. भारतीय दर्शन के सन्प्रदाय; सुधीर कुमार गुप्त, प्रवाचक, सं.वि., राज. वि. वि., जयपुर; मानग्रशा., १६६६; १६प्र०-२२२+४आ; ५-००; ३-००; ३-५०; हि. ।

२६. योग; स्वा. भगवदाचार्य; गुप. २३. १-२; ६-१०.१६७०; ४७-४६; सं. ।

३३४. यौगिक योगपद्धति शंख प्रसालन; त. घ., १.१; १.१.१६६२; ३३-३५; हि. । इस में हठयोग की प्रक्रिया शंखप्रसालन (या वारिदार) की विधि और प्रभाव के वर्णन हैं । कुछ गरम पानी में थोड़ा सा सैदा नमक डाल कर कागसल पर बैठ कर दो गिलास पानी पी कर समासन, ऊर्ध्वहस्तोत्तानासन, कटिचक्रासन और उदराक्रासन में शीघ्र में सक्रम पानी के प्राने तक इन क्रियाओं को पुनः पुनः करने हुए उदरशुद्धि करे । इन क्रिया के बाद ठण्डा पानी पीए और विधिवत् भोजन करे । इस में प्रत्येक रीति की निवृत्ति होती है ।

सुधीर कुमार गुप्त

न्याय (Nyāya)

335. On Some Important Citations in the Nyāyamañjarī of Jayantabhaṭṭa; H. G. Narahari, Deptt. of Linguistics, Univ. of Poona, Deccan College, Poona 6; UMCV., 1970; 111-113; E. Jayantabhaṭṭa has referred to the views of the five ancient writers—Bhartṛmītra, Ravigupta, Rājā, Śaṅkaraśvāmin and Govinda Śvāmin who were respectively a Mīmāṃsaka, a Buddhist, a Sāṅkhyāite, a pravaramatānuyāyī and an ascetic. Works of these authors are now lost. The author refers to the views of these writers as gathered from Jayantabhaṭṭa. He also suggests an identity of Govinda Śvāmin with the preceptor of Śaṅkara and poses a problem: "Could Jayantabhaṭṭa be alluding to him".

जयन्त भट्ट ने पांच प्राचीन ले.—भर्तृनित्र, रविगुप्त, राजा, शंकरस्वामिन् और गोविन्दस्वामिन् के मतों का निर्देश किया है । ये क्रमशः मीमांसक, बौद्ध, सांख्यिक, प्रवरमतानुयायी और मुनि थे । इन ले. की रचनाएं अब लुप्त हो चुकी हैं । ले. ने जयन्तभट्ट से प्राप्त इन लेखकों के मतों का उल्लेख किया है । वह गोविन्द स्वामी का शंकर के आचार्य से तदात्म्य मुन्ताता है और सनस्या उताता है कि "क्या जयन्तभट्ट उस (शंकर के गुन) की ओर संकेत कर रहा है ?"

सुधीर कुमार गुप्त, करणेश गुप्त

336. The Causal Relation; P. S. Sastri, Hd. E. Deptt., Nagpur Univ., 358. Azad Road, Gandhi Nagar, Nagpur; UMCV, 1970; 115-127; E. In the light of Indian view-point the author elucidates the different aspects of cause-effect relation. According to him the causal relation is one of identity-indifference. Effect is a manifestation of the cause. The paper examines how this manifestation takes place. In this connection the author conceives several possibilities, examines them and rejects them. It can not be maintained 1. that the manifestation of effect has no cause; 2. that the effect in its entirety is latent in the cause; 3. that the manifestation is

identical with the effect manifested; 4. that cause and effect are non-different; 5. that non-difference is non-different or is both different and non-different; 6. that essence of cause and effect is in their difference; 7. that cause and effect are similar; 8. that existence of effect prior to its production cannot be denied. The effect has in it the nature of cause and not vice-versa. Cause and effect do not involve the transformation of the one into the other. Ultimately speaking there is no distinction between cause and effect. The effect is non-existent apart from the cause. In some cases effect has no relation to cause nor it has an independent existence. Effect is perceived on the existence of cause. Prior to its origination the effect is non-distinct from cause. The cause and its manifestation are not mutually identical. The identity of cause with itself is the only valid idea. This cause is the Absolute or Reality. All distinctions, which are unreal in essence, appear till the identity of Absolute is realised. This is the satkāraṇavāda. Here effect is an inexplicable appearance of the cause. Being is the nature of cause, cause is the invariable antecedent being. Neither being nor non-being can be the cause. The cause is only the invariable antecedent which must exist. Since the effect is not related to it, it is a case of vivarta, an appearance which is an inexplicable effect.

न. ने नारत्तीय विचारों की दृष्टि में कार्य-कारण सम्बन्ध के विभिन्न पक्षों का स्पष्टीकरण किया है। उन के मत में कार्य-कारण सम्बन्ध भेद में अभेद का है। कार्य कारण की एक अभिव्यक्ति है। न. ने इस अभिव्यक्ति के होने के प्रकार का विवेचन किया है। इस संदर्भ में न. ने वदुन मी सम्भावनाएँ की हैं, उन की परीक्षा की है और उन का निराकरण किया है। वह नहीं माना जा सकता १. कि कार्य की अभिव्यक्ति का कोई कारण नहीं है; २. कि कार्य अपने नम्र पक्ष में कारण में निहित है; ३. कि अभिव्यक्ति का अभिव्यक्त कार्य से तादात्म्य है; ४. कि कारण और

कार्य अभिन्न हैं; ५. कि अभेद अभिन्न है वा दोनों ही भिन्न और अभिन्न हैं; ६. कि कार्य और कारण का सार वा तत्त्व उन के भेद में है; ७. कि कारण और कार्य समान हैं; ८. कि उत्पत्ति से पूर्व कार्य की सत्ता का निषेध नहीं किया जा सकता है। कार्य में कारण की प्रकृति तो है, परन्तु इस का उलटा नहीं है। कारण और कार्य में एक का दूसरे में रूपांतरण नहीं होता है। अन्ततः गत्वा कारण और कार्य में कोई भेद नहीं है। कारण से प्रत्येक कार्य प्रसूत है। कुछ अवस्थाओं में कार्य का कारण से कोई सम्बन्ध नहीं है, न ही इस की स्वतन्त्र सत्ता है। कार्य कारण की सत्ता पर ही लक्षित होता है। अपनी उत्पत्ति से पूर्व कार्य कारण से अभिन्न होता है। कारण और उस की अभिव्यक्ति का परस्पर तादात्म्य नहीं है। कारण का अपने आप से तादात्म्य ही एक मात्र यथार्थ भाव है। यह कारण ही चरम वा सत्ता है। चरम के तादात्म्य के अनुभव तक ही तत्त्वतः प्रसूत समस्त भेद दृष्ट होते हैं। यही सत्कारणवाद है। यहाँ कार्य कारण की अभिव्यक्तनीय अभिव्यक्ति है। सत्ता कारण की प्रकृति है और कारण सत्ता का नियत पूर्ववृत्त है। न सत् और न प्रसूत कारण ही सकते हैं। कारण एकमात्र नियत पूर्ववृत्त है जिस का सत्ता में होना अनिवार्य है। क्यों कि कार्य इस में सम्बद्ध नहीं हैं, यह विवर्त का रूप है—एक अभिव्यक्ति जो अभिव्यक्तनीय कार्य है।

सुधीर कुमार गुप्त, कच्छीयत गुप्त

322. Diñāga's Remarks on the Concept of Anumeya; Bimal Krishna Mañjal, Associate Prof., Deptt. of East Asian Studies, Univ. of Toronto, Toronto 5; Ontario Canada; UMCV., 1970; 151-160; E.

३३३. नरत्तीरोमनिदीया (नरत्तीयावः); N. K. Ramanuj Tatachariar, Siromani Skt. Pl., SML; JTMSSML, XXIV.2; 1971; 1-8; 7.1 एवं ह्यो रपुनापीरोमनिदीयावत्तयुवस्य नरत्तीयावत्तय दीयाति। एष नरो वे निषेधानार-

विरोध-निवारण-प्रत्यादेश-व्युदासादयोऽर्थाः सन्ति, तेषां सूक्ष्मभावान् निश्चितं समुचितेषु प्रकरणेषु तत्प्रयोगान् प्रदर्शयति टीकाकारः ।

इम रचना में रघुनाथ जिरोमणि की दीविति के अक्ष नञ्-अर्थवाद की टीका है। यहाँ टीकाकार ने नञ् के निषेध, अभाव, विरोध, निवारण, प्रत्याख्यान और व्युदास आदि अर्थों के सूक्ष्म भावों का निर्णय कर समुचित प्रकरणों में उस के प्रयोगों को दिखाया है। (सम्पादकीय विवरणके आधार पर)

सुधीर कुमार गुप्त

३३८. न्यायदर्शने त्रिलोचनमतविमर्शः ; किशोरनाथ झा, मोनियर रिसर्च फ़ैलो (यू.जी.सी.), कामेश्वरसिंह दरभंगा सं.वि.वि., दरभंगा; उनकव., १९७०; २०७-२१४; सं. । त्रिलोचनः स्वसमयस्य प्रसिद्धतमनेत्याधिक इत्यनुमीयते । अस्य न कापि कृतिरद्योपलभ्यते । वाचस्पतिज्ञानश्रीमित्ररत्नकीर्ति-दुर्वेकमिश्रानिरुद्धरस्य मतान्युद्धृतानि । अत्र लेखकेन ज्ञानश्रीमित्रस्य निबन्धावली विविधेषु प्रसङ्गेषु समागतान्येतस्य मतानि समुपस्थापितानि सन्ति । त्रिलोचनः बौद्धानां पदार्थानां भावानां च क्षणिकत्वं निराकरोति । क्षणिकवादिनः प्रत्यक्षप्रमाणेन व्याप्ति-मुपपादयितुमाकारयति । ईश्वरसिद्धिविधौ धर्मकीर्त-बौद्धदार्शनिकस्य युक्तिनिवृत्तं निरस्य प्रमाणतर्कान्यां स्वमतं परिष्करोति । ईश्वरस्य सर्वज्ञत्वं च प्रतिपा-दयति ।

त्रिलोचन अपने काल के सर्वप्रसिद्ध नैयायिक थे यह अनुमान लगाया जाता है। इस की अब कोई रचना उपलब्ध नहीं है। वाचस्पति, ज्ञानश्रीमित्र, रत्नकीर्ति, दुर्वेकमिश्र और अनिरुद्ध ने इस के मत उद्धृत किए हैं। यहाँ ले. ने ज्ञानश्रीमित्र की निबन्धावली में त्रिभिन्न प्रसंगों में आए इस के मत प्रस्तुत किए हैं। त्रिलोचन बौद्धों के पदार्थों और भावों की क्षणिकता के मत का खण्डन करता है। क्षणिकवादी प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा व्याप्ति को निरुद्ध करने का प्रयास करते हैं। ईश्वर की सिद्धि में

धर्मकीर्त नामक बौद्ध दार्शनिक के तर्कों को काट कर प्रमाणों और युक्तियों से अपने मत का परिष्कार—स्थापना करता है और ईश्वर की सर्वज्ञता को सिद्ध करता है।

सुधीर कुमार गुप्त

२९५. भारतीय दर्शन के सम्प्रदाय ; सुधीर कुमार गुप्त, प्रवाचक, सं.वि., राज. वि. वि., जयपुर ४; भासग्रशा., १९६९; १६अ+२८८+४आ; ५-००; ६-००; ७-००; हि. ।

339. Lost and Little Known Nyāya Works; Anant Lal Thakur, Vaiśālī, Muzaffarpur, India; *Rtam*, I. 2; 31-38; E. The present paper gives us valuable information regarding some unknown, unpublished, or lost Nyāya works, tracts or commentaries. The existence of ten Nyāya sub-schools has also been mentioned. Of the less known or lost works, *Tattvaṭīkā* of Aviddhakarna, *Ruci-ṭīkā* of Adhyayana and *Bhāṣyaṭīkā* of Bhāvavikta and Viśvarūpa may be mentioned. Several other commentaries and tracts are also referred to. Some valuable information regarding some other works and authors has also been given.

इस निबन्ध में कतिपय अप्रसिद्ध, अप्रकाशित या अनुपलब्ध न्याय के ग्रन्थों, लघु तन्त्रों और टीकाओं के विषय में उपयोगी जानकारी दी गई है। न्याय के दस उपसम्प्रदायों का भी उल्लेख किया गया है। कम प्रसिद्ध या अनुपलब्ध कृतियों में अविद्धकर्ण की तत्त्वटीका, अध्यायन की रचि टीका, भावविकृत की भाष्यटीका और विद्वरूप उल्लेखनीय हैं। बहुत से अन्य लघुलेखों, टीकाओं, रचनाओं और लेखकों का भी उल्लेख किया गया है।

करुणेश गुप्त, अनिल कुमार गुप्त

वैशेषिक (Vaiśeṣika)

340. Adrṣta and Dharma in Vaiśeṣika Philosophy; Anant Lal Thakur; *Rtam*, I. 1; 1969; 51-59; E. This paper seeks to establish after proper analysis and investigation that in the

ले. ने न्यायकन्दो में यद्यत्र दिवरे तेषां को एकवित करके दो शीर्षकों—१. ईश्वर का अस्तित्व और २. ईश्वर का स्वरूप और गुण के अन्तर्गत श्रीधर के ईश्वर-सिद्धान्त को मुख्य उपरेखा को प्रस्तुत किया है। ईश्वरसिद्धान्त से उड़ी हुई अर्थिकों समझाओं को श्रीधर ने बड़ी सफ़ाता से समझाया है। उन के अर्थिकों विचार उन से पूर्ववर्ती विचारकों से मिलते हैं। उस के कुछ विचार नए भी हैं—यथा ईश्वर के दयालु स्वरूप और दुःखों से बरे उगत को रचना में कोई विरोधानास नहीं है। वह मौलिक विचारक नहीं है। श्रीधर ने ईश्वर के सिद्धान्त का उस के विभिन्न पहलुओं में विशद रूप में विवेचन किया है। इस प्रकार ईश्वरवाद के विचार में उस ने मूल्यवान् योग दिया है।

मुषोर कुमार गुप्त, प्रीतिप्रभा गोपल

रचनाओं में प्राप्त उल्लेखों और सन्दर्भों को समीक्षा कर इस प्रस्यान के अन्तर्गत विकसित वाक्य, कठन्दी, सिद्धान्त, तार्किक, दशपदार्य और पशुके प्रकृति २८ (उप-) सम्प्रदायों के अस्तित्व को सिद्धि को गई है।

करसेना गुप्त

348. Scope and Basis of Lakṣaṇa in the Nyāya-Vaiśeṣika School; V. Varadācārī, Tirupati, India; *Rtam*, I. 1; 1969; 142-151; E. The paper deals with the scope and basis of Lakṣaṇa in the Nyāya-Vaiśeṣika Schools and gives a thorough analysis of this doctrine from various view-points.

इस लेख में न्याय-वैशेषिक प्रस्यानों में लक्षण के क्षेत्र और उस के आधार का विवेचन कर सभी दृष्टिकोणों से इस सिद्धान्त का विषय विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

करसेना गुप्त

पूर्वमीमांसा (Pūrva Mīmāṃsā)

349. Nīlakaṇṭha as a Mīmāṃsaka; S. G. Moghe, Lecturer in Sanskrit, College of Arts and Science, Aurangabad; *UMCV*, 1970; 87-99; E. Nīlakaṇṭha at times criticises impartially the views of his predecessors, sometimes accepts their views, sometimes he expresses his views on debatable points and sometimes remains silent in such places. His father was a greater scholar of Mīmāṃsā than he. He profusely uses about 52 Mīmāṃsā terms and 29 laukika and Mīmāṃsā maxims and removes contradiction in mutually apparent contradictory texts and arrives at a pointed definite conclusion there on. He has cited some opinions under the general term 'some'. Some of his views are peculiar and are a valuable contribution to Mīmāṃsā. He does not offer any hair-splitting discussions but goes to the root of the problem. His special contribution is the application of Mīmāṃsā doctrines to the *Dharma-Sūtra*. He lived between 1610 and 1645 A.D. and composed *Bhagvanta-Bhāskara* in twelve *Mayukhas*.

२६५. भारतीय दर्शन के सम्प्रदाय; मुषोर कुमार गुप्त, प्रवाचक, सं. वि., रात्र. वि. वि., जयपुर; प्र. नामप्रदा., १९६६; १६४ + २८८ + ४४५; ५-००; ६-००; ७-५०; द्वि. १

346. The Various Names for the Famous Vaiśeṣika Work of Praśastapāda; George Chemparathy, Netherlands; *Rtam*, I. 1; 1969; 23-28; E. This paper gives an analysis of the references giving various names of the Praśastapāda's famous work, *Padārthadharmasamgraha*, otherwise known as *Praśastapādābhāṣya*.

प्रस्तुत निबन्ध में प्रशस्तपाद की सामान्यतः प्रशस्तपादनाथ नाम से विप्रुत छान पदायंजन संग्रह के विभिन्न नामों के आपक संकेतों का विश्लेषण दिया गया है।

करसेना गुप्त

३४७. वैशेषिक सम्प्रदाय; करसेना गुप्त गोयखपुर, नागय; गोपुत्रिसोप, १९६६-७०; २००-२०९; द्वि. १ इस निबन्ध में वैशेषिक प्रस्यान के अन्तर्गत विकसित होने वाले विभिन्न सम्प्रदायों के अस्तित्व के साथ-साथ प्राचीन और मध्य-कालीन

Like Vijnāneśvara he is a great scholar of Mīmāṃsā.

नीलकण्ठ ने कुछ स्थलों पर पक्षपातरहित हो कर अपने पूर्वाचार्यों के मत की आलोचना की है कहीं उन के मतों को स्वीकार कर लिया है; कभी वे विवादरूपद अंशों पर अपना मत भी प्रकट करते हैं और कहीं ऐसे अंशों पर वे मौन रह गए हैं। उन के पिता उन की अपेक्षा मीमांसा के अधिक विद्वान् थे। उन्होंने ने मीमांसा की ५२ परिभाषाओं और २६ लौकिक तथा मीमांसा के न्यायों का प्रयोग किया है और आपाततः विरोधी मालूम पड़ने वाले मूल पाठों के विरोध का परिहार किया है। इस प्रकार वे एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंच गए हैं। उन्होंने ने 'केचित्' कह कर कुछ अन्य मतों को भी उद्धृत किया है। उन के कुछ विचार विशिष्ट हैं और मीमांसा के प्रति मूल्यवान् योगदान करते हैं। वे बाल की खाल उतारने वाले शास्त्रार्थ नहीं देते हैं, वरन् समस्या के मूल तक पहुंचते हैं। उन का विशिष्ट योगदान धर्मशास्त्रार्थ में मीमांसा के सिद्धांतों का प्रयोग है। वे १६१० ई. एवं १६४५ ई. के मध्य रहे और १२ मयूखों में भगवन्त भास्कर की रचना की। विज्ञानेश्वर की भांति ये भी मीमांसा के महान् विद्वान् हैं।

सुधीर कुमार गुप्त, प्रीतिप्रभा गोयल

३५०. पूर्वमीमांसागुच्छः — विधिविचारः; N. S. Devanathachariar, Siromani, Skt. Pt., SML.; JTMSSML., XXIV.2; 1971; 13-28; सं. । अत्र गुच्छे पूर्वमीमांसाया विधिविषयेषु लेखाः सन्ति । अत्रेऽस्मिन् 'विधिविचारः' प्रचलति । अत्र वेदविधीनां, तत्कर्मचोदनाया अर्थ-भावयोश्च मीमांसानियमानवलम्ब्य, भाष्यस्य पूर्वोत्तरपक्षो च विमृश्य सविस्तारं विवेचनं विहितं लेखकेन । लेखोऽयं पूर्वोक्तादनुवृत्तः ।

इस गुच्छ में पूर्वमीमांसा के विविध विषयों पर लेख हैं। इस ग्रंथ में 'विधि विचार' चालू है। इस में ले. ने वेद की विधियों, और उन के कर्म के

प्रेरक वाक्यों के अर्थ और भाव का, मीमांसों के नियमों पर आश्रित, भाष्य के पूर्व और उत्तर पक्षों का विचार कर सविस्तार विवेचन किया है। यह लेख पूर्व ग्रंथ से चालू है।

सुधीर कुमार गुप्त

२६५. भारतीय दर्शन के सम्प्रदायः सुधीर कुमार गुप्त, प्रवाचक; सं. वि., राज. वि. वि., जयपुर; प्र. भागप्रज्ञा.; १९६९; १६अ + २६क + ४आ; ५-००; ६-००; ७-५०; हि. ।

७६. मीमांसादर्शने विधिविमर्शः; रामशरण शास्त्री, स्वतन्त्रः शोधकः; सागरिका, ६.२; १२६-१४१; सं. ।

६६. महर्षि जैमिनि का वेद-विषयक सिद्धांतः; जगत्कुमार शास्त्री, साधु सोमतीर्थ, देहली; आ.मा., ५०.१९; १.१२.१९७०; ३-५; हि. ।

43. *Henoritualism of the Brāhmana-Texts*; G. U. Thibé, CASS., Univ. of Poona, Poona; JUPH.; 33; 1970; 23-36; E.

वेदान्त (Vedānta)

२१६. अद्वय और अद्वैतः एक समीक्षात्मक दिप्पणी; कश्यप शुक्ल, गोरखपुर, भारत; गोपु. विविषोप., १९६९-७०; १०-१५; हि. ।

३५१. अद्वैतवेदान्ते प्रतिविम्बवादः; केशव प्रसादपाठक; शोधकः; सागरिका, ६.२; २०२७ वि.; २०५-२०८; सं. । वेदान्ते व्यवहार उपलब्धस्य जीवेश्वरयोर्भेदस्य निराकरणाय प्रतिविम्बवाद आश्रीयते । "जीवपरमेश्वरसाधारणं चैतन्यमात्रं विम्बम्, तस्यैव विम्बस्याविद्यात्मिकायां मायायां प्रतिविम्बमीश्वरचैतन्यमन्तःकरणेण प्रतिविम्बं जीवचैतन्यम्—कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः इति श्रुतेः । एतन्मते जलाशयगतशारावगत-सूर्यप्रतिविम्बयोरिव जीवपरमेश्वरयोर्भेदः । अविद्यात्मकोऽधेव्यापकतया तदुपाधिकेश्वरस्यापि व्यापकत्वम् । अन्तःकरणस्य परिच्छिन्नतया तदुपाधिक-जीवस्यापि परिच्छिन्नत्वमिति संक्षेपशारीरक-

Vaiśeṣika system's history, the meaning of dharma and adṛṣṭa has changed from time to time.

यहाँ पर्याप्त समीक्षण और पर्यालोचन के उपरान्त यह स्थापना की गई है कि वैशेषिक प्रस्थान के इतिहास में वर्म और अदृष्ट का अर्थ समय-समय पर बदलता रहा है।

कस्सेरा मुक्ल

341. The Impetus Theory of the Vaiśeṣikas; S. N. Sen, Indian Association for the Cultivation of Sciences, Calcutta 32; IJHS., I. 1; 5. 1966; 34-45; E. In India, the basic principles of the Impetus Theory "appeared during the formation of the Vaiśeṣika aphorisms (3rd c. B. C.) and a fully developed Impetus Theory is recognised in Praśastapādabhāṣya (5th c. A. D.). The paper briefly discusses how the inadequacy of the Aristotelian dynamical principle led to the Impetus Theory in Europe. The Vaiśeṣika concept of motion, as developed by Praśastapāda, is then discussed with special reference to the various forces causing motion, e.g., abhigāta, nodana, gurutva, dravyatva and saṃskāra. The term saṃskāra (Impetus) of which the Vaiśeṣika recognize three types, e.g., vega, bhāvanā and sthitiṣṭhāpaka, is the cause of uninterrupted continuity of motion in a fixed direction, even when the initial force ceases to act, and thus holds the key to the Vaiśeṣika Impetus Theory. It is shown that this saṃskāra or vega is the nearest approach to our modern conception of momentum. The interplay of various kinds of forces and the part played by the saṃskāra in maintaining the motion of bodies when all forces cease to act are explained by three illustrations, e.g., the motion of the pestle and the mortar, the motion of a javelin discharged by the hand and the motion of a body catapulted from a machine".

भारत में संवेग (=संस्कार) नियम के मूल उदाहरण वैशेषिक सूत्रों के विनाशक काल (३री शती ई. पू.) में प्रतिबन्धक हुए और पूर्ण विकसित संवेग नियम प्रगल्भतावाच्य (२म शती ई.) में प्रतिबन्धक

है। लेख में दिखाया गया है कि अरस्तू के गत्यात्मक नियम की अपूर्णता के कारण यूरोप में संवेग (= संस्कार) नियम का विकास कैसे हुआ। इस के बाद वेगवाद की वैशेषिक परिकल्पना, जैसी प्रयत्नवाद ने विकसित की है, का अभिधात, बोधन, गुणत्व, द्रव्यत्व और संस्कार आदि वेग उत्पन्न करने वाली विभिन्न शक्तियों का विनोप निर्देश करते हुए विवेचन किया है। वैशेषिक के मत में संस्कार(=संवेग) तीन प्रकार का है—वेग, नावना और स्थितिविस्थापक। यह संस्कार(=संवेग) मूल शक्ति के व्यापार विरत हो जाने पर भी निश्चित दिशा में गति का व्यवधानहीन (=सतत) चालू रहता है। इस प्रकार यह वैशेषिक संवेगवाद की कुँजी है। यहाँ यह भी दिखाया गया है कि संस्कार या वेग संवेग (मोमेंटम्) की हानारी आधुनिक परिकल्पना के समीपतम है। संवेग और मूल शक्ति की, हाथ से फेंके हुए हल्के बाले (=जैवंतोन) की और किसी यन्त्र से संवेग निकले हुए पदार्थ की गतियों रूप तीन उदाहरणों से, जब सब शक्तियाँ काम करना बन्द कर देती हैं तब, पदार्थों में गति को बनाए रखने में विभिन्न प्रकार की शक्तियों की पारस्परिक क्रिया और संस्कार के कार्य की व्याख्या की गई है।

सुशोर कुमार गुप्त

342. The Īśvara Doctrine of The Vaiśeṣika Commentator Candrānanda; George Champarathy, Utrecht, Netherlands; Rtam, I. 2; 47-52; E. The paper provides a study of the doctrine of Īśvara as enunciated by the commentator Candrānanda in his vṛtti on the Vaiśeṣika sūtras. The author is of the opinion that originally the sūtras show no theistic tendencies, but Candrānanda introduced the same in his commentary.

लेख वैशेषिक सूत्रों की उन की बुद्धि में वर्णित बुद्धिकार चन्द्रानन्द के ईश्वर विषयक विचारों का अध्ययन प्रस्तुत करता है। ले. का मत है कि मूलक वैशेषिक सूत्रों में ईश्वर-विचार

युक्तिहीनता (४) अज्ञानज जगत के विभिन्न विषयों के अन्तर तथा (५) मोक्ष एवं बन्ध के सिद्धान्त— इन विषयों के स्पष्टीकरण के लिए आभास आवश्यक है। आभास प्रतिविम्ब से पृथक् है। आभास असत् है और प्रतिविम्ब सत्।

सत्यदेव मिश्र

२०. नासदीवसूक्तम् (भाववृत्तीयम्) (ऋ. १०. १२६); अरविन्दमतमनुसृत्य केनचित्— लिखितम् (विषयसूच्यां त्वरविन्दस्यैव नामांकित-मस्ति); गुप्त, २३. १-२; ६-१०, १६७०; २२-३१; सं०।

47. Pre-Saṅkara Upaniṣadic Philosophy as Expounded by Kāli-dāsa; T. K. Gopala Swamy Iyengar, Deptt. of Skt., Sri Venkateswara Univ., Tirupati; UMCV., 1970; 179-186; E.

३५७. ब्रह्मसूत्र और वैष्णव भाष्य; राम कृष्ण आचार्य, बलवन्त राजपूत कालिज, आगरा; प्र० विनोद पुस्तक मन्दिर, हास्पिटल रोड, आगरा; १. १६६०; १-८८; सं०, हि०। इस के दो भाग हैं—क और ख। क में रामानुज के अनुसार ब्रह्मसूत्र का पाठ दिया गया है। पाठि० में अन्य वैष्णव भाष्यों—निम्बार्क, मध्व, वल्लभ और बलदेव भाष्यों के पाठभेद दिए गए हैं। ख में १. रामानुज, २. निम्बार्क, ३. मध्व, ४. वल्लभ और ५. बलदेव के क्रम से प्रत्येक भाष्य की व्याख्या-नुसार ब्रह्मसूत्र के प्रत्येक सूत्र के विषय दिए गए हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

153. Brahma-sūtrakāra as Interpreter of the Gītā; P. M. Modi, Hony. Prof. & Director, Skt. Prachara-Samsodhana Samiti, Baroda-6; UMCV., 1970; 139-150; E.

३५८. ब्रह्मसूत्रों का वादरायणकतृत्व; रामकृष्ण आचार्य, मध्यम, सं० वि०, राजा बलवन्तसिंह कालिज, आगरा; उमकव., १६७०; १६३-२०५; हि०। में, में अज्ञान और वैश्वानर

के प्रक्षिप्त सूत्रों की तथा एक मूल ब्रह्मसूत्र की सत्ता की मान्यता के आधार पर ब्रह्मसूत्रों के बहु-कतृत्व विषयक मत की समीक्षा करते हुए दोनों आचार्यों को हेय बताते हुए इसका खण्डन किया है। सिद्धान्त पक्ष के लिए 'इति वादरायणः' का प्रयोग ब्रह्मसूत्रों के वादरायण कतृत्व को घोषित करता है। जहाँ सिद्धान्त पक्ष में अन्य आचार्यों के मत दिए हैं वहाँ वादरायण उन आचार्यों के मत को अपने अनुरूप मानते और उन्हें अपनाते हैं। अतः ब्रह्मसूत्र वादरायण की रचना है। परम्परा भी यही मानती है। स्वामी शंकराचार्य भी यही मानते हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

३५९. भारत सम्बन्धी जनश्रुतियां संस्कृत; अनुवादक : प्रसाद; सोवियत भूमि, ६; ३. १६७०; १८०, हि०। सत् और असत् में भ्रान्ति, रूपकात्मक श्रुतिशयोक्तियों, संस्कृत के महत्त्व और संस्कृतविदों के श्रम पर कुछ उद्गार हैं।

प्रनिल कुमार गुप्त

२६५. भारतीय दर्शन के सम्प्रदाय; सुधीर कुमार गुप्त, प्रवाचक, सं० वि०, राज० वि० वि०, जयपुर; प्र० भामग्रशा., १६६६; १६प्र+२८८+४श्रा; ५-००; ६-००; ७-५० हि०।

३६०. रावणभाष्यम्; सुधीर कुमार गुप्त, प्रवाचक, सं० वि०, राज० वि० वि०, जयपुर-४; भामग्रशा०, १६६७; ग+४+६१+८०; १४-००; सं० हि०। इस में सूर्यपण्डित देवज्ञ की परमार्थ प्रभा टीका में प्राप्त १३ ऋचाओं के शंकर भद्रत परक रावण के भाष्य का मूल मन्त्र, गीता के सम्बन्धित श्लोक और पाठभेद प्रादि से युक्त सम्पादन है। प्रारम्भ में विस्तृत भूमिका में रावण के व्यक्तित्व, तिथि, चरित्र और कृतियों का विश्लेषण, रावणभाष्य की शक्तियों, सूत्रों, उपनिषदों, निरुक्त, माधव भट्ट, स्कन्द, पंकट माधव, शंकराचार्य, शास्त्रानन्द, परशुराम, गुणविष्णु,

आनन्दतीर्थ, उदट-महीधर, सायण, दयानन्द सरस्वती और ग्रिफिथ के भाष्य आदि से तुलना और उस का वैशिष्ट्य दिए गए हैं। १२ परिशिष्टों में रावणानुसारी मन्त्रों का पदच्छेद; हि.श्र., प्रमाणसूची, मन्त्रों और श्लोकों को अनुक्रमणिकाएँ, हॉल का मत, भाष्य में व्याख्यात मन्त्रों के उपलब्धस्थल, निर्वचन-संग्रह, पदकोष, देवज्ञ-सूर्य पण्डित द्वारा व्याख्यात मन्त्रों की सूची और ऋ.३.५.४ का रावणभाष्य आदि विषय संकलित किए गए हैं। ले० के मत में रावण ने अत्र्यात्म परम्परा का पर्याप्त विस्तृत क्रियात्मक रूप प्रस्तुत किया है। यह भाष्य शङ्कर के मायावाद के प्रभाव के विस्तार और उस की भारतीय चिन्तन में देन के अध्ययन के लिए भी बहुत उपयोगी है। रावण ने कुछ पदों के नए विश्लेषण और कुछ धातुओं के नए अर्थ दिए हैं। वह प्रमुखतया प्राचीनतम शैली का अनुयायी है। सायण और रावण के भाष्य अनेक बार एक ही हैं।

सुकेशी रानी गुप्ता

३६१. वेदान्त दर्शन का इतिहास; उदय वीर शास्त्री; प्र० विरजानन्द वैदिक संस्थान, गाजियाबाद; २५-००; भवानी लाल भारतीय; आ. मा, ५०.२०; १५.१२.१९७०; १५: १-२; हि०। ले० वेदान्त विषयक अनेक भ्रममूलक प्रवादों का खण्डन कर वेदान्त की वास्तविक विचारधारा को प्रस्तुत करता है। वेदान्त दर्शन महाभारतकालीन वाद-रायण वास रचित है। शङ्कर और उन से पहले के भाष्यकारों का विस्तृत वर्णन मौलिक है। शङ्कर ने अपने भाष्य में बर्खास्तगी की है।

अनिल कुमार गुप्त

362. *Vedānta Philosophy in Philosophical and Religious Works*; Hajime Nakamura. Deptt. of Indian and Buddhist Philosophy, Univ. of Tokyo, Bunkyo-Ku, Tokyo. (Japan); *UMQV*, 1970; 47-63; E. Because of the scarcity of materials, the passages in pre-Sāṅkara works on Hindu religion and philosophy

which refer to the early Vedānta philosophy are very few in number, but they are important and throw light on the nature and position of this philosophy before Śāṅkara. The author examines the evidences in the pre-Śāṅkara works of all the orthodox schools of philosophy (Nyāya, Vaiśeṣika, Sāṅkhya and Mīmāṃsā), some Purāṇas, Āhirbudhnyā Saṁhitā and the Yogavāśiṣṭha. All the philosophical systems criticise the Vedānta doctrines which do not contain any reference to the Śāṅkara Vedānta characterised by vivartavāda. No reference is made to māyā. Vedānta was not recognised as a philosophy. In the early stages Vedānta and Mīmāṃsā were one system but by the time of Kumārila they had separated. He attacks the Vedānta philosophy. So do his followers. The Purāṇas knew that Vedānta (i. e. the Upaniṣads) teaches the highest principles. They knew something about the new Vedānta philosophy. There are some similarities of Āhirbudhnyā Saṁhitā with Śāṅkara Vedānta. By the time of Śāṅkara Vedānta assumes the status of an independent school of philosophy.

सामग्री की विरलता के कारण हिन्दू धर्म और दर्शन की शङ्कर से पूर्व की रचनाओं में प्राचीन वेदान्त की ओर निर्देश करने वाले लेख संख्या में बहुत अल्प हैं, परन्तु वे महत्त्वपूर्ण हैं और शङ्कर से पूर्व इस दर्शन के स्वरूप और स्थिति पर प्रकाश डालते हैं। ले० शङ्कर से पूर्व की दर्शन के सब वैदिक सम्प्रदायों (न्याय; वैशेषिक, सांख्य और मीमांसा) की रचनाओं, कुछ पुराणों, अहिर्बुध्न्य-संहिता और योगवासिष्ठ की साक्षियों की समीक्षा करता है। सब ही दार्शनिक सम्प्रदाय वेदान्त के वादों की आलोचना करते हैं। इन में विवर्तवाद से विशिष्ट शङ्कर वेदान्त की ओर कोई निर्देश नहीं मिलता है। माया का कोई उल्लेख नहीं है। वेदान्त को दर्शन के रूप में मान्यता नहीं मिली थी। प्रारम्भिक काल में वेदान्त और मीमांसा एक ही सम्प्रदाय थे। परन्तु कुमारिल के समय तक वे अलग-अलग हो गए। उस ने वेदान्त दर्शन का

शब्दरूपन्यस्तस्य प्रतिबिम्बवादस्य आभासवादविम्ब-
प्रतिबिम्बवादयोः समीक्षणपुरःसरं स्थापनं विहित-
मस्ति ।

वेदान्त में व्यवहारकाल में प्राप्त जीव और ईश्वर के भेद का खण्डन करने के लिए प्रतिबिम्ब-वाद का आश्रय लिया जाता है। जीव और परमेश्वर की एक समान चेतना ही विम्ब है। इस विम्ब का अविद्यारूप माया में प्रतिबिम्ब तो ईश्वर-चैतन्य है और अन्तःकरणों में प्रतिबिम्ब जीव-चैतन्य है। श्रुति कहती है कि जीव कार्यापाधि है और ईश्वर कारणोपाधि है। इस मत में जलाशय और सराई में पड़ने वाले सूर्य के प्रतिबिम्बों के समान जीव और परमेश्वर का भेद है। अविद्या रूप उपाधि के व्यापक होने के कारण उसका धारक ईश्वर भी व्यापक है। अन्तःकरण के परिच्छिन्न (=ससीम) होने से उसका धारक जीव भी परिच्छिन्न (=ससीम) है। संक्षेप शारीरक के इन शब्दों में प्रतिपादित प्रतिबिम्बवाद का आभास-वाद और विम्बप्रतिबिम्बवाद की समीक्षा कर के स्थापन किया गया है।

सुधीर कुमार गुप्त

३५२. अद्वैतवेदान्ते मोक्षस्वरूपम्; राममूर्ति शर्मा; सागरिका, ६-२; २०२७ वि.; १६१-१६६; सं. । तैत्तिरिस्मिन् मुक्तेः दार्शनिकी महत्ता स्पष्टतया लेखकेन वेदान्तस्य विभिन्नसम्प्रदायानां सिद्धांतान् विशदयता अद्वैतवेदान्ते मोक्षस्य स्वरूपं सोद्धरणं प्रस्तुतम् ।

इस लेख में मुक्ति की दार्शनिक महत्ता स्पष्ट करते हुए ले. ने वेदान्त में विभिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्त को विशद रूप में विवेचित किया है तथा अद्वैत वेदान्त में वर्णित मोक्ष के स्वरूप को सोद्धरण प्रस्तुत किया है।

प्रभाकर शर्मा

३५३. प्रागमिक ईश्वरवाद तथा शांकर प्रज्ञा या ब्रह्मवाद; राममूर्ति त्रिपाठी, मद्रास

स्नातकोत्तर हि. वि.; विक्रम वि. वि., उज्जैन; उभयकव.; १६७०; १८७-१९२; हि. । ले. ने श्रीप-निपद उक्तियों के शांकर अद्वैत परक और आगमिक उक्तियों के काश्मीरी अद्वैतवादी दार्शनिकों के अद्वय परक व्याख्यानों से अद्वैत और अद्वय के स्वरूपनिर्वचन में उत्पन्न पार्थक्य का निरूपण किया है—आगमिकों के मत में अद्वय का अर्थ 'दो का नित्यःसामस्य' है। यह स्वाभाविक पंचकृत्यकारी है। शक्ति चिन्मयी और परतत्त्व से अभिन्न है। ईश्वर का ऐश्वर्य और कर्तृत्व उसकी स्वाभाविक विशेषता है। विश्व-वैचित्र्य के अवभासन में वह स्वतंत्र है। वह निःस्पृह है। यह अद्वय तत्त्व स्वेच्छया लीलार्थ मायोत्तर महामायास्तर से अवरोहण करता है—जीवभाव ग्रहण करता है। अद्वय अचिदंश का चिन्मयीकरण करता हुआ सब कुछ के साथ स्वरूप प्रतिष्ठ होता है। वहाँ जीवन्मुक्त विश्व को अपनी प्रकृति में आनन्दमय मानता है उस दुःखात्मक प्रतीति का निमित्त संकुचित दृष्टिगत मानता है। इस ईश्वराद्वयवाद में ज्ञान और भक्तिमार्गों का सामञ्जस्य है। शांकर अद्वैतवाद द्वैतों या भेदों से हानि निविशेष है। शक्ति जडात्मिका और ब्रह्माश्रित परन्तु ब्रह्माभिन्न है। यहाँ जीव, ईश, विमुक्त चित्, जोश्वराभेद, अविद्या और उसका चित् से योग अनादि और अपने उद्भव में अचिन्त्य और अतक्य हैं। ईश्वर सृष्टिकर्म और अवरोहण—जीवभाव ग्रहण में अन्य सापेक्ष है। उसका ऐश्वर्य और कर्तृत्व प्रागन्तुक और प्रोपाधिक है। यहाँ अद्वैत जड़ जगत् की निवृत्ति पूर्वक स्वरूपप्रतिष्ठ है। यहाँ जीवन्मुक्त संसार को अपनी मायात्मिका प्रकृति में दुःखमय मानता हुआ उसकी निवृत्ति को आनन्दमय स्वरूपोपलब्धि के लिए अनिवार्य मानता है। यहाँ अभेदज्ञान या स्वरूपप्रतिष्ठ होने पर केवल ज्ञान की ही सर्वोपनिषद् स्थिति मन्मथ है। भेदजन्य होने से भास्ति की यहा सत्ता नहीं रहती है। इन प्रकार दोनों ही पार्श्वों में मूल

विचार से अनेक विषय अन्तर स्पष्ट किए जा सकते हैं। संश्लेष में ये भेद भूमिकाभेद और विश्लेष में पार्थक्य या अन्तर कहे जा सकते हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

३५४. ईशोपनिषद्; सम्पादक: सुधीरकुमार गुप्त, प्रवाचक, सं. वि., राज. वि. वि., जयपुर-४; भामभ्रशा., १९६६; २+७४—६६; २६अ—४४अ; १-२५; सं., हि.। इस में सम्पादक ने अपनी संस्कृत टीका और शाब्दिक हि. अ. सहित ईशोपनिषद् को सम्पादित किया है। अनुवाद के नीचे टिप्पणियों में आवश्यक स्थलों की व्याख्या, पदों की व्याकरणप्रक्रिया और विभिन्न भाष्यकारों के मतों की आलोचना पूर्वक अपने अर्थों का प्रतिपादन किया है। अनुवाद और टीका में मूल के पदों को कोष्ठकों में दिया है। आरम्भ में चार पृष्ठों में उपनिषदों और ईशोपनिषद् का परिचय दिए गए हैं। यह ले. की वेदभारती से उद्धृत है।

अनिल कुमार गुप्त

३५५. केनोपनिषद्; सम्पादक: सुधीरकुमार गुप्त, प्रवाचक, सं. वि., राज. वि. वि., जयपुर-४; भामभ्रशा., १९६६; ८+१०४; २-००; ३-५०; सं., हि.। इस में उपनिषदों के परिचय के साथ केनोपनिषद् का परिचय, उस का सार, उस के सत्र मन्त्रों का मूल पाठ, मूल पद देते हुए शाब्दिक हिन्दो अनुवाद, व्याकरण विषयक और व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ तयों सरल और उपयोगी संस्कृत टीका दिए गए हैं। परिशिष्ट २ में फतहसिंह की 'सिन्धु घाटी विषयक व्याख्याओं के आधार पर सिन्धु घाटी और केनोपनिषद् के तद्वत्त्व की सिन्धु मुद्रा के सहित तुलना प्रस्तुत की गई है। परिशिष्ट ३ में केनोपनिषद् में प्रयुक्त छन्दों का विवेचन, परिशिष्ट ४ में अद्विकल हि. प्र. और परिशिष्ट ५ में शाब्दिक अर्थों का अनुवाद है। अन्त में टिप्पणियों में व्याख्यात पदों की और इन उपनिषद् के मन्त्रों की अनुक्रमणिकाएँ दी गई हैं। टिप्पणियों में

भाष्यकारों के अजटिल महत्त्वपूर्ण मतभेदों को भी दर्शाया गया है।

अनिल कुमार गुप्त

४४. जीवन का लक्ष्य; जीवाराम पुरोहित, श्रीकण्ठपुर; आ.मा., ५०.२०; १५.१२.१९७०; ४-५; हि.।

२६७. जैन आगमों में तत्कालीन प्रचलित भिन्न-भिन्न दार्शनिक विचारधाराएँ; जितेन्द्र जैटली; सस्मा०, १९७०; ३२-३५; हि.।

40. Jaiminiyārṣeya-Jaiminiyopaniṣad-Brāhmaṇe; Ed., Pub. B. R. Sharma, Director, Kendriya Skt. Vidyapeetha, Tirupati; 24-00; Rev. C. G. Kashikar; ABORI., L. I-IV; 1969; 105-108; E.

356 The Theory of Appearance in Sāṃkhya Vedānta; Satya Deva Mishra, Senior Research Fellow, CASPh., Univ. of Madras, Madras; IPhA., 5; 1969; 272-290; E. The Appearance (ābhāsa) is a depreciated semblance of consciousness in the ajñāna and its products. The ābhāsa is of two kinds: (i) kāraṇa-ābhāsa and (ii) kārya-ābhāsa. The appearance enshrined in the ajñāna is kāraṇa-ābhāsa, and those pervading the products of ajñāna are kārya-ābhāsa. The appearance is needed in explaining (i) world-causality (ii) illumination of objects, (iii) absurdity of the Buddhist doctrine of non-self (iv) difference between the variable products of ajñāna and (v) the concept of bondage and liberation. The ābhāsa is different from the pratibimba (reflection). The former is unreal while the latter is real.

अज्ञान तथा अज्ञानोत्पन्न वस्तुओं में चैतन्य के अवमत भास को आभास कहते हैं। आभास दो प्रकार के हैं—(१) कारणाभास तथा (२) कार्याभास। चैतन्य का अज्ञानगत आभास कारणाभास है तथा अज्ञानज वस्तुओं में स्थित आभास कार्याभास है। (१) जगत् की कारणता (२) विषयों की आत्मप्रकाशता (३) वीदों के अनात्मवाद को

खण्डन क्रिया है और उस के अनुयायियों ने भी। पुराण जानते थे कि वेदान्त (अर्थात् उपनिषद्) उच्चतम सिद्धान्तों का उपदेश करते हैं। वे नए वेदान्त दर्शन के विषय में भी कुछ जानते थे। अहिबुद्धि संहिता की शाङ्कर वेदान्त से कुछ समानताएँ हैं। शाङ्कर के समय तक वेदान्त स्वतन्त्र सम्प्रदाय का स्थान प्राप्त कर लेता है।

सुधीर कुमार गुप्त

325. **The Vedānta Philosophy as was revealed in Buddhist Scriptures;** Nākāmurā Vidyā Vachaspati, Tokyo Univ., Japan; **Pañcāmṛtam**, 1968; 1-74; E.

363. **Śaṅkara's Doctrine of Nescience in the Context of Present Day Science;** Ajit Kumar Sinha, Kurukshetra, India; **Ṛtam**, I. 2; 1970; 55-68; E. The present paper presents a detailed study of the Advaitic doctrine of nescience and error in the light of the modern scientific concepts of philosophy.

इस लेख में शाङ्कर अविद्या (= ह्याति) सिद्धान्त का आधुनिक दर्शन की मान्यताओं के सन्दर्भ में विस्तृत अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है।

करुणेश शुक्ल

३६४. शाङ्कर वेदान्त में ईश्वरवाद; योगेश पाण्डेय, सं०वि०, सागर वि०वि० सागर; उमकव., १९७०; २१५-२४७; हि०। यहाँ शाङ्कर वेदान्त में ईश्वर के स्थान व स्वरूप का विस्तृत विवेचन है। ले० मानता है कि 'शाङ्कर वेदान्त में जो ईश्वर व्यवहारान्वया में अनन्त ऐश्वर्य-शक्ति से युक्त हो कर "ईशा वास्तुमिदं सर्वम्" है, वही अपने पारमाथिक रूप में निर्गुण निरञ्जन तत्त्वदानन्द स्वरूप "एकमेवाद्वितीयम्" है। प्रस्तुत: शाङ्कर वेदान्त का ईश्वरवाद, अज्ञानवाद तथा अद्वैतेश्वरवाद है'। ले० के मत में शाङ्कर दर्शन ही व्यवहार और परमार्थ की अभिव्यक्ति मात्र है। शाङ्कर में ईश्वर मन्त्र का प्रयोग ब्रह्म के रूप में किया है। जगत् के प्रत्यक्ष अभाव रूप का निमित्तोपासन कारण ईश्वर ही

है। इस विषय के विवेचन में ले० ने अनेकों दर्शनों और दार्शनिकों के एतद्विषयक विचारों की भी समीक्षा की है।

सुधीर कुमार गुप्त, करुणेश शुक्ल

१८२. श्रीकनकधारास्तवनम्; सम्पादक: कृष्णमूर्ति; समीक्षा; सागरिका, ६.२; २०२७ वि; २१६; सं०।

१८३. श्रीस्तुति; ले० वेदान्तदेशिक; सम्पादक: कृष्णमूर्ति; भूमिका ले० वे० वरदाचार्य; समीक्षा; सागरिका, ६.२; २०२७ वि.; २२०; सं०।

४५. श्वेताश्वतरोपनिषद्; जगन्कुमार शास्त्री; प्र० मधुर प्रकाशन, आर्यसमाज, वाजार सीताराम, दिल्ली ६; ४-००; हि०; समीक्षक: भवानी लाल भारतीय; आ.मा., ५०.१६; १.१२.१९७०; १५; हि०।

३६५. सिद्धान्तचन्द्रिका; P. M. Padmanabha Sharma, Siromani, Skt. Pt., SML. JTMSSML, XXIV. 2; 1971; 17-32; सं०। अस्यां पत्रिकायां चिरकालपूर्वं प्रकाशितायाः सिद्धान्तचन्द्रिकाया अत्र गङ्गाधरसरस्वतीकृतया सुविशदया टीकया सह प्रकाशनमस्ति। कृतिरियमद्वैतवेदान्तस्य मतानि सुस्पष्टं विवृणोति।

इस पत्रिका में बहुत पहले प्रकाशित सिद्धान्तचन्द्रिका का यह गङ्गाधर सरस्वती की सुविशद टीका के साथ प्रकाशन है। यह रचना अद्वैत वेदान्त के मतों का सुस्पष्ट विवरण देती है।

सुधीर कुमार गुप्त, प्रीतिप्रभा गोयल

154. **Statistics of the Bhagavad-gītā;** R. Morton Smith, Toronto; **UMCV.**, 1970; 39-46; E.

दार्शनिक (Philosophers)

366. **Authentic Works of Śaṅkarācārya;** Sangam Lal Pandey, Lecturer in Philosophy, Allahabad Univ., Allahabad; **UMCV.**, 1970; 161-177; E. The author here tries to present a finalised list of the works of Śaṅkarācārya.

He meets the objection raised against Śaṅkara's authorship of the Āgamaśāstra Bhāṣya, the Gītābhāṣya and some Upaniṣadbhāṣyas, offers additional arguments about the genuine authorship of Śaṅkara of these works. He summarily rejects Śaṅkara's authorship of the hymns and monographs except Upadeśasāhasrī. Finally he accepts Śaṅkara's authorship of thirteen works only: 1. Brahmasūtra-bhāṣya 2-10. Commentaries on nine Upaniṣadas—Br. A., Chā, Tait, Ait, Īśa, Kena (Padabhāṣya), Kaṭha, Praśna, and Muṇḍaka 11. Āgamaśāstra Bhāṣya 12. Bhagavadgītābhāṣya and 13. Upadeśasāhasrī. He thus denies Śaṅkara's authorship of the Svetāśvatarabhāṣya and the Vākyabhāṣya, the Viveka-Cūḍāmaṇi, Ātmabodha, Śataśloki and other minor works (listed on Pages 161 and 162).

ले० ने यहां शङ्कराचार्य की कृतियों की प्रामाणिक सूची प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वह आगमशास्त्रभाष्य, गीताभाष्य और कुछ उपनिषद् भाष्यों के कृतित्व के विरुद्ध आक्षेपों का समाधान करता है तथा इन कृतियों के शङ्कर के प्रामाणिक कृतित्व के लिए कुछ अतिरिक्त युक्तियां देता है। वह उपदेशसाहस्री के अतिरिक्त स्तोत्रों और एकल निबन्धों के शङ्कर के कृतित्व का तुरन्त ही निराकरण कर देता है। अन्त में वह तेरह रचनाओं का ही शङ्कर का कृतित्व स्वीकार करता है—१. ब्रह्मसूत्रभाष्य २-१०. नौ उपनिषदों—वृषा०, छा०, तै०, ऐ०, ईश, केन (पदभाष्य), कठ, प्रश्न और मुण्डक के भाष्य ११. आगमशास्त्र-भाष्य १२. भगवद्गीताभाष्य और १३. उपदेश-साहस्री। इस प्रकार वह श्वेताश्वतरभाष्य, वाक्य-भाष्य, विवेक चूड़ामणि, आत्मबोध, शतश्लोकी और (पृ. १६१-१६२ पर प्रदत्त सूची की) अन्य लघु कृतियों के शङ्कर के कृतित्व को अस्वीकार करता है।

सुधीर कुमार गुप्त, करुणेश शुक्ल

367. Śrī Vedānta Deśika (1268 A. D.-1368 A. D.); K. C. Varadachari, 8 G. Car Street, Tirupa i, A. P.; UMCV., 1970;

101-109; E. Ghaṅṭāvātāra Venkaṭanātha (VN) Vedānta Deśika (VD) was born in 1268 A. D. He systematised all the views of his predecessors and fixed the boundaries of the system. For this purpose he wrote several works—philosophical, poetical and hymnic. The author in this paper presents some very important contributions of VN. to spiritual thought. Synthesis of karma, jñāna and bhakti yogas leads to śaraṇāgati or prapatti. Sāttvika tyāga comes by Ahaṅgrahopāsanā (soham asmi). This makes an individual God's body (śarīra), a bhoga vastu and a bhoga-karaṇa of God. The Divine seen in the heart is the reflection of the Ultimate form of the Divine in his transcendence. The Form of the Divine is śāntākāra and viśvākāra. God is free from all impurities and is the First Lord. Jñāna leads to darśana of the levels of God His figure upto His Crown. Relationship between Lord Viṣṇu and Śrī is of divya dāmpatyā. Śrī is the śreyo-mūrti of Viṣṇu. She is a personality of God. All, the six divine attributes are inhere in her śreyas.

घण्टावतार वेंकटनाथ (वेना.) वेदान्तदेशिक (वेद.) १२६८ ई० में पैदा हुआ। उस ने अपने से पहलों के विचारों को सुव्यवस्थित किया और सम्प्रदाय की सीमाएं बांधीं। इस के लिए उस ने कई दार्शनिक काव्य और स्तोत्र ग्रन्थ लिखे। ले० ने इस लेख में वेना० की अर्ध्यात्मविचार को कुछ प्रमुख देनों को प्रस्तुत किया है। कर्म, ज्ञान और भक्ति योगों के समन्वय से शरणागति या प्रपत्ति प्राप्त होती है। अहंग्रहोपासना (सोहम् अस्मि) से सात्त्विक त्याग आता है। यह मनुष्य को ईश्वर का शरीर, भोगवस्तु और ईश्वर का भोगकरण बना देता है। हृदय में दृष्ट दिव्य अपने अतिक्रान्त रूप में दिव्य के परम रूप का प्रतिबिम्ब होता है। दिव्य का रूप शान्ताकार और विश्वाकार है। ईश्वर सब मलों से रहित और आदिदेव है। ज्ञान ईश्वर के नखशिख का—उस के मुकुट तक उस के रूप का दर्शन कराता है। भगवान् विष्णु और श्री में दिव्य दांपत्य का समन्वय है। श्री विष्णु की श्रेयोमूर्ति

है। वह ईश्वर का व्यक्तित्व है। छैयों दिव्य गुण उस के श्रेयस् में निहित हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

तन्त्र (Tantra)

३६८. अनुसूत प्रयोग; संकलित; त.अ., १.१; ११.१९६६; २६-३१; हि.सं.। यहाँ मन्त्र की सिद्धि का रहस्य, कुबेर मन्त्र और धनदा यक्षिणी बता कर दुर्लभ दक्षिणावर्त शंखों की मंत्रों से साधनाविधि का मूल प्रकरण उद्धृत किया गया है। इस में शंख की परीक्षा, प्रयोग, संकल्प, पूजन-मन्त्र, ध्यानमन्त्र, जपमन्त्र, फलश्रुति और पञ्चावती-मन्त्र दिये गये हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

३५३. आगमिक ईश्वरवाद तथा शांकर अद्वैत या ब्रह्मवाद; राममूर्ति त्रिपाठी, अव्यक्त, स्नातकोत्तर हि. वि., विक्रम वि.वि., उज्जैन; उमकव., १९७०; १८७-१९३; हि.।

३६६. एकाक्षि श्री फल योग; रामदेव शर्मा सांभर वाले; त.अ., १.३-४; १-२. १९७०; ३१-३२; हि.। यहाँ ले० को गुणवर्गी सर्फी (आ० प्र०) में सं० १८१५ के एक पुस्तक के हले से प्राप्त एकाक्षि श्रीफल (नारियल) का मन्त्र और उस को निद्ध करने की विधि दी गई है। लक्ष्मी-प्राप्ति और स्वप्न में भविष्य बताने के लिये इस मन्त्र में जो परिवर्तित मन्त्र प्रयुक्त होते हैं, उन्हें भी दिया गया है। पञ्चावती मन्त्र का चित्र भी दिया गया है।

धांधर सिद्ध

है कि प्रसाद ने 'शिवसूत्रविमर्शिनी' को आघार बना कर उस के अनेक शब्द और भाव लिए हैं, अपनी कल्पना का भी प्रयोग किया है। अतः वहाँ अनेक विचारों की खिचड़ी है। रहस्य सर्ग में आनन्दपरक अर्थ केवल प्रथमोन्मेष का है। इस उन्मेष में भी मथ्य-मन्थन भाव होता है, परन्तु यह दूसरे उन्मेष से भिन्न है। पहले उन्मेष में विक्षोभ प्रधान मन्थान भैरव और दूसरे में सामरस्य प्रधान स्वच्छन्द भैरव की स्थिति है। रहस्य सर्ग में विक्षोभानन्द ही है। इस में सामरस्य आनन्द की सत्ता नहीं है। रूपान्तर की कल्पना के योग के लिए ही प्रसाद ने मन्थन और विक्षोभ का वर्णन शैव दर्शन से लिया होगा। रहस्य सर्ग के 'भरनिनाद' का अर्थ शैवदर्शन का नाद या परमार्थ करना अनुचित है। इस सर्ग के अन्तिम पद में श्रद्धायुत मनु की तन्मयता स्थानिक योग की समाधि का चित्रण है। समरसावस्था का नहीं है। अन्त में ले. ने अपने इन निष्कर्षों के विरुद्ध तीन आपत्तियों की कल्पना कर उन का समाधान प्रस्तुत किया है।

सुधीर कुमार गुप्त

३७१. गायत्री जप; वैद्य राम सुन्दर लाल वाजपेयी, जयपुर-३; त.अ., १.१; ११.१९६६; १६-१६; हि०। यहाँ गायत्री की महिमा का वर्णन कर प्रत्यक्ष फल की प्राप्ति के लिए नियमानुसार गायत्री-जप के लिए प्रेरणा दी गई है। पंच प्रणव युक्त, कामनापूर्ति के लिए सप्तम्पुट और निष्कामता में असप्तम्पुट जप अपेक्षित है। सम्प्रदाय-भेद से पांच प्रणवों में भेद किया जा सकता है।

३७२. जपयोग; (परमार्थ प्रकाश से); त.अ., १.३-४; १-२.१६७०; २-४; हि० । नामसाधना ही जप है । मन्त्र का सतत स्मरण जप है । मन्त्र की सात कोटियां हैं । जपयोग से निजात्मरूप ब्रह्मानन्द में प्रवेश हो जाता है । इस योग में अनन्त शक्ति है । यह मुमुक्षुओं के लिए सरल राजमार्ग है । इस से ज्योतिष में वर्णित मानव के बारहों स्थानों की शुद्धि हो कर उसे सब स्थानों का फल मिल जाता है और वह दिव्य साक्षात्कार, आवरणरहित काया, परमेश्वर में पूर्ण तादात्म्य प्राप्त करता है । इस में अन्य साधनों और क्रियों की अपेक्षा नहीं रहती है । केवल गुरुकृपा ही अभीष्ट है ।

अनिल कुमार गुप्त

३७३. जपयोग का वैज्ञानिक आधार; (कल्याण से साभार); भगवानदास अवस्थी; त.अ., १.५; ३.१६७०; १८-२१; हि. राग और आकृति का कोई प्राकृत सम्बन्ध है । एक खास तरह के राग के छेड़ने पर एक खास तरह की आकृति बन जाती है । विज्ञान भी इस तथ्य को स्वीकार करता है । जपयोग बीजाक्षरों और मन्त्रों का भी यही आधार है । ध्यान और जप दो भिन्न-भिन्न क्रियायें हैं । ये साथ-साथ भी चलते हैं और अलग-अलग भी । जप के समय साधक के सामने इष्ट देव के रूप, गुण और कर्मों का चित्र जागृत्यमान रूप से उपरिधत होता है ।

सुधीर कुमार गुप्त

३७४. जयपुर में तन्त्रशास्त्र की दुर्लभ पाण्डुलिपियां; (समाचार); राण०, ११.४.१६७१; ४:५-६; हि० । वामन एन० धीया के संग्रह में अधिकांश पाण्डुलिपियां जयपुर के शाक्त विद्वानों द्वारा रचित व लिखित हैं । ये ग्रन्थ ग्रन्थपल्लव हैं । इन में विमर्शनन्द नाथ की भुवनाप्रकाश, भुवनेशी-दीपिका, वाङ्मुष्पाहार, गायत्रीपद्धति, अन्वेषिष्ठ श्राद्धग्रह, दक्षिणमार्गीय ग्रन्थों में वृहद् ग्रन्थ और गायत्री-सन्तता, सरसू प्रसादका तवार्थरत्नद्रुम,

जगदानन्द की कुनार्चनदीपिका, श्री चक्रपूजा, महाविद्यारत्न, कालान्त्यापद्धतिविवरण, संख्या-रत्नकोषव्याख्या, भुवनेश्वरकल्पलता और शक्ति-संगमतन्त्र हैं । कुछ अन्य दुर्लभ हलै०—सुजससमण्ड, युद्ध-विलास. कीरतप्रकाश, शारदागम, सिङ्गार-सिन्धु, सुख विलास, अमर रामायण, वाराणसी विलास और संग्राम दर्पण भी इसी संग्रह में हैं ।

३७५. तन्त्रोक्तसाधना; श्रीधर सिद्ध, संस्थापक तत्त्व अनुसन्धान प्रतिष्ठान, जयपुर-३; त.अ., १-१; ११.१६६६; ५-११; हि० । वेदों की भांति अनादि तन्त्र देवता की उपासना मन्त्र, जाप प्रकरण और साधना आदि द्वारा परमात्मा में लीन होने के विधान और युक्तियां हैं । हिन्दुओं के सब सम्प्रदायों की साधनाओं का गूढ़ रहस्य यहां मिलता है । गणपति आदि सब देवता एक ही ब्रह्म के रूप हैं । जीव की कर्म और स्वभाव के वश भिन्न-भिन्न देवताओं में आसक्ति होती है । मुक्ति मानव-जीवन का परम पुरुषार्थ और लक्ष्य है । उस की प्राप्ति के लिए ही आगमतन्त्र पथ और बीज मन्त्र एवं तन्त्र प्रचलित हुए हैं । इन से सभी जन मुक्त बन सकते हैं । इस के लिए ३६ शैव तत्त्वों का ज्ञान आवश्यक है । प्रमा (ज्ञान) या विमर्श अहमंश और इदमंश रूप है । प्रतीति द्विविध-पूर्ण और परिच्छिन्न है । शिव विश्वातीत, विश्वोत्पादक एवं विश्वात्मक है । शिव-तत्त्व शून्यातिशून्य, निःस्पर्न्द परमशिव का प्रथम स्पर्न्द है । परम शिव आनन्द रूप है । शक्ति-तत्त्व शिव की अव्यक्त एवं सन्तत समवायिनी इच्छा है— शिवतत्त्व का एक मात्र निषेधक रूप है । ज्ञान का प्रथम आभास सदाह्य या सदाशिव है । यह निमेष और उन्मेष रूप में व्यक्त होती है । विकासोन्मुख ज्ञान की तीसरी अवस्था ईश्वरतत्त्व है । विमर्श की चौथी अवस्था विद्यातत्त्व है । सदाशिव में अहम् की, ईश्वरतत्त्व में इदम् की और विद्यातत्त्व में इत् दोनों की प्रधानता रहती है । यह तद्विद्या ही मन्त्र रूप है । इस के पांच युद्ध तत्त्व हैं ।

सुधीर कुमार गुप्त

२६५. भारतीय दर्शन के सम्प्रदाय; मुवीर कुमार गुप्त, प्रवाचक, सं.वि., राज.वि.वि., जयपुर; प्र० भाग्यशा०, १९६६; १६५+२८८+४४; ५-००; ६-००; ७-५०; हि०।

376. *Māṭṛkābhēdatantram and its Alchemical Ideas*; B. V. Subbarayappa, NCC.HSI, and Mira Ray, NISI. Cal. (HSI. Unit); *IJHS*, 3.1; 5.1968; 42-49; E. *Rasa-śāstra and some tāntrika texts deal with alchemical ideas. The main alchemical ideas of Māṭṛkābhēdatantram "relate to transmutation processes, preparation as well as powers of mercurial compounds and the rasaliṅga. The concept of rasa liṅga is clearly suggestive of the male-female symbolism associated with mercury and sulphur respectively. Significantly, in the opening chapter the text makes a reference, among others, to Cina tantra and its precepts, indicating thus a possible transmission of mercury-based ideas and practices between the Southern parts of China as well as their adjoining areas and India. On the basis of the tāntrika elements as well as what are generally known as 'intentional language' expressions (Sandhyā-bhāṣā) presented in the text, the probable date of the Māṭṛkābhēdatantram may be 11th or 12th century A. D., perhaps belonging to the Nathasiddha cult of Indian tāntrism".*

रस शास्त्र और कुछ तान्त्रिक ग्रन्थ कीमियाई विचारों का प्रतिपादन करते हैं। मानुकाभेदतन्त्र के प्रमुख कीमियाई विचार "तत्त्वान्तरण प्रक्रियाओं, पारद के योगों के निर्माण और उन के गुणों और रसनिष्पत्ति के विषय में हैं। रसनिष्पत्ति को परिवर्तना पारद और अन्यक में सम्बन्ध क्रमशः पुरुष और स्त्री की प्रतीकों की स्पष्ट संकेतक हैं। यह सम्पूर्ण है कि प्रारम्भिक प्रयोगों में वह पाठ, ग्रन्थों में चीन तन्त्र और उस की विधायीता का उल्लेख करना देखिये कि चीन के रसिकों भागों और उन में सम्बन्ध प्रयोगों और भावन के बीच पारद के उपर प्राथमिक विचारों और प्रयोगों के अन्तरण की सम्भावना व्यक्त होती है। तान्त्रिक तथा और अन्य में प्रतिपादित

सामान्यतः सामिप्राय भाषा(सन्ध्या-भाषा)के आचार पर मानुकाभेदतन्त्रम् की सम्भाव्य तिथि ११वीं या १२वीं शती हो सकती है। सम्भवतः यह भारतीय तन्त्रविद्या के नायकसम्प्रदाय की (कृति) है।"

३७७. मिथिला तथा तन्त्र : एक टिप्पणी; श्रीमन्नागवण द्विवेदी, इलाहाबाद; उमकव., १९७०; २४६-२५८; हि०। लेख में चिन्ताहरण चक्रवर्ती के ग्रन्थ में मैथिलतन्त्रों के विषय में विचार के अभाव को लक्ष्य में रख कर यह लेख लिखा गया है। यहाँ मिथिला के प्रसिद्ध सिद्धिप्राप्त तान्त्रिकों के नाम, तान्त्रिक संस्कृति, भाषा में तान्त्रिक पदावली, शाक्तपीठों और तान्त्रिक ग्रन्थों - प्रागमद्वैत-निर्गुण, पूजा-प्रदीप, मन्त्रकीमुदी, तन्त्रकीमुदी, ताराभक्तिमुवाण्वि, तारिणीपरिजात तथा आयुनिक मैथिल विद्वानों के तन्त्रविषयक कार्य का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। मैथिल ब्राह्मणों तथा सामान्य जनजीवन पर शाक्त विचारधारा का प्रभूत प्रभाव परिलक्षित होता है।

378. *Rasārṇava-kalpa or Rudrayāmala-Tantra*; Mira Roy, HSI (Ancient Period); *IJHS*, 2.2; 11.1967; 137-142; E. This note places this work between the 8th and the 12th c. A D. It is a work on alchemy and is part of Rudrayāmala. The author belonged to Vindhya region. The work has 1000 verses in 29 divisions. For analysis the author divides the work into three parts: The first sets forth the main object of the work—dhātu-siddhi, ratna-siddhi and rasasiddhi. The second describes a variety of processes of mercury with vegetable products and mineral substances. The third describes the properties of mineral substances, plants and the character of soils of different regions for alchemical purpose. The note describes some distinguished features of the treatment in this work of the above topics and in a table gives the properties of 15 plants on the basis of this work. The original tantra is in Skt.

यह लेख रस रचना की चीन में १२वीं शती ई० के बीच में रखा है। यह कीमिया (रसशास्त्र)

पर रचना है और रुद्रयामल का अंश है। ले० विन्ध्य क्षेत्र का निवासी था। इस रचना में २६ खण्डों में १००० पद्य हैं। विश्लेषण के लिए ले० ने इस रचना के तीन भाग किए हैं—पहले में रचना के मुख्य उद्देश्य—धातुसिद्धि, रत्नसिद्धि और रससिद्धि का वर्णन है। दूसरे में वनस्पति तत्त्वों और खनिज द्रव्यों के साथ पारे के विभिन्न योगों का विवेचन है। तीसरे में रसशास्त्र की दृष्टि से खनिज द्रव्यों और पौधों के गुणों तथा विभिन्न भूमियों और क्षेत्रों की प्रकृतियों का वर्णन है। लेख में उपयुक्त विषयों के इस रचना में प्रतिपादन की कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन किया गया है और एक तालिका में इस रचना के आधार पर १५ पौधों के गुण दिए गए हैं। मूलतन्त्र संस्कृत में है।

सुधीर कुमार गुप्त

३७६. वैदिक कर्मकाण्डानुयायियों में तन्त्र-प्रामाण्य का स्वरूप; गोपालचन्द्र मिश्र, वेद-विभागाध्यक्ष, सं० वि० वि०, वाराणसी; त.अ., १.३-४; १-२.१९७०; ४-५; हि०। जादू में वस्तुओं का प्रदर्शन है, तन्त्र में विषय या पदार्थ की स्थिरता व विस्तार और आत्मभय का निवारण है। वेदाविरोधी तन्त्रोक्त कर्मों की प्रामाणिकता 'आचार' के रूप में मानी जाती है। शिष्ट पुरुषों द्वारा धर्म रूप से माना गया, अज्ञात प्रवर्तक वाला, धार्मिक जनों के लिए प्रेरणाप्रद बर्गविशेष का नियम आचार है।

अनिल कुमार गुप्त

१८३.श्रोतुतिः; ले० वेदान्तदेशिकः सम्पादकः कृष्णमूर्तिः; भूमिकाले० वे० वरदाचार्यः; समीक्षा; सागरिका, ६.२; २०२७ वि०; २२०; सं०।

३८०. साहित्य संस्थान में आगमशास्त्र के चिन्ताष्ट ग्रन्थ; अजयल्लभ द्विवेदी, वाराणसी; गोप०; २१.३; ७.६.१९७०; ७३-७५; हि०।
नन्दान विद्यापीठ के साहित्य संस्थान में ले० ने

आगमशास्त्र के कतिपय विशिष्ट शैवागम, वैष्णवागम तथा शाक्ततन्त्रों की सूचना दी है। देवनागरी लिपि में पाञ्चरात्र और सिद्धान्त शैवागम के विशिष्ट ग्रन्थों की पाण्डुलिपियां हैं। वैष्णवागम की जयाख्यसंहिता की मातृका, सात्वत संहिता और अहिर्बुध्न्यसंहिता के अतिरिक्त पारमेश्वरसंहिता, नारदीयसंहिता, विश्वामित्र संहिता और वैखानस संहिता की पाण्डुलिपियां भी हैं। पाञ्चरात्रोत्पत्ति, नृसिंहारण्य के विष्णुभक्ति-चन्द्रोदय की मातृका भी उपलब्ध हैं। शैवागमों में मतङ्गपारमेश्वर आगम के विद्यापाद पर रामकण्ठ रचित वृत्ति की सम्पूर्ण मातृका, अजितागम की सम्पूर्ण मातृका, कारणगम और कामिकागम ग्रन्थ भी विद्यमान हैं। शाक्त ग्रन्थों में त्रिपुरसुन्दरीपद्धति और उस की दिव्यापोडशिकार्णव की अर्थरत्नावली नाम की टीका भी विद्यमान है।

नाथूलाल पाठक

३८१. स्वरोदय साधन; (कल्याण से); तड़ित्कान्त; त.अ., १.३-४; १-२.१९७०; १०-२५; हि०। इस में ले० ने स्वरोदय-विज्ञान अर्थात् श्वासोच्छ्वास की गति, स्वर चलने के नियम, श्वास जानने की विधि, प्रत्येक नासिका से श्वासोच्छ्वास होने की अवधि तथा बदलने की रीति, पञ्चतत्त्व और तत्त्वों की अवधि का वर्णन किया है। स्वर तथा कार्य और कार्यसिद्धिकरण, गर्भाधान का विवेचन करते हुए मृत्यु, रोग तथा आपत्ति के पूर्व ज्ञान तथा प्रतिकार के उपाय बताए हैं।

श्रीधर सिद्ध

आर्यसमाज (Ārya Samāja)

३८२. आर्य समाज और महिला जागृति; सुनीति देवी; दकास्मा., १९७१; ३६-४१; हि०। लेख में पतन की पराकाष्ठा, जागरण का सन्देश और प्रगति का पथ शीर्षकों में नारी की दयानन्द काल में हीन दशा, दयानन्द के उसके उद्धार के प्रयत्नों और उसके परिणामों का विवरण दिया है।

इसमें आर्यसमाज की कतिपय महिला शिक्षा संस्थाओं का भी उल्लेख किया गया है।

प्रनिल कुमार गुप्त

३८३. आर्यसमाज की शिक्षा संस्थाएं; नरेन्द्र, हैदराबाद; दकास्मा., १९७१; ३७-३८; हि०। लेख में आर्यसमाज की शिक्षा संस्थाओं-गुरुकुलों, कालिजों और स्कूलों पर विहंगम दृष्टि डालते हुए कतिपय संस्थाओं के नाम गिनाए हैं। इन संस्थाओं की देन और शिक्षा प्रणाली की ओर भी इंगित किया गया है।

प्रनिल कुमार गुप्त

३८४. आर्यसमाज की हिन्दी को देन; सूर्यदेव शर्मा, मन्त्री, आर्यसमाज, अजमेर; दकास्मा., १९७१; ३४-३६; हि०। दयानन्द ने प्रत्येक आर्यसमाजों के लिये हिन्दी का ज्ञान वांछनीय माना, स्वयं हिन्दी में प्रचार किया और ग्रन्थ लिखे। आर्यसमाज ने शिक्षा, पत्रकारिता, साहित्य और प्रचार में हिन्दी का पुष्कल प्रयोग कर उस के प्रसार में महान् योग दिया है।

प्रनिल कुमार गुप्त

३८५. आर्यसिद्धान्त-मुक्तावली (श्रुतिबोध); मदनमोहन विद्यासागर; प्र० आर्य प्रतिनिधिसभा, मुलतान बाजार, हैदराबाद (आ. प्र.) (द. भा.); १९५६ (२०१३ वि०); ४+११२; हि.। इस में ले. ने विश्व, ईश्वर, जीव, प्रकृति, स्तुतिप्रार्थनोपासना, श्रैतवाद, कार्य-कारण, मृष्टि, प्रलय, वेद, जन्म-मृत्यु, पुनर्जन्म, कर्म-सिद्धान्त, यज्ञ, संस्कार, यज्ञ, प्राथम, विवाह, व्यवहार, शासन, न्याय, पतिविधि आदि पूवनीय जन, आस्तिक-नास्तिक, ऋषि, वेदान्त, ब्रह्मविद्या, चिन्मय, धर्मशास्त्र, भूतप्रेत, स्वर्ग, नरक, परम, अथर्व, अथर्व और काम, वन्य और मोक्ष, नमस्ते और आर्यसंस्कृति के दस शीतों आदि का ५५ श्लोकों में दयानन्द और आर्यसमाज की मान्यताओं की दृष्टि में परिभाषात्मक विवरण

दिया है तथा प्रारम्भ में संक्षिप्त भूमिका में दयानन्द का मर्यांकन भी प्रस्तुत किया है।

सुधीर कुमार गुप्त

३५४. ईशोपनिषद्; सम्पादक: सुधीर कुमार गुप्त, प्रवाचक, सं. वि., रा. वि. वि., जयपुर-४; प्र. भामशशा., १९६९; २+७४-९६; २६अ-४४अ; १-२५; सं., हि.।

३८६. ईश्वर विषयक; रामेश्वर दयाल गुप्त, असिस्टेंट इंजीनियर, रानी बाजार, वीकानेर; आर्यों का श्रैतवाद, १.१; १०.१९७०; खण्ड ३; १-३१; हि.। प्रारम्भ में सब आस्तिक थे। दर्शन-जन्य गृहकार आदि से इस आस्तिक भाव का हास हुआ है। उसी के कारण अपने को, मन्दिरस्थ मूर्ति को, प्राणी विशेष को प्रवतार, ईश्वरपुत्र, ईश्वर का सन्देशवाहक आदि मानने लगे। साम्यवाद ने तो वर्म और ईश्वर को उच्छिन्न ही कर दिया है। अल्प ज्ञान से पूर्णज्ञान-परमात्मा के अस्तित्व का बोध होता है। मानव वेद से ज्ञान प्राप्त करता है। वह सम्पूर्ण ज्ञान को नहीं पा सकता है। मानव पूर्णानन्द चाहता है, अतः पूर्णानन्द रूप ब्रह्म है। प्रकृति में विकृति लाने के लिए ज्ञान से शासित शक्तिमान् की अपेक्षा है। सृष्टि और सामाजिक जगत् में सब काम नियम के अनुकूल होते हैं। जेमिन के मत में वेद—ईश्वर के ज्ञान से सब सृष्टि होती है। परिशेष अनुमान से सब सत्य और पदार्थ-विद्याओं का आदिमूल परमेश्वर है। मानस का द्वन्द्वात्मक नीतिकवाद ही ईश्वर है। विभिन्न कालों में विभिन्न गुणों के प्राधान्य को श्रैतवाद और मानस का यह दर्शन—दोनों ही मानते हैं। अतः ईश्वर है, वह जीवों पर नियंत्रण रखता है, उस की न्याय-ध्वस्तता तदा एकलक्ष्य चलती रहती है। उस की कर्मफल की प्रक्रिया न्याय्य और दयालय है। वेद के अन्त में पक्षयज्ञ, कुरान गरीक और वेद दर्शन में कर्म के फल के अनुकूल दण्ड या योनिव्यवस्था का निरूपण,

ईश्वर का लक्षण, ईश्वर के गुण और ईश्वर का अस्तित्व मानने के लाभ बताए गए हैं ।

३८७. उपनयनसर्वस्व; ले. प्र., आचार्य. कृष्ण, दोवान हाल, दिल्ली १९६८; १४ + ६८; १-२५; हि.। पुस्तक के कोप के पृ. २ और ३ पर शिवकुमार शास्त्री ने ले. का प्रशंसात्मक परिचय दिया है । दो शब्द में ले. ने इस पुस्तक की रचना की परिस्थितियाँ बताई हैं । पुस्तक में उपनयन का विवेचन करते हुए त्रिगुणात्मिका प्रकृति, यज्ञोपवीत एक चिह्न, उपनयन का अर्थ, दो जन्म, द्विज, परिवीत और उपवीत, यज्ञोपवीत मन्त्र, प्रजापति की कक्षा, वन्धन ही मोक्ष का कारण, ब्रह्मग्रन्थि, वृत्त के तीन तत्त्व, ब्रह्म के अर्थ, यज्ञसूत्र, सावित्री ग्रन्थि, वामस्तन्ध पर (यज्ञोपवीत) धारण करने का रहस्य, सूर्यवृत्त का अनुवर्तन और प्रतिज्ञा मन्त्र आदि अनेकों सम्बद्ध विषयों पर प्रकाश डाला गया है । उपनयन आचार्य और शिष्य को तीन केंद्रों—नाभि, हृदय और मूर्धा में परस्पर आवद्ध करता है । दोनों एक-दूसरे की वाणी के अनन्य मन से सेवन की प्रतिज्ञा करते हैं । वर्ण का आधार उपनयनजन्य जन्म ही है । आचार्य ओषधिरस से शिष्य की नाभि की, पयःरस से हृदय को और सोमरस से मूर्धा को आप्यायित करे । यज्ञोपवीत ब्रह्म, विद्या और यज्ञ—इस त्रिवृत्त का प्रतीक है । सावित्री के त्रिवृत्त १. भर्गं वरेण्यं और वी तथा २. भूः, भुवः और स्वः हैं । ये ही अ, उ, म् वा प्रणव ओम् हैं । वृत्त से ही मनुष्य आर्य बनता है । वृत्त वित्त से ऊँचा है ।

१६४. ऋषि दयानन्द और आर्य समाज की संस्कृत साहित्य को देन; भवानीबाल भारतीय, प्रव्यक्त हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, पानी; प्र. रामनाथ कपुर ट्रस्ट, अमृतसर; २०२५ वि.; १८ + ३८४; हि. ।

388 Contributions of Swami Dayanand to Indian Education; R K Chaudhari, Senior Lecturer in English,

P.G. Jialal Institute of Education, Ajmer; DCS., 1971; 7-10; E. The author briefly describes the conditions of indigenous system of education in the age of Dayānanda and the western bias in our modern educational approaches and points out that Dayānanda gave an Indian outlook to education, pleaded for Vedic instructions, to all including the low borns and women, stressed building of character having 14 qualities of non-violence, belief in God, celibacy, forgiveness, truthfulness and others and advocated the cause of Hindi for medium of instruction. Dayānanda introduced a new method of critical, interpretative and creative teaching. Dayānand wanted that education must be given to all without distinction of sex, caste or creed. Education is a process that runs throughout the life of a man. He wanted educational institutions residential and away from the busy life and other evil influences of cities. He desired the inclusion of the study of modern sciences also. "If the test of modernity is adaptability, he was a most modern thinker on education".

लेखक ने दयानन्द के समय में शिक्षा की देशी पद्धति की दशा और हमारे वर्तमान शैक्षणिक विचारों में पश्चिमी अभिनति का संक्षिप्त वर्णन करते हुए यह स्पष्ट किया है कि दयानन्द ने शिक्षा को भारतीय दृष्टिकोण दिया, शूद्रों और स्त्रियों के सहित सब के लिये वैदिक उपदेशों के लिए उद्बोधन किया, तथा अहिंसा, ईश्वर में निष्ठा, ब्रह्मचर्य, क्षमाशीलता, सत्यता आदि चौदह गुणों से युक्त चरित्रनिर्माण पर बल देते हुए शिक्षा के माध्यम के रूप में हिन्दी का प्रतिपादन किया । दयानन्द ने शिक्षण की एक नवीन विवेचनात्मक, अर्थबोधक एवं सृजनात्मक पद्धति को प्रवर्तित किया । दयानन्द चाहते थे कि लिंग, वर्ण एवं धर्म के भेद के बिना सब को ही शिक्षा दी जानी चाहिए । शिक्षा एक ऐसी व्यवस्था है जो मनुष्य के समस्त जीवन में व्याप्त रहती है । वे चाहते थे कि शैक्षणिक संस्थाएँ निवासीय हों एवं शहरों के

व्यस्त जीवन एवं अन्य दूषित प्रभावों से दूर बनाई जाएं। वे आधुनिक विज्ञान को भी शिक्षा में सम्मिलित करने के इच्छुक थे। “यदि ग्रहणशीलता ही आधुनिकता की कसौटी है तो वे शिक्षा पर सर्वाधिक आधुनिक विचारक थे।”

सुधीर कुमार गुप्त

३५५. केनोपनिषद्; सम्पादक: सुधीर कुमार गुप्त, प्रवाचक, सं. वि. राज. वि. वि., जयपुर-४; प्र. भामशशा., १९६६; ८-१०४; २-००; ३-५०; सं., हि०।

389. Gurukula system of Education in Present Day Context; S. C. Rajvanshi, Senior Lecturer in History, Dayanand College, Ajmer; DCS., 1971; 14-19; E. The author outlines the aim, objects and ingredients of the old gurukula system of education which was based on Varnashrama-Dharma. It was free and the institutions were autonomous. Teaching was social service. It was decentralized and individualistic. Teacher had full independence in choosing the courses etc. that he wished to teach. The author also makes out some special features of this system like one man institution, change in instruction method according to age, individual attention, and no prescribed teaching hours. The system proved upto the expectations and needs of the then society. Modern system is all opposite of the ancient system. The attempt to revive the Gurukula system in the 20th c. has been a colossal failure. But this system did prove instrumental in protecting Hinduism from alien attacks.

सं. में वर्णाश्रम धर्म पर प्राच्यगुप्त विज्ञान प्रणाली के लक्ष्य, उद्देश्य एवं उपकरणों की व्याख्या प्रस्तुत की है। यह शिक्षा निःशुल्क थी एवं सम्पूर्ण स्वायत्ततावादी थी। प्रत्याजन समाज सेवा था। यह विवेकिय और शक्ति सूचक था। प्राच्यगुप्त की अपनी प्रविष्टि के अनुकूल प्रत्याजन के लिए प्राच्यगुप्त धर्म की पूरी स्वायत्तता

थी। सं. ने इस शिक्षणपद्धति की कतिपय विशेषताएँ भी बताई हैं: यथा—एक व्यक्ति की संस्था, आयु के अनुरूप शिक्षणपद्धति में भेद, व्यक्तिशः अवधान और अध्यापन का अनिर्धारित समय। यह पद्धति उस समय के समाज की आशाओं और आवश्यकताओं के अनुरूप ही सिद्ध हुई थी। किन्तु वर्तमान पद्धति इस प्राचीन पद्धति के विरुद्ध विपरीत है। गुप्तकुल पद्धति को २०वीं शती में पुनर्जीवित करने का प्रयास निरन्तर विफल सिद्ध हुआ है। किन्तु यह पद्धति विरोधी आक्रमणों से हिन्दू धर्म की रक्षा करने में अवश्य ही सहायक सिद्ध हुई थी।

सुधीर कुमार गुप्त, प्रीतिप्रभा गोयल

४४. जीवन का लक्ष्य; जीवाराम पुरोहित, श्रीकर्णपुर; ग्रा. मा., ५०.२०; १५.१२.१९७०; ४-५; हि०।

३९०. जीवात्मा; रामेश्वर लाल गुप्त ग्रिमिस्टेंट इंजीनियर, रानी बाजार, बीकानेर; आयों का त्रैतवाद, १.१; १०.१९७०; खण्ड २; १-३१; हि०। वैज्ञानिक पद्धति पर एक कोशिका भौतिक शरीर से पारिव्य वस्तुओं के निर्माण की प्रक्रिया बताते हुए माना है कि इन में गति जीव या आत्मा रूप एक अन्य शक्ति के प्रवेश करने पर आती है। एक जीव दूसरे जीव को जन्म नहीं देता है। पारिव्यारिक गुणों का प्रकाश भौतिक कारणों से होता है। निर्जीव प्रकृति से जीव का निर्माण सम्भव नहीं है। बुराना के DNA निर्माण से प्रारम्भिक प्रभेदी नृष्टि का अस्तित्व व्यक्त होता है। शरीरस्य जीव अनेकविध कार्य करता है। उस के प्रशापक चिह्न शब्दा, रूप, प्रयत्न, गुण, गुण और ज्ञान हैं। यह हिरण्यकोष में शरीर के ऊर्ध्वभाग में स्थित है, वह द्रव्य नहीं बनता है, न यह (जीव) द्रव्य का घन है। यह घनर है। उस के नाम शरीर है—द्रव्य, सूक्ष्म और कारण। कारण शरीर तथा जीव के साथ जुगा रहना है। कारण शरीर साथ साथ रहना ही जीव की मुक्ति

है। जीव अनेक और पृथक्-पृथक् हैं। उन की संख्या निश्चित है; घटती-बढ़ती नहीं है। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। वह अनेक बार जन्म लेता है। कुछ ईसाई और कुरान शरीफ की आयातें भी पुनर्जन्म मानते हैं। जीव ईश्वराधीन है।

सुधीर कुमार गुप्त

५१. जिज्ञासा और समाधान; युधिष्ठिर मीमांसक; वेदा., २३.३; १.१९७१; ४३-४६; हि०।

३६१. जीवेश्वरभेदविमर्शः; जयदत्त शास्त्री, गुप्त, २३.१-१; ९-१०; १९७०; ३३-३८; सं.। जीवेश्वरयोः स्वरूपविषये नाना मतानि सन्ति। जीवः परमसूक्ष्मः, परिच्छिन्नश्च, शरीराद् बहिरस्य वृत्तिर्नास्ति। तस्य स्थानं हृदयम्। परमात्मा जीवाद् भिन्नः, सूक्ष्मतरः, तस्मिन् प्रविष्टः, तस्य प्राणाधारश्च। जीव आनन्दं मोक्षं वा प्राप्यापि तस्मात् पृथक् तिष्ठति। स निराकारत्वादिगुण-विशिष्टो जगतः स्रष्टा, धर्ता, पाता, संहर्ता च। आत्मसमर्पणेन सत्याचरणेन च स प्राप्यते।

जीव और ईश्वर के स्वरूप पर अनेक मत हैं। जीव परम सूक्ष्म और परिच्छिन्न है। शरीर से बाहर इस की गति नहीं है। इस का स्थान हृदय है। परमात्मा जीव से भिन्न, सूक्ष्मतर, उस में प्रविष्ट, और उस का प्राणाधार है। जीव आनन्द या मोक्ष को प्राप्त कर के भी उस से अलग रहता है। निराधार आदि गुणों वाला वह जगत् का सृजक, पालक, धारक और नाशक है। उसे आत्मसमर्पण और सत्याचरण से जाना जा सकता है।

३६२. डी. ए. वी. संस्थाओं का स्वतन्त्रता आन्दोलन में योगदान; राजेन्द्र जिज्ञासु, दयानन्द कॉलेज, अमोहर; दकास्मा.; १९७१; ४५-४८; हि०। लेख में स्वतन्त्रता आन्दोलन के विभिन्न क्षेत्रों—जागृति उत्पन्न करने, गौरव जागृत करने, स्वदेशी के अभियान, प्रथम किसान मोर्चा, मार्शल लॉ, जलियांवाला बाग गोली काण्ड, क्रान्तिकारी

आन्दोलन, १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन आदि में डी. ए. वी. संस्थाओं के छात्रों, अध्यापकों और प्रबन्धकों के योग और बलिदानों का विवरण दिया गया है।

३६३. त्रैतवाद के सम्बन्ध में साधारण प्रतिज्ञा; रामेश्वर दयाल गुप्त, असिस्टेंट इञ्जीनियर, रानी बाजार, बीकानेर; आर्यों का त्रैतवाद, १.१; १०.१९७०; १-२०; हि०। आर्यसमाज के संस्थापक दयानन्द ने ईश्वर, जीव और प्रकृति को अनादि तत्त्व मान कर अन्य दार्शनिकों से भिन्न दार्शनिक विचारधारा दी। ले. ने इस त्रैतवाद की आवश्यकता का परिचय दे कर उस की मान्यताओं का विवरण दिया है। शरीरस्थ इन्द्र ही जीव या आत्मा है, जो अनादि और अनन्त है। वह कर्म करने में स्वतन्त्र, ईश्वर द्वारा अर्निमित और उस में लीन न होने वाला है। वह अल्प ज्ञान वाला, सीमित समय के लिए मुक्ति पा सकने वाला, निश्चित परन्तु अनेक संख्या वाला है। सब प्रकृति वास्तविक है। परमाणुओं के संघटन और विघटन से उत्पत्ति और प्रलय का अनन्त और नित्य शाश्वत प्रवाह चलता है। यह जीव की भोग्या है। पदार्थों में ज्ञान, स्वयं की गति, गति में बदलने का सामर्थ्य नहीं है। गुणों से अनुमेय, संसार में न्याय व व्यवस्था बनाए रखने वाली, अवतरित न होने वाली अदृश्य सत्ता ईश्वर है।

३६४. दक्षिण में हिन्दी के प्रचार में आर्य-समाज का योगदान; क्षेमचन्द्र सुमन, साहित्य अकादमी, दिल्ली; दकास्मा., १९७१; ५२-५४; हि०। ले. ने आर्यसमाज की शिक्षा-संस्थाओं में शिक्षित दक्षिण भारतीय और उत्तर भारतीय अनेकों व्यक्तियों के दक्षिण में हिन्दी प्रचार कार्य का संक्षिप्त विवरण दे कर निष्कर्ष निकाला है कि आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं के कार्य के कारण ही दक्षिण में हिन्दी प्रचार इतनी गति से बढ़ पाया है। "दक्षिण के आन्ध्र प्रदेश के हैदराबाद नगर

श्रीर तेलंगाना क्षेत्र को छोड़ कर अन्य स्थानों में आर्यसमाज द्वारा प्रभावित हिन्दी प्रचारक कम ही हैं।”

३९५. दयानन्द-शास्त्रार्थ संग्रह; सम्पादक: भवानीलाल भारतीय, राजकीय कालिज, अजमेर; वेवा., २३।१; ११.१९७०; ३-१९०; हि०। इस में दयानन्द सरस्वती के काशी, हुगली, मेलाचांदापुर, जालन्धर, अजमेर, बरेली और मसूदा के शास्त्रार्थों का आलोचनात्मक भूमिकाओं और टिप्पणियों सहित सम्पादन किया गया है। प्राक्कथन में आचारभूत सामग्री का विवरण भी दिया गया है।

२०. नासदीयसूत्रम् (भाववृत्तीयम्) (ऋ. १०.१२९); अरविन्दमतमनुसृत्य केनचित् लिखितम्; विषयसूच्यां त्वरविन्दस्यैव नामांकितमस्ति:; गुप., २३.१-२; ९-१०.१९७०; २२-३१; सं.।

३९६. परिशिष्ट (१); भवानी लाल भारतीय; वेवा., २३.२; १२.१९७०; २२-२६; न., हि०। कानी के पंडितों की ओर से प्रतकन्नन्दिनी (Hindu Commentator), १२.१९६९ में प्रकाशित काशी-शास्त्रार्थ के विवरण से दयानन्द की विजय के संकेतक कतिपय ग्रंथों को प्रस्तुत करने वाले, 'प्रायं दर्पण' के सम्पादक को भेजे गए पत्र का सटिप्पण संकलन है।

३९७. द्वितीय परिशिष्ट; सम्पादक: भवानी लाल भारतीय; वेवा., २३.२; १२.१९७०; २७-५४; न.; हि०। सत्यप्रताप सामभ्रमो द्वारा प्रतकन्नन्दिनी १२.१९६९ में प्रकाशित (स्वा. दयानन्द और पण्डितों के) कानी शास्त्रार्थ-विवरण का मधुरा प्रसार शोध के हिन्दी अनुवाद सहित द्वितीय संस्करण के आधार पर नए हिन्दी अनुवाद के साथ; भाग्यशतक, अनुभावक और आलोचनात्मक टिप्पणियों से युक्त नया संस्करण है। दयानन्द शास्त्रार्थ से परभावित नहीं हुए। अनुसृत्य के विरुद्ध

सिद्ध न की जा सकी। पण्डित वृन्द अनेकशः नियह स्थानों में पढ़ कर पराजित हुए।

३९८. परिशिष्ट (३) सहायक ग्रन्थ सूची; भवानी लाल भारतीय; वेवा., २३.२; १२.१९७०; ५५; हि०। इस में दयानन्दशास्त्रार्थसंग्रह के सम्पादन के उपजीव्य ग्रन्थों की सूची दी गई है।

३९९. प्रकृति की सत्ता; रामेश्वर दयाल गुप्त, असिस्टेंट इञ्जीनियर, रानी बाजार, वीकानेर; आर्यों का त्रैतवाद., १.१; १०.१९७०; खण्ड १; १-१९ हि.। इस में त्रैतवाद के जड़तत्त्व प्रकृति का विवेचन किया गया है। भौतिकवादी भी परमाणु को नित्य मानते हैं। प्रोटोन में सत्ता है, बुद्धि नहीं। संसार को क्षणभंगुर या माया या स्वप्नवत् मानना संभव नहीं। वह सत्य, दीर्घ काल व्यापी और स्वतन्त्र अस्तित्व वाला है। प्रकृति के पदार्थों को देवता कहते हैं, परं वे सात्त्वा नहीं हैं। न्यूटन के गति के नियम से भी प्रकृति की अचेतनता (-जड़ता) सिद्ध होती है। प्रकृति जीव के सुख और उपभोग के लिए है। प्रकृति में परिवर्तन अन्य तत्व के कारण ही होता है, उस में स्वतः विकास नहीं होता है।

३३३. ब्रह्मसूत्र; रामेश्वर दयाल गुप्त, त्रिनिपल, टेम्पिकॉम ट्रेनिंग सेंटर, आदर्श नगर, जयपुर-४; आर्यों का त्रैतवाद, १.२; १२.१९७१; १-१५३ (=१५४); हि०।

२९५. भारतीय दर्शन के सम्प्रदाय; मुधीर कुमार गुप्त, प्रवाचक, सं. वि., राज. वि. वि., जयपुर; भाग्यशत., १९६९; १६प्र०+; ११+४पा ५-००; ६-००; ७-५०; हि.।

४००. पत्र और भोजन में मांस उन ग्रन्थों का क्या किया जाय जिनमें विधान है?; श्री एन. चोपे, हैदराबाद; गुप. २३.३; १०-११.१९७०; १४७-१५०; हि०। दयानन्द के मत से वेद-युद्धा समाप्ति प्राणायामिक है, वेद-राज्य है। मांस का उपयोग वैश्विक है। पांच दिनों की नीमता

पर काम करना चाहिए। आर्यसमाज में कुल चार ही विद्वान् हैं। चतुर्वेदविषयसूची को छपवाना चाहिए।

सुधीर कुमार गुप्त

३६०. रावणभाष्यसु; सम्पादक: सुधीर कुमार गुप्त, प्रवाचक, सं. वि., राज. वि. वि., जयपुर-४; भाग्यशा., १९६७; ग+४+९१+८०; १५-००; सं., हि०।

401. **Role of the Arya Samaj in the Social and Cultural Reform in India;** Miss Jyotsna Velankar, Maharshi Dayanand College, Bombay; DCS, 1971; 11-13; E. It presents a survey of Dayananda's work for the social uplift of Hindus with special reference to caste system, women, education and Hindi. Reference has also been made to the objectives of the All India Dayananda Salvation Mission and the role of D.A.V. institutions.

यहां हिन्दुओं के सामाजिक उत्थान के लिए, विशेषतः वर्णव्यवस्था, नारी, शिक्षा एवं हिन्दी के क्षेत्र में दयानन्द द्वारा किये गये कार्य की गवेषणा को प्रस्तुत किया गया है। अखिल भारतीय दयानन्द मुक्ति संघ एवं डी. ए. वी. संस्थाओं का भी निर्देश किया गया है।

सुधीर कुमार गुप्त, प्रीति प्रभा गोयल

१७०. विनयः; धर्मदेशो विद्यामार्तण्डः (देव-मुनिवानप्रस्थः), ज्वालापुरम्; गुण., २३.१-२; ९-१०.१९७०, ३२; सं.।

७०. वेद के सम्बन्ध में यथा जानो और यथा नूतो; ले. स्वा. समर्पणानन्द सरस्वती; प्र० वर्णाश्रम संघ, प्रभात आश्रम, भोला भील (मेरठ); ०-५० पैसे; हि०; समीक्षक: भवानो लाल भारतीय; सा. मा., ५०.१६; १.१२.१९७०; हि०।

१३४. वेदभाष्यपद्धति को दयानन्द सरस्वती को देन; सुधीर कुमार गुप्त, प्रोफेसर व अध्यापक संस्कृत विभाग, एन. प्रार. ई. सी. कानिज,

जुरजा (उ०प्र०); राज. वि. वि. द्वारा १९५७ में स्वीकृत पीएच.डी.(सं.)का शोधप्रबन्ध; ६८५; हि.।

१३५. वैदिक अनुसन्धान के लिए छात्रवृत्ति; वेवा., २३.३; १.१९७१; ४७; हि०।

४०२. शब्द प्रमाण; रामेश्वर दयाल गुप्त असिस्टेंट इंजीनियर, रानी बाजार, वीकानेर; आर्यों का त्रैतवाद, १.१; १०.१९७०; १०-२०; हि०। ले. ने पांच श्रुतिवाक्यों को प्रस्तुत कर उन के अर्थ और भाव विवेचन आदि दे कर त्रैतवाद का स्थापन किया है। इस सम्बन्ध में एककारणवादी अद्वैत और प्रकृतिवाद का निराकरण भी किया गया है।

सुधीर कुमार गुप्त

४०३. शास्त्रार्थ अजमेर; सम्पादक: भवानी लाल भारतीय; वेवा., २३.१; ११.१९७०; ११८-१२८; हि.। यह पूर्व के संस्कारों के परिचयात्मक सम्पादकीय के साथ अजमेर में पादरी ग्रे से वाइवल में वर्णित ईश्वर के स्वरूप पर लिखित शास्त्रार्थ का सम्पादन है। दयानन्द का मत था कि वाइवल में ईश्वर का वर्णन विरोधों से युक्त है। पादरी ग्रे ने इन विरोधों का समाधान करने का प्रयास किया।

४०४. शास्त्रार्थ उदयपुर; सम्पादक: भवानी लाल भारतीय; वेवा., २३.१; १२.१९७०; ७-२१; हि०। सम्पादकीय में इस शास्त्रार्थ का इतिहास है। यह शास्त्रार्थ दयानन्द का मौलवी अब्दुर्रहमान से ईश्वरीय ज्ञान, वेद की रचना और वैशिष्ट्य, मनुष्य की उत्पत्ति और अन्त, संसार के मनुष्यों की एक वा अनेक जातियों विषयों पर हुआ। दयानन्द के मत में वेद की भाषा केवल विद्या की है। सृष्टि के समय लगभग २ अरब वर्ष पूर्व असंख्य जीवों ने मनुष्य शरीर धारण किया। विद्यासिद्ध धर्म प्रमाण है। वेद की शब्दार्थ सम्बन्ध सहित ईश्वर ने चार ऋषियों के आत्मा और मन में प्रकाशित किया। ईश्वर, जीव और प्रकृति अनादि

हैं। प्रकृति सृष्टि का उपादान कारण है। वेद ही सब ज्ञान का आदि स्रोत, विद्यानुकूल, सब का उपकारक पूर्व विद्वानों को मान्य है। वाइबल, कुरान, पुराण आदि ईश्वरीय ज्ञान नहीं हैं।

४०५. शास्त्रार्थ काशी; सम्पादक: भवानी लाल भारतीय; वेवा., २३.१; ११.१९७०; ६-४४; हि०। यह दयानन्द सरस्वती के पौराणिक पण्डितों के साथ १६.११.१८६६ को काशी में मूर्तिपूजा की श्रवैदिकता और पुराण शब्द के अर्थ आदि पर हुए शास्त्रार्थ का हि. अ. और टिप्पणियों सहित सम्पादन है। सम्पादकीय में शास्त्रार्थ विषयक विविध सामग्री, तत्कालीन मित्र, शत्रु और उदासीनों की प्रतिक्रिया, दयानन्द की पराजय के प्रकाशक ग्रन्थों का विवरण, शास्त्रार्थ का प्रभाव, काशी शास्त्रार्थ के विभिन्न संस्करण तथा तत्सम्बन्धी साहित्य का लेखा प्रस्तुत किया गया है।

४०६. शास्त्रार्थ जालंधर; सम्पादक भवानी लाल भारतीय; वेवा., २३.१; ११.१९७०; १०५-११७; हि०। यह पूर्व के संस्करणों और विवरणों के परिचयकारक सम्पादकीय के साथ जालंधर में 'पुनर्जन्म और चमत्कार' पर दयानन्द और ग्रहमद हुसैन के शास्त्रार्थ का सम्पादन है। इस्लाम के मत में चमत्कार मनुष्य स्वभाव के प्रतिकूल और ईश्वर का कर्म है। दयानन्द मानते हैं कि ऐसा चमत्कार ईश्वर कभी नहीं करता है। उस की शक्ति की भी सीमा है। मोचियों के मत में प्रकृति और आकार नाशवान् है और इस लिए पुनर्जन्म नहीं होता। दयानन्द मूल कारण में मूल प्रकृति को निहित मानते हैं। मूल कारण नशवान् है। प्रकृति पुनर्जन्म होना है।

४०७. शास्त्रार्थ मसूदा; सम्पादक: भवानी लाल भारतीय; वेवा., २३.१; ११.१९७०; १७२-१६०; हि०। मसूदा की प्रकृतियों में इन शास्त्रार्थ का स्रोत और इतिहास है। इस में दयानन्द के दो भाग्यार्थ हैं— १. मुंह पर पट्टी बांधने और गर्म

जल पीने आदि पर जैन साधु सिद्धकरण से लिखित विचारविमर्श है। २. कबीर पर कतिपय आक्षेप हैं। इस में विहारीलाल ईसाई पादरी और राव साहव बहादुरसिंह मसूदा के स्वामी दयानन्द की मध्यस्थता में विश्वास था ईमान पर हुए विचार का भी विवरण है।

४०८. शास्त्रार्थ हुगली; सम्पादक भवानी लाल भारतीय; वेवा., २३.१; ११.१९७०; ४५-७०; हि०। यह प्रतिमापूजा की वैदिकता और श्रवैदिकता पर स्वामी दयानन्द और ताराचरण के हुगली में हुए शास्त्रार्थ का सम्पादन है। सम्पादकीय में इस के पहले के संस्करणों का विवरण दिया गया है। मूल में दयानन्द का मत है कि मूर्तिपूजा वेदादि ग्रन्थों में विहित नहीं है। मनुष्य के मर कर पितृलोक जाने और यहां पितरोपासना शास्त्र सिद्ध नहीं हैं। ब्रह्मविद्या का मूर्तिपूजन से कोई प्रसंग नहीं है। प्रमाण या परिमाण करने का साधन ही प्रतिमा है। पुराण विशेषण पद है और 'पुराना' का वाचक है। शतभिः आदि ब्राह्मण ही पुराण हैं। अठारह पुराण सान्प्रदायिक हैं। व्यास रचित नहीं हैं। देव शब्द परमात्मा और मन्त्रों का वाचक है। अग्नि आदि परमेश्वर के नाम हैं। तोबा आदि से पापहीन होकर मुक्ति नहीं होती है। योग और न्याय के अनेक सूत्रों और मनु के कतिपय श्लोक आदि का हिन्दी में व्याख्यान भी है।

४०९. श्री शंकराचार्य निरंजन देव का व्याख्यान में चातुर्मास; प्रेम राज आर्य, प्रजमेर; प्रा. मा., ५०.२१; १.१.१९७१; १२-१३; हि०। शंकराचार्य के मूर्तिपूजाविषयक विचारों का मुक्ति और प्रमाणों के द्वारा खण्डन किया गया है।

४१. श्वेताश्वतरोपनिषद्; के. जगत् कुमार शास्त्री; प्र० मधुर प्रमाणन, पार्ष्वतमास, राजार गोमारान, दिल्ली ६; ४-००; हि०; समीक्षक: भवानीलाल भारतीय; प्रा. मा., ५०.१६; १.१२.१९७०; १५; हि०।

२२७. संस्कृत भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन; भवानी लाल भारतीय, मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान, प्राध्यापक हिन्दी विभाग, राजकीय कालिज. अजमेर; दकास्मा., १९७०; ३१-३३; हि० ।

४१०. सत्यधर्म-विचार-मैला-चांदापुर; सम्पादक: भवानी लाल भारतीय; वेवा., २३.१; ११. १९७०; ७१-१०४; हि० । चांदापुर में सब धर्माचार्यों के पारस्परिक विचार विनिमय के लिए आयोजित मेले में ईश्वर, सृष्टि और मुक्ति पर दयानन्द के अन्य धर्मों के प्रतिनिधियों से वार्तालाप के सारांश का, सम्पादकीय में इस के पूर्व संस्करणों आदि के विवरण के साथ सम्पादन है । दयानन्द का मत है कि जगत् को ईश्वर ने प्रकृति से बनाया । सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय प्रवाह से अनादि और अनन्त हैं । आर्यावर्त से ही सब देशों में विद्या फैली । ईश्वर जगत् को अपने सामर्थ्य की सकलता और जीवों के सुख के लिए बनाता है । ईश्वर, जीव और प्रकृति अनादि हैं । सब दुःखों से छूट कर, जन्म मरण के चक्र से बच कर ईश्वर को प्राप्त हो आनन्द में रहना ही मुक्ति है । यह सत्याचरण आदि से प्राप्त होती है । ईश्वर सदा ठीक-ठीक न्याय पर ही रहता है । आवागमन कर्मानुसार होता है । इन विषयों पर ईसाई और इस्लाम मतों की मान्यताएं भी हैं ।

५३. संस्कारसमुच्चय; ले० मदन मोहन विद्यासागर; प्र० रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत; १२-००; समीक्षक भवानी लाल भारतीय; आ. ना., ५०.२०; १५.१२.१९७०; १५: २-१६: १ हि० ।

४११. सत्यार्थ सुधा; जगदीश विद्यार्थी, प्र० मार्यकुमार सभा, किन्नेवे, दिल्ली; १-००; समीक्षक: भवानी लाल भारतीय; आ.मा., ५०. २१: १.१.१९७१; १६:१; हि० । दयानन्द सरस्वती के सत्यार्थप्रकाश के पहले १० समुल्लासों का सरल और सुगम भाषा में सार है ।

४१२. सत्यासत्य-विवेक-शास्त्रार्थ-बरेली; सम्पादक: भवानी लाल भारतीय; वेवा., २३.१; ११.१९७०; २९-१७१; हि० । सम्पादकीय में पूर्व संस्करणों और शास्त्रार्थ का परिचय है । इस शास्त्रार्थ में आवागमन, अवतार और ईश्वर द्वारा अपराधों को क्षमा करने के विषय में दयानन्द द्वारा ईसाई विचारों पर शंका और पादरी टी. जी. स्काट द्वारा उन का समाधान है । इस में ईश्वर, जीव और कर्मफल के स्वरूप आदि पर दोनों पक्षों के विचार हैं । दयानन्द के मत में अंग्रेजी जानने वाला वेदमत का निर्णायक नहीं हो सकता । संस्कृतज्ञ का ही यह काम है ।

४१३ सिद्धान्त-शतकम् आर्यभाषाभाष्यो-पेतम्; ले. जयदत्त शास्त्री; सम्पादक, प्र०-युधिष्ठिर मीमांसक; वेवा., २३.३; १.१९७१; ३३-४०; सं., हि० । अत्र चतुर्षु अध्यायेषु मध्ययुगीनपद्धति-मनुसृत्य निर्मातासु १०० कारिकासु वेदप्रतिपादिता-नामृपिदयानन्दाभिमतानां सिद्धान्तानां निरूपण-मस्ति । प्रथमाध्यायस्य १२ कारिकासु ईश्वरं नमस्कृत्य जगतो विचारे कतिपयप्रश्नानामवतारो विद्यते ।

वेदप्रतिपादित एवं ऋषि दयानन्दस्वामी द्वारा स्वीकृत आर्य सिद्धान्तों का मध्ययुगीन दार्शनिक पद्धति पर कारिकावद्ध निरूपण है । ये कारिकाएं १०० हैं और चार अध्याय हैं । प्रथम अ० की पहली १२ कारिकाओं में ईश्वर को नमस्कार कर जगत् के विचार के सम्बन्ध में कतिपय प्रश्नों की अवतरणा की गई है ।

४१४. हिन्दी साहित्य की आर्यसमाज की देन; ले. क्षेम चन्द्र 'सुमन'; प्र० मधुर प्रकाशन, वाजार सोताराम, दिल्ली-६; ४-००; समीक्षक: भवानी लाल भारतीय; आ०मा०, ५०.२०; १५.१२.७०; १६:१-२; हि० । यह एक अभि-भाषण का संशोधित और परिर्वधित रूप है । समीक्षा में एतद्विषयक अन्य शोधों की सूचना दी गई है ।

४१५. सार्वदेशिक सभान्तर्गत वैदिक अनु-
संधान विभाग के अध्यक्ष आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री-
व्यक्तित्व तथा कृतित्व; भवानो लाल भारतीय;
आ. सा., ५०.२०; १५.१२.१९७०; २-३; हि० ।
यह वैद्यनाथ के जीवन और कृतियों का संक्षिप्त
परिचय है ।

४१६. हिन्दी गद्य के जन्मदाता: महर्षि
दयानन्द; सत्यव्रत, प्राध्यापक, हि. वि., उस्मान-
निया वि. वि.; द्वास्मा., १९७१; ४२-४४; हि. ।
सर्वप्रथम दयानन्द ने भागवत खण्डन प्रकाशित कर
हिन्दी गद्य का सूत्रपात किया । उसे अपने प्रवचनों
और ग्रन्थों से समृद्ध किया । लेख में दयानन्द की
भारतेन्दु के कार्य से तुलना कर माना गया है कि
भारतेन्दु को हिन्दी के गद्य का जन्मदाता मानना
अनैतिहासिक है । ले. ने दयानन्द का साहित्य,
भक्ति, विचारात्मक गद्य और व्याख्यान के क्षेत्रों में
मूल्यांकन भी किया है ।

सुधीर कुमार गुप्त

अध्यात्म (Spiritualism)

३३३. ब्रह्मयज्ञ; रामेश्वर दयाल गुप्त,
प्रिंसिपल, टेल्कोकाम ट्रेनिंग सेन्टर, यादसंनगर,
जयपुर-४; प्राची का चैतन्यवाद, १.२; १.२.१९७१;
१-१५३; (= १५४); हि० ।

१६. ऋग्वेद का इन्द्र, इन्द्राणी और वृषा-
कपि का सम्यह; रामनाथ वेदालंकार; गुप०,
२३.१-२; ६-१०.१९७०; ७०-७६; हि० ।

७५. ऋग्वेद के ऋषि और उन का सन्देश
और दर्शन; सुधीर कुमार गुप्त; प्रवाचक, सं. वि.,
राजस्थान वि. वि., जयपुर-४; भाग्यशा., १९६३;
६४; ५-००; प्रं., हि. ।

१२६. ऋग्वेद में गीतत्व; (टंकित); यद्री
प्रसाद पंचोली, प्राध्यापक, हि. वि., राजस्थान
संनिक, किशनगढ़ (राज०); राज. वि. वि., पीएच.
डी. (न.) का स्वीकृत शोधप्रबन्ध, १९६५; हि० ।

१३०. ऋग्वेद में घन की परिकल्पना;
(टंकित); ले. श्रद्धा चौहान, जोधपुर; जोधपुर वि.
वि., पीएच. डी. (सं.) का स्वीकृत शोधप्रबन्ध,
१९७०; १-२६३; हि० ।

८०. एक आध्यात्मिक विवेचन-ऋतुराज
वसंत; रामनारायण शर्मा, भू. पू. उपनिदेशक,
शिक्षा विभाग, (राजस्थान); रा. प., ३१.१.१९७१;
३-४; हि० ।

131. R̥sis of the R̥gveda; Laxmi
Narain Sharma; Thesis approved for the
Ph.D. Degree of the Raj. Univ. 1962;
6+9+393+5; H.

५. पञ्चवृत्ति मुख्य प्राण; गुप०; २३.१-२;
६-१०.१९७०; १०३; हि० ।

२४. ब्रह्मगवी; यद्री प्रसाद पंचोली,
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, राजकीय कॉलेज, अजमेर;
गुप., २३.१-२; ६-१०.१९७०; ८५-८७; हि० ।

४१७. विश्वशांति की खोज; व्रजनाथरायण
मेहरोत्रा; प्र० रघु साहित्य प्रकाशन, कानपुर;
समीक्षा; सागरिका, ६.२; २०२७ वि.; सं। ग्रन्थ-
स्मिन् लेखकेन प्रतीकात्मकशैल्यां स्वाध्यात्मिकानु-
भूतयोऽभिव्यक्ताः ।

इस ग्रन्थ में ले. ने प्रतीकात्मक शैली से अपनी
आध्यात्मिक अनुभूतियों को व्यक्त किया है ।

प्रभाकर शर्मा

१४. हे मनुष्यो ! अपनी आत्मा को देखो;
(वैदिक वित्त से उद्धृत); वेदा., २३.३; १.१९७१;
१-२; हि. ।

75. Seers Of The R̥gveda
Their Message And Philosophy (With
Hindi Translation); Sudhir Kumar
Gupta, Reader, Dept. of S̥k̥i, Univ. of
Raj, Jaipur; BMAS., 1967; 61; 8-10;
E., H.

मनोविज्ञान (Psychology)

४१८. कठपुतलियां और मानसिक रोगोपचार; देवीलाल सामर, उदयपुर; लोककला, २०; ७.१६७०; १-५६; हि० । कठपुतलियां अब तक हमारे लिये केवल मनोरंजन का साधन रही हैं। शैक्षणिक उपयोग तथा मानसिक रोगोपचार की दृष्टि से भी ये बड़ी कारगर सिद्ध हो सकती हैं, इस ओर हमारा ध्यान प्रायः नहीं के बराबर गया है। पिछले कुछ वर्षों से कठपुतली कला विशेषज्ञ देवीलाल सामर ने इस क्षेत्र में कई अभिनव प्रयोगों द्वारा कठपुतलियों की विविधरूपा उपयोगिता के माध्यम से अनुसंधित्सुओं तथा प्रयोगियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है। वस्तुतः मानवी पात्रों में कठपुतली पात्रों से अधिक कृत्रिमता है। ले० ने मानसिक मंतव्यों के प्रतीक के रूप में कठपुतलियों द्वारा मनोपचार करने के प्रकार बताया है। कठपुतलियां दुःखी और अभाव ग्रस्त बालक के लिए नया वातावरण उपस्थित कर उसे ग्रन्थियों से मुक्त कर देती हैं। कठपुतलियों से दबी हुई वृत्तियों का विकास कर के रोगी को स्वस्थ किया जा सकता है। ऐसे बच्चे जिन्हें मानसिक शिराओं के विखराव का रोग है, जिनका वाचन सदोष है, जो हकलाते हैं, बोलते हुए सकुचाते हैं उनके लिए पुतलियां रामवाण प्रीपद्य बन सकती हैं। शब्दचयन, भाषा-प्राज्ञत्व तथा विचारसंयोजन की दृष्टि से भी ये पुतलियां बड़ी महत्वपूर्ण सिद्ध हुई हैं। इनसे मृजनात्मक आनन्द, प्रीति समुदाय की विशिष्ट समस्याओं का समाधान और रोगों, भूल और मनोसत व्यवहार का उपचार किये जा सकते हैं। नाट्यवाचन से रोगी को पहचाना जा सकता है। लेख और कठपुतली निर्माण में रोगी को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदीप्त है। इस दृष्टि से ले. ने इस लेख में मानसिक रोगोपचार के कई महत्वपूर्ण विन्दुओं का गहरा सिद्धेपण किया है, कठपुतलियों के माध्यम में उनका सदन सुबह हल बताया है तथा

अपने निजी अनुभवों के अधार पर इस विषय की समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत किया है।

महेन्द्र भानावत

दार्शनिक परिकल्प

(Philosophical Concepts)

७१. अग्निसंहिता रहस्यविदां सिद्धान्तः; (आर्यपत्रिकायां प्रकाशिताग्निसूक्तानां प्रस्तावनातः संकलिताः सन्दर्भाः); अरविन्दः, अनुवादकस्य नाम न प्रत्तम्; गुप., २३.१-२; ६-१०.१६७०; ४०-४४; सं. ।

३१६. अद्वैत और अद्वैतः एक समीक्षात्मक टिप्पणी; कश्यप शुक्ल, गोरखपुर, भारत; गोपुविशोध., १६६६-७०; १०-१५; हि० ।

३५१. अद्वैतवेदान्ते प्रतिबिम्बवादः; केशव प्रसाद पाठकः, शोधकः; सागरिका, ६.२; २०२७ वि.; २०५-२०८; सं. ।

३५२. अद्वैतवेदान्ते मोक्षस्वरूपम्; राममूर्ति शर्मा; सागरिका, ६.२; २०२७ वि.; १६१-१६६; सं. ।

३५३. आगमिक ईश्वरवाद तथा शंकर अद्वैत या ब्रह्मवाद; राममूर्ति त्रिपाठी, अध्यक्ष स्नातकोत्तर हि. वि., विक्रम वि. वि., उज्जैन; उमकव., १६७०; १८७-१६२; हि० ।

320. *Ātman in Buddhist Philosophy : Viewpoints of the Buddha (Summary Only)*; Karuneshu Shukla, Gorakhpur, India; Proceedings of the XXVI International Congress of Orientalists, Vol. III, Part I; E.

४२. आलम्ब यत्न; वद्री प्रसाद पंचोली, प्राध्यापक, राजकीय महाविद्यालय, किशनगढ़; मूलासंहिता.; २; ७ १६६७; ४७-६३; हि० ।

४१६. इतिहास-दर्शन का स्वरूप; यशदेव शर्मा, उपनिदेशक, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर; तत्त्वचिन्तन, ३.२; ४.१६७१;

77. Try'ambaka (the Genesis of the Concept); Sadashiva Ambadas Dange, Bombay; JOL., XIX, 3; 3.1970; 223-227; E.

356. The Theory of Appearance in Sāṅkara Vedānta; Satya Deva Mishra, Senior Research Fellow, CASPh., Univ. of Madras, Madras; IPhA, 5; 1969; 272-290; E.

322. Dīnāga's Remarks on the Concept of Anumeya; Bimal Krishna Matilal, Associate Prof., Deptt of East Asian Studies, Univ. of Toronto, Toronto 5, Ontaries Canada; UMCV., 1970; 151-160; E.

३३८. न्यायदर्शने त्रिलोचनमतविमर्शः; किशोर नार्य भ्वा, स नियर रिसर्च फौजो, कामेश्वर सिंह, सं० वि० वि०, दरभंगा; उमकव०, १९७०; २०६-२१३; सं० ।

४२१. परोपकार परीक्षा; स्व० योगी ब्र० जगन्नाथ 'पथिक'; वेवा., २३.३; १.१९७१; ३-७; हि० । निष्काम कर्म 'परोपकार' सामाजिक कर्म है, इस में कामना मात्र और उस के लोत 'अहंभाव' का सर्वथा अभाव रहना आवश्यक है । सर्वविध स्व के भाव से हीन परहितार्थ कर्म परोपकार है । इस में आसक्ति का अभाव और आत्मसाक्षात्कार अनिवार्य हैं । विवेकी पुरुष दिव्य महाशक्ति की प्रेरणा से काम करता है । आत्मीय जनों में आसक्ति मोह है । अन्वों के दुःखों से द्रवित हो सहायक होता दया—परोपकार है । इस में अपने-पराये का भेद मिट जाता है ।

सुधीर कुमार गुप्त

३३६. प्रकृति की सत्ता; रामेश्वर दयाल गुप्त, प्रिन्स्टेंट इंजीनियर, रानी बाजार, बीकानेर; प्रार्यों का त्रैतवाद, १.१; १०.१९७०; पृष्ठ १; १-१६; हि० ।

78. Philosophical Concepts in the Hymn of Creation; Satya Prakash Singh, Aligarh (India); Rtam, 1.2; 1970; 39-46; E.

23. Bīhaspati Und Indra; Au Von Hanns-Peter Schmidt; Otto Harassowits, Wiesbaden; Reviewer : V. G. Rahurkar; ABORI., L. I-IV; 1969; 109-112; E.

७३. वैदिक देववाद; सत्यकाम वर्मा; गुप०, १३.१-२; ६-१०.१९७०; १०४-११३ हि० ।

363. Sāṅkara's Doctrine of Nescience in the Context of Present Day Science; Ajit Kumar Sinha, Kurūkshetra, India; Rtam, 1. 2; 1970; 55-68; E.

४०२. शब्द प्रमाण; रामेश्वर दयाल गुप्त, असिस्टेंट इंजीनियर, रानी बाजार, बीकानेर; प्रार्यों का त्रैतवाद; १.१; १०.१९७०; १०-२०; हि० ।

३६४. शाङ्कर वेदान्त में ईश्वरवाद; योगेश पाण्डेय, सं० वि०, सागर वि० वि०, सागर; उमकव., १९७०; २१५-२४७; हि० ।

४०३. शास्त्रार्थ अजमेर, सम्पादक भवानो लाल भारतीय; वेवा०, २३.१; ११.१९७०; ११८-१२८; हि० ।

१५८. श्रौतं ताराबुधचन्द्रतत्त्वम्; वेंकटरमण शास्त्री, जामदग्न्यः, गोकर्ण क्षेत्र; गुप०, २३.१-२; ६-१०.१९७०; ३६; सं० ।

३५. सत्य का अनुसन्धन कैसे करें ?; जयदत्त शास्त्री; वेवा०, २३.३; १.१९७१; ८-१६; हि० ।

४२२. साधुशक्ति; रामजी उपाध्याय; स्मारिका हि० वि० प० हा०, १९७०; ५६-६१; हि० । लोकपणा से युक्त होने पर भी ऋषियों ने वैदिक ज्ञान दिया । आचार्यों ने आनुपंगिक ज्ञान और दर्शन दिया । वृानप्रस्थी सदेव समाज के हित में तत्पर थे । ये ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर संन्यासी बन लोक में विचरण करते थे, मैत्री की भावना बढ़ाते थे । साधु सदा नारत की सर्वाङ्गीण प्रगति में योग देते रहे हैं । उन्होंने ने त्याग और मुक्ति का मार्ग

दिखाया है। वैदिक और जैन मुनियों का विशेष वर्णन किया गया है।

सुधीर कुमार गुप्त

भारतीय संस्कृति (Indian Culture)

१५. अन्नदान प्रशंसा; रामचन्द्र वामन कुम्भारे, प्रोफेसर ऑफ सस्कृत, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली; यूरासंहिस०, २; ७.१६६७; ६८-७१; हि०।

१६५. कालिदास की कृतियों में श्रवस्था-भेद; बलदेवसिंह, रीडर, सं० वि०, कुश्नेत्र वि० वि०, कुश्नेत्र (हरियाणा); यूरासंहिस०, १६६७-६८; १०१-१०८; हि०।

१६६. कालिदास की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि; कल्याण गुवल, गोरखपुर; गोरखपुर विषयविद्यालय पत्रिका; १६६०-६१; ३१-३८; हि०।

423. A Note on the Study of Feasts and Festivities of The Hindus; Chintaharan Chakravarti, 28/3 B, Sahaganagar Road, Kalighat, Calcutta-26; UMCV, 970; 771-773; E. The author points out the importance of a properly organised study by a band of scholars belonging to different parts of the country of the feasts, festivals and rites, which are celebrated or performed in different ways in various parts of the country. He lays down some points for this study. He also desires a study of folk deities, whose identity is generally unknown.

जो वे देश के विभिन्न भागों के निवासी विद्वानों के समुदाय द्वारा देश के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न रूपों में मनाए जाने वा सम्पन्न होने वाले भोजों, पर्वों और क्रियाओं के मुख्यवर्णन प्रस्तुतन का महत्त्व बताया है। यह उन प्रस्तुतन के लिए सुझावितु भी उपस्थित करते हैं। यह उन लोक देवताओं के प्रस्तुतन की भी भारतीय मानने दे बिना ही पढ़वान सामान्यतः प्रदान है।

सुधीर कुमार गुप्त

८३. प्राचीन भारत में गोमांस एक समीक्षा; प्र० मोतीलाल जालान; गीता प्रेस, गोरखपुर; २३६; २-००; हि०; समीक्षा; गुप०, २३.३; १०-११.१६७०; १३४; सं०।

३८. बृहस्पति द्वारा कालत्रणि-वन्धन; भगवद्दत्त वेदालङ्कार; गुप०, २३.१-२; ६-१०. १६७०; ६७-१०२; हि०।

४२४. भारतीय कार्माशिल्पमीमांसा; सुरेश र देशपांडे; नभा., १०.१६७०; ३८-४३; म०। जरी जगाच्या अन्य भागा तही स्त्रीपुरुषांच्या समागनाची शिल्पे मिळनात तरी भागतान जितकी कामशास्त्रीय सूक्ष्मता आणि विविधता दृष्टीस पडते तितकी दुसरी कडे कुठे ही नाही. इ. स. पू. ३०००च्या मोहेंजो दरो अवशेषा तही नतिका दिसते ती प्राचीनतम ज्ञात कामशिल्प आहे. गुंग, कुशाण, सातवाहन आदि राजांच्या काळात पुष्कळ काम-शिल्पे दिसतान. प्राचीन कालापानून "काम" विषयक "शास्त्र" भारतात विकसित झाले. तसेच शाकत, कौल कापालिक इत्यादी पंथात स्त्रीपुरुष-संयोगाला स्थान आहे. म्हणून कामशास्त्राचे प्रध्यापन हा कामशिल्पांचा हेतु मनावा. कामशिल्प शिल्प-कलेची ज्ञानावस्था नुसवते.

यद्यपि विश्व के अनेक भागों में भी स्त्री-पुरुष-समागम का शिल्प में चित्रोत्तरण मिलता है तथापि भारत में कामशास्त्र दृष्ट्या जितनी सूक्ष्मता और विविधता दौत पड़ती है उतनी किरर भी नहीं। ई० पू० ३००० के मोहेंजो दरो के अवशेषों में जो नतिका मिलती है, वह प्राचीनतम ज्ञात काम-शिल्प है। गुंग, कुशाण, सातवाहन आदि के कालों में पट्टन में कामशिल्प प्राप्त होते हैं। प्राचीन काल में "काम" विषयक "शास्त्र" भारत में विकसित हुआ है। उन्नी तरह शाकत, कौल और सातवाहन आदि पंथों में स्त्रीपुरुष समीप का प्रभुत्व स्थान था। प्रकः कामशास्त्र का प्रस्तुतन करना ही उन कामशिल्पों का हेतु ही बनता है।

मशिल्प शिल्पकला की ह्रासावस्था का भी निर्दे-
न करता है।

गणेश उमाकांत थिटे

२१३. क्षेमेन्द्रकृत बृहत्कथामञ्जरी में भार-
तीय संस्कृति तथा सामाजिक आधुनिक विचारधारा;
(श्रीमत्.) प्रतिभा तिवारी, अध्यक्षा, संस्कृत
विभाग, महिला कालिज, लखनऊ; उमकव.,
१९७०; ४६६-४७५; हि०।

८२. धर्म के हिन्दू सिद्धान्त की उत्पत्ति एवं
विकास; रणजीतसिंह, प्राध्यापक, इति. वि.,
इलाहाबाद वि. वि., इलाहाबाद; उमकव., १९७०;
३०१-३२६; हि०।

८४. भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व; प्रभु
दयाल अग्निहोत्री; स्मारिका हि. वि. प. हा.,
१९७०; ४५-५१; हि०।

४२५. मकर संक्रान्ति का महत्त्व; वेदव्रत
मीमांसक, आर्यसमाज, उज्जैन; वेवा०, २३.३;
१.१९७१; २७-३२; ४१-४३; हि०। वर्ष में
बारह संक्रान्तियां होती हैं। मकर संक्रान्ति सब से
महत्त्वपूर्ण है। भूमध्यरेखा से उत्तर और दक्षिण में
सूर्य क्रम से दक्षिणायन और उत्तरायण होता है।
परन्तु उस पर्व के मूल में यह परिवर्तन नहीं है,
प्रत्युत प्रेय से श्रेय की ओर संक्रमण है।

सुधीरकुमार गुप्त

४२६. मानव कर्त्तव्य दर्पण; लै. प्र.
नट्यवीर सिंह सत्यप्रेमी, सेवाश्रम, सपनावत
(भारत); २-००; हि.; समीक्षा; गुप्त., २३.३;
१०-११.१९७०; १३४; सं.। अनुषंगव्यायेषु ब्रह्मनि
पुस्तकानुजोषा वाचस्पतीनां मनुष्यस्य कर्त्तव्य-
जानानि निरुद्धानि सन्ति। देहात्मनोरुत्पत्तेरुपाया
पनि रक्षिता. सन्ति।

भारत प्रख्यातों में प्रनेक पुस्तकों के प्राधार पर
मनुष्य के समस्त जीवन के कर्मों का समाप्त गए हैं।
मनुष्य को प्राप्ता ही उन्नति के उपाय भी दर्शाए
गए हैं।

५२. मूलविधि: स्वरूप आणि उगम;
प्रभाकर भा. मांडे; नभा., १०.१९७०; २१-२८;
म०।

८५. मेघदूत की वैदिक पृष्ठभूमि और
उस का सांस्कृतिक सन्देश; सुधीर कुमार गुप्त;
भारती मन्दिर, नई बस्ती, खुरजा; ५.१९५४;
१-३७; ०-६०; हि०।

४२७. राजस्थानी लोकगीतों में चित्रित
अन्धविश्वास; जगमाल सिंह ग्रामीण, सिरौही;
यूरासंहिस., १९६८-६९; १८१-१९१; हि०।
इस में विभिन्न गीतों के उदाहरण प्रस्तुत करते
हुए राजस्थानी जन-जीवन में प्रचलित अन्धविश्वासों
का उल्लेख किया गया है। ये अन्ध-विश्वास
भारतीय संस्कृति द्वारा विरासत में प्राप्त वह
सम्पत्ति है जिस को पैतृक सम्पत्ति समझ कर आज
भी भारतीय जनता छोड़ने को तैयार नहीं है। ये
अन्ध-विश्वास भारतीय जनता के उस समय के
साथी एवं सम्बल हैं, जब उस का विवेक कुंठित हो
जाता है तथा सामर्थ्य जवाब दे देता है।

मनमोहन अग्रवाल

87. Recognition of Merit in
Caste System in Ancient India; Jogi
Raj Basu, Professor and Head of the
Deptt. of Skt., Gauhati Univ., Gauhati;
UMCV., 1970; 685-694; E.

324. Life in North-Eastern India
in Pre-Mauryan Times; (With special
reference to C. 600 B. C.—325 B. C.);
Madan Mohan Singh; Pub. Motilal
Banarasi Dass, Delhi; 1967; xxv + 308;
25-00; Rev. Thomas R. Trautmann;
JRAS (GBI), 1.1970; 83; E.

304. Was It Permissible For a
Sannyāsi (Monk) To Revert To Lay
Life?; Y. Krishan; ABORI, 1-IV; 1969;
75-89; E.

१२६. वेदतावण्यम्; सुधीर कुमार गुप्त,
आचार्य सं. वि., गोरखपुर वि. वि., गोरखपुर;
प्र. भावग्रन्था., ४२८; सं०, हि०।

[उपनयनसूत्रों की भूमिका में शूद्रों की स्थिति और ऋ. १०.६०.११-१२; २.१२.६; १०.१२५. ५ पर विचार विशेष दर्शनीय हैं।]

८६. वैदिक वाङ्मय में गोहत्या या गोरक्षा? जयदेव, गुहकुल कांगड़ी, हरिद्वार; गुप०, २३.३; १०-११.१९७०; १४२-१४६; हि०।

४२८. शास्त्रीय व्रतों के सामान्य विधि-विधान; लक्ष्मी शर्मा, बनस्थली; शोप., २१.२; ७, ६.१९७०; १७-२६; हि०। व्रतों के दो विधान हैं—शास्त्रीय और लौकिक। प्रस्तुत लेख में शास्त्रीय व्रतों में विधि-विधानों का उल्लेख करते हुए व्रत के अधिकारी, अशक्ततावस्था और अशुद्धावस्था में व्रतानुष्ठान, व्रतानुष्ठान में प्रतिनिधि, व्रतकर्ता और व्रत का वातावरण, व्रत के विधि-विधान, व्रत की समाप्ति और पारणा, व्रत का उद्यापन, व्रतकाल में वर्जनीय कर्म और व्रतभंग पर प्रकाश डाला गया है। देव-पूजा के लिए आवश्यक उपचारों का विशेष वर्णन किया गया है।

नाथूलाल पाठक

६२. संयोजक का व्यक्तव्य; फतहसिंह, फोटा; स्मारिका हि.वि.प.हा; १९७०; ३३-४१; हि०।

२३२. संस्कृतसाहित्यान्तर्गत विवाह संस्कार; श्रीनिधामा गोयल, ब्रामपुर; जोधपुर वि०वि० पीएच. डी० का शोध प्रबन्ध; १९७१; हि०।

तथा किसी लौकिक व्यक्तित्व के रूप में देखा है। परन्तु इन मान्यताओं की सांभोपूजा के विविध पक्षों से संगति नहीं बैठती है। इसके गीतों में सांभो शब्द सन्ध्या का ही रूपान्तर है। उनका भाव और सांभो की आकृति भी इस और लक्ष्य करते हैं। यह सन्ध्या ब्रह्मा की मानसी कन्या ही है। इसकी पुष्टि पुराणों के लक्षों से होती है। सन्ध्या का एक रूप अरुन्धती भी है। सांभोपूजा का लक्ष्य कन्याओं द्वारा भावी जीवन के सौभाग्य की कामना नहीं है, वरन् अपने कौमार्य को पवित्रता की रक्षा का अनुष्ठान ही उनका उद्देश्य है। यही कारण है कि प्रत्येक कुमारी के लिए समझ आते ही सांभो की पूजा करना अनिवार्य हो जाता है, जिससे सन्ध्या पूजा के फलस्वरूप कोई असोभनीय घटना उनके जीवन में घटित न हो।

महेन्द्र भानावत

328. *Studies in the Buddhist Culture of India* (during the 7th & 8th centuries A. D.); Lalmani Joshi; Pub. MLBO; 1967; i-xli+538; 30-00; Rev. V.M. Bedekar; ABORI, L. I-IV; 1969; 133-135; E.

430 *Hindu Culture with Special Reference to the Domestic Rites and the Temple Rituals*; S. Singaravelu, Lecturer and Ag. Head, Dept. of Indian Studies, Univ. of Malaya, Kuala. Lumpur;

हिन्दु मत (Hinduism)

१६. ओषधि; मुंशीराम शर्मा, आर्यनगर, कानपुर; गुप०, २३.१-२; ६-१०.१९७०; ८६-६३; हि० ।

४३१. गागर; ले., प्र० गजेन्द्र सिंह सोलंकी, पत्रकार, ववशपुरी का कुण्ड, पुरानी धान मण्डी कोटा-६ (राज०); भूमिका ले० फतहमिह; १४-१५१; ६-००; हि० । आकांक्षा, समर्पण, वन्दना, भारत दर्शन, युग दर्शन, विविध दर्शन, नियति दर्शन और छवि दर्शन नामक आठ शीषकों में आदि काल से आज तक के अपने देश के प्राकृतिक सौंदर्य, सांस्कृतिक प्रवृत्तियों और शौर्य का चित्रण है ।

सुधीर कुमार गुप्त

४३२. प्रायना; हाहिविपस्मा., १९७०; १:२; सं. । मानवस्योत्थानाय, मातृभूमे रक्षायै, जगदुद्धरणाय, ईशकार्यकरणाय यशसे च वयं प्रभुणा प्रेषिताः स्मः ।

हम मानव के उत्थान, मातृभूमि की रक्षा, जगत् के उद्धार, परमेश्वर के कार्य और यश के लिए प्रभु द्वारा भेजे गए हैं ।

४३३. योग्यता फिर सिद्ध करें; आनन्द पाल रघुवंशी, कोटा; हाहिविपस्मा०, १९६०; ६४-६८; हि० । हिन्दू धर्म ने महान् व्यक्ति, महान् दर्शन, चरणव्यवस्था आदि दिए, पर उन में व्यावहारिकता नहीं है । उन का अस्तित्व खतरे में है । उन्हें सामाजिक पक्ष पर शक्ति केन्द्रित करनी है । विज्ञान और मध्यात्म का मिश्रण कर नया निर्माण करना है । इसी प्रकार के २० और मुद्राव दिए गए हैं ।

४३४. विषय हिन्दू परियद् कल्पना और विचार; सि० प्र० प्रायटे, महात्मनी, विद्वत् हिन्दू परियद्; हाहिविपस्मा०, १९७०; ५२-५८; हि० । इमान् र्नाम्नी और ताम्बवादी धर्मों के भारतीय सन्दर्भ के धारण कर्मों की पृष्ठभूमि में हिन्दूधर्म में

आत्मरक्षा के प्रति उद्बोधन, आवृत्तभाव सृजन, नई अनुभूति देने, एकता स्थापन, धर्म सम्बद्धन आदि उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विद्वत् हिन्दू परियद् की स्थापना की गई है ।

४३५. सात्त्विक हिन्दू शक्ति का जागरण आवश्यक; श्री ५ महेन्द्र वीर विक्रम शाह, नेपाल; हाहिविपस्मा०, १९७०; ४२-४३; हि० । हिन्दू संस्कृति में नेपाल देवभूमि माना गया है । यह परमपावन और एकमात्र हिन्दू राष्ट्र है । श्रुतियों में प्रतिपादित, उदार भाव के संस्थापक, द्वेष आदि से दूर, हिन्दूधर्म के सात्त्विक भावों का धारण करने से ही अम्युदय हो सकेगा ।

४३६. हिन्दूलक्षणम्; हाहिविपस्मा०, १९७०; ६८; सं, हि० । ऋषीणां शिक्षासु भारतीयमहा-पुरुषेषु च श्रद्धापरो देशजातिभेदहीनः सदाचारी च जनो हिन्दुर्भवति ।

ऋषियों की शिक्षा और भारत के महापुरुषों को मानने वाला, देश और जाति के भेद से ऊपर सदाचारी जन हिन्दू है ।

कबीरपन्थ (Kabir Sect)

४०७. शास्त्रार्थ मसूदा; सम्पादक: भवानी लाल भारतीय; वेदा०, २३.१; ११.१९७०; १७२-१९०; हि० ।

वैष्णवमत (Vaiṣṇavism)

३५७. बृहत्सूत्र और वैष्णवभाष्य; राम कृष्ण आचार्य; बल्लवंत राजपुत्र कालिज, आगरा; प्र. विनोद पुस्तक मन्दिर, हास्पिटल रोड, आगरा; १.१९६०; १-८८; सं., हि० ।

अन्य सम्प्रदाय (Other Sects)

४३७. बृहत्सूत्र और सखण्डन; ले. श्रीराम आचार्य; प्र० वैदिक साहित्य प्रकाशन, कासगंज (जिला एटा); ०-६०; समीक्षक भवानी लाल भारतीय; आ. मा., ५०.२१; १.१.१९७१; १६:२; हि० । इस में ब्रह्माकुमारी मत की मान्य-

ताओं पर तीखा प्रहार किया है। समीक्षा में ब्रह्मा-कुमारी मत का परिचय दिया गया है।

सुधीर कुमार गुप्त

२६५. भारतीय दर्शन के सम्प्रदाय; सुधीर कुमार गुप्त, प्रवाचक, सं. वि., राज. वि. वि., जयपुर; प्र. भा.म.ग्रंथां, १६६६; १६५+२८८+४५; ५-००; ६-००; ७-५०; हि०।

ईसाई मत (Christian Religion)

258 God and Evil : Zoroaster And Barth; Eldon R. Hay; Dalhousie Review, 49.3; (Autumn) 1969; 369-376; E.

२६५. भारतीय दर्शन के सम्प्रदाय; सुधीर कुमार गुप्त, प्रवाचक, सं० वि०, राज० वि० वि०, जयपुर; प्र० भा.म.ग्रंथां; १६६६; १६५+२८८+४५; ५-००; ६-००; ७-५०; हि०।

438. The Morning Thoughts; सम्पादक: पी० कृष्णमूर्ति; समीक्षा; सागरिका, ६.२; २०२७ वि०; २२०; सं०। अस्मिन् पुस्तके वाच्यव्ययमर्थान्याद् एकस्मिन् वाचयानि संकल्य ग्राम्यभाषायां तेषां विस्तरतो व्याख्या प्रस्तुता।

इस पुस्तक में वाच्यव्यय नामक ग्रन्थ से ३१ वाच्यों का संकलन कर अंग्रेजी भाषा में उन की विस्तृत व्याख्या की गई है।

प्रभाकर शर्मा

४०३. शास्त्रार्थ प्रजमेर; सम्पादक: भवानी लाल भारतीय; वेवा०, २३.१; ११.१६७०; ११८-१२८; हि०।

४०७. शास्त्रार्थ मसूरा; सम्पादक: भवानी लाल भारतीय; वेवा०, २३.१; ११.१६७०; १०२-१६०; हि०।

४१०. सत्यधर्मविचार—मेला चांदापुर; सम्पादक, भवानी लाल भारतीय; वेवा०, २३.१; ११.१६७०; ७१-१०४; हि०। इस में जोषित धर्मशास्त्रादि ईसाई धार्मिकों द्वारा ईश्वर, सृष्टि और मुक्ति पर दयानन्द के साथ हुए विचार में अविचार ईसाई मत का सार है।

इस्लाम (Islam)

२६५. भारतीय दर्शन के सम्प्रदाय; सुधीर कुमार गुप्त, प्रवाचक, सं० वि०, राज० वि० वि०, जयपुर; प्र० भा.म.ग्रंथां, १६६६; १६५+२८८+४५; ५-००; ६-००; ७-५०; हि०।

४०४. शास्त्रार्थ उदयपुर; सम्पादक, भवानी लाल भारतीय; वेवा०, २३.२; १२.१६७०; ७-१२; हि०।

४०६. शास्त्रार्थ जालंधर; सम्पादक, भवानी लाल भारतीय; वेवा०, २३.१; ११.१६७०; १०५-११७; हि०।

४१०. सत्यधर्मविचार—मेला चांदापुर; सम्पादक, भवानी लाल भारतीय; वेवा०, २३.१; ११.१६७०; ७१-१०४; हि०। इस में मोलवी मुहम्मद द्वारा ईश्वर, सृष्टि और मुक्ति पर दयानन्द सरस्वती के साथ हुए विचार में प्रस्तुत इस्लाम के मत का सार है।

प्राकृत (Prākṛta)

४३६. जैन प्राकृत ग्रन्थ—“पउम चरिय” की आभरण-कला; छोटे लाल शर्मा, बनस्पली; यूरासंहिता, १६६८-६९; २७-३५; हि०। वैदिक-युग से सम्बन्ध जोड़ते हुए इस लेख में पउम चरिय में वर्णित दिवांगुक, रंगोन और चिचित आदि वस्त्रों के प्रकारों, केशविन्यास, कान, गला, हाथ, पैर आदि अंगों के आभूषण और अनुलेपनों का परिचय दिया गया है।

सुधीर कुमार गुप्त

४४०. जैवलमेगे चोली में प्राकृत एवं प्रवृष्ट की भक्त; शीन दयाच प्रोभा; विन, ६.३; १६७० (२०२७ वि०); १६-२१; हि०। जैवलमेगे चोली में प्राचीन भाषाओं प्राकृत, प्रवृष्ट और प्रवृष्ट के अर (—वृद्ध से) मूल रूप में विद्यमान है। प्रवृष्ट उन्नत भाषा की प्रवृष्ट में प्राकृत भाषाओं में अस्मिन् के साथ ही भाषा

हे और कीलता में सुश्रित है। कीलता के प्रयोगों और जैतलमेरी के नौ शब्दों में समानता है। जे. ने जैतलमेरी के १४ शब्दों की अपभ्रंश और सं० के शब्दों से तुलना भी दी है।

४४१. प्राकृत रामकाव्य की छन्दोयोजना; छोटेलाल, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली; यूराल-संहिस., २; ७.१६६७; ६६-१२८; हि०। छन्दो-विधान साधारणीकरण प्रक्रिया का अन्तर्गत अंग है। प्राकृत भाषाओं में रामकाव्य त्रिपुत्र मात्रा में मितता है। इन में रावणवहो (नेउवहो) का प्रमुख छन्द स्कन्वक है। यह मात्रक वृत्त है। अन्तराल छन्द गलितक जाति के हैं। पउमचरिग में आर्या (गाथा) का विमुद्ध प्रयोग है। कवि को कहीं-कहीं गुरु-लघु एवं नासिक्य व्यत्यय के प्रयोग की स्वतन्त्रता का उपयोग करना पड़ा है। अन्तराल और प्रकरणान्त छन्द वर्गवृत्त हैं। ये नाटकीय परिप्रेक्ष्य के वाहक हैं। कवि की प्रवृत्ति मिथित वृत्तों की ओर अधिक है। सीमाचरिग में वर्णवृत्तों, आर्या, उद्गीतिका और अपभ्रंश के जाति-छन्दों का प्रयोग है। यहाँ प्रमुख छन्द आर्या ही है। पउम-चरिउ में ८२ छन्दों का प्रयोग है। छन्दनिका और ध्रुवक का वैविध्य से प्रयोग किया गया है। महा-पुराण (रामायण) खण्ड में प्रयोग प्रणाली ने नया मोड़ लिया है। यहाँ ध्रुवक और छन्दनिका का भेद मिटा कर कवि ने कलात्मक प्रकृति का परिचय दिया है, उपर्युक्त सभी शब्दों में छन्दःप्रयोग विषयानुसृत है। इस छन्दःप्रयोग के अध्ययन से यह नुस्खत है कि जातिवृत्तों का जन्म प्राकृतकाल में, विकास प्रभ्रंशकाल में और श्रद्धा प्रांतीय भाषाओं के काल में हुए हैं। अपभ्रंश के उत्तरवर्ती काल में यहाँ जाति के क्षेत्र में ही पुनः अपनी गुणात्मक स्वतन्त्रता प्राप्त करने तथा या। प्रयत्न प्रथम स्फुट रूप में आ गया है। अपभ्रंश ने छन्दःप्रयोग के नाटकीय तन्त्रों को साध्य में मिला दिया है। प्राचिन भाषाओं में इन का पुनः प्रयोग

हुआ है। अपभ्रंश साहित्य ने प्रांतीय भाषाओं को नाद और चित्रांकन की कला दी है। उस की नाटकीय विधानयुक्त छन्दःपरम्परा आज भी प्रांतीय भाषाओं में जीवित है। लेख के अन्त में उपर्युक्त सभी रचनाओं के प्रमुख और अन्तराल छन्दों का नाम, प्रकार, लयनियम, गणनियम, आश्वासक और विशेष शीर्षकों में विश्लेषण दिया गया है।

सुधीर कुमार गुप्त

अपभ्रंश (Apabhraṃśa)

४४२. अपभ्रंश जैन साहित्य; देवेन्द्र भुवि शास्त्री; सन्म'. १६०; ४५-५२; हि०। अपभ्रंश साहित्य प्राचीन भारतीय साहित्य और आधुनिक भारतीय साहित्य की मध्यवर्ती कड़ी है। यह साहित्य विविध रूपों और विधाओं में उपलब्ध होता है। परम्परागत काव्यात्मक वर्णन, साहित्यिक रुढ़ियों का निर्वाह, लौकिक शास्त्रीय शैलियों का समन्वय, छन्दों की विधिवता आदि इस साहित्य की विशेषताएँ हैं। ले. ने इस साहित्य के प्रमुख चरितकाव्यों—पउमचरिउ, रिद्धुण्णिचरिउ, णायकुमारचरिउ, जसहरचरिउ, भविसयत्तकहा, करकण्डुचरिउ, सुलोयणाचरिउ आदि तथा मुक्तक काव्यों—परमात्मा प्रकाश, योगमार, दोहा प्राभृत, श्रावकधर्म दोहा आदि का संक्षिप्त परिचय दिया है।

नरेन्द्र भानानत

४४३. नानक वाणी की भाषा, अपभ्रंश तथा प्राचीन वज्रभाषा; सत्यपाल गुप्त, होशियारपुर; यूरालसंहिस., १६६८-६९; ५३-५६; हि०। नानक वाणी से तात्पर्य गुरु ग्रन्थ साहित्य में प्रथम महाला में संकलित गुरु नानक की वाणी से है। यह वाणी १५ वीं शताब्दी से उत्तरार्द्ध तथा १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की भाषा पर प्रकाश डालती है। आदि ग्रन्थ में वाणियों का संकलन १६०४ ई० में हुआ। उस समय जैसा उच्चारण था, वैसा ही लिखित कर दिया गया। नानक वाणी ही हिन्दी का

प्राचीनतम ग्रन्थ है। गुरु नानक की भाषा अपभ्रंश के अधिक समीप है। यहाँ समीकरण, वर्णपरिवर्तन, स्वरविवृत्ति, स्वरसंयोग, परसर्गों का प्रयोग, सर्वनाम (पुरुषवाचक), क्रियारचना अपभ्रंश के समान हैं। ध्वनिसंरचना और पदरचना में यह चोरसेनी अपभ्रंश के अधिक समीप है। इस पर ब्रजभाषा का भी प्रभाव है। ब्रजभाषा और नानक की बोली में सर्वनाम तथा क्रिया में अधिक समानता है, कुछ प्रयोग पूर्वी हिन्दी के भी हैं। शब्द रूपों में लहंदा और पंजाबी का प्रभाव बहुत अधिक दिखाई पड़ता है। अनेकों देशज शब्द इन्हीं भाषाओं के हैं। क्रियारूप पर खड़ी बोली का भी प्रभाव है। नानक की वाणी क्रमशः विकास को प्राप्त हुई है। अतः नानक की भाषा के विषय में यह मत स्वीकार्य नहीं है कि आदि ग्रन्थ में पंजाबी भाषा का पूर्ववर्ती रूप सुरक्षित है। नानक की वाणी भारत की विभिन्न बोलियों का मिश्रण है, जिस के रूप को लेखकों ने विकृत कर दिया है। आदि ग्रन्थ की बोलियों में मुख्य बोली ब्रजभाषा है। ग्रन्थ साहब का बहुत कम अंश बोली जाने वाली पंजाबी पर आश्रित कहा जा सकता है। ग्रन्थ साहब के आरम्भ का "जपुजी" इस का एक प्रच्छा उदाहरण है।

गुधीर कुमार गुप्त, मनमोहन प्रयास

आधुनिक भारतीय भाषाएं

(Modern Indian Languages)

उद्देश्य से नये सिरे से सोचने का प्रयास किया है। इस में सिद्ध किया गया है कि गालिव फाकामस्ती के दौर से नहीं गुजरे। 'गालिव शताब्दी समारोह' में बन्दनीय गालिव को देशद्रोही बताया गया है क्योंकि शासक परिवर्तन के साथ गालिव की खुशामद की नीति भी बदलती रही तथा १८५७ में उन्होंने ने अंग्रेजों की खुशामद की और क्रांतिकारियों को खंजीर (मूसर) और रुसियाह (पापी) कहा। उर्दू व गालिव एक नहीं हैं क्योंकि गालिव पर मीर, वेदिल इत्यादि का प्रभाव है, तथा उसने फारसी में अधिक लिखा है। तकरीज व 'दस्तंजू' के अनुवाद परिशिष्ट में देने से पुस्तक की उपादेयता बढ़ी है।

अनिल कुमार गुप्त

४४५. श्रीकृष्ण और उर्दू साहित्य; इकबाल ग्रहमद; विन. ६-३; १९७० (२०२७वि.); २२-३१; हि०। उर्दू साहित्य की उदार दृष्टि का उल्लेख करते हुए ले. ने उर्दू साहित्य में श्रीकृष्ण के जीवन चरित्र, घटनाओं और शिक्षाओं से सम्बन्धित बहुत सी नज़्में, गीतों और गद्य का विवरण दिया है। ले. ने बली मोहम्मद, नज़ीर अकबरवादी, मुहम्मद मुहसिन काकोरवी, ब्रजमोहन दत्तात्रिया केसी देहलवी, वासित विसवानी, हसरत मोहानी, मुंजी जगन्नाथ प्रसाद शीक निगम देहलवी और सीमाथ अकबरवादी का संक्षिप्त जीवन और मूल्यांकन प्रस्तुत करते हुए इन की दृष्टि सम्बन्धी कविताओं ने उद्धरण दिए हैं।

गुधीर कुमार गुप्त

नई ऋष्या और स्फूर्ति प्रदान की तथा उपन्यासकार की दृष्टि को विस्तृत कर दिया। नाटक में कैलासन ने शब्दों में एक अभूतपूर्व अन्तश्चेतना की निष्पत्ति उपलब्ध की। क. नाटक स्वतंत्रता के पश्चात् हसित हो गया। यहाँ जीवन की समग्रता के लिए कोई अभिरुचि दिखाई नहीं देती है। रंगमंच को केवल मात्र उत्साही अनुरागियों और मनोरंजन के जुड़ाने वालों के अनुग्रह पर छोड़ दिया गया। अन्ततोगत्वा युवा ले. ने क. नाटक को निष्फल उद्यमों से मुक्ति दिलाई। कुछ 'विषम नाटकों' में प्रशंसनीय सफलता प्राप्त हुई है, जो जगत् में मनुष्य की परिस्थितियों के वैयर्थ्य को प्रस्तुत करते हैं। अब नाटकीय कला में गुणों, गम्भीर और विचारशील लेखकों और मेधावी अभिनेताओं की अभिरुचि जागृत हो गई है। क. नाटक का नया यौवन प्रवृत्त हो चुका है। लेख में अनेक काव्यों, उपन्यासों, लघुकथाओं और नाटकों के रचयिताओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन भी दिया गया है।

तमिल (Tamil)

४४८. काञ्चिमन्न अम्मानइ (Kāñci Manana Ammānai); M. Sheeralan, Assistant Librarian, SML.; JTMSSML., XXIV. 2; 1971; i-v + 61-69; Tam. The text of this work has been completed in this issue in pages 61-69. Title page and introduction are contained in pages i-v. The poem is cast in the form of Ammānai, a species of minor compositions in Tamil, in easy, simple and ballad like style. It deals with the theme of the love of a king of Kāñci for the daughter of a Pāṇḍya prince of Madura, with the shifting of his marital loyalty later to a Kuratti (peppery girl) and the tragic end of the queen Kāñci Mannan's resumption of conjugal relation with the senior claimant to his love. (From the Editorial Notes).

आल्हा (=वैलाड) के सदृश, तमिल में लघु रचनाओं के एक भेद अम्मानई की शैली में रचा गया है। इस में काञ्चि के एक राजा के मदुरा के पाण्ड्य राजा की पुत्री से प्रेम, पीछे उस के दाम्पत्य अनुराग के एक कुरत्ति (वञ्जर) कन्या में संक्रान्त हो जाने और उस के प्रेम के पूर्वतर अर्थों के साथ काञ्चि मन्नन के दाम्पत्य सम्बन्ध के पुनः स्थापित हो जाने पर [कुरत्ति] कन्या के दुःखद अन्त की वस्तु उपनिबद्ध की गई है। [सम्पादकीय टिप्पणियों से]।

२७७. तिरकुरल (तमिल वेद)—एक जैन रचना; मुनि नगराज; सस्मा.. १९७०; ३६-४४; हि०।

४४९. शरभपुराणम्; V. Chockalingam Vidvan, Tamil Pandit. SML.; JTMSSML., XXIV. 2; 1971; 1-16; Tam. It is a work in Tamil verse. It narrates, in epic style, the story of Lord Śiva's incarnation as Śarabha, a huge fabulous animal with eight legs and with superleoneine strength, to save the world from the superfluous fury of Narasimha, the Man-lion incarnation of Lord Viṣṇu after he had killed the demon Hiraṇyakaśipu. This Purāṇa is published from one of the rare mss. preserved in the SML. (From the Editorial Notes).

बंगला (Bangalā)

450. **The Literary Upsurge in Bangla Desh;** Debiprasanna Bhattacharjee; H. T. (Weekly), 18.4.1971; 7:7-8; E. The literary upsurge in the Bangla Desh is to save Bengali culture from Urdu Bengali literature in East Bengal is chiefly an expression of newly awakened nationalism and its character is to enrich Bengali language. Progress in poetry has been most significant. The youth poets reveal a set of positive values. Mother and motherland become one. Poetry is influenced by Marxism and Rabindra Nath Tagore and is inclined to sophistry, new experiments and the importance of the individual. All poets agree on making poetry an intellectual exercise. Short story writers are trying to know the life of East Bengal. East Bengalis are predominantly agriculturists in the process of modernisation. A new political consciousness is also evident in some stories. Communal rancour is a thing of the past. The novelists present a wider vista of the life of East Bengal.

पूर्वी बंगाल के जीवन की व्यापकतर भांकी प्रस्तुत करता है।

अनिल कुमार गुप्त, सुधीर कुमार गुप्त

मराठी (Marāṭhī)

४५१. मोहिनीमहेशपरिणय - नाटकम् - शरभेन्द्रविरचितम्; Ed. G. R. Bhima Rao, Marathi Pandit, SML., Tanjore; JTMSSML., XXIV.2; 1971; 41-56 + i-iv (Index); M. It is a Marathi dance drama, running through the last two numbers & is completed in this issue. The drama composed by Maharaja Serfoji II, is a drama replete with musical composition in several Rāgas and Tālas and with dance pieces of remarkable rhythm, mingled with verses in classical metre. The plot deals with the wedding of Lord Śiva with Mohinī, the feminine incarnation of Lord Viṣṇu in the form of a divine Enchantress. (From the Editorial Notes).

यह एक मराठी नृत्य नाटक है जो पिछले दो अंकों में चला रहा और इस अंक में पूरा हुआ है।

Out of these, three padas analysed in this paper indicate that they belong to the Ratnāvalī Nāṭikā originally by Śrī Harṣa. Probably Amṛtakara wrote a Ratnāvalī-Nāṭikā to which these verses belong. But no other verses belonging to this drama have been published so far. It has not been referred to by any historian so far. This drama was probably composed at the instance of the now unknown 'Kṛṣṇacaraṇa'.

महाराज शिवसिंह और महाराज भैरवसिंह द्वारा संरक्षित, विद्यापति और चतुर्भुज के समकालीन मैथिल कवि अमृतकर ने मैथिली साहित्य के सुवर्ण युग—गीति या सुवर्ण युग में कुछ सुवर्ण कविताएँ लिखीं—यह पता मिलता है। अमृतकर के छंद रूप में केवल पाँच पद ही ज्ञात हैं। इन में से इस लेख में विशेषित तीन पद इंगित करते हैं कि वे रत्नावली नाटिका—मूलतः श्री हर्ष द्वारा रचित—में हैं। सम्भवतः अमृतकर ने एक रत्नावली नाटिका लिखी जिस के कि वे पद्य हैं। परन्तु इस नाटिका के और कोई पद्य अभी तक प्रकाशित नहीं हुए हैं। अभी तक किसी इतिहासकार ने भी इस का उल्लेख नहीं किया है। यह नाटक सम्भवतः पद प्रधान 'कृष्णचरण' की प्रेरणा पर रचा गया था।

sublime to ridiculous and written thousands of poems both as lyrics and as narratives. Genuine Jhoomar tune appears to have been preserved in the outskirts of Mithila. The paper gives one Ghairā and two Jhoomar lyrics as specimens of Bhavapritānanda's poetry.

‘अभिनव जयदेव’ विद्यापति ने गीतों के रूप में क्षेत्र की बोलचाल की भाषा में संस्कृत काव्य के विषयों को निबद्ध कर जनता को आनन्दित किया। देवघर के पास सन्वाल परगनाओं में प्रचलित लोक काव्य की एक बहुत लोकप्रिय विधा को साहित्यिक सौंदर्य और परिष्कार देने की यह प्रक्रिया आज एक बहुत ही मेधावी कवि और गायक, भवप्रोतानन्द ओझा द्वारा चालू है। उस ने अपनी कविताओं को मात्र से सहचरित भूमर और इम्फा से युक्त घेरा में रचा है और उन्हें साहित्यिक सौंदर्य दिया है। उस ने उदात्त से निम्न विषयों तक पर रचना की है और हजारों पद—सुवर्ण भी और वर्णनात्मक भी रचे हैं। मौलिक भूमर मैथिली की बाह्य सीमाओं पर सुरक्षित रहा प्रतीत होता है। लेख में भवप्रोतानन्द के काव्य के प्रादुर्भाव के रूप में एक घेरा और दो भूमरि पद उद्धृत किए गए हैं।

तुषीर कुमार गुप्त

७-६.१६७०; ४७-५३; हि० । महादान बाई चारण कवयित्री थी। इन का वंश-परिचय अनुपलब्ध है। उन के द्वारा रचित 'श्रीमान् सती सुजस' को लेखक ने इस में उद्धृत किया है।

नाथूलाल पाठक,

४५६. चित्तौड़ के द्वितीय साके की वीर नारी पेमा; अगर् चन्द नाहटा, वीकानेर; शोप., २१. ३; ७-६.१६७०; ४२-४६; हि० । मेवाड़ के ऐतिहासिक काव्य में 'खुमाण रासो' हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में प्रसिद्ध है। खुमाण रासो में वीर नारी पेमा का विवरण अभी तक प्रकाश में नहीं आ पाया है। लेख में रासो में वर्णित चित्तौड़ के द्वितीय साके का पेमा वाला प्रसंग भी अविकल रूप में प्रकाशित किया गया है।

नाथूलाल पाठक

४४०. जंसलमेर बोली में प्राकृत एवं अवहट्ट की ऋलक; दीन दयाल ओझा; विभ०, ६.३; १६७० (२०२७ वि०); १६-२१; हि० ।

४५७. डिगल गीतों की अनुक्रमणिका

पुरासंहिस., १६६८-६९; ८३-१०५; हि० । ढूँडाड़ी राजस्थानी की एक प्रसिद्ध उपभाषा है। साहित्यिक दृष्टि से यह समृद्ध नहीं है, परन्तु इस की लोक शब्दावली का अध्ययन भाषावैज्ञानिक, ऐतिहासिक, संस्कृतिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व रखता है। इस के शब्द भण्डार में सहस्रों शब्द ऐसे हैं जिन की परम्परा वैदिक युग तक जाती है तथा जो अपने में अनेक प्रत्यात तथ्यों, प्राचीन आदर्शों एवं सामाजिक आचार-विचारों को छिपाए हैं। भाषाविज्ञान के विद्यार्थी के लिए भी इन शब्दों के मूल रूपों का अन्वेषण अतीव रोचक एवं उपादेय है। यहाँ ढूँडाड़ी के लोकप्रचलित २० शब्दों के मूल स्रोतों का संघान-विवेचन प्रस्तुत किया गया है। जिस में इन के मूल में निहित घटनाओं, सं. शब्द और लोकव्यवहार आदि का निर्देश किया गया है। अन्त में ढूँडाड़ी के ५२ शब्दों की उन के सं० तत्सम रूप के साथ एक तालिका भी दी गई है।

मनमोहन अग्रवाल

रचना 'शक्ति भक्ति प्रकाश' में राजस्थानी और फारसी शब्दों के अवाध प्रयोग से युक्त ब्रजभाषा में निबद्ध उपासनाभाव निरूपण, भक्तमालवर्णन, उपासनाभाव वर्णन, कहरारस निरूपण, भक्ति दृष्टि प्रतिपादन (मनः शिक्षा), वीररस भाव वर्णन, कुलदेवी विद्वांसभाववर्णन और अन्तिम प्रार्थना भाववर्णन नामक दोहा, सर्वथा और कविताओं में निहित आठ प्रकरण हैं। यह भावत ग्रन्थ है। भक्तमालवर्णन में शक्तिभक्तों का वर्णन है। कहरावर्णन और कहराष्टक वैष्णव काव्य हैं। इन में कवि ने कृष्ण के प्रति अपनी विनम्र भावांजलि अर्पित की है। वस्तुतः मुंशी माधव राम का काव्य भावत और वैष्णव सम्प्रदाय का ऐसा पुष्पस्थल है, जहाँ कृष्ण-भक्ति और देशी-भक्ति की पुनीत धाराएं आकर मिल जाती हैं तथा जहाँ साम्प्रदायिक विभेद और पूजा उपासनाओं की भिन्नता के भाव समाप्त हो जाते हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

४६०. राजस्थानी सम्मेलन; सुखद प्रति-
प्रतिभा; वेदशास; राष., ११ ४-१९७१; ३:३-५;
हि० । इस में २१, २२, २३ मार्च, १९७१ के सम्मेलन का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। राजस्थान के भूविज्ञानी और नेता राजस्थानी भाषा के प्रति पूरा समझ रखते हैं। उद्घाटन भाषण आदि में राजस्थानी भाषा के गौरव, संवैधानिक मान्यता, प्रान्त की साहित्यिक प्रतिभाओं के प्रकाशन, शिक्षा प्रणाली एवं विधि के क्षेत्रों में राजस्थानी के प्रयोग पर विचार दिया गया। राजस्थानी साहित्य मूल्यांकन मंडली के ४ विधियों का, कथा-मंडली के ५ विधियों का, विविध विधाओं, लोक साहित्य और अनुसंधान विधियों के ३ का, पत्र-विधाओं के विचार में एक मौलिक भाषण का विवरण दिए गए हैं। राजस्थानी काव्य या कविता मौलिक है, जहाँ भी वे वीररस या अनुसंधान हैं, उन्मत्त विवरण-
भावना में वर्णन है, अनुसंधान विधि है, उन्म-

साहित्य पर बल अपेक्षित है। अन्त में ले. ने राजस्थानी को प्राथमिक स्तर पर पढ़ाने, राजस्थानी साहित्य में आलोचना और गद्य के उत्थान, रचनात्मक साहित्य के उत्थान और अन्य साहित्यों से सम्पर्क रखते रहने के सुझाव प्रस्तुत किए हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

४६१. राजस्थानी साहित्य धारा; नरेन्द्र
भानावत, हि० वि०, राज० वि० वि०, जयपुर;
सप., १-२; १-२. १९७१; २६-२८; हि० ।
राजस्थानी भाषा का साहित्य विविध और विशाल
है। उन के निर्माण में यहाँ के इतिहास और
नाभूतिक परम्पराओं का बड़ा योग रहा है।
कालक्रम की दृष्टि से ले. ने सम्पूर्ण राजस्थानी
साहित्य को आदिकाल (वि० सं० ८००-१२५०),
मध्यकाल (वि० सं० १२५१-१९१३) और आधु-
निक काल (वि० सं० १९१४ से आज तक) में
विभक्त कर उसके विकास की संक्षिप्त भांकी
प्रस्तुत की है। मध्यकाल की वीरता, भक्ति और
सन्त काव्य धारा के साथ-साथ राजस्थानी गद्य की
उपगत एवं मौलिक विविधताओं—जैनमौली,
जैनतर मौली का तथा आधुनिक काल में विवेक गवे
काव्य, कथा साहित्य, रेखाचित्र, संस्करण आदि
का परिचय भी दिया गया है।

सांता भानावत

४६२. राजस्थानी साहित्य में भूगोल रस;
नारायणदास नर्मो; सप., १-२; १-२. १९७१;
२६-३२; हि० । राजस्थानी साहित्य और रस
प्रधान होने हुए भी भूगोल रस में किसी माने में
कीटिनी है। 'सोना मास रा हूँ' जैना चमर
रेखाचित्र इसी साहित्य की देन है। इस विवरण
में ले. ने भूगोल के संक्षेप व विविध रूपों,
प्रसंगानुसार उदाहरण देते हुए समझ आनी प्रस्तुत
की है।

सांता भानावत

राजस्थानी काव्य
(Rājasthānī Poetry)

४६३. छोजड़; गोपालसिंह राणावत, मांढरवतपुरा (नरहरिगड़), चित्तौड़ा रैणवाल, जिला उदयपुर; (राज०); २-००; हि. (राज.); समीक्षक दीनदयाल श्रोत्रा; विभ., ६.३; १९७० (२०२७ वि०); ८६; हि० । यह राजस्थानी भाषा में राणावत की विभिन्न अवसरों पर रचित कविताओं का सुन्दर संकलन है ।

सुधीर वृ नार गुप्त

४६४. राजस्थानी कवियों के कुछ छप्पय; सोभाय सिंह शेखावत; विभ., ६.३; १९७० (२०२७ वि०); ८१-८४; हि. । इस में राजस्थानी हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रहालयों में प्राप्त नीति आदि पर प्राप्त छप्पय छन्द में निबद्ध ६ मुक्तक पद्यों का उन के रचयिताओं का विवेचन और विषय प्रस्तुत करते हुए उद्धरण दिया गया है ।

४६५. सजनां विषयक वात और गीत; मनोहर शर्मा; विभ., ६.३; १९७० (२०२७ वि०); ५६-७४; हि० । यहाँ कठिन शब्दों के अर्थ और हिन्दी सारांश सहित जैसलमेरी भाषा में जैसलमेर में प्रचलित सजनां विषयक 'रायधण भाटो रो वात' का प्रानान, उस का मूल्यांकन, सजनां गीत और रायधण गीत ने भेद तथा इन को ऐतिहासिकता का विवेचन प्रस्तुत किए गए हैं ।

सुधीर कुमार गुप्त

sounds and phonetics of the Hindi language. This suggestion provides a regular and officially recognised alternative, viz., Latin script to the Devanagari script. The author cites the examples of the scripts like Kharosthi used in the earlier writings and opines that change in script is not contrary to Indian tradition and history. Modern scholars of Skt. have evolved a uniform Latin code for transliterating from Devanagari in to Latin script and this code can be used as a starting point. It is desirable from the political as well as literary and technological points of view. Difference between Hindi and Urdu should be gradually eliminated. Latinisation will open the door of technological advances for Devanagari. Hindi should have more contact with the other languages of the world and the strangeness of words taken from English should be ended. Latinisation of Hindi's script would make this language widely acceptable and will help it to realise its potential.

ले. का मत है कि लैटिन लिपि को हिन्दी वर्णमाला और हिन्दी भाषा की ध्वनियों और उच्चारणों की प्रकृति के अनुरूप ढाल कर, वैज्ञानिक प्रणाली से हिन्दी के लिए लैटिन लिपि पर गम्भीर चिन्तन के लिए यह उपयुक्त समय है । यह सुझाव देवनागरी लिपि के स्थान पर नियत और अधिकृत रूप से स्वीकृत विकल्प लैटिन लिपि को प्रस्तुत करता है । ले. पूर्वतर लेखों में प्रयुक्त खरोष्ठी जैसी लिपियों का उदाहरण देता है और मत व्यक्त करता है कि लिपि में परिवर्तन भारतीय परम्परा और

वि०, राज० वि० वि०, जयपुर; सस्मा, १६७०; ५३-५८; हि०। काव्य रूपों के सम्बन्ध में जैन कवियों की दृष्टि बड़ी उदार रही है। उन्होंने प्रबन्ध-मुक्तक की चली आती हुई काव्य-परम्परा के बीच काव्य-रूपों के कई नए स्तर निर्मित किए। यथा—रास, रासो, चौपई, सधे, चर्चरी, ढाल, पवाड़ा आदि (चरितकाव्यों के क्षेत्र में); फागु, धमाल, वारहमासा, विवाहलो, धवल, मंगल आदि (ऋतु काव्यों के क्षेत्र में); ककका, संवाद, मातृका, वावनी, कुलक, हीमाली, वारहखड़ी आदि (नीति काव्यों के क्षेत्र में); स्तुति, स्तवन, स्तोत्र, सज्भाय, चौवासी, बीसी आदि (स्तुति काव्यों के क्षेत्र में)। गद्य के क्षेत्र में भी गुर्वावली, पट्टावली, उत्पत्ति ग्रन्थ, वचनिका, दवावेत, सिलोका, टब्बा, बालाव-बोध जैसे कई रूप प्रचलित किये। इन प्रयोगों से काव्य-रूपों की गतानुगतिक परम्परा शास्त्रीयता के बन्धन से सहजता की ओर, रुढ़िवद्धता से लौकिकता की ओर प्रवाहित हुई।

शांता भनावत

४७०. चौबोली कथा: उद्भव और विकास; व्रजनारायण पुरोहित; यूरसंहिस., १६६८-६९; १४७-१५७; हि०। जैनाचार्यों ने स्वतन्त्र रूप से विक्रमविषयक कई कथाओं को काव्य में निबद्ध किया जिनमें “विक्रम चौबोली चौपाई” या “विक्रम नानावती चौपाई” अत्यधिक प्रसिद्ध है। वेताल पंगविगणिका की चार कथाओं का चयन कर राज-नेगर मूरि ने उन्हें विक्रम के विवाह प्रसंग के मान्य जोड़ने का सफल प्रयत्न किया है। एक ही मुद्दे तथा में यन्तकथा या यन्तकथाओं का गुम्फन करना महत्व नास्तिक ही निजी विवेकता है। नीचे भाग में चौबोली कथा का प्रणयन करने वाली ने परस्परवर्ती प्रबन्ध के निम्न प्रणय मोन प्रकृत है। हमें नीचे “विक्रम चौबोली वेताली” (खन्नास १० १७२४) है। नीचे कथाओं में राजा भोज दोन चौबोली के विवाह की

कथा भी अत्यधिक प्रसिद्ध है। दोनों (विक्रम व भोज कथाओं) की कथानक रूढ़ियाँ ही केवल समान नहीं हैं, अपितु उपकथाओं में भी बहुत कुछ समानता है। चौबोली कथा का उद्गम वृहत्कथा की कहानियाँ हैं। लेख के अन्त में ले. ने एक तालिका में चौबोली कथा के स्रोत और कथाक्रम दिये हैं।

मनमोहन अग्रवाल

४७१. जानी विहारी लाल; सोमनाथ गुप्त, जयपुर; यूरसंहिस., १६६८-६९, १४५-१४६; हि०। भरतपुर राज्य से सम्बद्ध दो जानी विहारी लाल हैं—१. आगरा निवासी, संस्कृत, अरबी, फारसी के अच्छे ज्ञाता, अनेकों पुस्तकों के रचियता और अनुवादक दीवान जानी विहारी लाल तथा २. मथुरा निवासी, गणित के अव्यापक, हिन्दी के विद्वान और कवि ११ प्रकाशित और ११ अप्रकाशित ग्रन्थों के रचियता और अनुवादक तथा ‘विज्ञान विभाकर’ नाटक के लेखक जानी विहारी लाल थे।

सुधीर कुमार गुप्त

४७२. तुलसीदास और हिन्दू जाति की प्रमुख तात्कालिक समस्याएं; किशोरी लाल गुप्ता, प्रिंसिपल, श्री कल्याण कालिज, सोकर; यूरसंहिस., १६६७-६८; ७-१४; हि०। तुलसी ने पिटी हुई हिन्दू जाति के समक्ष कोई नए मौलिक आदर्श या विचार प्रस्तुत नहीं किए। उन्होंने ने परम्परागत जीवन मूल्यों को ही काव्यमय रूप में प्रस्तुत किया। इस काव्य में हिन्दुओं की तत्कालीन समस्याओं का कोई समाधान नहीं मिला। तुलसी जनता को पौराणिक देवी-देवताओं के वास्तविक स्वरूप को और मूर्तियों की यथायंता को न बता सके। उन्होंने ने कभी न माने वाले अवतार को ही प्राणा का प्रयत्न बनाया। वे यूर्तों और स्त्रियों की समस्या का न्याय्य समाधान न दे सके। तुलसी ने कविगुण वे प्राण मांगा है, किन्तु जाति का कल्याण नहीं चाहा है। दृष्टि-निर्घमों के विकस

काव्यसत्य की कोटि में आने वाली घटनाओं को भी उन्होंने ने सत्य और ऐतिहासिक माना है। अतः वे असंख्य हिन्दुओं को ईसाई और मुसलमान बनने से न रोक सके। उन का योग हिन्दू जाति को जड़, अन्वविश्वासी व छुईमुई जैसा बनाए रखने में और पौराणिकता की रक्षा में है, हिन्दुओं को तेजस्वी बनाने में नहीं है।

३६४, दक्षिण में हिन्दी के प्रचार में आर्य समाज का योगदान; क्षेमचन्द्र सुमन, साहित्य अकादमी, दिल्ली; वकास्मा.. १९७१; ५२-५४; हि०।

४७३. ध्रुवदेवी की जाति; एस. एन. प्रसाद, प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, सी. एम. पी. कालिज, प्रयाग; उमकव., १९७०; ७५७-७६२; हि.। विश्वस्त सामग्री के सुलभ न होने से कतिपय अन्य स्रोतों के आधार पर ध्रुवदेवी की जाति के निर्णय की समस्या के समाधान में प्राकल्पना ही सम्भव है। प्रयागप्रशस्ति के अनुसार शकों ने समुद्रगुप्त को अपनी कन्याएं भेंट की। इन में सम्भवतः ध्रुवस्वामिनी भी थी। यह इस का शकनाम था, जिस को समुद्रगुप्त ने भारतीयकरण कर ध्रुवदेवी बना दिया और सम्भवतः अपने ज्येष्ठ पुत्र, रामगुप्त से व्याह्र दिया। समुद्रगुप्त के पश्चात् रामगुप्त उत्तराधिकारी बना, जिस पर शक राजा ने आक्रमण कर हरा कर ध्रुवदेवी को मांगा। चन्द्रगुप्त ने शक राजा की और फिर रामगुप्त की हत्या कर ध्रुव देवी से विवाह कर लिया। इस प्रकार ध्रुवदेवी या ध्रुवस्वामिनी शक जाति की थी। स्मरण रहे स्वामी पद शक भाषा का है। स्वामिनी उस का संस्कृत भाषा में स्त्रीलिङ्ग रूप है।

सुधीर कुमार गुप्त

४७४. प्रवीणराम पातुर का रचनाकाल: ऐतिहासिक विश्लेषण; राधेश्याम द्विवेदी; विभाप.,

११.१; ४-६.१९७०; ५८-६५; हि०। 'प्रवीण राय पातुर और उनका काव्य' नामक अपने लेख (विभाप., ८.१) में पुष्पोत्तम शर्मा ने प्रवीण राय का जन्मकाल सन् १५८३ ई० माना है। यदि इसे मान लिया जाय, तो इनके प्रोमास्पद इन्द्रजीत सिंह के १५६२ ई. में कार्यवाहक राजा होने पर प्रवीणराय ९ वर्षीय लड़की होती है। १५६४ ई० से कुछ पूर्व अकबर के उकसाने से रामशाह और वीरसिंह में बीच गृह-युद्ध शुरू हो जाता है। इस अशान्ति-काल में रामशाह के संरक्षक इन्द्रजीतसिंह के ओरछा दरवार में संगीत व नृत्य की मजलिसें न चलती होंगी। अतः प्रवीणराय पातुर की ब्याति सन् १५६२ ई० और १५६४ ई० के मध्य ही इन्द्र जीत सिंह के दरवार में विशेष रही होगी। चूंकि प्रवीणराय की ब्याति एक सुन्दरी और प्रेयसी के रूप में थी, इसलिए ९ और ११ वर्ष की अवस्था के बीच उसमें आकर्षण की यह स्थिति नहीं हो सकती। अतः बुन्देल वैभव के गौरी शंकर द्विवेदी का सन् १५७३ ई० को ही प्रवीणराय का जन्म-काल मानना युक्तियुक्त है। इस प्रकार केशवदास की कविप्रिया की रचना के समय प्रवीणराय की आयु लगभग २७ वर्ष की रही होगी। इसकी रचना केशव ने प्रवीणराय को काव्यकला का शिक्षण देने के लिए की थी। अकबर ने गृह-युद्ध में रामशाह का पक्ष लिया था, इन्द्रजीतसिंह पर अकबर द्वारा एक करोड़ रुपये जुर्माना किए जाने की घटना इसके पूर्व घटित हुई होगी और वीरवल की सहायता से केशवदास ने वह जुर्माना माफ कराया होगा—उसी क्रम में १५६४ ई० में प्रारम्भ होने वाले गृहयुद्ध में अकबर का समर्थन रामशाह को मिला होगा। प्रवीणराय की गणना केशवदास ने पातुरों में की है किन्तु लोकरनाथ तिलहारी उसे पातुर की अपेक्षा 'नर्तकी' कहना अधिक उचित समझते हैं। वह सामान्या न थी। प्रवीणराय की रचनाओं में उसकी निश्चल अनिर्व्यजनाएं अत्यन्त मार्मिक हैं। उनमें कोई लागलपेट नहीं हैं।

ओरछा की इस पातुर के इस सत पर हजार सतियां न्योछावर हैं।

रामकुमार गुप्त

४७५. प्रवीणराय पातुर नाम की एक और कवयित्री; अग्रचन्द नाहटा; विभाप., ११.१; ४-६.१९७०; ६६-६६; हि०। ओरछा के कुंवर इन्द्रजीतसिंह की प्रेयसी प्रवीणराय पातुर के अतिरिक्त इसी नाम की एक और कवयित्री राजस्थान में हो चुकी है, जिसको रचनाएं वाकानेर की अनूप संस्कृत लायब्रेरी में विद्यमान हैं। रचनाओं के नाम हैं—१. प्रवीण प्रकाश और २. समाप्रकाश। अलवर के महाराजा विनयसिंह (संवत् १८७१-१९१४) की पातुरों में प्रवीणराय सबसे अधिक प्रेमपात्री थी। महाराजा विनयसिंह भी कवि थे। उनके पद्यों में रसिक छैल और प्रवीणराय के पद्यों में 'रसिक छैल' की छाप मिलती है।

के आधार पर लिखी गई स्वतन्त्र रचना है, उस का अनुवाद नहीं है। यहाँ विवेक, मति, मत्संग, वैराग्य, वेदसिद्धि, शांति, रति, काम, वसन्त, विदुषक, उपत, महामोह दीलत, लोभ, कुदुद्धि और चौवदार पात्र हैं। नाटककार का शिल्प और नाटकलेखन की कला सराहणीय हैं। सम्पूर्ण नाटक मिल जाए तो वह हिन्दी साहित्य की अनुपम वस्तु होगी।

सुधीर कुमार गुप्त

२०८. मध्यकालीन बोध का स्वरूप; हजारी प्रसाद द्विवेदी; प्र० पब्लिकेशन द्यूरो, पंजाब यूनि-वर्सिटी, चण्डीगढ़ी; समीक्षक रामसिंह तोमर; विभाप., ११.१; ४-६.१९७०; १०१-१०२; हि.।

४७७. महाकवि ग्वाल की वंश-परम्परा और उनके पूर्वज; भगवात सहाय पचौरी; विभाप., ११.१; ४-६.१९७०; २२-२६; हि०। महाकवि ग्वाल ने अपनी यमुना-लहरी, रसिकानन्द आदि

उपलब्ध प्रति के आधार पर बना है। 'म' और 'य' की वनावट हस्तलिपियों में भ्रम पैदा कर सकती है। वस्तुतः खाल कवि के पिता का नाम सेवाराम ही था और उनकी वंशपरम्परागत अल्ल 'राय' थी।

रामकुमार गुप्त

४७८. मेवाती लोक साहित्य : एक शोध अध्ययन; महावीर प्रसाद शर्मा, जयपुर; यूरासंहिस., १९६८-६९; १२१-१४४; हि०। प्राचीन मत्स्य जनपद आज मेवात कहलाता है। लेख में मेवात की सीमाएं, जनसंख्या और बोलियों का परिचय दे कर लोक साहित्य का वर्गीकृत वर्णन किया गया है। मेवाती की कई उप-बोलियां हैं, जिन में से यहां चार के ही नाम दिए गए हैं। मेवाती लोककथाओं के पांच वर्ग हैं। इस की लोकोक्तियों और कहावतों को छे वर्गों में रखा जा सकता है। ये लोकजीवन की दर्शक हैं। पद्यात्मक लोकगाथाओं के तीन प्रकार हैं। ये दोहा छन्द में हैं। बीच-बीच में गद्य का भी प्रयोग होता है। इन्हें 'वात' कहा जाता है। इन में अनेक-विध विषय हैं। सूक्तियों के समान समुद्र द्वारा यात्राएं भी वर्णित की गई हैं। पंहु, सांगा रजपूत, टोडरमल बादाराव और आलमगीर की बातों से उद्धरण दिए गए हैं। लोकगीतों में जीवन के प्रत्येक क्षण की गीतात्मक अनुभूति का आलेखन है। इन गीतों को १५ वर्गों में रखा गया है। इन सब का सोदाहरण विवरण दिया गया है। मेवाती का मुद्रित साहित्य अल्प है। इस के लोक-साहित्य के संग्रह भी समय-समय पर किए गए हैं। इन दोनों का यहां संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

सुधीर कुमार गुप्त

४७९. लोकगीतों में देवर-भाभी का सम्बन्ध; जगमलसिंह, व्याख्याता, हि. वि., गवर्नमेंट कालिज, चित्तौड़गढ़; यूरासंहिस., २; ७.१९६७; ९१-९८; हि०। यद्यपि भारतीय जनजीवन एवं अभिजात साहित्य में देवर-भाभी के सम्बन्ध बहुत ही आदर्श

माने जाते रहे हैं भाभी मातृतुल्या मानी गई है, तथापि राजस्थानी, भोजपुरी और गुजराती आदि भाषाओं के लोकगीतों में बहुधा देवर-भाभी के अवैध यौन सम्बन्धों के प्रतीकात्मक अथवा स्पष्ट वर्णन मिलते हैं। इन अवैध सम्बन्धों का मूल देवर-भाभी को समाज में हंसी-मजाक करने की स्वतंत्रता में निहित है। कहीं-कहीं भाभी देवर को अपना छोटा भाई भी समझती है, कहीं परस्पर वैमनस्य का भी चित्रण है।

सुधीर कुमार गुप्त

४८०. विदुरप्रजागर परिचय; गौरी शंकर द्विवेदी शंकर: विभाष., ११.१; ४-६.१९७०; ७०-७८; हि०। विदुरप्रजागर (छन्दोबद्ध) ग्रन्थ के रचयिता कृष्णकवि औरछा के निवासी थे। विदुरप्रजागर के साक्ष्य के अनुसार इसकी रचना राजा आरजमल्ल की आज्ञा से संवत् १७९२ में कार्तिक शुक्ला पंचमी गुरुवार को हुई थी। कृष्ण कवि का जन्म और कविताकाल 'बुन्देल वैभव' के अनुसार क्रमशः वि० सं० १७५० और १७७५ और 'मिश्रवन्दुविनोद' में क्रमशः १८७० और १९०० माने गए हैं। मिश्रवन्दुओं का मत ठीक नहीं है। विदुरप्रजागर में ९ अध्यायों में ६२६ छन्द हैं। आचार्य केशव की शैली के अनुकरण पर इस में अनेकानेक छन्दों का प्रयोग किया गया है। भाषा सरल, सरस और सुबोध है। अनेक स्थलों पर अलंकारों की छटा है। बुन्देली शब्दों को भी कुशलतापूर्वक स्थान दिया गया है। पद्धरी, तोटक, सोरठा, तोमर, दोहा, रोला, कुण्डलिया, दोधक, छंदतिलका, छंदमल्लिका, कवित्त आदि के नमूने विभिन्न अध्यायों से उद्धृत किए गए हैं।

रामकुमार गुप्त

४८१. सन्त साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की समस्याएं; नरेन्द्र भानावत, जयपुर; यूरासंहिस., १९६८-६९; १५९-१६७; हि०। सन्त साहित्य ने सभ्यता के बढ़ते हुए चरणों और ऐतिहासिक परिवर्तन विन्दुओं को समझने में बड़ी मदद दी है।

मन पुण्य लोकसंस्कृति के उन्नायक और रक्षक रहे हैं। एक और लोक-संस्कृति ने इन के व्यक्तित्व को बनाने में मदद दी है तो दूसरी और लोकसंस्कृति को इन्होंने प्रमत्त व्यक्तित्व का रस दिया है। हमारे मनस्त लोकव्यवहार लोहव्यवसाय, लोक आचार इन की वाणियों में लंकने प्रतीत होते हैं। इन की वाणियों में जीवन का विनाश नहीं, वरन् जीवन के अटुमव का निचाड़ है, इस लिए हमारे निकट हैं।

मनमोहन अग्रवाल

साहित्य, प्रेमाख्यान काव्य, रासो साहित्य, टीका ग्रन्थ, जैन साहित्य, वनस्पति विज्ञान, आयुर्वेद, संगीत, ज्योतिष, वार्ता साहित्य, महानारत इत्या, लुट्ट काव्य और विविध विषय शीर्षकों के अन्तर्गत २१६ ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। इस विवरण में रचना का नाम, लेखक का नाम और काल, हले. का आकार, पृष्ठसंख्या, लिपिकार, लिपिकर का नाम, ग्रन्थ का एक लघु वाक्य में विवरण और हले. संख्या दिए गए हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

लघु कथा 'मैकू', 'रंगभूमि' तथा हंसराज रहवर के 'प्रेमचन्द का जीवन तथा कृतित्व' के रूसी में अनुवाद का ज्वलेश है। रंगभूमि के सूरदास के चरित्र, प्रेमचन्द और गांधी में साम्य और प्रेमचन्द पर, रहवर के उक्त ग्रन्थ के अनुसार, रूसी प्रभाव का वर्णन है।

हिन्दी काव्य (Hindi Poetry)

४८७. अन्तर्ध्वनि; गोविन्द वैनर्जी 'अतुल', अजमेर; आ. मा., ५०.२०; १५.१२.१९७०; ८; हि०। मानव वीर भयावह जगत् में समस्याओं से लड़ते हुए, निराशा को त्याग कर, साहस से आगे बढ़ता रहे।

४८८. उद्बोधन; फतहसिंह; हाहि विपस्मा., १९७०; ६; हि०। कवि ने भारतीय—हिन्दु संस्कृति के उदात्त भावों से युक्त होने आत्म और पर की उन्नति में लगने और सक्रिय वीर होने के लिए जनमात्र का आह्वान किया है।

४८९. श्री ओ३म् भवत जी के प्रति; भंवर लाल 'अमर', शाहपुरा (भीलवाड़ा); आ. मा., ५०.२०; १५.१२.१९७०; ६:१; हि०। ओम्भक्त में आर्यसमाज के क्षेत्र में किए गए कार्यों का प्रशंसात्मक पद्यमय विवरण है।

सुधीर कुमार गुप्त

४३१. गामर; ले., प्र. गजेन्द्रसिंह सोलंकी, पत्रकार, वक्तापुरी का कुण्ड, पुरानी घान मण्डी, कोटा-६ (राज०); भूमिका ले. फतहसिंह; ६-००; १४+१५१; हि०।

४९०. जय केदार! जय वद्री विशाल; तेज नारायण टण्डन; प्र. हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ; १-५०; समीक्षक मनोहर कान्त शर्मा; शोप., २१.३; ७-९.१९७०; ७९; हि०। इस में यात्रावर्णन की शैली सरस एवं चुटकीली है।

नाथूलाल पाठक

४९१. जिस ने मां की अर्चा की ही; गणेश नारायण राठी, पो. जावला; आ. मा., ५०.२०; १५.१२.१९७०; ५:१; हि०। नूतनतम ग्रन्थार्थों से युक्त भारतीय वीर की शिवाजी आदि में शिवा ले, शत्रु को जीतने का उद्बोधन है।

सुबोध कुमार गुप्त;

४९२. आचार्य तुलसी का प्रवचन सुन कर; कमलाकर; राप., १७.१.१९७१; ३:७-८; हि०। आचार्य तुलसी रूपी सूर्य भक्तों के साथ अपनी पदयात्रा में उदात्त आदर्शों का प्रकाश दे रहा है। अब दुनिया भर के अन्धे दूर हो जायेंगे।

प्रनिल कुमार गुप्त

४९३. तृष्णा; प्रभास चन्द्र शर्मा 'मैहता'; प्र० हिन्दी साहित्य सदन, देहरादून; ५-००; समीक्षक देव कोठारी; शोप., २१.३; ७-९.१९७०; ७७; हि०। वर्तमान दौर की काव्य-कृति है।

नाथूलाल पाठक

४९४. नवयुवकों से; सालिक राम शर्मा 'विमल', इलाहाबाद; गुप., २३,३; १०-११.१९७०; १५१; हि०। युवकों को संघर्ष से जीते-जी जूझना है, आगे बढ़ना है और भारत भूमि की रक्षा में प्राण तक भी निष्ठावर करना है।

सुबोध कुमार गुप्त

४९५. अद्वैत पं. भगवान स्वरूप जी न्याय-सूषण के प्रति; प्रकाश चन्द्र कविरत्न, अजमेर; आ. मा., ५०.२०; १५.१२.१९७०; ७-८; हि०। भगवान स्वरूप का प्रशंसात्मक अभिनन्दन है।

प्रनिल कुमार गुप्त

४९६. रक्त के प्रक्षर; (खण्ड काव्य); ले. व प्र० शिवशंकर त्रिपाठी, लोकमत, दारागंज, इलाहाबाद; सं. २०२६; ११२; ४-००; समीक्षक रणजीत कुमार साहा; विभाप., ११.१; ४-३.१९७०; ९६-९८; हि०। यह वीर शिवाजी के शौर्यपूर्ण कार्यों पर आधारित वीर रसात्मक और

यात्रा (Travelling)

५०४. गंगोत्री दर्शन; महावीरसिंह गहलोत; प्र० राजस्थान पुस्तक मन्दिर, मेड़ती द्वार के अन्दर, जोधपुर; १९६७; २४४ + ४; ५-००; हि० । प्राक्कथन, मंगलाचरण, प्रवेश, गंगोत्रीपुरी, भागीरथी आख्यान, गंगामाहात्म्य, गंगोत्रीजीवन, गङ्गमुख यात्रा, गंगा का उद्गम व प्रवण क्षेत्र, उत्तरी हिम यात्रा, फलश्रुति और यात्रासंकेत— इन १२ शीर्षकों में हिमालय की गोद में गंगा के उद्गम व प्रवण क्षेत्र की हिमयात्रा का कतिपय चित्रों सहित वर्णन है । प्राक्कथन में संस्कृत साहित्य से हिमालय वर्णन के कुछ उद्धरण दिये गए हैं । ग्रन्थ में तीर्थों का स्वरूप तथा अन्य अनेकों धार्मिक और आध्यात्मिक विचार भी अनेकशः दिए गए हैं ।

सुधीर कुमार गुप्त

भारोपीय भाषाएं

(Indo-European Languages)

फारसी (Persian)

१७८. विजयपत्रम् (उफरनामा); ले. गुरु गोविन्द; अनुवादक आचार्य वमन्त्रनाथ; भूमिका ले. जाकिर हुसैन; प्र० निखिल भारतीय भाषापीठ प्रकाशन, जयपुर; क—फ + २६८; २०-०० (३ डालर); फा., सं., हि., अं. ।

१४८. भोट भाषा में महाभारत की कहानी; सुनीति कुमार पाठक; विभाष.; ११.१; ४-६. १९७०; ४७-५७; हि० ।

505. Why German? Maria Mies; BDCRI., XXVIII. III-IV; 1967-68; 105-196; E. It is a report of a survey of the students of German in Poona. "The instrumental aspect of the German language for most students in the survey was predominant. This language was seen as a means to reach certain aspirations like better career prospects and desire to go to Germany. There was a hope for a true dialogue with the German culture".

यह पूना में जर्मन के विद्यार्थियों के एक सर्वेक्षण का विवरण है । सर्वेक्षण में अधिकांश विद्यार्थियों के लिए जर्मन भाषा का साधन रूप पक्ष बहुत प्रमुख था । यह भाषा जीवन में अधिक अच्छे जीवनक्रम और जर्मनी जाने की इच्छा आदि कतिपय अभिलाषों की सिद्धि के साधन के रूप में समझी जाती थी । जर्मन संस्कृति से सच्चे संवाद की आशा थी ।

संस्कृत कोष और व्याकरण

(Sanskrit Lexicons and Grammar)

61. A Comparative Dictionary of the Indo Aryan Languages; By R. L. Turner; Indexes, compiled by Dorothy Rivers Turner; ix, 357; London, Oxford University Press; 1969; Rev. JRAS (GBI), 1.1970; 80-81; E.

56. A Note on Pāṇini's Technical Vocabulary; George Cardona, Philadelphia (U.S.A.); JOI., XIX. 3; 3 1970; 195-212; E.

506. New Model Sanskrit Grammar. Volume I and II by D. Krishna Iyengar with the General Preface by C. P. Ramaswami Aiyar and the Foreword by V. Raghavan; Pub. The Sanskrit Education Society, Madras; [Vol. I; 1968; Rs. 12.50; viii+341]; [Vol. II; 1969; Rs. 7.50; vi + 343 to 486 + ii]; Reviewer : S.G. Kantawala; JOI., XIX. 3; 3 1970; 307-309; E. Vol. I has eleven chapters which deal with verbs, verbal affixes tenses, moods and conjugation. Vol. II deals in unnumbered several chapters with the alphabet, Sandhi, declension of nouns, pronouns and numerals, degrees of comparison, feminine forms and compounds. The book contains a number of panoramic tables. Relevant aphorisms of Pāṇini have also been given. Some old and some self-composed kārikās have also been given. V. Raghavan in his foreword has given the history of this work.

खण्ड १ में ग्यारह अध्याय हैं जिन में क्रिया, कृदन्त, काल, भाव और गणों का प्रतिपादन है ।

language area because throughout his whole life he lacked a pharynx which develops after birth and is "supralaryngeal apparatus" and plays the key role in determining the phonetic quality of the vowels and consonants. He (Liberman) feels that the human vocal apparatus gradually evolved for the purpose of language, but, otherwise, the Neanderthal man got the better breaks as regards the vocal tract anatomy.

लगभग ४०.००० से ७०.००० वर्ष पूर्व के नेन्डरतल मानव के उच्चारणावयवों का पुनर्निर्माण इंगित करता है कि उस की भाषा मानव-बालक की अव्यक्त वाणी के समान ध्वनि-विचार की दृष्टि से अक्षिप्त और कुछ ही स्वरों वाली रही होगी। कनेक्टिकट वि. वि. के लिबरमैन ने बताया है कि भाषा के क्षेत्र में नेन्डरतल मानव ने इस लिए वञ्चना प्राप्त की कि उस के समस्त जीवन काल में जन्म के पश्चात् विकसित होने वाली प्रसनी का अभाव रहा। यह अविकसलीय साधन है और स्वर तथा व्यञ्जनों के ध्वनिगुणों के निर्धारण में प्रमुख कार्य करता है। वह (लिबरमैन) मानते हैं कि भाषा के निमित्त मानवीय उच्चारण अंगों का विकास शनैः शनैः हुआ है, लेकिन, अन्यथा तो नेन्डरतल मानव के पास उच्चारणावयवों की रचना की दृष्टि से अधिक अच्छे रन्ध्र थे।

अनिल कुमार गुप्त, सुधीर कुमार गुप्त

54. **Accent in Sanskrit;** K. V. Abhyankar; **ABORI.**, L. I-IV; 1969; 41-55; E.

510. **Adjectives & Nominalisations;** Zeno Vendler, *The Hague, Mouton*; 1968; Rev. Collin Good, *Univ. of East Angalia*; **Ling.**, 64; 12.1970; 94-95; E. Here adjectives are treated better than the nominalization system on the pattern set in 'The Grammar of English Nominalization', 1963.

यहाँ 'अत्रे जी नामिकीकरण की व्याकरण १९६३' में प्रस्तुत शैली पर नामिकीकरण प्रणाली

की अपेक्षा, विशेषणों का प्रतिपादन अधिक अच्छा है।

रविप्रकाश, अनिल कुमार गुप्त

511. **An Aspect of Pāli Semantics;** Sudhi Bhushan Bhattacharya, *Linguist, Anthropological Survey of India, Calcutta*; **UMCV.**, 1970; 527-530; E. The author presents a study of the senses of some Skt. words like artha, yajña, adhyātma, karman, jāti, skandha, ṛddhi, kāya and others developed or changed in the Pāli and concludes that the change in meanings in Pāli is reflected more in the words and their meanings than in phonological, morphological and syntactical levels. Language is the vehicle of culture. Naturally it changes with change of culture. Pāli is the language of the Hīnayāna Buddhists and as such it reflects their ideals, thoughts, conceptions and life.

ले० ने अर्थ, यज्ञ, अव्यात्म, कर्मन्, जाति, स्कन्ध, ऋद्धि, काय और अन्य कुछ संस्कृत के शब्दों के पालि में विकसित या परिवर्तित अर्थों का अव्ययन प्रस्तुत किया है और निष्कर्ष निकाला है कि पालि में अर्थों में परिवर्तन ध्वनि, रूप और वाक्य रचना के स्तरों की अपेक्षा शब्दों और उन के अर्थों में अधिक लक्षित होता है। भाषा संस्कृति की वाहक है। स्वभावतः ही यह संस्कृति के परिवर्तन के साथ परिवर्तित होती है। पालि हीनयान बौद्धों की भाषा है। इस कारण इस में उन के आदर्श, विचार, परिकल्पनाएँ और जीवन प्रति-विम्बित हो रहे हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

512. **Onomatopoeic Words in Prakrit;** P. M. Upadhye, *Bombay*; **JOI.**, XIX. 4; 6.1970; 351-354; E. Theory of onomatopoeia implies imitation of natural objects, both animate and inanimate. This principle must be attributed to the early stages of language making. The paper then makes a study of about two dozen onomatopoeic words from Nāyā-dhamma-kahāṇ, Pauma-carīya, Kuvala-yamālā and other works and concludes

that in many cases these words are reduplicates, indicate peculiar sound of movements or actions or of creatures, convey harsh or soft sound. Their meanings are basically connected with the root-meaning. They are Deśya words. They are semantic.

अनुकरणवाद जड़ और चेतन-दोनों ही प्रकार के प्राकृतिक पदार्थों के अनुकरण को द्योतित करता है। यह तत्त्व भाषा के निर्माण के प्रारम्भिक स्तरों से ही सम्बद्ध किया जा सकता है। अब लेख नायाधम्मकहाओ, पउमचरीय, कुवल्यमाला और अन्य कृतियों के लगभग दो दर्जन शब्दों का अध्ययन प्रस्तुत करता है और निष्कर्ष निकालता है कि ऐसे बहुत से शब्द द्विरुक्त हैं और गतियों या कर्मों या प्राणियों की विशिष्ट ध्वनियों को द्योतित करते हैं तथा कठोर और कोमल ध्वनि को व्यक्त करते हैं। उन के अर्थ मूलतः धात्वर्थ से सम्बद्ध हैं। वे देश्य हैं और आर्थ्य हैं।

57. Authorship of a Vārttika from the Mahābhāṣya; S. D. Laddu, CASS., Univ. of Poona, Poona; JUPH., 33; 1970; 13-22; E.

513. On the Meaning of the Word Keṭubha; M. G. Dhadphale; Research Section II of the Fergusson College Magazine, Poona, 1968-1969; 33-44; E. The paper examines and refutes the interpretation of केटुभ as कल्प and as काव्यशास्त्र. It discusses the interpretation of किरियाकप्पविकप्प. अगवंस derives केटुभ from $\sqrt{\text{केट}} + \sqrt{\text{उभ}}$. It perhaps referred to आख्यातकप्प (-धातुपाठ). Probably it is a Deśī word from OIE dialect. It means collection of synonyms of verbs or roots. Keṭubhas were 'synonymous; conjugational and also homonymous. निघण्टु is a nominal dictionary, keṭubha a verbal dictionary.

यहां केटुभ के कल्प और काव्यशास्त्र अर्थों की समीक्षा और खण्डन है। किरियाकप्पविकप्प के अर्थ का विवेचन किया गया है। अगवंस केटुभ को $\sqrt{\text{केट}} + \sqrt{\text{उभ}}$ से व्युत्पन्न करता है। सम्भवतः

यह आख्यातकप्प (—धातु पाठ) का बोधक था और प्रा. भाष्यो. बोली का देशी शब्द है। इस का अर्थ पर्यायवाची क्रिया या धातुओं का संकलन है। केटुभ आख्यातों के समानार्थक और समनामी (शब्दों का संकलन) थे। निघण्टु नामकोप है और केटुभ आख्यातकोप।

सुधीर कुमार गुप्त

514. Change of OIA 5th. Conj. > 9th. Conj. in Pāli; Ravi Prakash, Skt. Dictionary Deptt., Deccan College, Poona 6; UMCV., 1970; 565-566; E. Change of Skt. 5th. > 9th. conj. is very frequent in Pāli in the early period of its literature. This is not a phonetic change. In Classical Skt. an alternation in 5th. and 9th. conj. is seen. Roots of both these conjugations were alike. Pāli gave up the alternation between 5th. and 9th. conjugational forms, merged the two together and this merger is probably the source of the development of -nā forms in Pāli, i.e., the change of 5th. conj. > 9th. conj. Postulating the causes of this change the author feels that this change may be an analogical creation.

पालि के प्रारम्भिक युग के साहित्य में सं. ५म गण का ९म गण में परिवर्तन बहुधा मिलता है। यह ध्वन्यात्मक परिवर्तन नहीं है। लौकिक सं. में ५म और ९म गणों में परस्पर अदल-बदल पाई जाती है। इन दोनों गणों के धातु एक जैसे थे। पालि ने ५म और ९म गणों के रूपों की पारस्परिक अदलबदल को त्याग कर दोनों को एक-दूसरे में लीन कर दिया और यह त्रिलय ही सम्भवतः पालि में -ना रूपों अर्थात् ५ म गण का ९ म गण में रूपान्तरण के विकास का स्रोत है। इस परिवर्तन के कारणों की उद्भावना करते हुए ले. की मान्यता है कि यह परिवर्तन सादृश्यमूलक सृष्टि हो सकती है।

सुधीर कुमार गुप्त, रविप्रकाश

४४०. जंसलमेरी बोली में प्राकृत एवं श्रव-हट्ट की भूलक; दीनदयाल ओझा; विभ., ६.३; १९७० (२०२७ वि०); १९-२१; हि. १

515. **Two Words of Indian Origin in A Nikitin's "Voyage Beyond Three Seas"**; Ludwik Sternbach, United Nations, New York; **URSHS.**, 2; 7.1967; 1-9; E. The paper commences with a description of A. Nikitin's voyage, his memoirs, their mss., editions, translations and studies and then opines that some expressions in Russian by A. Nikitin were Indian which he russified, recorded them phonetically and transcribed them in Cyrillical alphabet. Two such words are sh' sheni and kichiris. One of these became a Russian word, but in reality is a Gujarati or Marathi word, the other word was always considered as a foreign word. These two words studied in the light of Indian parallels and literary evidences signify Dalber-gia sissou (-tree or its leaves) and khicaṛī (a dish of rice and dāla) respectively.

लेख ए. निकितिन की यात्रा, उस के विवरणों, उन के हज़े., संस्करणों, अनुवादों और अध्ययनों के वर्णन से प्रारम्भ हो कर मानता है कि ए. निकितिन, क्रां रूसी के कुछ प्रयोग भारतीय थे, जिन्हें उस ने रूसी रूप दिया, ध्वन्यात्मक रूप में लिखा और सिरोलिकल वर्णमाला में अंकित कर दिया। ऐसे दो शब्द श'शेनि और किचिरिस् हैं। इन में से एक तो रूसी शब्द बन गया, परन्तु वास्तव में यह गुजराती या मराठी शब्द है। दूसरा शब्द सदैव विदेशी माना जाता रहा है। भारतीय प्रतिरूपों और साहित्यिक साक्षियों के प्रकाश में अर्थात् ये दो शब्द क्रमशः शीशम (वृक्ष या उस के फल) और खिचड़ी (दाल और चावल का पका हुआ आद्य पदार्थ) अर्थों को व्यक्त करते हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

516. **A Transformational Analysis of Spanish Sc**; David William Foster; **Ling.**, 64; 12.1970; E. The author makes an attempt of Spanish form Sc from the Transformational Generative Approach, which a Descriptionist can not describe in his approach.

ले. ने स्पेनिश 'से' रूप का रचनाकारण परक प्रजनक उपगम पर अध्ययन प्रस्तुत किया है। वर्णन परायण भाषाविद् अपनी पद्धति में इस को वर्णित नहीं कर सकता है।

रविप्रकाश, सुधीर कुमार गुप्त

517. **Deutsche Verben, 3 : Gesamtverzeichnis der Stellung der Kompositionsglic der; 4; Art der Zusammensetzung; 5 : Flexionsklassen; Rev. Marrin H. Folsom; Ling.**, 64; 12.1970; 113-117; Ger. Part one of the third fascicle contains an alphabetical list of the 3766 base forms (Grundwörter).

तीसरे गुच्छ के प्रथम खण्ड में ३७६६ मूल रूपों की अकारादि क्रम से सूची है।

रविप्रकाश, सुधीर कुमार गुप्त

518. **Dictionary of Jamaican English**; F. G. Cassidy & R. B. Le Page; Rev. Colin Good; **Ling.**, 64; 12.1970; 112; E. The study deals with the Creoli languages. It is claimed to be the first historical, descriptive and etymological dictionary of the E. language.

यह क्रेओली भाषाओं का अध्ययन है। इसे अंग्रेजी भाषा का पहला ऐतिहासिक, वर्णनात्मक और निर्वचनपरक कोष माना गया है।

रविप्रकाश, सुधीर कुमार गुप्त

519. **The Deep Structure of the Statement**; R. Hetzron; **Ling.**, 65; 1.1971; 25-63; E. The study serves as a foundation for the theory of language.

यह अध्ययन भाषा के सिद्धान्त का आधार प्रस्तुत करता है।

रविप्रकाश

४५८. हूँडाड़ी के कुछ लोकप्रचलित शब्दों का व्युत्पत्तिक विवेचन; शम्भूसिंह मनोहर, जयपुर; यूरासंहिता; १९६८-६९; ८३-१०५; हि०।

77. **Try'ambaka (the Genesis of the Concept)**; Sadashiva Ambadas Dange, Bombay; **JOI.**, XIX. 3; 3.1970; 223-227; E.

60. *La Théorie Des Voix Du Verbe Dans L' École Pāṇinienne (Le 14 e Āhnikā)*; Rosane Rocher, (Université Libre de Bruxelles : Tavaux de la Faculté de Philosophie et Letters, To n. XXXV.); 353; Bruxelles, Presses Universitaires de Bruxelles, 1968; Rev. T Burrow; JRAS (GBI)., 1.1970; 82-83; E.

४४३. नानक बाणी की भाषा, अपभ्रंश तथा प्राचीन व्रजभाषा; मत्स्यपाल गुप्त, होय्यारपुर; वृत्तसंहिता., १९६८-६९; ५३-५९; हि. १

५२९. नारीणा नित का भला; गाँतिगोपाल पुरोहित, हि. वि., गवर्नमेंट कॉलेज, नागौर; सप., १०.१-२; १-२.१९७१; ३९-४१; हि० । प्रस्तुत लेख राजस्थान के प्राचीनतर ऐतिहासिक नगर नागौर से सम्बन्धित है। इस की प्राचीनता के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ सन् १११९ में पंजाब के सूवेदार बाहलोल द्वारा इस का निर्माण मानते हैं, तो अन्य इस से पूर्व नागभट्ट अथवा नागर ब्राह्मणों द्वारा इस की वसति की बात कहते हैं। यह भी कहा जाता है कि यहाँ गायों के नौ 'गौर' (वाँवने या रखने का स्थान) थे। अतः यह नागौर कहलाया। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह बारहवीं शती के पूर्व विद्यमान था। पूर्व मध्यकाल में दिल्ली से गुजरात जाने वाले रास्ते पर यह प्रमुख नगर था। अलतमश, अकबर, शेरशाह, मराठों आदि से यह सम्बन्धित रहा है। यहाँ के शासकों में अमरसिंह राठौड़ व बस्तावर सिंह अत्यन्त प्रसिद्ध रहे हैं। पशुमेला, पीतल व लोहे के वतन, जैनियों के काँच मन्दिर आदि के लिए यह आज भी प्रसिद्ध है। २.१०.१९५९ की पंचायती राज की सर्वप्रथम शुरुआत यहीं से हुई।

शान्ता भाभावत

105. *Nirukta Notes XIV jāmi and ajāmi in the Nirukta 4.20*; M. A. Mehendale; BDCRI., XXVIII, III-IV; 1967-68; 197-201; E.

66. *Nature and Scope of Etymology in the Context of Vedic Words*; S. K. Gupta, Reader in Skt., Raj. Univ., Jaipur; URSHS., 1967-68; 61-89; E.

106. *A Note on the R̥gvedic Āśusukṣaṇiḥ*; Siddh Nath Shukla, Poona; JOL., XIX. 4; 6.1970; 315-318; E.

63. *A Note on the Epic Folk-Etymology of Rājan*; Minoru Hera, Univ. of Tokyo; UMCV., 1970; 489-499; E.

521. *The Nominal System of the Rāmāyaṇa*; John Brockington, Edinburgh (U.K.); JOL., XIX. 4; 6.1970; 369-415; E. The author discusses the uses of various types of compounds—short or long, irregularities of declension, suffixes and syntax of cases and observes that "in general the Rāmāyaṇa shows a relatively simple pattern of nominal composition, by comparison with the classical language. In many respects it holds an intermediate position between the Brāhmaṇas and early Sūtras on the one hand and the Classical literature on the other. There are many minor aberrations from the rules of Pāṇini, but these present the appearance of being dialectal variations rather than carelessness in conforming to accepted rules. . . . There is little trace of any tendency on the part of the author of the original portions of the Rāmāyaṇa to coin new compounds merely for the sake of displaying his verbal dexterity. The metrical shortening of the final ā, i or ū of the first member of a compound. . . is a not uncommon feature of epic language. . . The longer compounds are on the whole fairly restrained with no very involved or lengthy one while a considerable proportion are clearly stereotyped; these longer compounds tend to be used more frequently in passages of a dramatic or emotional character". The change of quantity of a vowel for metrical purposes is not Prakṛtism. The syntax is simple basically regular.

ले. ने विभिन्न प्रकार के छोटे और बड़े समासों के प्रयोग, शब्दरूपों, प्रत्ययों और कारकों के व्यव-

वस्थित प्रयोगों का विवेचन किया है और कहा है कि "परिनिष्ठ भाषा की तुलना में रामायण नामों की रचना में अपेक्षाकृत सरल पद्धति को व्यक्त करती है। बहुत सी दृष्टियों से यह एक ओर तो ब्राह्मणों और प्रारम्भिक सूत्रों और दूसरी ओर परिनिष्ठ लौकिक साहित्य के बीच की स्थिति की व्यञ्जक है। वहाँ पाणिनि के नियमों से अपेक्षित बहुत से छोटे-छोटे रूप हैं, परन्तु ये स्वीकृत नियमों के पालन में अपेक्षाकृत अपेक्षा बोलियों के वैविध्य का आभास देते हैं। ...केवल अपने शब्द प्रयोग के कौशल के प्रदर्शन के निमित्त नए समास बनाने की किसी भी प्रवृत्ति के रामायण के मूल भागों के ले. में नगण्य चिह्न हैं। समास के पूर्वपद के अन्तिम आ, ई और ऊ का छान्दसिक ह्रस्वीकरण.....वीर काव्यों की भाषा की असामान्य विशेषता नहीं है। सामान्यतः जटिल और दीर्घ प्रयोगों से रहित लम्बे समास पर्याप्त संयमित हैं। साथ ही उन का बहुत सा भाग स्पष्ट ही विसापिटा है। नाटकीय और भावपूर्ण अंशों में लम्बे समासों के वारम्बार प्रयोग की ओर 'मुकाव है।' छन्द की दृष्टि से स्वरों की मात्रा में परिवर्तन प्राकृत प्रभाव नहीं है। वाक्यरचना सरल और मूलतः व्यवस्थित है।

सुधीर कुमार गुप्त

522. **The Personal Pronouns in Dravidian;** P. S. Subrahmanyam; BDCRI, XXVIII. III-IV; 1967-68; 202-217; E. All the first person singular forms in the Dravidian languages can be explained as derived from PDr. *ya:n. Oblique bases of the personal and reflexive pronouns are formed by shortening the long vowel in them. This turns the oblique base of PDr. *ya:n into *yan- which becomes en- in the South and the North Dravidian languages and an- in the Central Dravidian languages. Further development has taken place in individual languages. The First Person Exclusive Pronouns have been derived in all Dravidian languages from PDr. *ya:m. Its

oblique base in PDr. is *yam- which became em- in the South and the North Dravidian languages and am- in the Central Dravidian languages. First Person Inclusive Plural Pronouns are derived from PDr. *na:m (oblique base *nam-). The Second Person Singular Pronouns are derived from PDr. *ni:n (oblique base *nin-). The Second Person Plural Pronouns are derived from PDr. *ni:m (in some places *ni:r) (oblique base *nim-). The author illustrates his point by an analysis of Pronouns in various Dravidian languages and points out the developments and departures from the expected forms. He has summarised his findings at the end (PP. 214-216).

द्रविड भाषाओं में उत्तम पुरुष एक वचन के सब रूप प्राद्र.ऋयःन् से निष्पन्न दिखाए जा सकते हैं। व्यक्तिवाचक और सम्बन्धवाचक सर्वनामों के तिर्यक् प्रातिपदिक उन के दीर्घ स्वरों को ह्रस्व कर के बनाए जाते हैं। यह प्राद्र.ऋयःन् के तिर्यक् प्रातिपदिक कोऋयन्- में बदल देता है, जो दक्षिणी और उत्तरी द्रविड भाषाओं में एन्- और मध्य द्रविड भाषाओं में अन्- हो जाता है। अलग-अलग भाषाओं में आगे भी विकास हुआ है। सभी द्रविड भाषाओं में उत्तम पुरुष के व्यावर्तक सर्वनाम प्राद्र.ऋयःम् से निकले हैं। इस का तिर्यक् प्रातिपदिक प्राद्र.में ऋयम् है जो दक्षिणी और उत्तरी द्रविड भाषाओं में एम्- और मध्य द्रविड भाषाओं में अम्- हो गया है। उत्तम पुरुष संयोजक सर्वनामों के बहुवचन रूप प्राद्र.ऋनःम् (तिर्यक् प्रातिपदिक ऋनम्-) से विकसित हुए हैं। मध्यम पुरुष के एक वचन के सर्वनाम प्राद्र.ऋनःन् (तिर्यक् प्रातिपदिक ऋनिन्-) से बने हैं। मध्यम पुरुष बहुवचन के सर्वनाम प्राद्र.ऋनिःम् (कुछ स्थानों में ऋनिःर्) तिर्यक् प्रातिपदिक ऋनिम्-) से व्युत्पन्न हुए हैं। ले. ने अपने मत को विभिन्न द्रविड भाषाओं के सर्वनामों के विश्लेषण से स्पष्ट किया है और सम्भावित रूपों में विकासों और अपवादों का निर्देश

किया है। अन्त में (पृ० २१४-२१६) में उस ने अपने निष्कर्षों का सार प्रस्तुत किया है।

सुधीर कुमार गुप्त

५२३. पूर्वोत्तर राजस्थानी में रिश्तों सम्बन्धी शब्दावली; महावीर प्रसाद शर्मा, कोटपुतली (राज.); शोप., २१.३; ७-९.१९७०; ३४-३८; हि०। पूर्वोत्तरी राज० की रिश्ते सम्बन्धी शब्दावली अनेक तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों से निर्मित हुई है। इन में से कुछ शब्द जयपुरी, ब्रज एवं हरियानी में भी प्रचलित हैं। ले० ने इस निष्कर्ष की पुष्टि में पितामह, पिता, भाई, बच्चा, पितृगृह, श्वशुरालय, कुटुम्ब आदि अनेकों पदों के लिए प्रयुक्त शब्दों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

नाथूलाल पाठक

५२४. प्रशासनिक वाक्यांश; महावीरसिंह गहलोत, प्राध्यापक, जोधपुर वि० वि०; प्र० राजस्थान पुस्तक मन्दिर, मेड़ती द्वार के अन्दर, जोधपुर; १९६७; २+१४; ०-३०; हि०। इस लघुपुस्तिका में राज्य सरकार तथा केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा स्वीकृत शब्दों के आधार पर राजकीय पत्रव्यवहार, कार्यालयज्ञापन हेतु टिप्पणों में प्रयुक्त होने वाली अंग्रेजी वाक्यावली का अंग्रेजी मातृकार्यक्रम से हिन्दी रूपान्तर सहित संकलन किया गया है।

सुधीर कुमार गुप्त

525. **Pronominal Forms in Tamil**; K. Thilagawathi, Tutor, Deptt. of Indian Studies, Univ. of Malaya, Kuala Lumpur; T.O., 1969-70; 96-102; E. On the basis of personal observations and Tamil texts, human pronominal forms have been discussed here.

इस में व्यक्तिगत अनुभवों तथा तमिल ग्रन्थों के आधार पर तमिल मापा के व्यक्तिवाचक सर्वनामों की चर्चा की गई है।

सत्यदेव मिश्र

526. **Problems in the Analysis of the Segmental Phonemes of Northern German**; Ling., 64; 12.1970; 60-69; E. The author reviews the analysis of the set up of Segmental Phonemes done before him. But he finds that system is not satisfactory. He, therefore, gives his own findings about the real nature of long and short vowels and their relationships to the diphthongs, the question of the interpretation of [ə] which is usually interpreted as allophone of [e], the problem of phonemic status of [ç] and [x] etc.

ले० ने अपने से पूर्व किए गए परिच्छिन्न स्वनियों की व्यवस्था के विश्लेषण की समीक्षा की है। परन्तु वे मानते हैं कि यह प्रणाली सन्तोषजनक नहीं है। अतः वह दीर्घ और ह्रस्व स्वरों की यथार्थ प्रकृति और संयुक्त स्वरों से उन के सम्बन्ध, अं (=श्वा) जिसे सामान्यतः [ए] की संवन्नि (उपस्वन) के रूप में व्याख्यात किया जाता है—के भाष्य के प्रश्न और [श्] और [स्] की स्वनिमिक स्थिति की समस्या आदि के विषय में अपनी खोजों को देता है।

रविप्रकाश, सुधीर कुमार गुप्त

527. **Promotion of Sanskrit**; News; Indian & Foreign Review, 8.7; 15.1.1971; 8.2; E. The Education Ministry has proposed to establish two new Vidyapeeths at Puri and Jammu and to take over the G.J.R.I., Allahabad to set up it is an autonomous organisation to manage the Vidyapeeths. In the 4th plan Rs. 27.5 million have been allocated for the promotion of Skt. V.K.R.V. Rao suggested to the Rashtriya Skt. Sansthan to establish Skt. Pracharini Sabhas in all states and to start extra-mural courses for those interested in studying Skt. in their spare time. Nonformal education could also be given by voluntary organisations.

शिक्षा मन्त्रालय ने पुरी और जम्मू में दो नए विद्यापीठ स्थापित करने और गंगानाथ भाा शोध-संस्थान, इलाहाबाद को विद्यापीठों का प्रबन्ध करने

के निमित्त स्वायत्तशामी संस्था के रूप में स्थापित करने का विचार किया है। चौथी योजना में संस्कृत के प्रसार के लिए ह. २७.५ नियुक्त निश्चित किए हैं। वी. के. आर. वी. राव ने राष्ट्रिय संस्कृत संस्था को सब राज्यों में संस्कृत प्रचारिणी सभायें स्थापित करने और अपने अतिरिक्त समय में संस्कृत पढ़ने में रुचि रखने वालों के लिए पाठ्यक्रम से पृथक् अध्यापन चालू करने का सुझाव दिया। अनौपचारिक शिक्षा स्वयं-सेवी संस्थाओं द्वारा भी दी जा सकती है।

सुधीर कुमार गुप्त

528. Finite VS Infinite State Grammars; J. E. Pierce; *Ling.*, 65; 1. 1971; 72-74; E. The study reviews the Transformational theory of Noan Chormstey.

इस अध्ययन में नोमन कोम्स्टेसी रचनान्तरण-परक वाद की समीक्षा की गई है।

रविप्रकाश, अनिल कुमार गुप्त

529. Feature Redundancy in Consonant Clusters; Dale E. Woolley; *Ling.*, 64; 12.1970; 70-93; E. The paper presents a study of consonant clusters of American E. and treats them in terms of distinctive feature analysis.

लेख अमरीकी अंग्रेजी के व्यञ्जनों के संघातों का अध्ययन प्रस्तुत करता है और उन का परिच्छेदक अभिलक्षण विश्लेषण की सरणी पर विवेचन करता है।

रविप्रकाश, सुधीर कुमार गुप्त

530. Phonology of a Dacca Dialect; Animesh K. Pal, Lecturer in Bengali, Midnapore College; *UMCV*, 1970; 537-549; E. There are at least four different dialects of Bengali in the District of Dacca. The author here presents a study of one of them. He lists 37 speech sounds and gives their signs in Roman script. He observes that a number of rules and principles guiding the process of phonemic mutations under certain specific phonetic conditions can

be formulated and illustrates his point by presenting a study of the behaviour of a number of speech sounds under different phonetic conditions. He presents the modifications and mutations undergone by the vowels O, ao, E, u and i and brings out the special circumstances under which ó, á and A occur. Some of the consonants do not occur in all the positions in a word. The consonant sounds k, T, p and S are most susceptible to mutation. There are no voiced aspirations.

ढाका जिले में बंगाली की कम से कम चार भिन्न-भिन्न बोलियाँ हैं। ले. ने यहाँ उन में से एक का अध्ययन प्रस्तुत किया है। उस ने ३७ वाक्-स्वन और उन के रोमन लिपि में चिह्न दिए हैं। वे मानते हैं कि कुछ निर्धारित स्वनिक् स्थितियों में स्वनिमिक उत्परिवर्तनों की प्रक्रिया के निर्देशक बहुत से नियम और सिद्धान्त निर्धारित किए जा सकते हैं और अपने मत को विभिन्न स्वनिक् परिस्थितियों में बहुत से वाक्स्वनों के व्यवहार का अध्ययन प्रस्तुत कर विशद किया है। ले. ने ओ (O), अओ (ao), एँ (E), उ और इ स्वरों के विकारों और परिवर्तनों को उल्लिखित किया है और उन विशेष परिस्थितियों को बताया है जिन में ओ (ó), अ (á) और अँ (A) मिलते हैं। कुछ व्यंजन पद विशेष में किसी भी स्थान में नहीं आते हैं। क, त्, प् और स् (S) व्यञ्जन ध्वनियाँ सर्वाधिक परिवर्तनगम्य हैं। यहाँ महाप्राण घोष नहीं हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

५३१. भारतीय भाषाओं का इतिहास; जगदीश प्रसाद कौशिक, व्याख्याता, हि.वि., श्री कल्याण कालिज. सीकर; प्र० अपोजो प्रकाशन, जयपुर-३; १९६६; १०+३+३३०+५; २०-००; हि०। ले. का लक्ष्य छात्रों के लिए उपादेय रूप में भारतीय आर्य भाषाओं का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करना है। ग्रन्थ में ११ अ. हैं। अ. १ में उस ने आर्यों का मूल निवासस्थान भारत में सप्तसिन्धु

प्रवेश माना है। अ. २ में वैदिक और लौकिक संस्कृतों का, अ. ३ में मध्यकालीन भाषाओं के विकास का, अ. ४ में पालि और शिलालेखी प्राकृतों का, अ. ५ में साहित्यिक प्राकृतों का, अ. ६ में अपभ्रंश के उद्भव आदि का, अ. ७ में अवहट्ट भाषा का, अ. ८ में नव्य भारतीय आर्य भाषाओं का, अ. ९ में हिन्दी के उद्भव और विकास का और अ. १० में खड़ी बोली का ध्वन्यात्मक तथा अ. ११ में खड़ी बोली का रूपात्मक विवेचन किया है। ग्रन्थान्त में एक परिशिष्ट में हिन्दी के राष्ट्रभाषात्व का विवेचन और एक में ग्रन्थ में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली का विवरण दिया है। ले. की कुछ मान्यताएं सामान्यतः प्रचलित या स्वीकृत विचारधारा से भिन्न हैं। यथा उस के मत में द्रविड़ और आर्य परिवार एक ही हैं तथा तालव्यनियम और छान्दस का कल्पित रूप विचारणीय हैं। इस रचना में हि. भाषा का भाषावैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण प्रमुख है।

सुधीर कुमार गुप्त

25. *The Meaning of Vedic kārū*; J. Gonda'van Hogendorpstrast 13, Utrecht; UMCV., 1970; 479-488; E.

532. *May and Might in Shakespeare's English*; Piotr Kakićtek; *Ling.*, 64; 12.1970; 10-25; E. This paper attempts a 'Componential analysis' of the two Shakespearean words 'May' and 'Might'.

इस लेख में श्रेयस्पर के दो पदों 'मे' और 'माइट' का घटकीय विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

रविप्रकाश, सुधीर कुमार गुप्त

२००. मेघदूते मेघपर्वायाः स्त्रीपर्यायाश्च; नित्यानन्द शास्त्री; सागरिका: ६.२; २०२७ वि.; १७५-१८६; सं. १

523. *The Morphemes of English: Structural Outline*; Joe E. Pierce; *Ling.*, 64; 12.1970; 50-59; E. The author

giving a brief survey of the historical development of linguistics from the 19th century to modern times, enumerates the E. morphemic classes into two, viz., Major morpheme stem classes and Minor morpheme classes. His analysis is concentrated on the phonemic and morphological levels of analysis partially.

१६ वीं शती से अब तक भाषाशास्त्र के ऐतिहासिक विकास का संक्षिप्त सर्वेक्षण दे कर ले. ने अंग्रेजी के रूपिमिक श्रेणियों के दो वर्ग—प्रमुख रूपिम प्रातिपदिक श्रेणियाँ और गौण रूपिम श्रेणियाँ बनाए हैं। उस का विश्लेषण कुछ सीमा तक स्वनिमिक और रूपप्रक्रियात्मक स्तरों के विश्लेषण पर केन्द्रित है।

रविप्रकाश, सुधीर कुमार गुप्त

534. *Language and Dialect*; F. B. Agara; *Ling.*, 65; 1.1971; 5-24; E. The author while dealing with the demarcation between Language and Dialect suggests that it is not profitable to define dialect. He further gives a few postulates of the Language and the Dialect.

भाषा और बोली में सीमा-निर्धारण का विवेचन करते हुए ले. ने सुझाया है कि बोली की परिभाषा से कोई लाभ नहीं है। आगे वे भाषा और बोली विषयक कुछ सर्वस्वीकृत मान्यताएँ देते हैं।

रविप्रकाश, सुधीर कुमार गुप्त

65. (Letter dated 15.5.1965 in) *Appendix (to Nature and Scope of Etymology in the Context of Vedic Words by S. K. Gupta); S. Varma, Honourary Incharge, V. V. R. I. Sub-office, 284 Sector 16 A, Chandigarh-2; URSHS.; 1967-68; 81-89; E.*

26. *The Word 'Garta' in the Rgveda*; B. H. Kapadia, Vallabh Vidya-peeth, Vallabh Vidyanagar; UMCV., 1970; 521-526; E.

१२६. वेदलावण्यम्; सुधीर कुमार गुप्त, आचार्य, सं. वि., गोरखपुर वि. वि., गोरखपुर; प्र० भासग्रन्था., ४-हीरापुरी, गोरखपुर; २+४+

५७ + २७ + ८६ + ७२ + ८४ + ६० अ; अजित्दं
 द-५०; वस्त्रवद्ध १०-५०; सं.; हि. ।

१२७. वेदलावणम् द्वितीयो भागः; सुधीर
 कुमार गुप्त आचार्य, स. वि., गोरखपुर वि. वि.,
 गोरखपुर; प्र० भामशशा., ४ हीरापुरी, गोरखपुर;
 २ + २ + १४ + ६०; ३-००; सं., हि. ।

४१. शतपथ ब्राह्मण की स्वरप्रक्रिया; वृज
 विहारी चौबे, प्राध्यापक, विश्वेश्वरानन्द इन्स्टीट्यूट
 ऑफ संस्कृत एण्ड इण्डोलोजिकल स्टडीज, (पंजाब
 यूनिवर्सिटी), होशियारपुर (पंजाब); यूरासंहिस.,
 १९६६-६६; ६१-७३; हि. ।

27. *Siprin And Šipiviṣṭa*; Sadashiv
 Ambadas Dange, Palsole's Bungalow,
 Near Ram Krishna Ashrama, Dhantoli,
 Nagpur; UMCV., 1970; 501-510; E.

535. *Sanskrit in Modern India*;
 S.M. Katre; *Pañcāmṛtam*, 1968; 93-108;
 E. Skt. has had a 'wonderful capacity
 to assume features of other linguistic
 groups with which it came into contact,
 while at the same time changing the
 nature of these linguistic groups'. It has
 incorporated lexemes from the other
 families of languages spoken in India.
 Skt. reveals within itself the social, philo-
 sophical and cultural history of India
 throughout the ages from Proto and an-
 cient times to our own times. Skt. is yet a
 living language and is a life spring of
 many of the Modern Indian Languages.
 A lexical, phonological and morphologi-
 cal study of OIA; MIA and MIL indi-
 cates the transformation of Skt. into these
 stages. OIA continued side by side with
 MIA. Some Vedic words not preserved
 in classical Skt. are found in MIL. Exis-
 tence of Skt. and non-Skt. forms in the
 same utterance was the original pattern
 of verbal communication. Several Skt.
 words have acquired new significances
 under specified linguistic situations.
 Mother tongue influences the use of Skt.
 For the preservation of Skt. its relation-
 ship with each MIL should be pin-pointed.
 The author points out some other
 ways and means including the manner of
 teaching for the uplift of Skt.

संस्कृत में उन भाषिक वर्गों की प्रकृति को
 बदल कर उन भाषिक वर्गों के अभिलक्षणों को
 अपनाते की विलक्षण क्षमता है; जिन के साथ यह
 सम्पर्क में आई। इसने भारत में बोले जाने
 वाले अन्य भाषापरिवारों से शब्दों ग्रहण कर
 लिए हैं। सं. अपने में से आदि और प्राचीन काल
 से हमारे अपने समय तक के सब युगों के भारत
 के सामाजिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक इतिहास
 को प्रकाशित करती है। सं. अभी जीवित भाषा है
 और बहुत सी आधुनिक भारतीय भाषाओं का जीवन
 उत्स है। प्राभाषा. मभाषा. और आभाषा. का अर्थ,
 स्वनप्रक्रियात्मक (= ध्वन्यात्मक) और रूपप्रक्रियात्मक
 अध्ययन सं. के इन स्तरों में रूपान्तरण को इंगित
 करता है। प्राभाषा. मभाषा. के साथ-साथ प्रयोग
 में आती रही। लौकिक सं. में अनुपलब्ध कतिपय
 वैदिक पद आभाषा. में पाए जाते हैं। एक ही
 बोली में संस्कृत और संस्कृतेतर रूपों की सत्ता
 भाषिक संचार का मूल आदर्श था। बहुत से सं.
 शब्दों ने निर्धारित भाषिक परिस्थितियों में नए
 भाव अपना लिए हैं। मातृभाषा सं. के प्रयोग को
 प्रभावित करती है। सं. की सुरक्षा के लिए प्रत्येक
 आभाषा. से सं. का सम्बन्ध स्पष्ट निर्धारित किया
 जाना चाहिए। सं. के अस्तित्व के लिए
 अध्यापन प्रणाली सहित कतिपय उपाय और साधन
 बताए हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

५३६. संस्कृतभाषा, तस्या आवश्यकता च;
 नवल किशोर कांकरः, जयपुरम्; गुप्त., २३.३;
 १०-११.१९७०; १२६-१३२; सं. । भारतीया
 संस्कृतिः सभ्यता च संस्कृतानुप्राणिते स्तः । सर्वांगु
 विश्वस्य भाषासु संस्कृतस्य वाच्यता दरीदृश्यन्ते ।
 इयं भाषा सर्वांगु भाषासु, प्राचीनतमा । नैयं प्राकृ-
 तादुत्पन्ना, परं प्राचीना, वेदकाले, सास्क-पाणिनि-
 कात्यायन-पतञ्जलि-विक्रम-श्रीकालेषु लोकाभाषा
 प्रचुरप्रचारयुता चासीत् ।

भारतीय संस्कृत और सन्ध्या संस्कृत से अतिप्रोत हैं। संसार की सभी भाषाओं में संस्कृत के जड़ मिलते हैं। यह भाषा सब से पुरानी है, प्राकृत से उत्पन्न नहीं हुई है। वेदकाल में यास्क, पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि, विक्रम और बोद्धों के काल में यह व्यापक प्रचार वाली लोकभाषा थी।

५३७. संस्कृत भाषा में प्रयुक्त कुछ प्राचीनतम विदेशी शब्द; भोलानाथ तिवारी, ई५१२३, मॉडल टाऊन, दिल्ली; उमकव., १९५०; ५६७-५७२; हि.। मूल शब्दों से विकसित हो कर सं. में चुमेरी भाषा से गो, परशु, बविर, लोह, तारा, एजिप्टन से अयस, घुराली से मधु, उदक, वृण, शत, अर्भ, कफ, कूप, हिरण्य, शलाका, असुर, वज्र, वाराह, अस्त्र, सुरा, सेतु, वृक, दास, मल्लिका, छाग, युक्त, (और सम्भवतः 'एक' भी) शब्द आए हैं। गोधूम असीरी भाषा से आया हो सकता है। सम्भव है, प्रारम्भ में आयं इस पाँचे को गोघ्रां के भच्छर अदि दूर करने के लिए बुझां करने के लिए घास के रूप में प्रयुक्त करते हों और इस लिए इसे गोघूम कहा गया है।

५३८. संस्कृत भाषा में समाचार; (समाचार); जयपुर से प्रतिदिन प्रकाशित होने वाले, हिन्दी दैनिक 'अधिकार' में प्रतिदिन एक या डेढ़ कालम में सरल संस्कृत में मुख्य-मुख्य समाचार नारायण कांकर द्वारा संकलित कर के दिए जाते हैं।

539. Sanskrit Śaṅṅīra; T. Burrow; JRAS (GBI); 1.1970; 15-19; E. The word śaṅṅīra, its derivative śaṅṅīrya and its synonym śaṅṅīra have been used in epics, the latter more frequently than the former. Besides the dictionary sense 'haughty, arrogant, proud' śaṅṅīra also signifies 'noble' and 'valiant, heroic', as illustrated by its use in the Mbh. 12.98.25; 9.6.31; R. 3.51.7; Harivaṅṅsa 10211; Mīcch. 55.24; 126.18 (Ed. Stenzler). The word has originated from G.K. setér

It was first used by the MIA as soṅṅīra and then was adopted in Skt. as śaṅṅīra. Due to contamination with śaṅṅīra it became śaṅṅīra. The grammatical works—the Dhātupāṅṅṅa, the Gaṅṅapāṅṅa and the Uṅṅādisūīra were edited at a later period than that of Pāṅṅini and the word śaṅṅīra was added then.

वीर काव्यों में शीटीर शब्द, इस का तद्धित रूप शीटीर्यं और उस का पर्याय शीण्डीर प्रयुक्त हुए हैं। इन में पूर्व की अपेक्षा अन्तिम का प्रयोग पुनः पुनः हुआ है। कोषीय अर्थो-उत्सिक्त, वृष्ट और धमण्डी के साथ, शीटीर 'उदात्त' और 'वीर, पराक्रमी' भावों को भी व्यक्त करता है, जैसा महा. १२.६८.२५; ६.६.३१, रामायण ३.५१.७; हरिवंश १०२११; मृच्छ. ५५.२४; १२६.१८ (स्टेन्ज़र का संस्करण) के प्रयोगों से सुव्यक्त हो जाता है। यह पद यूनानी सेटेर से निकला है। पहले यह मन्नाथा. शीटीर के रूप में प्रयुक्त हुआ, फिर यह सं. में शीटीर के रूप में अपनाया गया। शीण्ड से साथ सम्मिश्रण से यह शीण्डीर हो गया। व्याकरण ग्रन्थ—धातुपाठ, गणपाठ और उणादिसूत्र पाणिनि से पीछे के काल में सम्पादित हुए और शीटीर शब्द उन में जोड़ दिया गया।

सुवीर कुमार गुप्त

540. Some Conjectures in Computational Linguistics; Nicolas V Findler; Ling., 64; 12.1970; 1-9; E. The paper is divided into three parts, namely, Introduction, Some new concepts & Some conjectures. The Introduction describes the recent advancement of Linguistic studies aided by computers, especially in the field of dictionary writing. The second part mentions the various assumptions like the existence of stock of words named covered set S and covering set R and so on. The third part gives some conjectures, relevant to computational linguistic studies.

लेख तीन खण्डों में विभक्त है भूमिका, कुछ नई परिकल्पनाएं और कुछ कल्पनाएं। भूमिका

विशेषतः कोपनिर्माण के क्षेत्र में, कम्प्यूटरो (= गणक यन्त्रों) की सहायता से भाषाशास्त्रीय अध्ययनों की हाल की प्रगतियों का वर्णन करती है। दूसरे भाग में बहुत सी मान्यताओं के उल्लेख हैं, जैसे आच्छादित वर्ग स और आच्छादक वर्ग र शब्दों के समूह की सत्ता। तीसरे भाग में कम्प्यूटरीय भाषाशास्त्रीय अध्ययन से सम्बन्धित कुछ कल्पनाएँ दी गई हैं।

रविप्रकाश, सुधीर कुमार गुप्त

541. Some Chorasmian And Khotanese Etymologies; R. E. Emmerick; *JRAS* (GBI); 1.1970; 67-70; E. This is a review article concerning Das Chwaresmische Sprachmaterial einer Handschrift der "Muqaddimat al-Adab" von zamaxsari, I: Text by Johannes Benzig; PP. xx, 403; Wiesbaden, Franz Steiner Verlag, 1968; DM. 184. Iranologists can open this book and immediately read whole Chorasmian sentences. Four entries have been cited here by way of illustration. The author also points out with due examples that 1. very many words are identical, even in spelling, with Sogdian counterparts. Some borrowings must of course be expected. 2. Some words are similar, but in some cases with interesting differences. 3. In some cases words can be recognised only from a knowledge of modern East Iranian. 4. Many verb forms are interesting and might have been cited in SGS. 5. In some cases Chorasmian agreed with other Iranian languages against Sogdian and Khotanese.

यह जोह्न ब्रेन्जिग के अंग्रेजी सार में निर्दिष्ट ग्रन्थ पर समीक्षात्मक लेख है। ईरानी के विद्वान् इस पुस्तक को खोल कर तुरन्त ही इस में पूरे-पूरे कोरोस्मीय वाक्य पढ़ सकते हैं। उदाहरण के रूप में यहाँ चार प्रविष्टियाँ उद्धृत की गई हैं। ले. ने उचित उदाहरणों से साथ बताया है कि १. बहुत से शब्दों का वर्तनी तक में सोगिदियन प्रतिरूपों से तादात्म्य है। कुछ शब्द अवश्य ही उधार लिए गए होंगे। २. कुछ पद समान तो हैं, परन्तु कुछ में

रोचक भेद अवश्य हैं। ३. कुछ शब्द केवल आधुनिक पूर्वी ईरानी के ज्ञान से ही पहचाने जा सकते हैं। ४. बहुत से धातु रूप रोचक हैं और सगस. (एसजीएस) में उद्धृत किए गये होंगे। ५. कुछ अवस्थाओं में कोरास्मीय सोगिदन और खोटानी के प्रतिकूल अन्य ईरानी भाषाओं से ऐक्य है।

सुधीर कुमार गुप्त

542. Some Problems of Base to Surface Development in English; Monica Lescelles; *Ling.*, 64; 12.1970; 36-49; E. The problems raised by the author are exploratory. These are based on the present advancement in Linguistics developed by Harris, Chomsky, Katz, Postal, Fodor and others.

ले. द्वारा उत्थापित समस्याएँ जिज्ञासात्मक हैं। वे हेरिस, कोम्स्की, काट्ज, पोर्टल, फोडर और अन्यो द्वारा विकसित भाषाशास्त्र की आधुनिक प्रगतियों पर आश्रित हैं।

रविप्रकाश, सुधीर कुमार गुप्त

59. Some Views of Pāṇini And His Followers on Object Language and Meta Language; G. B. Palsule, *CASS.*, Univ. of Poona, Poona; *JUPH*, 33; 1970; 1-7; E.

६४. सरस्वतीशब्दस्य व्युत्पत्तिविचारः; रघुनाथ ऐरी, राजकीय महाविद्यालय, जौंद; गुप., २३.३: १०-११.१६७०; ११६-१२०; सं.।

543. Syntactic Parameters & Hierarchic Numbers of the Sentence Structure; Vladimir Miltrv & Roman Reienauer; *Ling.*, 65; 1.1971; 64-71; E. This study has been made on the Model of Tagrenic theory. The author defines a sentence and deals with its parameters and hierarchy.

यह अध्ययन टैग्रेनिक वाद के आदर्श पर किया गया है। ले. वाक्य की परिभाषा देता है और इस के प्राचलों और अधिकृत का विवेचन करता है।

रविप्रकाश, सुधीर कुमार गुप्त

544. A Syntactical Agreement between the Aśokan Prakṛt and Ardhamāgadhī; S. N. Ghosal, Lecturer, Calcutta Univ.; UMCV., 1970; 531-535; E. In Skt. the word anyatra is an adverb and governs the ablative case but in the Aśokan Prakṛta Ardhamāgadhī and MIA it is a preposition governing the instrumental case. It is sometimes used as a conjunction. The author envisages three possibilities for this prepositional use governing instrumental case—1. It may be the legacy of an earlier speech—predecessor of MIA. 2. It may have been current in spoken language but was not accepted in the standardized literary Skt. 3. The closeness of ablative and instrumental in significance might have obliterated the use of either of them in the two languages—MIA and Skt.

सं. श्रव्यत्र शब्द क्रियाविशेषण है और इस के योग में पञ्चमी विभक्ति आती है; परन्तु षष्ठीकी प्राकृतों, अर्धमागधी और नमाग्रा. में यह तृतीया विभक्ति से युक्त उपसर्ग है। कभी-कभी यह समुच्चयवाचक ही जाता है। तृतीया से युक्त इस उपसर्गों प्रयोग के लिए ले. तीन सम्भावनाएँ प्रस्तुत करता है—
१. यह पूर्वतर किसी भाषा—नमाग्रा. की पूर्व-गानी का प्रभाव हो। २. यह बोधवाचक की भाषा में प्रचलित रहा हो, परन्तु परिष्कृत साहित्यिक त. में स्वीकार नहीं किया गया। ३. तृतीया और पञ्चमी में अर्थ की दृष्टि से अनिष्ट साम्य ने दोनों में से एक के प्रयोग को दोनों भाषाओं—नमाग्रा. और सं. में से चुन कर दिया हो।

सुवीर कुमार गुप्त

545. Systematic Phonemics; S. Agesthalingam; BDCRL, XXVIII. III-IV; 1967-68; 218-226; E. Discovery of phoneme is a land mark in the history of modern linguistics. In recent years the validity of the phonemic analysis (called Texonomic phonemics) is challenged by Transformationalists. Many linguists feel setting up a level called 'phonemic' is unmotivated and it unnecessarily burdens the grammar. The generative

phonologists claim that of the three levels—morphophonemic, phonemic and phonetic in the traditional description of the sound system of natural languages, the intermediate level is unnecessary and the part played by it can be done by certain general highly motivated phonological rules. Further in Texonomic phonemics no grammatical fact of any kind is used while making phonological analysis. The generative grammarians question the approach of traditional phonemics in treating two phonetically similar sounds as a single phoneme if they do not contrast even if this complicates the grammar and in treating superficially contrasting and phonetically similar two sounds as different phonemes. They hold that this kind of knowledge based on superficial contrasts and non-contrasts needs some more additional rules. This paper offers evidence from Dravidian languages to support the views of systematic phonemicists.

स्वनिम का दर्शन आधुनिक भाषाशास्त्र के इतिहास में महत्वपूर्ण घटना है। हाल के वर्षों में बर्गिकी स्वनिम-विज्ञान नाम से अभिहित स्वनिमिक विश्लेषण की प्रामाणिकता को खपान्तरणवादियों ने चुनौती दी है। बहुत से भाषाशास्त्री मानते हैं कि स्वनिमिक नामक स्तर की स्थापना निष्प्रयोजन है और यह व्याकरण को अनावश्यक बोझिल बना देता है। प्रजनक स्वतः प्रक्रियावादी मानते हैं कि प्राकृतिक भाषाओं की स्वतः-प्रणाली के पारस्परिक वर्णन के तीन स्तरों—व्य-स्वनिमिक, स्वनिमिक और स्वनिम में बीच का स्तर अनावश्यक है और इस द्वारा किया गया कार्य कुछ सामान्य अव्यक्त अनिप्रेरित स्वतः-प्रक्रिया के नियमों से किया जा सकता है। फिर बर्गिकी स्वनिम-विज्ञान में स्वतः-प्रक्रियात्मक विश्लेषण करते हुए किसी प्रकार का कोई भी वैधाकरण तथ्य ज्ञान में नहीं लाया जाता है। प्रजनक वैधाकरण व्याकरण को जटिल बना देने पर नही, दोनों में वैषम्य न होने पर स्वनिम की दृष्टि से एक समान दो ध्वनियों की एक स्वनिम मानने के पारम्परिक स्वनिम-विज्ञान के उपगम पर तथा

आपाततः. विपम और स्वन की दृष्टि से समान दो ध्वनियों को दो भिन्न स्वनिम मानने पर आक्षेप करते हैं। उन का विचार है कि आपातिक वंषम्य और अवैपम्य पर आश्रित इस प्रकार के ज्ञान को कुछ अधिक पूरक नियमों की आवश्यकता है। लेख में व्यवस्थित स्वनिमविज्ञानियों के विचारों की पुष्टि में द्रविड़ भाषाओं से साक्षियां प्रस्तुत की गई हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

546. Studies in the Language of Caxton's Malory and that of the Winchester Manuscript; Arthur O. Sandved; Rev. Klaus Faiss; *Ling.*, 64; 12.1970; 103-107; E. The paper studies the development of the language used by Caxton.

ले. में कैक्सटन द्वारा प्रयुक्त भाषा के विकास का अध्ययन किया गया है।

रविप्रकाश, सुधीर कुमार गुप्त

547. The Story of the English Language; Mario Pei; Rev. Joe E. Pierce; *Ling.*, 64; 12.1970; 99-102; E. The present work is revised and enlarged edition of the work which was first published over fifteen years ago. This book is divided into three parts viz., 1. The Present 2. The Past and 3. The Future.

यह इस कृति का संशोधित और परिवर्धित संस्करण है। यह पहली बार १५ वर्षों से भी अधिक पहले प्रकाशित हुई थी। यह कृति तीन भागों में बंटी हुई है—१. आधुनिक २. भूत और ३. भविष्य।

रविप्रकाश, सुधीर कुमार गुप्त

548. Structure of Substandard Words in British and American English; Lev Soudak; Rev. Joe E. Pierce; *Ling.*, 64; 12.1970; 108-111; E. The study deals with the substandard forms in E.—British and American and presents a historical perspective of the mutual change of the substandard and standard forms.

यह अध्ययन ब्रिटिश और अमरीकी अंग्रेजी में ग्राम्य रूपों का विवेचन करता है और ग्राम्य और मानक रूपों में पारस्परिक परिवर्तन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करता है।

रविप्रकाश, सुधीर कुमार गुप्त

549. Spogli elettronici dell'italiano delle Origini e del Duecento, II, Forme, 1: Prose fiorentine; M. L. Alinei; Rev. G. C. Lepschy; *Ling.*, 64; 12.1970; 118-121; F.

रविप्रकाश

५५०. हाडौती जनपद और उसकी बोली का अध्ययन; बड़ी प्रसाद पंचोली, किशनगढ़; यूरालसंहिस, १९६८-६९; १०७-११९; हि.। दक्षिण पूर्वी राजस्थान में 'हाडौती बोली' बोली जाती है। यह कोटा-बूंदी के हाड़ा राजवंशों द्वारा प्रशासित भूमि की बोली होने से हाडौती कही जाती है। इस नाम को 'हाडावती' शब्द से व्युत्पन्न माना जाता है। जीवन के किसी भी पक्ष को लें, उस सम्बन्ध में प्रत्येक पदार्थ और भाव के लिए पृथक्-पृथक् शब्द मिल जायेंगे। लेख में उल्लिखित शब्दों को तो मात्र परिचय के लिए समझना चाहिए। नए शब्दों को देख कर उन को विदेशी भाषाओं से आए हुए मानना, अथवा आर्य-अनार्य स्रोतों के सुनियोजित फार्मूल के अनुसार आर्य या अनार्य कहना उचित ज्ञात नहीं होता। हाडौती सहित देश की समस्त जनपदीय भाषाओं का समुचित अध्ययन किया जाना चाहिए।

मनमोहन अग्रवाल

५५१; हिन्दी तथा बंगला-भाषागत विशेषताएँ; राधाकृष्ण सहाय; दिभाष., १.११; ४-६. १९७०; ३६-४६; हि.। लेख चालू है और अगले अंक में समाप्त होगा। मुनीति कुमार चटर्जी ने बंगला भाषा के उच्चारण की कुछ विशिष्ट रीतियाँ बताई हैं जो बंगला के रूप को स्वर-ध्वनि के क्षेत्र में अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं से अलग करती हैं। ये हैं—१. स्वरसंगति २. अगिनिहित ३. अग्नि-

श्रुति व ४. श्रुति। इन में से चौथा परिवर्तन हिन्दो में भी पाया जाता है। प्रथम तीन केवल बंगला की विशेषता हैं। बंगला की विशिष्ट उच्चारण-रीति तत्सम रूप को विकृत कर देती है। इस प्रकार हि. के ठीक विपरीत बंगला में लिखा एक तरह से कहा जाता है और पढ़ा दूसरी तरह से। यथा काल, भाल, व्यय, बर्दभ और सहा लिखे जाते हैं पर पढ़े जाते हैं क्रमशः—कालो, भालो, व्याय, गर्धोत्र और सोज्जो। ध्वनि की उच्चारण तथा अंकन-पद्धति में बंगला की तुलना में हि. में अधिक सामंजस्य है। दोनों ही भाषाओं की पद-रचना-पद्धति समान है। पदरचना के विकास में देशज उपकरणों और उपादानों का योग हुआ है। हि. और बंगला दोनों में अश्लिष्ट योगात्मक पद्धति प्रमुख है। इस पद्धति में शब्द के आदि, मध्य और अन्त में योग द्वारा शब्द निष्पन्न होता है। हि. में पढ़वाना, लिखवाना आदि भाव- या कर्म- वाच्य का बोध कराने वाले प्रेरणार्थक शब्द मध्य योग से बनते हैं। बंगला में मध्ययोग से निष्पन्न शब्द नहीं मिलते हैं। वहाँ भाव- या कर्म- वाच्य का बोधन पृथक् क्रियापद द्वारा होता है, यथा पड़ा हय, पड़ा हइलो। बंगला में उपसर्ग और प्रत्यय का प्रयोग हि. की अपेक्षा कम होता है। 'अ' और 'वि' उपसर्ग दोनों भाषाओं में मिलते हैं, किन्तु प्रयोग में अन्तर है। हि. में अ केवल निषेधार्थक है, बंगला में प्रकृष्टार्थक भी है, यथा अञ्जोर निद्रा (= घोर निद्रा)। बंगला के इल्, करिव, इन आदि कुछ निजी प्रत्यय ऐसे हैं जो हि. में अनुपलब्ध हैं। अर्थ की दृष्टि से दोनों भाषाओं के प्रत्ययों में पर्याप्त अन्तर है। हि. स्वतः निजी उपसर्ग और प्रत्ययों के सहारे नए-नए शब्द सिद्ध करती है, किन्तु बंगला अन्य भाषाओं से (प्रमुखतया सं. से) शब्द ग्रहण करती है।

रामकुमार गुप्त

552. A Historical Study of Caarpeḷuttu in Tamil Grammars and their Commentaries; C. R. Sankaran, Phonetics, Laboratory, Deccan College,

Poona 6 and R. M. Sundaram, Deptt. of Tamil, Thyagraja College, Madurai-9; UMCV., 1970; 551-564; E. It is a revised version of an earlier paper produced in 1966. The authors here attempt to present a historical study of Caarpeḷuttu in Tamil on the basis of ancient and modern grammatical and linguistic studies. The various authorities differ in defining Caarpeḷuttu. Tolka:ppiyar defines it 'as a sound which depends on the following or preceding sound for its pronunciation.' Mailaina takes it 'other than mutual eḷuttu'. Some others hold that it 'is one which has undergone modification by one part of it combining another part or by being preceded or succeeded by another sound'. The ancient authorities differ widely on the number of sounds which can be called Caarpeḷuttu. Tolka:ppiyar, lists only 3 sounds—Kurriyalukaram, kurriyalukaram and a:ytam. The authors discuss these three sounds from the ancient and modern view points. Caldwell equates a:ytam with Skt. visarga and P. S. S Shastri with Skt. jihvāmūliya (rejected by the authors). There are two broad based views regarding a:ytam : 1. phenomenological and 2. non-phenomenological. According to the former it was proto-draavidian laryngeal H and according to the latter, as a speech-sound it is a pointer to the determination of the Ultimate unit of speech in the speech process, beyond and more subtle than the phonetic-phonemic levels of linguistics. This has led to the theory alpha-phonemic/phonoid. The authors reject the claims of uyirmey and others for being classed as caarpeḷuttu and finally conclude that 'no rigorous method is adopted by the grammarians and commentators to identify and to enumerate the caarpeḷuttu'.

यह १९६६ में प्रस्तुत किये गये लेख का संशोधित रूप है। यहाँ ले. ने प्राचीन और आधुनिक व्याकरण तथा भाषाशास्त्रीय अध्ययनों के आधार पर तमिल में चःपेँळुत्तु के ऐतिहासिक अध्ययन का प्रयास किया है। विभिन्न शास्त्री चः पेँळुत्तु की परिभाषा में भिन्नमत हैं। तोल्काःप्पियर ने इसे 'अने उच्चारण के लिए अगली या पहली ध्वनि

पर निर्भर ध्वनि के रूप में' परिभाषित किया है। मइलइन इसे 'पारस्परिक एल्युत्तु से भिन्न' मानते हैं। कुछ अन्य मानते हैं कि यह वह 'है जो इस के एक अंश के दूसरे अंश से मिल जाने से अथवा अन्य ध्वनि के पहले या आगे आने से परिवर्तन को प्राप्त हो गया है।' प्राचीन शास्त्रों में उन ध्वनियों की संख्या पर बहुत मतभेद है जिन को चर्.पेळुत्तु कहा जा सकता है। तोल्क.प्पियर् ने केवल तीन ध्वनियों को सूचकृत किया है—कुरियलिकरम्, कुरियलुकरम् और अ.यत्तम्। ले. ने इन तीन ध्वनियों का प्राचीन और आधुनिक दृष्टियों से विवेचन किया है। काल्डवेल अ.यत्तम् को सं. विसर्ग के समकक्ष रखता है और पी. एस. एस. शास्त्री सं. जिह्वामूलीय के समकक्ष (इसे ले. ने निराकृत किया है)। अ.यत्तम् के सम्बन्ध में दो दृढ़ आधार वाले मत हैं—१ घटना-विज्ञानवादी २. निर्यटना विज्ञानवादी। पहले के अनुसार यह प्राद. कालीय ह्. या और दूसरे के अनुसार, वाक्स्वन के रूप में यह भाषाशास्त्र के स्वनि-स्वनिमिक स्तरों से परे और अधिकसूक्ष्म, वाक् प्रक्रिया में वाक् की चरम इकाई के निर्धारण का सूचक है। इस से आदि-स्वनिमिक स्वनयोगवाद का विकास हुआ है। ले.ने उयिमेंय और अर्थों को च.पेळुत्तु के अन्तर्गत मानना अस्वीकार कर दिया है और अन्त में निष्कर्ष निकाला है कि 'वैयाकरणों और टीकाकारों ने चर्.पेळुत्तु को पहचानने और गिनने के लिये कोई दृढ़ प्रणाली नहीं अपनाई है।

सुधीर कुमार गुप्त

पदार्थविज्ञान (Physical Sciences)

110. **The Indian Doctrine of Five Elements**; B. V. Subbarayappa, Survey and Planning of Scientific Research Unit, Council of Scientific and Industrial Research, Rafi Marg, New Delhi; *IJHS.*, 1.1; 5.1966; 60-67; E.

341. **The Impetus Theory of the Vaiśeṣikas**; S. N. Sen, Indian Associa-

tion for the Cultivation of Sciences, Calcutta-32; *IJHS.*, 1.1; 5.1966; 34-45; E.

111. **Concept of the Structure of Space-Time** (A Comparative Estimate Between The Western And The Vedic View); G. N. Chakravartihy, St. Philomena's College, Mysore; *IJHS.*, 5.2; 11; 1970; 219-228; E.

११२. चन्द्रनभ्रन्धी कुछ अनुसन्धेय मान्यताएँ; विद्याधर शास्त्री, सम्पादक, विश्वभर्रा, हिन्दी विश्व भारती अनुसन्धान परिषद्; नागरी भण्डार, वोकानेर (राज०); विभ., ६.३; १९७० (२०२७ वि०); ५७-५८; हि०।

११३. चन्द्रसम्बन्धी वैदिक विज्ञान की सहायक एक नवीन उपलब्धि; संयोजक, हिन्दी विश्वभारती चन्द्रान्वेषण विभाग; विभ., ६.३; १९७० (२०२७ वि०); ३१-३२; हि०।

117. **Origin and Tradition of Alchemy**; Priyada Ranjan Ray, 50/1, Hindustan Park, Calcutta-29; *IJHS.*, 2.1; 5.1967; 1-21; E.

553. **Japanese produce artificial blood**; (News); Reuter Osaka dated 15.4.1971; *HT.*, 16.4.1971; 9:5; E. Chuji Fujita, Associate Professor, Medical Dept., Kobe Univ., West Japan has produced artificial blood which does not clot.

चूजीजी फूजिता, सहयोगी प्रभापक, ओपवि विभाग, कोबे वि० वि०, पश्चिम जापान ने कृत्रिम रक्त बनाया है जो जमता नहीं है।

सुधीर कुमार गुप्त, मनमोहन अग्रवाल

118. **The Theory of Chemical Combination in Ancient Philosophies**; Priyadarajan Ray, HSI., Ancient Period (Unit I), 1 Park Street, Calcutta 16; *IJHS.*, 1.1; 5.1966; 1-14; E.

554. **Problem of Advent of Copper in India**; H. C. Bharadwaj, College of Indology, Banaras Hindu Univ., Varanasi-5; *IJHS.*, 5.2; 11.1970; 220-237; E. "Advent of copper in India, general survey of the elements of metal-

lurgy in the back-ground of the earliest Indian civilization, the Indus Valley civilization, its geographic expanse and chronology (on the basis of C14 dates) have been discussed. The typical features of Indus Valley metallurgy with special reference to the composition of copper and copper-based alloys have been examined. Location of ancient copper mines and the possibility of ore metal relationship on the basis of impurity pattern of the metal content are dealt with. Finally an account is given of the Indus Valley metallurgy in relation to the contemporary West Asian civilization with reference to ancient methods of smelting, casting and purification. "The author finally concludes that Harappan metallurgy had an independent growth". (From the author's summary).

यहां भारत में ताँबे के प्रचलन के आरम्भ, पूर्वतम भारतीय सभ्यता की भूमिका में धातुकर्म के तत्त्वों के सामान्य सर्वक्षण, सिन्धुघाटी सभ्यता, इस के भौगोलिक विस्तार और (सौ १४ तिथियों के आधार पर) इस के तिथिक्रम का विचार किया गया है। ताँबे और ताँबे पर आश्रित मिश्रधातुओं की संरचना के विशेष सन्दर्भ में सिन्धुघाटी धातुकर्म के विशिष्ट गुणों की परीक्षा की गई है। ताँबे की प्राचीन खानों के स्थानों, धातु अंश के अशुद्धि परिमाण के आधार पर कच्ची धातु के सम्बन्ध की सम्भावना का विवेचन किया है। अन्त में प्रद्रावण, ढलाई और शोधन की प्राचीन पद्धतियों की दृष्टि में समकालिक पश्चिम एशियाई सभ्यताओं के सन्दर्भ में सिन्धुघाटी धातुकर्म का विवरण दिया गया है। अन्त में ले. का निष्कर्ष है कि "हड़प्पा के धातुकर्म का विकास स्वतन्त्र हुआ है।"

सुधीर कुमार गुप्त

376. *Mātrkābhedatantram and its Alchemical Ideas*; B. V. Subbarayappa, NCC., HSI., Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi-1; and Mira Roy, NISI., (HSI. Unit), 1 Park Street, Calcutta-16; *IJHS.*, 3.1; 5.1968; 42-49; E.

378. *Rasārṇavakalpa of Rudrayāmala Tantra*; Mira Roy, HSI., Ancient Period, 1 Park Street, Calcutta-16; *IJHS.*, 2.2; 11.1967; 137-142; E.

चिकित्सा शास्त्र

(Medical Sciences)

५५५. ओषधि रसायन कल्प रक्तपलाशकल्प; त. अ., १.१; ११.१९६६; ३२; सं. 1 अत्र रक्तपलाशकल्पविधिर्दशभिः पद्यैर्वर्णिता । अत्र चतुःपञ्च योगाः प्रदर्शिताः सन्ति ।

यहां दश पद्यों में रक्तपलाशकल्प की विधि का वर्णन किया गया है। इस में चार पांच योग वतए गए हैं।

556. *Ariel*; Felix marti-ibanez, Editor-in-Chief, The Medical News Magazine, New York; M. D. Publications, Inc., 1962; § 292; 6-50; Rev. P. Rây; *IJHS.*, 2.2; 11.1967; 144-146; E. It is a collection of 42 essays distributed among nine sections on the art, the history and philosophy of ancient western medicine.

यह नौ खण्डों में विभक्त प्राचीन पश्चिमी ओषधिविज्ञान की कला, इतिहास और दर्शन पर ४२ निवन्धों का संग्रह है।

557. *The Embryonic Development and the Human Body in the Yājñavalkya Smṛti*; Mamata Choudhury, NISI., HSI., Ancient Period (Unit II), Cal.; *IJHS.*, 2.1; 5.1967; 52-60; E. In the *Yājñavalkya Smṛti* (2nd c. B. C. to 4th c. A. D.) "there occurs a description of the development of the human body from its embryonic to the full-grown stage in all its parts. After a more or less detailed description of embryonic development *Yājñavalkya* mentions the six dhātus (primary substances), six constituent parts of the body, three hundred and sixty bones and the five organs of action and perception. While mentioning the vital parts of the body, *Yājñavalkya* gives more or less a detailed description of the whole human body. The number of veins, sinews, arteries, muscles

and nerves and also the number of cavities throughout the whole body and also the quantity of the fluid in the body have been mentioned. Many of these are, however, strangely speculative". (Author's Summary).

याज्ञवल्क्य स्मृति (२ री शती ई. पू. से ४ शती ई. पू.) में मानव शरीर के सब भागों का भ्रूण से पूर्णता के स्तर तक विकास का वर्णन मिलता है। "अधिक वा न्यून विस्तार से भ्रूण विकास का वर्णन कर, याज्ञवल्क्य ने छै धातुओं, शरीर के निर्माता छै अंगों, ३६० हड्डियों और कर्म और ज्ञान की पांच इन्द्रियों का उल्लेख किया है। शरीर के मार्मिक भागों का उल्लेख करते हुए याज्ञवल्क्य ने समस्त मानव शरीर का न्यूनाधिक विस्तृत वर्णन किया है। उस ने शिराओं, स्नायुओं वमनियों, पेशियों और तन्त्रिकाओं तथा समग्र शरीर में व्याप्त रन्ध्रों की संख्या और शरीर में द्रव के परिमाण का निर्देश किया है। इन में से कुछ तो विचित्र कल्पना ही हैं।" (लेखक का सार)

119. **Anatomy in the Vedic Literature;** Mira Roy, HSI., Cal.; IJHS, 2.1; 5.1967; 35-46 (including Appendix); E.

४१८. कठपुतलियां और मानसिक रोगोपचार; देवीलाल सामर, उदयपुर; लोककला, २०; ७.१९७०; १-५६; हि. ।

558. **Council identifies 5,000 medicinal herbs, plants;** (News dated 11.4.1971); H. T. Correspondent; H T., 12.4 1971; 3:4-5 (top); E. The Central Council for Research in Indian Medicine and Homeopathy has identified over 5,000 medicinal plants and herbs in various parts of the country. Their specimens and qualitative and quantitative availability has been recorded. Folk lore in hill areas supplied valuable information and helped in the collection of some hither to unknown plants. Areas abounding in jatamamse, kushtha, pushkarmula and vatsanabh have been identified. Two experimental cultivation farms for obtain-

ing saffron and guggulu have been set up. 73 authentic sheets of plants and samples for sustaining life in jungles have been supplied to Border Security Force. Physical and chemical characteristics of kusum have been determined. Study of berbaris (rassat) have yielded useful clues. Insects attacking medicinal plants have been collected. Rudravanti considered a potent herbal drug for tuberculosis and asthma has been discovered.

भारतीय ओषधियों और होम्योपैथी शोधक केन्द्रिय संस्थान ने देश के विभिन्न भागों में ५.००० से अधिक ओषधि गुण वाले पौधों और वृष्टियों को पहचान लिया है। उन के नमूने, गुणिय और मात्रिक उपलब्धि मालूम कर ली हैं। पहाड़ी प्रदेशों में लोक-विद्या ने बहुत उपयोगी जानकारी दी और कुछ अब तक अज्ञात पौधों के संग्रह में सहायता की। जटा-मासी, कुण्ठ, पुष्करमूल और वत्सनाभ की प्रचुरता वाले क्षेत्रों का निर्धारण कर लिया गया है। केसर और गुग्गुल प्राप्त करने के लिए दो प्रायोगिक कृषि क्षेत्र स्थापित किये जा चुके हैं। जीवन धारण के लिए जंगलों में मिलने वाले ७३ पौधों के पत्ते और नमूने सीमा रक्षक सेना को दे दिये गये हैं। कुसुम के भौतिक और रसायनिक गुण निर्धारित किए जा चुके हैं। रस्सत (दाबहल्दी?) के अध्ययन से उपयोगी संकेत मिले हैं। ओषध पौधों पर आक्रमण करने वाले कीटारणु संगृहीत किये जा चुके हैं। क्षयरोग और सांस (=दमा) के लिए सक्षम वृष्टी ओषध खद्वन्ती की खोज हो चुकी है।

559. **Carakasamhitā (A Scientific Synopsis;** Priyadarajan Ray and Hirendra Nath Gupta, NISI., New Delhi; HSI Publication, 1965; 82, viii, 121; Rev. J. Fillozat; IJHS, 1 2; 11.1966; 162-163; E. The authors have summarised the contents of the Caraka Samhitā in a systematic way, without following the order of these matters in the Samhitā. They have discussed the authorship and the date of the work, described the scope and subdivisions of the treatise, the concepts and theories, the ideas concerning

the physiological processes, and health and longevity; have treated of physicians in Caraka of the diagnostic of diseases and methods of treatment, including surgery of the poisons, physico chemical processes and classification. Finally they have established very useful tables for the different sections of materia medica, for the anatomy, the pathology and all subjects allied with the medical practice.

संहिता में विषयों के क्रम का अनुसरण न करते हुए ले. ने चरक संहिता के विषयों का व्यवस्थित रूप में सार दिया है। उन्होंने ने इस कृति के काल और कर्तृत्व का विवेचन किया है तथा ग्रन्थ के क्षेत्र और विभागों, परिकल्पनाओं और वादों, शारीरिक प्रक्रियाओं सम्बन्धी विचारों, स्वास्थ्य और आयुष्मत्ता का वर्णन किया है। उन्होंने चरक के वैद्यों, रोगों के निदान, शल्यकर्म सहित चिकित्सा-पद्धतियों, विषों, भौतिक व रासायनिक क्रियाओं और वर्गीकरण का विवरण दिया है। अन्त में उन्होंने ने ओषधिगुण शास्त्र (= निघण्टु) के विभिन्न खण्डों, शरीररचना, रोगविज्ञान और आयुर्वेद व्यवहार से सम्बद्ध सभी विषयों के लिए बहुत उपयोगी तालिकाएँ दी हैं।

560. Digestion and Metabolism in Ayurveda; C. Dwarkanath; Pub. Shree Baidyanath Ayurveda Bhawan (P) Ltd., Calcutta; 1967; XIX+16+361; 10-00; Rev. P. V. Sharma; *IJHS.*, 4.1-2; 5.11.1969; 158-160; E. The author, a distinguished scholar of the integrated School of Indian medicine has attempted to fit the old ideas in the modern garb so that the same may be understood in the light of modern scientific advance and the modern scientific world may be able to understand them and utilize them in advancing their concepts further to bring scientific revolution. The reviewer has listed 10 points where he differs from the author in his presentation and interpretation of the subject in relation to modern medical science.

भारतीय शैषज्य के समन्वित सम्प्रदाय के

सुप्रसिद्ध विद्वान् ले. ने प्राचीन विचारों को आधुनिक रूप में इस निमित्त प्रस्तुत करने का प्रयास किया है कि उन को आधुनिक वैज्ञानिक प्रगतियों की दृष्टि में समझा जा सके तथा आधुनिक वैज्ञानिक संसार उन को समझ सके और वैज्ञानिक क्रांति लाने के लिए अपने विचारों को आगे बढ़ाने के लिए प्रयोग में ला सके। समीक्षक ने १० स्थल दिए हैं जहाँ उस का ले. से आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के सम्बन्ध में उस के विषय के प्रस्तुतीकरण और भाष्यकरण में मतभेद है।

22. Tryambhka; S. K. Gupta, Reader in Sanskrit, Raj. Univ., Jaipur-4; 7th All Rajasthan Homeopathic Conference Souvenir 1970; 40-41; E.

48. Problem of Biological Philosophy with regard to the Philosophy of the Upaniṣads; Bernhard Rensch, Univ. of Münchenster, West Germany; *IJHS.*, 1.1; 5.1966; 75-81; E.

३८. बृहस्पति द्वारा फालगुण-व्रत; भगवद्भक्त वेदालंकार; गुप्त., २३.१-२; ६-१०. १६७०; ६७-१०२; हि०।

120. Methods for Sterilization and Conception in Ancient India and Medieval India; Bhagwan Desh, Senior Research Officer, Ministry of Health, F P & U D., Nirman Bhavan, New Delhi; *IJHS.*, 3.1; 5.1968; 9-24; E.

तकनीकी (Technology)

561. Development of Technology During the Iron Age in South India (c. 1000 B.C. to the Beginning of the Historical Times); B. K. Guru Raja Rao, Deptt. of Ancient History & Archaeology, Univ. of Mysore, Mysore-6; *IJHS.*, 5 2; 11.1970: 253-271; E. "The paper, based on archaeological sources, deals with the development of technological processes relating to the manufacture of pottery vessels, metal making, glass manufacturing, bead and bangle making in various materials during the first millennium before Christ in South

India. "We have sufficient evidence available to form an outline of the technological progress achieved by the inhabitants of South India during the first millenium B. C. They were pioneers in many aspects of human civilization in this part of the world who innovated and evolved some, while improved and carried forward the other and already prevalent technological ideas and processes. Their contribution to the growth of civilization is considerable and deserves closer study than has been undertaken so far".

पुरातत्त्व के स्रोतों पर आधारित यह लेख दक्षिण भारत में ई. पू. प्रथम सहस्राब्दी में विभिन्न पदार्थों में मिट्टी के बर्तन, धातु (से वस्तु—) निर्माण, शीशा, मनके और चूड़ियाँ बनाने से सम्बन्धित तकनीकी प्रक्रिया के विकास का वर्णन करता है। "ई० पू० प्रथम सहस्राब्दी में दक्षिण भारत के निवासियों द्वारा निष्पन्न तकनीकी प्रगति की रूपरेखा बनाने के लिये हमारे पास पर्याप्त प्रमाण हैं। संसार के इस खण्ड में वे मानव सभ्यता के बहुत से पक्षों में पथप्रदर्शक थे, जिन्होंने कुछ नवीनीकरण और कुछ को क्रमशः उत्पन्न किया, जब कि दूसरों का और पहले से प्रचलित तकनीकी विचारों और प्रक्रियाओं का सुधार किया और उन्हें आगे बढ़ाया। सभ्यता की वृद्धि में उन की देन पर्याप्त है और जितना अब तक किया गया है इस का उस से अधिक गहन अध्ययन करना चाहिए।"

562. **A Note on the Native Method of Bar Iron Production in South India (Salem Region);** A. Rahman and B. V. Subbarayappa, Research Survey and Planning Organisation, C. S. I. R., Rafi Marg, New Delhi-1; *IJHS.*, I,2; 11,1966; 158-161; E. This note is based on a report prepared by J. Campbell and describes the construction of the furnace (with its sketch), its operation, yield and quality and cost of the product. The author observes that a large number of iron objects belonging to the period

(c. 700 B.C.-300 B.C.) have been found in South India but no archaeological evidence on the technology of their production is available. 'At present the history of iron technology in India is a story of many a missing link, disjointed and incomplete.

यह लेख जे. कैम्पबेल द्वारा तय्यार किये गये प्रतिवेदन पर आश्रित है तथा (उस के रेखाचित्र सहित) मट्टी के निर्माण, उस के परिचालन, उत्पाद, गुण और उत्पन्न माल की लागत का वर्णन करता है। ले. ने बताया है कि (७०० ई० पू०-३०० ई० पू०) के काल की बहुत सी लोहे की वस्तुएँ दक्षिण भारत में मिली हैं, परन्तु उन के निर्माण की तकनीकी पर पुरातत्त्व की कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। "इस समय भारत में लोह तकनीकी का इतिहास बहुत सी लुप्त कड़ियों वाली, विच्छिन्न और अपूर्ण कहानी है।"

563. **Paper Technology in Medieval India;** S.A.K. Ghori & A. Rahman, History of Science, Medieval India Unit, NISI., New Delhi-1; *IJHS.*, I,2;11,1966; 133-149; E "The paper gives a brief account of the development of paper industry in India. It describes the methods of manufacturing paper, the various centres established in the country and specialities of different types of papers made in different parts of the country. The manufactured paper was known after the place of the manufacture or after the names of patrons under whose patronage or supervision the paper was being made. There was considerable difference in the qualities of paper made in different areas which were used for different purposes." (Author's Summary).

लेख भारत में कागज उद्योग के विकास का संक्षिप्त विवरण देता है। यह कागज बनाने की विभिन्न पद्धतियों, देश में स्थापित विभिन्न केन्द्रों और देश के विभिन्न भागों में बनाये गये विभिन्न प्रकार के कागजों की विशेषताओं का वर्णन करता है। बने हुए कागज का नामकरण निर्माण स्थल अथवा जिन के संरक्षण या निरीक्षण में कागज

किया था। जगन्नाथ की भक्ति केशरी राजाओं के काल में चालू हुई। जगन्नाथ मन्दिर ११ वीं शती में बना, तभी से दैनिक देवदासी नृत्य चालू हुआ।

सुधीर कुमार गुप्त, मनमोहन अग्रवाल

संगीत कला (Music)

570. *Śrī Nānyābhūpāla-praṇītam Bharatabhāṣyam, Prathamah Khaṇḍah (Adhyāyāḥ 1-5)*; Ed. Chaitanya P. Desai, Khairagarh (M.P.); 1961; 15-00; Rev. V. G. Paranjpe; **ABORI.**, L. I-IV; 1969; 113-114; E. It is a very valuable work for the knowledge of the history and the theory of Indian music. Notes on PP. 22-62 are full of valuable material and quotations from various ancient, medieval and modern work on various sciences. Material on Śrutis and in Appendix on PP. 167-177 is also very valuable. The reviewer feels that the Indian music had reached the highest level in about the 3rd c. B.C. and not between 950 A.D. and 1250 A.D. as the editor thinks.

भारतीय संगीत के इतिहास और सिद्धान्त के ज्ञान के लिए यह बहुमूल्य कृति है। पृष्ठ २२-६२ की टिप्पणियाँ उपयोगी सामग्री तथा प्राचीन मध्यकालीन और आधुनिक विविध शास्त्रीय कृतियों से उद्धरणों से भरी पड़ी हैं। श्रुतियों पर और पृ० १६७-१७७ के परिशिष्ट में भी बहुत सी मूल्यवान् सामग्री है। समीक्षक का विचार है कि भारतीय संगीत ई. पू. ३ री शती के समीप में चरम सीमा पर था, ई. ६५० से १२५० ई. के बीच नहीं, जैसा सम्पादक मानते हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

कृषि (Agriculture)

571. *Land Classification in Ancient India (2500 B.C.—A.D. 600)*; S. P. Ray, Chaudhury, Senior Specialist (Land Resources), Planning Commission, Yojana Bhawan, New Delhi-1; **IJHS.**, I.1; II.1966; 107-111; E. "The ancient Indian cultivators possessed a fair knowledge of land, and its proper utilization,

seasons and proper period of cultivation, selection and treatment of seeds, rotation and other cultural practices of crops, manuring for crop production, diseases of crops—their prevention and protection etc. According to fertility soil was mainly divided into two classes, *urvarā* and *unurvarā* or *ūṣara*. They had made extensive observations about the compositions of different kinds of soil. Classification of soil was based on two grounds medicinal and economic. Land revenue was based on income i.e. on the productivity and kind of soil. Land revenue assessment was revised at intervals".

“प्राचीन भारतीय कृषकों को भूमि, और इस के उचित उपयोग, ऋतुओं और कृषि के लिए उचित कालों, बीजों के चुनाव और प्रयोग (शोधन), फसलों के हेर-फेर तथा अन्य कर्षण कर्मों, फसल उगाने के लिए खाद देने, खेती के रोगों—उन को रोकना और उन से बचाव आदि का अच्छा ज्ञान था। उपज को दृष्टि से भूमि प्रमुखतया दो भागों में विभक्त थी—उर्वरा और अनुर्वरा या ऊपर। उन्होंने ने विभिन्न प्रकार की भूमियों की संरचना के सम्बन्ध में व्यापक अध्ययन किए थे। भूमि के वर्गीकरण के आधार दो थे—भेषजोय और प्राथिक। भूमि पर लगान आय अर्थात् उत्पादकता और भूमि के वर्ग पर निर्धारित किया जाता था। लगान-निर्धारण का अन्तरालों पर परिशोधन किया जाता था।”

युद्धविद्या (Science of Warfare)

५७२. आधुनिकयुद्धपरिचयः; मनुदेव भट्टाचार्य, वाराणसी-२; गुण०, २३.१-२; ६-१०.१९७०; ७-१३; सं. १। प्राचीनकालिकयुद्धपरिचयप्रदाय ग्रन्थान् परिगणय्य प्रतिपादितं यत् प्राचीनानुनिकयोर्द्वयोर्महान् भेदः; परं प्राचीनकालिकयुद्धज्ञानाय पर्याप्ता सामग्री नास्ति। अत उभयोः सम्यक् तुलना न संभवति। अतः परं लेख आधुनिकसैन्यस्य विवरणं प्रस्तं वर्तते।

प्राचीन काल के युद्ध का परिचय देने वाले ग्रन्थों का नाम बता कर कहा गया है कि प्राचीन और आधुनिक युद्धों में महान् भेद है। प्राचीन काल के युद्ध के परिचय के लिए पर्याप्त सामग्री नहीं है। अतः दोनों कालों के युद्धों की तुलना सम्भव नहीं है। इस के आगे लेख में आधुनिक सैन्य का परिचय दिया गया है।

सामान्य अध्ययन (General Studies)

573. The Character of the Introduction of Western Science in India during the Eighteenth and the Nineteenth Centuries; S. N. Sen, Indian Association for the Cultivation of Science, Calcutta; *IJHS.*, I.2; 11.1966; 112-122; E. The paper presents various reasons for the extremely tardy introduction of Western sciences in India till the advent of the present century. Some of the causes discussed are: incidental interest of Jesuit missionaries, commercial motive for the study of plant science, East India Company's prohibition on instructions to Indians of the art of any kind of surveying, It was only in the early part of this century when owing to rise of Universities and colleges emphasis on scientific research and the lead to create conditions for young Indians to engage in creative enterprise developed and came from the Indians themselves.

इस लेख में चालू शती के प्रारम्भ तक भारत में पश्चिमी विज्ञानों के परमाधिक मन्द प्रचार के विभिन्न कारणों को प्रस्तुत किया गया है। विवेचित कतिपय कारण ये हैं—ईसाई धर्मयाजकों की प्रासंगिक रुचि, वनस्पतिशास्त्र के अध्ययन में व्यापारिक प्रयोजन, ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भारतीयों को किसी भी प्रकार की सर्वेक्षण विद्या की शिक्षा पर प्रतिबन्ध। यह इस शती के प्रारम्भिक भाग में ही हुआ कि जब महाविद्यालयों और विश्व-विद्यालयों के उदय के कारण वैज्ञानिक शोध पर बल और रचनात्मक उद्यमों में युवा भारतीयों के नियोजन के लिए परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के

लिए प्रोत्साहन विकसित हुए और स्वयं भारतीयों की ओर से आए।

574. Philosophical Trends And The History of Sciences in India—Heterodox Trends; G. C. Pande, Deptt. of History and Indian Culture, Univ., of Raj., Jaipur; *IJHS.*, 4.1-2; 5, 11.1969; 42-51; E. "Philosophical systems intersected with science in their treatment of certain common problems such as of a logical methodological nature. "The two developed in essential interdependence. The three heterodox systems of Indian philosophy emphasised the testimony of human experience and reason. The Lokāyats emphasise on observation and explain general laws as merely probabilistic, thereby acting as a corrective to the emphasis on speculations of transcendental nature. The Buddhists have a pragmatic view of truth. They emphasize causal process, picture a world in terms of an ordered flux of instantaneous synergies and have refined the notions of element, cause, existence and truth. Their concepts and theories here were in far advance of the then scientific ideas and achievements. The Buddhist had a continuous and scientific interest in psychology. The Jain philosophy has combined the truths of common sense, of philosophy and of religion and have established a probabilistic dialectic. Their theory of relativity called syādvāda, precision and elaboration in the measurement of space and time and elaborate atomic theory are remarkable. These three philosophies have, thus, nothing definitely obstructive of scientific progress. In fact their age witnessed a growth and development in many branches of science. The intellectuals of that age were essentially philosophers and scholars and not technicians and practical inventors. Naturally progress of strictly scientific thought and that of mechanical and technological developments were limited. "Medicine and astronomy alone attained the status of prestige disciplines and in these spheres the progress on the whole was as extensive as in those times elsewhere".

नैव्यायिक रीतिविधान की प्रकृति जैसी कुछ समान समस्याओं के विवेचन में दार्शनिक और वैज्ञानिक पद्धतियाँ एक दूसरे में प्रविष्ट हो जाती हैं। दोनों पूर्ण रूप से अन्वेषणाश्रय में विकसित हुए हैं। भारतीय दर्शन के तीन नास्तिक सम्प्रदायों ने मानव अनुभव और तर्क की प्रामाणिकता पर बल दिया। लोकायत प्रत्यक्ष पर बल देने हैं और सामान्य नियमों को सम्भाव्यतामात्र के रूप में व्याख्या करते हैं। इस प्रकार वे अतिक्रान्त सत्ता के स्वरूप पर कल्पनाओं के बल पर शोधक (= अंकुश) का काम करते हैं। बौद्धों की सत्य की कल्पना फल-मूलक है। वे कारणप्रक्रिया पर बल देते हैं, जगत् को क्षणिक विज्ञानसन्तान की व्यवस्थित परम्परा के रूप में चित्रित करते हैं, भूत, कारण, सत्ता और सत्य के विषय में परिष्कृत विचार रखते हैं। उन को परिकल्पनाएँ और मत तत्कालीन वैज्ञानिक विचारों और उपलब्धियों से बहुत आगे थे। बौद्धों की मनोविज्ञान में सतत और वैज्ञानिक रुचि थी। जैन दर्शन ने सामान्य बुद्धि, दर्शन और धर्म के सत्वों का समन्वय किया है और सम्भाव्यतावादी न्याय की स्थापना की है। उन का स्याद्वाद नामक सापेक्षवाद, देश और काल की माप में सूक्ष्म परिशुद्धि और विस्तार तथा विस्तृत परमाणुवाद असामान्य हैं। इस प्रकार इन तीन दर्शनों में वैज्ञानिक प्रगति के लिए कुछ भी निश्चित रूप से बाधक नहीं है। वस्तुतः उन के युग ने विज्ञान के बहुत से क्षेत्रों में वृद्धि और विकास देखा। उस युग के बुद्धिवादी मूलतः दार्शनिक और विद्वान्धे और शिल्पी तथा व्यावहारिक आविष्कर्ता नहीं थे। स्वभावतः सूक्ष्म वैज्ञानिक विचारों की और यांत्रिक तथा तकनीकी प्रगतियाँ सीमित थीं। आयुर्वेद और ज्योतिष ही सम्मानित विद्या के पद को प्राप्त हुए और इन दोनों क्षेत्रों में सप्रभ रूप से प्रगति इतनी ही विस्तृत थी जितनी उन दिनों कहीं और।

575. **The Rational and Irrational in The History of Science;** Mark

Graubard, College of Liberal Arts, Natural Science Programme, Univ. of Minnesota, Minneapolis; *IJHS*, 3.2; 11. 1968; 61-79; E "The human being tends to view his own thinking as rational, a laudatory term, and that of those he disagrees with as irrational, a pejorative term". This happens in the field of science also. What is rational today, may be declared irrational tomorrow. The study of belief patterns in science presented in this paper "leaves this matter in quite an unsettled condition, except to plead for caution in designating the terms reason, rational and irrational as absolute, well defined concepts".

प्रत्येक व्यक्ति अपने चिन्तन को युक्त-प्रशंसनीय अभिधान मानने और जिस से वह मतभेद रखता है, उन के (चिन्तन को) अयुक्त-निन्दनीय अभिधान मानने की ओर प्रवृत्ति रखता है। यह विज्ञान के क्षेत्र में भी होता है। आज जो युक्त है, वह कल अयुक्त घोषित किया जा सकता है। विज्ञान में विद्वानों की पद्धतियों का इस पत्र में प्रस्तुत अध्ययन "इस विषय को पूर्णतः अनिर्णीत अवस्थाओं में छोड़ देता है। केवल तर्क, युक्त और अयुक्त शब्दों की निरपेक्ष, सुपरिभाषित परिकल्पना कहने में सावधानी की प्रेरणा देता है।

576. **Śivatattva-ratnākara As a Source for Sciences in Ancient And Medieval India;** G. S. Dikshit, Dept. of History, Karnataka Univ., Dharwar 3; *IJHS*, 4.1-2; 5.11.1969; 11-14; E. The paper describes Śivatattvaratnākara, its contents and divisions and describes only those portions which deal with scientific subjects. It is an encyclopaedic work in nine Kallolas (chapters), divided in to 108 taraṅgas or sections. It was composed in A.D. 1709 by Kaladi Basva Raja. It excels Mānasollāsa of Somadeva III. This Śivatattvaratnākara deals with meteorology (III.2), astronomical ideas (III.3-4), taking relevant material from the Mbh. and Varāha, Kūrma and Skānda Purāṇas, with longevity and perpetual bodily vigour (V.1), with town-planning, horticulture and allied aspects,

Ayurveda, mercury and mercurial preparations, serpents and poisons, veterinary science etc. (VI). The author says that he has written this work after examining all existing literature, studying all sciences and condensing them.

लेख में शिवतत्त्वरत्नाकर, उस के विषयों और खण्डों का वर्णन किया गया है। यहां केवल उन्हीं भागों का विवरण दिया गया है जो वैज्ञानिक विषयों का विवेचन करते हैं। यह १०८ तरंगों या खण्डों में विभक्त ६ कल्लोलों (=अध्यायों) में एक विश्वकोपात्मक कृति है। यह १७०६ ई० में कलदी वासव राजा द्वारा रचा गया। यह सोमदेव तृतीय के मानसोल्लास से उत्कृष्ट है। यह शिवतत्त्वरत्नाकर महा. और वराह, कूर्म और स्कान्द पुराणों से सम्बद्ध सामग्री ले कर ऋतुविज्ञान (३.२), ज्योतिषविषयक विचार (३.३-४), आयुष्मत्ता और सतत शारीरिक बल (५.१), नगरयोजना, उद्यान-विज्ञान और समवर्गी विषयों, आयुर्वेद, पारद और पारद के योग, सर्पों और विषों, पशुचिकित्सा विज्ञान आदि (६) का विवेचन करता है। ले. ने लिखा है कि उस ने विद्यमान समस्त वाङ्मय की परीक्षा कर के तथा सब शास्त्रों का अध्ययन और संक्षेप कर के इस कृति को रचा है।

577. Scientists of India; O. P. Jaggi; Atma Ram & Sons, Delhi-6; 1966; viii+266; 10-00; Rev. H. N. Gupta, A. K. Bag; *IJHS.*, 2.1; 5.1967; 61-62; E. The book consists of an introduction and 5 chapters giving an account of 31 scientists and scientific writers, furnishing an adjective to each. The introduction contains a short survey of the ancient sciences from the Indus Valley Civilization to the 18th c. A. D. It discusses many topics like 'Vedic science, the role of religion, contact with outside world, the spread of Indian sciences outside India and the reasons which led to the decline of the scientific spirit in India. The chapters deal with Medical Men (II), Astronomers and Mathematicians (III), Alchemists (IV), Philosopher

Scientists (V) and Miscellaneous. The reviewers point out several drawbacks of the book.

पुस्तक में एक भूमिका और ५ अध्याय हैं जिन में प्रत्येक को एक विशेषण देते हुए ३१ वैज्ञानिकों और विज्ञान के लेखकों का विवरण दिया गया है। भूमिका में सिन्धु घाटी सभ्यता से १८ वीं शती ईसा तक के प्राचीन विज्ञानों का सर्वेक्षण है। इस में बहुत से विषयों का विवेचन किया गया है, यथा वैदिक विज्ञान, धर्म की भूमिका, बाह्य संसार से सम्पर्क, भारत के बाहर भारतीय विज्ञानों का प्रसार और वे कारण जिन से भारत में वैज्ञानिक भावना का हास हो गया। अध्यायों में वैद्यों (२), ज्योतिष और गणित के आचार्यों (३), रसायनविदों (४), दार्शनिक वैज्ञानिकों (५) और विभिन्न का विवरण है। समीक्षक ने ग्रन्थ के बहुत से दोषों का निर्देश किया है।

578. Symposium in History of Sciences of India; B. V. Subbarayappa, Secretary, Organizing Committee, Symposium on HSI; *IJHS.*, 3 2; 11.1968; 99-101; E. It is a brief report of a symposium in HSI, held in New Delhi from October 17 to 20, 1968. About 90 papers were contributed to the symposium. The symposium discussed papers on subjects like mathematics, astronomy, medicine and biological sciences in India as also some new aspects in Indian architecture, engineering, glass technology and some important crafts in ancient and medieval India.

यह नई दिल्ली में १७ से २० अक्टूबर १९६८ में भारत के विज्ञानों के इतिहास पर हुए परिसंवाद का संक्षिप्त विवरण है। इस परिसंवाद को लगभग ९० लेख प्रस्तुत किए गए। परिसंवाद ने भारतीय गणित, ज्योतिष (-खगोल विद्या), औपधि-शास्त्र और जीवविज्ञानों, तथा भारतीय वास्तुविद्या, यन्त्रविद्या (इञ्जीनियरी), शीघ्रातकनीकी तथा प्राचीन और मध्य भारत में महत्त्वपूर्ण शिल्पों आदि विषयों का विचार किया।

579. *Social Set-up, Science And Technology in India Social Set-up of Science and Technology in Mughal India*; Surendra Gopal, Deptt. of History, Patna Univ. Patna; *IJHS.*, 4 1-2; 11.1969; 52-58; E. The author holds that the social set-up of Mughal India was not conducive to development of science and technology and left the craftsmen ill-prepared for the task. The educational system did not provide them sound and theoretical scientific and professional knowledge. They had no medium to express their experiences and problems owing to the absence of vernacular prose. They had no encouragement from merchants who had lost all active interest in the technique of production since the upper strata in the then society was consumption oriented, had developed a fondness for 'unique things', suppressed scientific knowledge, if and when they came to possess it, in order to preserve the said 'uniqueness'.

ले. मानते हैं कि मुगलकालीन भारत की सामाजिक संरचना विज्ञान और तकनीकी के विकास के लिए उपयुक्त न थी। उस ने शिल्पी को अपने कार्य के लिए अयोग्य रक्खा। शिक्षाप्रणाली उन को तात्त्विक और सैद्धान्तिक वैज्ञानिक और व्यवसायिक ज्ञान नहीं देती थी। देशी भाषा के गद्य के अभाव में अपने अनुभवों और समस्यार्यों के प्रकाशन के लिए उन के पास कोई माध्यम न था। उन्हें व्यापारियों से कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता था। इन व्यापारियों की उत्पादन की कला में समस्त क्रियाशील अभिवृत्ति समाप्त हो चुकी थी क्योंकि उस काल की समाज का उन्नत स्तर उपभोग-परायण था। उस ने 'अनुपम वस्तुओं' के लिए हथि विकसित कर ली थी। इस अनुपमता को सुरक्षित रखने के लिए वे वैज्ञानिक जानकारों को, यदि वह उन्हें प्राप्त हो जाते थे, दबा दिया करते थे।

ज्योतिष (Astronomy & Astrol. gy)

१२०. आप भी पंचांग देखना सीख सकते

हैं। प्रकाश चन्द्र पांड्या, आयुर्वेदान्तर्य, भोपाल गंज, भीलवाड़ा; मजस्सा., १९७०, खण्ड ३; ११-१३; हि.। यहाँ पंचांग विषयक सामान्य जानकारी दे कर 'श्रीविद्वत्विजय' संवत् २०२७ के पंचांग के उदाहरण से पंचांग देखने की विधि समझाई गई है।

१२१. *आध्यात्मिक जगत् के साथ ज्योतिष का सम्बन्ध*; पन्नालाल जोशी; त. अ., १.२; १२. १९६६; ७-८; हि.। एकादशी के दिन सूर्य चंद्रमा त्रिकोण योग करता है। अतः उस के व्रत से मनुष्य आत्मज्ञानी या योगी होता है। अनावास्या को चंद्र न्यून में मिल जाता है और मन के आत्मा में त्रिलय को इंगित करता है। लेख में ज्योतिष के स्वल्प, पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता और तिथियों का महत्त्व निरूपित किए गए हैं।

१६. *ऋग्वेद का इन्द्र, इन्द्राणी और व्याकपि का संवाद*; रामनाथ वेदालंकार; गुप्त., २३. १-२; ९.१०.१९७०; ७०-७६; हि.।

18. *Apropos the Rg-veda V. 40*; V.G. Rahurkar, Deptt. of SKT. & PKT. Languages, Univ. of Poona, Poona-7; *UMCV.*, 1970; 511-516; E.

114. *Astronomy in Ancient And Medieval India*; Kripa Shankar Shukla, Deptt. of Mathematics, Lucknow Univ., Lucknow; *IJHS.*, 4,1-2; 5, 11.1969; 99-106; E.

582. *Ahargana in Hindu Astronomy*; S P. Bhattacharya, HSI, Cal.; *IJHS.*, 4,1-2; 5, 11.1969; 144-155; E. "The term ahargana means the number of days elapsed from the beginning of a certain epoch up to a date on which such information is desired. From a knowledge of revolution and the number of planets in a yuga it is readily possible to calculate the mean longitudes of planets from their aharganas. Such computations were necessitated by the fact that civil dates used to be given in accordance with a lunar calendar. The methods as given in the *Sūrya Siddhānta*, *Pañcasiddhāntikā*, *Mahābhāskarīya*, *Brahmasūtrasiddhānta*,

Khaṇḍakhādya, Siddhāntaśekhara, Karaṇaprakāśa, Siddhāntaśiromaṇi, Tantrasaṃgraha, and Karaṇapaddhati are discussed." (Author's summary).

ग्रहण परिभाषा का अर्थ उन दिनों की संख्या है जो एक कालविशेष के आरम्भ होने से उस तिथि तक बीतते हैं जिस को यह सूचना अभीष्ट है। एक युग में परिक्रमणों और ग्रहों की संख्या के ज्ञान से उन के ग्रहणों से ग्रहों के माध्य भोगांशों की गणना सद्यः ही की जा सकती है। ऐसे संख्यान् इस कारण आवश्यक हुए कि व्यवहारों में तिथियाँ चांद्र तिथिक्रम में दी जाती थीं। यहाँ सूर्यसिद्धांत, पंचसिद्धान्तिका, महाभास्करीय, ब्रह्मसूत्रसिद्धान्त, खण्डखाद्यक, सिद्धान्तशेखर, करणप्रकाश, सिद्धांत-शिरोमणि, तन्त्रसंग्रह और करणपद्धति की प्रणालियों का विवेचन किया गया है।

[लेखक का सार]

583. X-Ray Star discovered; AFP Nairobi, 15.4.1971; H.T., 16.4.1971; 9:5; E. An Italian-American satellite launched into earth orbit from Kenya's San Marco Space Centre on December 12 has discovered a pulsating X-ray star;

केन्या के सान मार्को स्पेस सैण्टर से १२ दिसम्बर को भूमि की कक्षा में छोड़े गये इटैलियन-अमरीकी उपग्रह ने एक स्पन्दनशील एकसरे तारा खोज लिया है।

584. Colours of Lunar Eclipses According to Indian Tradition; Winfried Pe ri, Institut für Geschichte der Naturwissenschaftender Universität München, 8 München 22, Deutsches Museum, West Germany; IJHS., 3 2; 11. 1968; 91-98; E. "Eclipses occur when the sun or the moon at the time of a syzygy passes through a nodal point of the lunar orbit. Hindu astronomers treat these points like planets: Rāhu and Ketu. According to their Indian and Tibetan synonyms a solar eclipse was 'black', but the eclipsed moon considered as dark-red colour is mentioned in the old Hebrew and Armenian literature, too.

The Classical Skt. books on astronomy show fair knowledge of the colours of lunar eclipses and their dependence on the degree of totality. This fact was wellknown to al-Biruni and is corroborated by modern observational evidence. In later Western tradition, however, another—schematic and intentionally photometric—sequence of six colours prevailed until 1540 C.E." (Author's summary).

ग्रहण उस समय होते हैं जब युतिविपुति के काल में सूर्य या चन्द्रमा चन्द्रमण्डल के पातिक विन्दु में से गुजरता है। हिन्दू ज्योतिर्विद् इन विन्दुओं को राहु और केतु ग्रहों के रूप में वर्णित करते हैं। इन के भारतीय और तिब्बती पर्यायों के अनुसार सूर्य ग्रहण 'काला' था। गहरे लाल वर्ण का माना गया ग्रहणगत चन्द्रमा पुरानी हीब्रू और आरमेनियन साहित्य में भी निदिष्ट है। ज्योतिष की लौकिक संस्कृत की पुस्तकें चन्द्रग्रहण के रंगों और पूर्णता की मात्रा पर उन की निर्भरता का अच्छा ज्ञान प्रदर्शित करती हैं। यह तथ्य अल-बिरुनी की सुज्ञात था और आधुनिक प्रेक्षण के प्रमाणों से भी पुष्ट होता है। परन्तु पिछली पाश्चात्य परम्परा में १५४० सी. ई. तक छै रंगों का एक मनोवन्धी और साभिप्राय ज्योतिर्मापी-क्रम मान्यताप्राप्त थे।

(लेखकीय सार)

५८५. जयपुर नगर कुंडली का सर्वेक्षण; श्रीकान्त ठक्कुर, ज्योतिषाचार्य, जयपुर; त. अ., १.१; १२.१९७०; ३३; हि. । ले. ने सर्वेक्षण के १७.५.१९६६ के अंक में प्रकाशित जयपुर नगर की कुण्डली की समीक्षा करते हुए उस की राशि और चन्द्र की स्थिति में भूतों को दिखाया है।

५८६. ज्योतिषविवेक; ले. वेदप्रकाश 'सुमन'; प्र. सत्यप्रकाश, मथुरा; ०-७५; हि०; समीक्षक नवानो लाल भारतीय; आ. मा., ५०.१६; १.१२.१९७०; १६; हि० । स्व. गंगा प्रसाद जज की ज्योतिष चन्द्रिका की सहायता से रची गई, नरिणत ज्योतिष की वैज्ञानिकता व फलित ज्योतिष

length and the respective signs of the zodiac, while the other one gives different durations of moon's passage through 28 nakṣatras. Both are paralleled and exemplified by hitherto unpublished Tibetan texts. Evaluation of a synoptic table leads to the conclusion that the relationship of Tibetan and of Uigur data to al-Beruni's is about the same, but Tibetan seems a little closer to direct Hindu tradition, as summed up by W. Kirfel. Finally some remarks are made about another Uigur fragment dealing with the sidereal month and an asterism of seven stars." (Author's summary).

लेख मध्यकालीन मध्य एशिया में नक्षत्र विद्या (और, साथ ही, फलित ज्योतिष) के विचारों पर भारतीय मन्त्रकृति के गहरे प्रभाव के लिए प्रमाण प्रस्तुत करता है। जो तुफान के मन्त्रान में बच गई हैं और बर्लिन में विज्ञान अकादमी से सम्पादित हुई हैं, उद्गर भाषा की उन खण्डित कृतियों में चंद्रमा की राशियों की दो सूचियां हैं। एक में बराबर लम्बाई के २७ नक्षत्रों और अनुरूप राशियों की सूची है, जब कि दूसरी सूची में २८ नक्षत्रों में चंद्र की गति के विभिन्न काल-परिणाम अंकित हैं। अब तक अप्रकाशित तिखती कृतियों द्वारा दोनों को समानान्तर रक्खा गया है और उदाहृत किया गया है। एक संक्षिप्त तालिका के मूल्यांकक अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि तिखती और उद्गर की सामग्रियों का अल-बेरुनी की सामग्री से सम्बन्ध लगभग एक समान है, परन्तु जैसा डब्ल्यू. किर्फेल ने संक्षेप से प्रस्तुत किया है, तिखती (सामग्री साक्षात् हिन्दू परम्परा के कुछ समीपतर प्रतीत होती है। अन्त में नाक्षत्र माप और सात तारों के एक नक्षत्र का वर्णन करने वाली एक अन्य उद्गर खण्डित कृति के विषय में भी कुछ कथन किए गए हैं।

591. The System of The Vaṭeśvara Siddhānta; T. S. Kuppamma Shastri, 10, A Krishnapuram Street, Rayapetuh High Road, Madras-14;

IJHS., 41-2; 5, 11.1969; 135-143; E. "The Vaṭeśvara Siddhānta (A.D. 904) is one of the most famous of Hindu astronomical works, and cited frequently by writers, on Dharma-śāstra. Al-Bīrūnī mentions the author with another work of his. But later on the study of the work became so rare that only recently it appeared in print from an only mss..... The new commentary with which it is printed has masked its peculiarities as a work belonging to the school of Āryabhaṭa, as also many of the fundamental constants like the different numbers of cycles, etc., and given wrong ideas and numbers instead. This has led to further mistakes in interpretation. Hence a good deal of research has to be done to salvage these and make them available to scholars for further study. The findings are as follows: The yuga (i.e. mahāyuga) is divided into four equal quarters. 72 yugas make a manvantara, 14 manvantaras, without any sandhi (1008 yugas), form the kalpa or half-day of Brahma. 720 kalpas form his year, and his life-span is 100 such years. At present, 8½ years and 15 days of Brahma's life-time have gone. On the next day, 6 manvantaras and 27¾ yugas have gone, upto the beginning of this kali. The constants denoting the number of civil days, revolutions of the Sun, Moon, Jupiter, Saturn, Mercury, Venus as well as of Moon's apogee, nodes, etc. are presented according to the Vaṭeśvara Siddhānta and discussed in relation to wrong numbers given by the commentary. Several other wrong interpretations presented by the commentary are also dealt with and the correct interpretations given. It is pointed out that in Spāṣṭādhikāra of the commentary also there are a number of mistakes to be rectified". (From the author's summary).

"वटेश्वर सिद्धान्त हिन्दू ज्योतिष के परम प्रसिद्ध ग्रन्थों में से है और बमशास्त्र पर लिखने वालों के द्वारा बहुशः उद्धृत किया गया है। अलबेरुनी इस लेखक का उस की एक अन्य रचना के साथ उल्लेख करता है। परन्तु बाद में इस कृति का अध्ययन इसना विरल हो गया कि वह केवल एकमात्र हले.

से हाल में ही छापे में आई है। जिस के साथ यह ग्रन्थ छपा है उस नई टीका ने आर्यभट्ट के सम्प्रदाय से सम्बद्ध कृति के रूप में इस की विशेषताओं को, साथ ही चक्रों के विभिन्न अंकों के समान बहुत से मौलिक स्थिरांकों को भी ढ़क दिया है और उन के स्थान पर अशुद्ध विचार और अंक दिए हैं। इस ने भाष्य करने में और भी भूलें करा दी हैं, अतः इन के उद्धार के लिए पर्याप्त अधिक खोज आवश्यक है और उन्हें विज्ञ ग्रन्थिताओं को प्रागे अध्ययन के लिए सुलभ बनाना है। निष्कर्ष ये हैं। युग (अर्थात् महायुग) को चार समान भागों में बांटा गया है। ७२ युगों का एक मन्वन्तर होता है। बिना किसी सन्धिके १४ मन्वन्तरों (१००८ युगों) का एक कल्प या ब्रह्मा का आधा दिन होता है। ७२० कल्प का उस (ब्रह्मा) का एक वर्ष होता है और उस का जीवन काल ऐसे १०० वर्षों का है। इस समय ब्रह्मा के जीवन से ८३ वर्ष और १५ दिन बीत चुके हैं। अगले दिन, इस कलि के आरम्भ तक ६ मन्वन्तर और २७ $\frac{3}{4}$ युग बीत चुके हैं। स्ववहार-दिनों की संख्या के द्योतिक स्थिरांक, सूर्य, चन्द्र, गृहस्थिति, राशि, बुद्ध, शुक्र और चन्द्रमा के भूम्युच्च और पातों आदि के द्योतिक स्थिरांक वटेद्वर सिद्धान्त के अनुसार प्रस्तुत किए गए हैं और टीका द्वारा दिये गये अशुद्ध अंकों के सन्दर्भ में चर्चित किये गये हैं। टीका द्वारा प्रस्तुत और बहुत से अशुद्ध भाष्यों का विवेचन किया गया है और शुद्ध अर्थ दिये गये हैं। यह भी बताया गया है कि टीका के स्पष्टाधिकार में भी बहुत सी शोधनीय भूलें हैं।" (लेखक के सार से)

Āryabhaṭa, revealed in his Āryabhaṭīyam. Prabhākara, Bhāskara I and the Kerala astronomers, Govinda Swāmin and Haridatta, etc., belong to this school, as also Vaṭeśvara in the north. Āryabhaṭa and Vaṭeśvara give peculiar length for the different eons. According to them the yuga, though consisting of the usual 4.320.000 years, is divided into four equal quarters, Kṛta etc., instead of in the ratio 4:3:2:1. Seventy-two yugas make a manvantara and 14 manvantaras or 1.008 yugas constitute the kalpa, with no manvantara-sandhi. Time and its indicators—the sun, the moon and the star-planets—were created together with Brahma and considered to last as long as Brahma lasts, instead of being dissolved and recreated in each kalpa forming the day-time of Brahma. The moment of this creation was mean sunrise at Lanka and the day, saturday. At the beginning of the current kalpa, 8 $\frac{1}{2}$ years and 15 days of Brahma's life had elapsed. At the beginning of the present kaliyuga, six manvantaras and 27 $\frac{3}{4}$ yugas had gone in the kalpa. Vaṭeśvara gives the revolutions of the apsaras and nodes (excepting those of the moon) as so many cycles in the life time of Brahma and, therefore, all this is not of mere academic interest. We also find variations from other schools in the number of cycles of the mean or śighra motions, as also in the degrees of epicycles. An important peculiarity is the use of the true hypotenuse in computing the equation of the centre (condemned by Bhāskarācārya II). Another peculiarity is dispensing with the first operation (i.e. the application of half-equation of conjunction to mean) in the case of Mercury and Venus". (Author's summary).

प्रत्येक की कुछ विशेषताओं के आधार पर प्रारम्भिक हिन्दू ज्योतिष कृतियों को अलग-अलग सम्प्रदायों में वर्गीकृत किया जा सकता है। ऐसा एक सम्प्रदाय आर्यभट्ट का है, जो उस के आर्यभटीयम् में अभिव्यक्त हुआ है। प्रभाकर, भास्कर १ और केरल के ज्योतिषी, गोविन्दस्वामिन् और हरिदत्त प्रभृति इन सम्प्रदाय के हैं, साथ ही, उत्तर

592. The School of Āryabhaṭa and the Peculiarities Thereof; T. S. Kuppanna Shastri, 16 A, Krishnapuram Street, Rayapettah High Road, Madras 14; IJHS, 4.1-2; 5, 11.1969; 126-134; E. "It is possible to classify early Hindu astronomical works into specific schools, on the strength of certain peculiarities of each. One such schools is that of

में वटेश्वर भी। आर्यभट और वटेश्वर ने विभिन्न युगों के अग्रमान्य विस्तार बताए हैं। उन के अनुसार सामान्य ४.३२०.००० वर्षों का होने पर भी युग कृत आदि वरावर के चार पादों में विभक्त है, ४:३.२:१ के अनुपात में नहीं है। ७२ युगों का एक मन्वन्तर होता है, १४ मन्वन्तरों या १००८ युगों का एक कल्प होता है। यहाँ मन्वन्तर संख्याएँ नहीं होती हैं। काल और इस के द्योतक सूर्य, चन्द्रमा और तारे-ग्रह ब्रह्मा के साथ ही बनाए गए थे और ब्रह्मा के दिन के निर्माता प्रत्येक कल्प में प्रलीन होने और पुनः रचे जाने के स्थान पर वे ब्रह्मा के जीवनकाल पर्यन्त रहने वाले माने गए हैं। इस सृष्टि का समय लंका में माध्य सूर्वोदय था और दिन चानेश्वर। चालू कल्प के प्रारम्भ में ब्रह्मा के जीवन के ८३ वर्ष और १५ दिन बीत चुके थे। वर्तमान कलियुग के आदि में कल्प में के ६ मन्वन्तर और २७३ युग बीत चुके थे। वटेश्वर ने (चन्द्रमा के को छोड़ कर) अश्वों और पातों को ब्रह्मा के जीवन काल के उतने चक्रों के रूप में दिया है और इम लिए, यह सब कुछ केवल शैक्षणिक अभिर्हास का नहीं है। माध्य के चक्रों या शीघ्र गतियों की संख्या में, साथ ही अविचक्रों के अंशों में अन्य सम्प्रदायों से भेद पाले हैं। एक महत्त्वपूर्ण विशेषता केन्द्र के समीकरण के आंकने में शुद्ध करण का प्रयोग है (जिस की भास्कराचार्य २तीय ने निन्दा की है। दूसरी विशेषता बुध और शुक्र के विषय में प्रथम क्रिया (अर्थात् माध्य में युक्त के आधे-समीकरण के प्रयोग) का त्याग है।

(लेखक का सार)

गणित (Mathematics)

593. *Indian Science with Special Reference to Mathematics and Magic Squares*; Ho Peng Yoke, Head of the Dep't. of Chinese Studies, Univ. of Malaya, Kuala Lumpur; T.O., 1969-70; 66-74; E. The author does not agree

with the general belief that the science has always been the monopoly of Europe and North America. He feels that the Indian mathematicians, namely, Aryabhata I and II, Brahma Gupta, Mahāvīra, Sridhara and B. āskara have made their valuable contribution to the origin and growth of mathematics, which is considered the 'queen of sciences'. The author also discusses the nature of magic square and explains different kinds of magic squares with the help of figures and diagrams.

ले. इस साधारण मान्यता से सहमत नहीं है कि विज्ञान पर यूरोप तथा उत्तर अमरीका का एकाधिकार है। ले. के मत में आर्यभट प्रथम और द्वितीय, ब्रह्मगुप्त, महावीर, श्रीवर तथा भास्कर जैसे भारतीय गणितज्ञों ने गणितविज्ञान, जिसे 'सम्पूर्ण विज्ञानों की साम्राज्ञी' कहा जाता है, की उत्पत्ति तथा विकास में बहुमूल्य योग दिया है। ले. ने 'धार्मिक वर्ग' का स्वरूप समझाते हुए विभिन्न प्रकार के यान्त्रिक वर्गों का स्पष्टीकरण चित्रों तथा तालिकाओं द्वारा किया है।

सत्यदेव मिश्र

594. *Trigonometrical Series in Karanapaddhati and the Probable Date of the Text*; Amuly Kumar Bag, HSI., Ancient Period (Unit 11), 1 Park Street, Calcutta 16; *IJHS.*, 1.2; 11.1966; 98-106; E. "The paper discusses the trigonometrical series for π , sine, cosine and tan functions contained in the Karanapaddhati. The original texts and their translations are given. As to its date C. M. Whish attempted to fix it in the beginning of the eighteenth century. Whish's derivation is untenable and it is shown that the text is likely to be contemporaneous with, or even to antedate, the *Tantrasamgraha* of Nilakantha Soma-uttvan (A. D. 1465-1545)". (Author's summary).

लेख में करणपद्धति में प्राप्त π , ज्या, कोटि-ज्या और स्तकलन के लिए त्रिकोणमितीय क्रमों का विचार किया गया है। मूल पाठ और उन के

अनुवाद दिए गए हैं। इस की तिथि के लिए, सी.एम. व्हिश् ने इसे १८ वीं शती के प्रारम्भ में निश्चित करने का प्रयत्न किया है। व्हिश् का निष्कर्ष अमान्य है और यह दिखाया गया है कि यह कृति नीलकण्ठसोमसुत्वन् (१४६५ ई.—१५४५ ई) के तन्त्रसंग्रह के समकालिक अथवा पहले के काल की हो सकती है। (लेखकीय सार)

सुधीर कुमार गुप्त

595. Development of Mathematical Ideas in India; T. A. Saraswathi, Women's College, Ranchi; *IJHS.*, 4.1-2; 5, 11.1969; 59-78; E. "The non-preservation of records and the exclusively religious design of the preserved texts make it difficult to trace the growth of scientific ideas in ancient India. Still the Indus Valley excavations show some acquaintance with geometry. In the period between the 8th and 5th c. B. C. the Sulbasūtras enunciate the Pythagorean theorem in general terms, use it for constructing squares, rectangles, triangles and trapezia and for evaluating surds. Many rational and irrational solutions of the right triangle and two general solutions occur. A clear grasp of the relationship between length and area and of the abstract idea of multiplication is noteworthy. The period from the 5th c. B. C. to 5th c. A. D. is more or less dark since no mathematical records except the Bak-hali mss. belonging to this period are preserved. The early Jaina canonical works and Piṅgala's Chandaśūtras belonging to this period are familiar with series mathematics, combinations, circle geometry and computations of the areas of simple geometrical figures. Minute calculations with large numbers imply the use of decimal place value and zero in the pre-Christian centuries and the opening centuries of the Christian era. By the time of Āryabhaṭa I (5th c. A. D.) mathematics including mensuration, equations, indeterminate analysis, series and sinechords forms part of astronomy. Brahmagupta (7th c. A. D.) made significant advances in the geometry of cyclic figures, which was advanced still further

by Nārāyaṇa in the 14th c. Before the time of Bhāskara II, the volume and surface area of spheres are correctly known and derived and indeterminate analysis, too, has advanced further. Mādhava in the 14th c. discovered integration by summation of series and with its help discovered infinite series for π , the arc of a circle and the sine and cosine chords of arcs. The geometrical bias of Sulbasūtra mathematics was preserved and improved upon by the later Āryabhaṭa school". (Author's Summary).

वृत्तलेखों की अनुपलब्धि और उपलब्ध कृतियों की एकान्तत. धार्मिक संरचना प्राचीन भारत में वैज्ञानिक विचारों के विकास की खोज को कठिन बना देने हैं। तो भी सिन्धु घाटी की खुदाई ज्यामिति के कुछ परिचय को व्यक्त करती है। ८ वीं शती ई. पू. से ५म शती ई. पू. के बीच के काल में शुल्वसूत्र सामान्य रूप में पाइथागोरस-प्रमेय का कथन करते हैं, इसे वर्गों, चतुर्भुजों, त्रिकोणों और समलम्बों के निर्माण के लिए तथा करणियों के मान निकालने में काम में लाते हैं। समकोण त्रिकोणों के बहुत से युक्त और अयुक्त हल और दो सामान्य साधन भी मिलते हैं। लम्बाई और क्षेत्रफल के सम्बन्ध का स्पष्ट ज्ञान तथा गुणन के अमूर्त विचार प्रशंसनीय हैं। ५म शती ई. पू. से ५ वीं शती ई. तक का काल न्यूनाधिक रूप में अन्वकारपूर्ण है क्योंकि वकाली हले. को छोड़ कर इस युग के और कोई गणितीय लेख उपलब्ध नहीं है। इस काल के प्रारम्भिक जैन शास्त्र और पिगल छन्द-सूत्र श्रेणी गणित, संचय, वृत्तज्यामिति और सरल ज्यामितीय आकृतियों के क्षेत्रफलों की अभिगणना से परिचित थे। पुष्कल संख्याओं के साथ सूदम परिकलन ईसा से पूर्व के और ईसा के प्रारम्भिक युगों में दशमलव के स्थान के मूल्य और शून्य के प्रयोग का सूचक है। आर्यभट (५म शती ई.) के समय तक क्षेत्रमिति, समीकरण, अनिर्धारित विश्लेषण, श्रेणी और ज्या जीवा ज्योतिष के अंग हो चुके थे। ब्रह्मगुप्त (७म शती ई.) ने

चक्रिय आकृतियों की ज्यामिति में अर्थपूर्ण वृद्धि की जिन का अंग भी विकास १४वीं शती में नारायण ने किया। भास्कर द्वितीय के समय से पूर्व ही, गणितों का आग्रह और पुस्तकें फन ठीक-ठीक ज्ञात थे और व्युत्पन्न तथा अनिर्धारित विद्वलेपर्यन्त भी अंग प्रगति कर चुका था। १४ वीं शती में माधव ने श्रेणी-संकेतन द्वारा समाकलन को खोजा और इन की सहायता से n के लिए अदन्त श्रेणी वृत्त को चाप और चापों के ज्या और कोज्या जीवा को खोजा। गुणवत्तीय गणित का ज्यामितीय अभिनति को बाद के आर्यभट्ट के सम्प्रदाय ने सुरक्षित रखा और उस में सुधार किया।

(लेखक का सार)

115. Problem of Source Materials Source Materials Concerning Astronomy and Mathematics; Amulya Kumar Bag, NISI., 1 Park Street, Calcutta 16; IJHS., 4.1-2; 5, 11.1969; 1-4; E.

596 Bionomial Theorem in Ancient India; Amulya Kumar Bag, HSI, Ancient Period, Unit II, 1 Park Street, Calcutta 16; IJHS., 1.1; 5.1966; 68-74; E. "The bionomial theorem for positive integral exponents was discovered in Europe in the 16th c. The triangular array formed by the bionomial coefficients undoubtedly played a very important role in the development. The array was known as Pascal triangle (+A.D. 1645) in Europe. It appeared originally in the work of Apianus (+1527), Stifel (+1544), Scheubel (+1545), Tartaglia (+1556), Bonbelli (+1572) and others. The same array was known in China as the 'Old Method chart of seven multiplying squares' and appeared at least two centuries earlier in the work of Chu Shihchieh (+1303), Yang Hui (+1261) and Chia Hsien (+1100). The paper, apart from early discovery of the theorem in India, shows that the same triangular array was known as meru-prastār in India and occurs several centuries earlier than that of China. "In India the bionomial problem and method of determining the bionomial coefficients arose from metrical

consideration. The early Vedic metres were based mainly on svara-saṅgita where the time element plays no important role. The development of Jagati from Triṣṭubh brought into existence the classical varṇa-saṅgita (musical sound variation). This gave rise to many different metres. Piṅgala (200 B.C.) in his sūtra 'ādyantāvupajātayaḥ' has laid down the method for determining the number of different kinds of chandas that can be produced from one of a given number of syllables (as e.g., 3, 4, 5 and so on), by varying the long and short sounds within each syllable group. Rules for different prastāras have been given by works on metre. The meru-prastāra here is identical with Pascal's triangle. According to the explanation of Halāyudha of Piṅgala's sūtra the formula for the expansion of a metre with n syllables is: $(a+b)^n = a^n + {}^nC_1 a^{n-1} b + {}^nC_2 a^{n-2} b^2 + \dots + {}^nC_{n-1} a b^{n-1} + b^n$.

वन समाकलन घातांक के लिए द्विपद प्रमेय यूरोप में १६ वीं शती में खोजा गया। द्विपद गुणांकों द्वारा रचित त्रिभुजाकार सरणी ने विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। यूरोप में यह सरणी पास्कल की त्रिभुज नाम से ज्ञात थी (+१६६५ ई.)। मूलतः यह एपियानस (+१५२७), स्टीफेल (+१५४५), स्कुबेल (+१५४५), टार्टग्लिया (+१५५६), बोम्बेली (+१५७२) तथा अन्यो के कार्य में अभिष्यक्त हुई। वहीं सरणी चीन में 'सात गुणन वर्गों का प्रणालीचित्र' नाम से ज्ञात थी और क्रम-क्रम दो शती पूर्व चू-शिये-चिएह (+१३०३), यांग ह्वे (+१२६१) और चिया ह्सीएन (+११००) के कार्य में प्रकाशित हुई। लेख में, भारत में इस प्रमेय की पूर्व खोज के अतिरिक्त, दिखाया गया है कि यह वही त्रिभुजाकार सरणी भारत में मेरुप्रस्तार कहलाती थी और चीन के से कई शताब्दी पूर्वतर सत्तावान् थी। भारत में द्विपद निर्मेय और द्विपद गुणांकों की निर्धारण प्रणाली छन्दोविचार से उद्भूत हुए। प्रारम्भिक वैदिक छन्द प्रसूतया स्वरसंगीत पर

आश्रित थे, जहाँ कालतन्त्र की कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं है। विष्णु से जगती के विकास ने लौकिक वर्णमाला (संगीतात्मक ध्वनि परिवृत्ति) को जन्म दिया। इस से बहुत से और विविध ध्वनि विकसित हुए। विंगल (२०० ई. पू.) ने अपने सूत्र 'प्रावन्तादृपजातयः' में उन विभिन्न प्रकार के ध्वनों की संख्या के निर्धारण की पद्धति बताई है जो प्रत्येक अक्षरवर्ण (= गण) में गुरु और लघु ध्वनियों के परिवर्तन से निश्चित संख्या (यथा उदाहरण के लिए, ३, ४, ५ आदि) के अक्षरों वाले ध्वनि से बनाई जा सकते हैं। ध्वनिसंख्याओं के विभिन्न प्रस्तारों के लिए नियम दिये हैं। यहाँ महत्प्रस्तार का मास्कर के विष्णु से तादात्म्य दिखाया गया है। विन्ध्यसूत्र के टीकाकार हलायुध की व्याख्या के अनुसार न संख्या के अक्षरों वाले ध्वनि के प्रस्तार का नियम यह है—

$$(a+b)^n = a^n + n a^{n-1} b + \dots + n a b^{n-1} + b^n$$

597. Bhāskara I's Approximation to Sine; R.C. Gupta, Birla Institute of Technology, Ranchi; *IJHS*, 11.2; 11. 1967; 121-126; E. "The Mahābhāskariya of Bhāskara I (c. A.D. 600) contains a simple but elegant algebraic formula for approximating the trigonometric sine function. It may be expressed as $\sin a = \frac{4a(180-a)}{40500-a(180-a)}$ where the angular arc 'a' is in degrees. Equivalent forms of the formula have been given by almost all the subsequent Indian astronomers and mathematicians. To illustrate this, relevant passages from the works of Brahmagupta (A.D. 628), Vateśvara (A. D. 904), Śrīpati (A. D. 1039), Bhāskara II (12th c.), Nārāyaṇa (A. D. 1356) and Gaṇeśa (A. D. 1520) are quoted. Accuracy of the rule is discussed and comparison with the actual values of sine is made and also depicted in a diagram. In addition to the two proofs given earlier by M.G. Inamdar .. and K. S. Shukla,

three more derivations are included by the present writer. We are not aware of the process by which Bhāskara I himself arrived at the formula which reflects a high standard of practical mathematics in India as early as 7th c. A.D." (From the author's summary).

त्रिकोणमितीय ज्या फलन के सन्निकटन के लिये भास्कर १ (शती ई. ६००) के महाभास्करीय में एक सरल परन्तु सुन्दर बीजीय सूत्र मिलता है। इसे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

$$\text{ज्या } \theta = \frac{\theta \text{अ}(१८० - \theta)}{४०५०० - \theta \text{अ}(१८० - \theta)}$$

जहाँ कोणाय चाप अ अंशों में है। पीछे के लगभग सब ही भारतीय ज्योतिषियों और गणितज्ञों ने इस सूत्र के समरूप दिए हैं। इस को स्पष्ट करने के लिए ब्रह्मगुप्त (६२८ ई.), वटेश्वर (२०४ ई.), श्रीपति (१०३९ ई.), भास्कर २ (१२ वीं शती), नारायण (१३५६ ई.) और गणेश (१५२० ई.) के ग्रन्थों से प्रकरणोपयोगी अंश उद्धृत किए हैं। इस नियम (=सूत्र) की परिशुद्धि का विचार किया गया है और ज्या के वास्तविक मूल्यों से तुलना की गई है और अरेख में चित्रित किया गया है। पहले एम. जी. इमानदार..... और के. एस. शुक्ल द्वारा दी गई दो उपपत्तियों के अतिरिक्त प्रस्तुत ले. ने तीन और व्युत्पत्तियाँ जोड़ी हैं। हम उस प्रक्रिया को नहीं जानते जिस से भास्कर १ स्वयं इस सूत्र पर पहुँचे, जो भारत में ७ वीं शती ई. के प्रारम्भिक युग में व्यावहारिक गणित के उच्च स्तर को अभिव्यक्त करता है।

(लेखक के सार में)

116. Vedic Mathematics or Sixteen Simple Mathematical Formulae From the Vedas; Jagadguru Swāmi Śrī Bhārati Kṛṣṇa Tīrthaji Mahārāja, Shankarāchārya of Govardhana Maṭha, Puri, Benaras Hindu University, Varanasi 5; P.P. 18 + xxx + 1a-1c + 367; Rs. 10.00; Rev. Ananta Kumar Bag; *IJHS.*, 3.1; 7-102-30-56; E.

598. **A Survival of Babylonian Arithmetic in New Guinea?** Derek J. De Solla Price, Deptt. of History of Science and Medicine and Leopold Pospisil, Deptt. of Anthropology, Yale Univ., New Haven, Connecticut, U.S.A.; *IJHS.*, 1.1; 5.1966; 30-33; E. The Kapauku Papuans of West New Guinea, already known for their enthusiasm for counting and numbers, have been identified as possessors of what seems to be a sexagesimal arithmetic. The scientists are familiar with such sexagesimal system because of the most important old Babylonian mathematical and astronomical computation. There appears to be a link between the Kapauku and Babylonian. Existence of Babylonian parameters and entire methods are survived in South India by oral tradition. The Kapauku method may be a similar survival.

गिनती और अंकों के अपने उत्साह के लिए पहले ही मुजात पश्चिमी नए गियाना के कपाउकु पपुअन्ज, जो कुछ षाष्टिक गणित सा मालूम पड़ता है उस के, घर्त्ता के रूप में बताए गए हैं। वैज्ञानिक इस प्रकार की षाष्टिक पद्धति से परम महत्त्वपूर्ण पुरान वेव्रीलोन की गणितय और ज्योतिष अभिगणना के कारण परिचित हैं। कपाउकु और वेव्रीलोनियाईयों में सम्पर्क सूत्र मात्र पड़ता है। वेव्रीलोनियाई प्राचल और पूरी प्रणालियां दक्षिण भारत में मौखिक परम्परा में सुरक्षित हैं। कपाउकु प्रणाली भी इसी प्रकार का अवशेष हो सकती है।

599. **Sine Table in Ancient India;** Amulya Kumar Bag; NISI., Cal; *IJHS.*, 4.1-2; 5, 11.1969; 79-85; E. "The construction of jyā table (or Indian sine table) was given great importance by Indian astronomers from 4th c. A. D. onwards as it was required to calculate the planetary positions as accurately as possible. Technique of constructing the table has been described here as their probable method of computation. Greek Ptolemy (A. D. 150) gave previously similar sine table. This was further developed into tangent and co-tangent tables

by the Arabs. The paper also contains a discussion on the priority or otherwise of the Indian and Greek origin of the sine table". (Author's summary).

“ज्यासारणी (या भारतीय ज्या सारणी) को ४ थी शती ई. से भारतीय ज्योतिषियों ने विशेष महत्त्व दिया है क्योंकि यह जितना सम्भव हो उतने ही शुद्ध रूप में ग्रहों की स्थिति के परिकलन के लिए अपेक्षित था। यहां उन की संभावित अभिगणना प्रणाली के रूप में सारणी के निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। इस से पहले यूनानी टोलेमी (१५० ई.) ने इसी प्रकार की ज्यासारणी दी। अरबों ने इस का आगे स्पर्शज्या और कोटिस्पर्शज्या के रूप में विकास किया। लेख में ज्यासारणी की भारतीय या यूनानी उत्पत्ति के पौर्वापर्य का विचार भी है।” (लेखक का सार)

600. **Second Order Interpolation in Indian Mathematics Up to the Fifteenth Century;** R. C. Gupta, Birla Institute of Technology, Mesra, Ranchi; *IJHS.*, 4 1-2; 5, 11.1969; 85-98; E. "The computational abilities of ancient Indian mathematicians are well known. The paper deals with the second order interpolation schemes found in a few astronomical works in India. The earliest one is the rule of Brahmagupta (c. A. D. 6.5) for equal intervals, which resemble the modern Newton-Stirling interpolation formula upto the second order. Later on (A. D. 665) Brahmagupta also gave a modified form of his rule to cover the case of unequal intervals. Then we come across a peculiar set of rules for second order interpolation in a work of Govindasvāmī (c. A. D. 800-850). The famous Bhāskara II (c. A. D. 1150) gave an empirical derivation of Brahmagupta's rule for equal knots. Next are described the Indian forms of the second order Taylor series approximations which are attributed to Mādhava (A.D. 1350-1410). Finally are given the forms of various rules quoted by Paramesvara (c. first quarter of the 15th c.A.D.)." (Author's summary).

प्राचीन भारतीय गणिताचार्यों की अभिगणना की योग्यता सुज्ञात है। लेख भारत में कुछ ज्योतिष ग्रन्थों में प्राप्त द्वितीय प्रकार की अन्तर्वेशन योजना का विचार करता है। इन में प्राचीनतम सम अन्तरालों के लिए ब्रह्मगुप्त (शती ई. ६२५) का नियम है, जो आधुनिक न्यूटन-स्टर्लिंग के द्वितीय क्रम तक अन्तर्वेशन सूत्र से मिलता-जुलता है। बाद में (ई. ६६५ में) ब्रह्मगुप्त ने भी विषम अन्तरालों की स्थिति को अन्तर्भूत करने के लिए अपने नियम का संशोधित रूप दिया। इस के बाद गोविन्दस्वामी (शती ई. ८००-८५०) की रचना में द्वितीय क्रम के अन्तर्वेशन के लिए विलक्षण नियमों का वर्ण मिलता है। प्रसिद्ध भास्कर २ (शती ई. ११५०) ने सम ग्रन्थियों के लिए ब्रह्मगुप्त के नियम की एक आनुभाषिक व्युत्पत्ति दी। फिर द्वितीय क्रम की टायलर की सन्निकटन श्रेणी के भारतीय रूपों का वर्णन किया गया है। ये माधव (१२५०-१४१० ई.) से सम्बद्ध किए जाते हैं। अन्त में परमेश्वर (१५ वीं शती ई. का प्रथम पाद) द्वारा उद्धृत विभिन्न नियमों के रूप दिये गये हैं। (लेखक का सार)

601. History of Plus and Minus Signs; Brij Mohan, Central Hindu College, Banares, Varanasi 5 (Present address: Deptt. of Mathematics, Humboldt State College, Arcata, California 95521, U.S.A.; *IJHS.*, 2.1; 5.1967; 47-51; E. "In this article a brief historical account of various notations adopted to indicate plus and minus signs has been given. The earliest work on the above topic, possible to trace, is that of the Egyptians (1550 B. C.). They used the symbols μ and η for plus and minus signs respectively. But these were not used in the same sense in which we employ them at present. In the works of Diophantus (c. 275) the symbol \uparrow has been used to designate subtraction. In the ancient Indian Bakshali mss. (1881) we find that the negative quantity has been denoted by + and that the symbol has been placed after the number affected. The word yut (गुत) has been used

for addition and yu (γ) has been written after the affected quantity. In the works of the 8th century in India, a small circle or dot has been placed above the negative quantity or the subtrahend has been enclosed by a small circle. In the earliest European works (1202) the symbols P^1 , P^2 or \bar{P} have been used for plus. In 1456, the word (et) was used for addition in Germany. Later on in the 16th century + and - symbols were introduced by the Germans to indicate addition and subtraction. The Dutch mathematician, Vander Hoccke (1514), was the first to use + and - to indicate operations". (Author's summary).

“इस लेख में धन और ऋण के चिह्नों को व्योक्त करने के लिए प्रयुक्त विविध संकेतों का संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण दिया गया है। उपर्युक्त विषय पर पूर्वतम रचना, जो खोजनी सम्भव है, मिश्रियों (१५५० ई. पू.) की है। उन्हीं ने धन और ऋण चिह्नों के लिए क्रमशः μ और η संकेतों का प्रयोग किया। परन्तु ये उसी अर्थ में प्रयुक्त नहीं किए जाते थे जिस अर्थ में हम आज काम में लाते हैं। डायोफेण्टस (शती २७५) की रचनाओं में ऋण को दिखाने के लिए \uparrow संकेत का प्रयोग हुआ है। प्राचीन भारतीय वक्शाकी हले. (१८८१) में ऋण राशि का घोटन + संकेत से किया गया है और इस संकेत को प्रभावित राशि के बाद रखा गया है। योग के लिए युत शब्द का प्रयोग किया गया है और प्रभावित राशि के आगे यु लिखा गया है। भारत में ८ वीं शती की रचनाओं में, ऋण राशियों के ऊपर एक छोटा वृत्त या 0 लगाया गया है अथवा ऋण राशि एक छोटे वृत्त से घेर दी गई है। योहप की पूर्वतम कृतियों में (१२०२) में धन के लिए P^1 , P^2 या \bar{P} का प्रयोग किया गया है। १४५६ में जर्मनी में योग के लिए (एट्) शब्द का प्रयोग किया गया है। बाद में १६ वीं शती में जर्मनों द्वारा जोड़ और घटाने को व्योक्त करने के

older memories once again. He holds that the Ādiviśveśvara temple was built in the 18th C. near the place of the original Viśveśvara temple merely as a memorial and not as a substitute of the then existing Viśvanātha. The present Kāla Bhairava stands on the ruins of the old Bhairaveśvara, its original site is completely infested by muslim houses and mosques etc. The Kapāla-mocana-tīrtha is now in ruins. The site of Oñkāreśvara temple is used as a muslim graveyard. The original site of Viśveśvara, totally obliterated from popular memory, appears to have been to the west of house no. A12/2 (the old site of Agniśvara) somewhere to the north of Svarliṅgeśvara. The middle well in a group of three wells in a line east and west in the old Rajghat area could be the Mahādeva Kūpa as also the original site of Mahādeva temple. The original site of the Kedāreśvara temple lay on the top of the present Hariśchandra ghāt.

मुसलमानों ने वाराणसी में यदि पांच नहीं, तो कम से कम चार वार मन्दिरों का वृत्त किया। ये मन्दिर अपने मूल या कुछ क्षीण वैभव के साथ कुछ अपने मूल स्थान में और कुछ अन्य स्थल पर, स्थानीय मुस्लिम शासकों के स्वल से दूर फिर उठ खड़े हुए। कुछ मन्दिर सदा के लिए लुप्त हो गए। उन के सम्बन्ध में लोकस्मृति भी क्षीण होने लगी। मन्दिरों का वाराणसी के महाराजा बलवन्तसिंह के शांतिपूर्ण शासनकाल में पुनः उद्धार हुआ। हाल के ऐतिहासिकों ने कुछ सुपरिचित मन्दिरों के मूल स्थल के विषय में कुछ विवाद उठाए हैं। ले. इन अनुसूचित धारणाओं को दूर करना और पुरानी लोकस्मृतियों को एक बार पुनः जागृत करना चाहता है। उस का मत है कि यदि विश्वेश्वर मन्दिर १८ वीं शताब्दी में मूल विश्वेश्वर मन्दिर के समीप ही, केवल स्मृति के विषय ही, उस काल के विश्वनाथ के प्रतिनिधि के रूप में नहीं, बनाया गया था। वर्तमान कालभैरव पुराने भैरवेश्वर के खण्डहरों पर खड़ा है। इन का मूल स्थल पूर्णतः मुस्लिम

मकानों और मस्जिदों आदि से व्याप्त है। कपाल-मोचन तीर्थ अब खण्डहरों में है। श्रीकारेश्वर मन्दिर का स्थल मुस्लिम कब्रस्तान के रूप में काम में लिया जा रहा है। लोकस्मृति से पूर्णतः लुप्त, वीरेश्वर का मूल स्थान स्वरलिङ्गेश्वर के उत्तर की ओर किसी स्थान पर, (अग्नीश्वर के पुराने स्थल) मकान संख्या ए१२/२ के पश्चिम में प्रतीत होता है। पुराने राजघाट क्षेत्र में पूर्व और पश्चिमी एक पंक्ति में तीन कुओं के समूह में बीच का कुआँ महादेव कुँ और महादेव मन्दिर का मूल स्थल भी हो सकता है। केदारेश्वर मन्दिर का मूल स्थल वर्तमान हरिश्चन्द्र घाट की चोटी पर था।

609 On the Neolithic Pottery of Eastern India; N.C Ghosh, New Delhi; JOL., XIX. 4; 6, 1970; 333-339; E. The paper makes all study of pottery found in the neolithic context over a stretch of land ranging between 20° and 27° north parallel and 85° and 94° east meridian. The data for investigation is mainly from the excavations at Kuchai, Chirand, the Sanjay Valley and Daojali Hading. There were four main traditions of neolithic wares in eastern India (five, if we consider the stone ware of Kurkutia). First in order was the red ware, both, hand-made and wheel-made. The second variety being the hand-made plain grey ware. The third, cord marked or grey coloured pottery and lastly, burnished grey ware. The area of concentration for the first was, Orissa, south-western part of Bengal and Bihar; for the second Garo hills of Assam and for the third group also Assam and for the last one western Bihar respectively.

लेख पूर्व मध्याह्न रेखा के ८५° और ९४° और उत्तर समान्तर २०° और २७° के बीच में फैले हुए भूमि के विस्तार पर नवपाषाणयुग के सम्बन्ध में प्राप्त मृत्पात्रों का अध्ययन प्रस्तुत करता है। अनुसन्धान की सामग्री प्रमुखतः कुचर, चिरण्ड, संजय घाटी और दाओजलि हडिंग की खुदाइयों से प्राप्त हुई है। पूर्वी भारत में नवपाषाण-

युगीन भाण्डों की चार (और यदि कुरकुटिया के पायाण भाण्डों को भी विचारावीन ले लें, तो पांच) परम्पराएं थीं। क्रम में पहली हाथ से बने और चक्र से बने—उभयविव लाल वर्तनों की थी। दूसरा भेद हाथ से बने सादा घूसर पात्रों का है। तीसरे धागा से अंकित या घूसर रंग के पात्र तथा अन्तिम चमकाए हुए घूसरवर्ण पात्र थे। जमाव-क्षेत्र क्रमशः पहले के उड़ीसा, बंगाल का दक्षिण-पश्चिमी अंचल और बिहार, दूसरे का असम की गारो पहाड़ियां, तीसरे का भी असम और अन्तिम का पश्चिमी बिहार थे।

610. Carved Pillar of Gupta Year 61; R. C. Agrawala, New Delhi; JOL, XIX 4; 6.1970; 355-356; E. This pillar preserves an interesting nude figure of a two armed male divinity in standing pose. It can not be a figure of Lakulīśa since it is not carved in the ūrdhvaretas pose. The figure on the Mathura pillar, of Gupta Year 61 very prominently depicts the pot-belly. His hair-locks are falling on the shoulders; he has got a vertical third eye mark on his forehead. In his left hand he appears to hold a cup. He, therefore, represents a Bhikṣāṭaṇa Śiva, also known as Bhairava. Descriptions of the Viṣṇudharmottara Purāṇa (III. 59.1-2) and Gupta terracottas from Ahicchatrā corroborate the above identification.

इस खम्भे में खड़ी मुद्रा में दो भुजाओं वाले एक नर देवता की एक रोचक नंगी मूर्ति रक्षित है। यह लकुलीश की मूर्ति नहीं हो सकती है क्योंकि यह ऊर्ध्वरेतस मुद्रा में नहीं काटी गई है। गुप्त वर्ष ६१ की मथुरा स्तम्भ की मूर्ति स्पष्ट रूप में पात्र-उदर को चित्रित करती है। उस की जटाएं कर्णों पर गिर रही हैं, उस के मस्तक पर तीसरी आंख का ऊर्ध्वधर चिह्न है। बाएं हाथ में वह एक प्याला धारण किये हुए मालूम पड़ता है। अतः वह भैरव नाम से भी ज्ञात, भिक्षाटन शिव की मूर्ति है। विष्णुसमोत्तर पुराण (३.५६.१-२) के वर्णन

और अहिच्छन्ना से गुप्त पत्र मृन्मूर्तियां उपर्युक्त अभिज्ञान की पुष्टि करती हैं।

611. The Copper-hoards of the Gaṅgā Valley A New Appraisal of the Problem; S. Nath Allahabad; JOL, XIX. 3; 3.1970; 254-264; E. Starting with a description of the contribution of B. B. Lal and others to the study of Copper Hoards the paper makes an attempt to place before scholars some more copper implements and discusses afresh theories propounded by Geldren, S. Piggot, B. B. Lal and H. D. Sankalia. The Gangetic belt is the most fertile soil for Copper Hoards. The Copper Hoards found here represent the following types: flat celts, shouldered celts, bar celts, rings, harpoons, swords, antennae swords and anthropomorphic figures. These hoards do not belong to the Aryans. Their authors may be tribes inhabiting India before the advent of Aryans. This culture was junior contemporary of Harappan Civilization.

ताम्रपुंजों के अध्ययन में बी. बी. लाल और अन्यो के योगदान के वर्णन से प्रारम्भ हो कर यह लेख विद्वानों के समक्ष कुछ और ताम्र उपकरणों को प्रस्तुत करने का प्रयास करता है और गेल्डरन, एस. पिगोट, बी. बी. लाल और एच. डी. संकालिया द्वारा प्रस्तुत वादों का नये सिरे से विवेचन करता है। गंगा का क्षेत्र ताम्रपुंजों के लिए परम उर्वर भूमि है। यहां मिले ताम्रपुंज आगे लिले प्रकारों का प्रतिनिधित्व करते हैं: चपटी कुल्हाड़ियां, कन्वेदार कुल्हाड़ियां, छड़ कुल्हाड़ियां, छल्ले, कांटेदार वच्छियां, तलवारें, शृंगिका तलवारें और पुरुषविव आकृतियां (=मूर्तियां)। ये पुंज आर्यों के नहीं हैं। इन के रचयिता आर्यों के आगमन से पूर्व भारत में रहने वाली जनजातियां हो सकती हैं। यह संस्कृति हड़प्पा सभ्यता की अवर समकालीन है।

६१२. जूना : विश्वखल पायाणों की ऐतिहासिक नगरी; भूरचन्द जैन; राय., १७.१.१९७१;

३:७-८; ४:६; हि.। राजस्थान का बाड़मेर जिला पुरातत्त्व की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। जूना १२ वीं से १७ वीं शती तक बसा हुआ था। यहां असंख्य भवनों के खण्डहर, चार शिलालेख और तीन जैन मन्दिरों के भग्नावशेष हैं। मन्दिरों की कला और शिल्प दिलवाड़ा मन्दिरों के समान हैं। आक्रान्ताओं के भय से सुरक्षार्थ भंवरों में दवाई मूर्तियों में से कुछ मिल गई हैं।

613. 2,000 - year - old rampart found; (News); H.T., 17.1.1971; 1:3; E. It is a report about the excavation of a rampart made of laterite stone blocks of Sisupalagarh fort (3rd c. B. C) in Orissa. Ornaments of Kusana age have been found here.

यह उड़ीसा में शिशुपालगढ़ दुर्ग (३ री शती ई. पू.) की लैंटेराइट पाषाण शिलाओं की बनी हुई प्राचीर की खुदाई की सूचना है। यहां कुपाणकालीन आभूषण मिले हैं।

614. 12th C. Temple Remains Discovered; Spokesman of the Archaeological Deptt. of Govt. of India in Bombay on 24.4.1971; H. T., 25.4.1971; 12:3; E. The remains of a stone temple of 12th c. were found at Ellora last week during excavation work on the site of an ancient mound, about 100 metres away from the famous Jain rock-cut cave No.32.

प्रसिद्ध जैन पहाड़ी में काटी हुई गुफा संख्या ३२ से लगभग १०० मीटर दूर, एक पुराने खेड़ की जगह पर खुदाई के काम में पिछले सप्ताह ऐलोरा में १२ वीं शती के एक पत्थर के मन्दिर के अवशेष मिले हैं।

615. A Tibetan Thankā in a Private Collection; P. Van Der Wee, Antwerp (Belgium); JOI., XIX.3; 3.1970; 265-272; E. The thankā described here is of a very fine execution, both in colours and design. It has a great iconographical value because of the captions and stray inscriptions. The paper is in continuation of a previous one 'Tibetan Paintings' (Oriental Art, December 1969).

Figure 1 is the man with the turquoise roof and occupies the central place. He is probably Gyu-thog-pa, a Tibetan physician. Figure 2 probably represents the pantheon of Gods into five groups related to one another. Figure 3 gives an outline of these five groups.

यहां वर्णित थंका रंगों और अभिकल्प दोनों में बहुत ही सुन्दर निष्पत्ति का है। इस का मूर्ति-कलाविषयक मूल्य शीर्षों और बिखरे हुये अभिलेखों के कारण महान् है। यह लेख पहले एक लेख 'तिब्बती चित्र' (ओरियण्टल आर्ट, दिसम्बर, १९६६) के अनुबन्ध में है। पहली आकृति फीरोजे की पृष्ठ वाला पुरुष है, जो मध्य स्थान को घेरे हुए है। यह सम्भवतः ग्यु-थोग-पा, एक तिब्बती वैद्य है। दूसरा चित्र सम्भवतः एक दूसरे से सम्बद्ध पांच वर्गों में देवसमूह को चित्रित करता है। तीसरा चित्र इन पांच वर्गों की रूप रेखा प्रस्तुत करता है।

५२०. नागीणा नित्त का भला; शान्ति गोपाल पुरोहित, हि. वि., गवर्नमेंट कालेज, नागौर; सप्त., १०.१-२; १-२.१९७१; ३६-४१; हि.।

६१६. पुरातत्त्व के परिप्रेक्ष्य में—ब्रज परिसर, जैनधर्म एवं भगवान् नेमिनाथ; विजय शंकर श्रीवास्तव; सप्ता., १९७०; १६-२२; हि.। प्रस्तुत लेख में जैन तीर्थङ्करों का मथुरा से सम्बन्ध, जैन साहित्य व ब्रजपरिसर, ब्रज मण्डल और जैन-पुरातत्त्व, भगवान् नेमिनाथ और उन से सम्बद्ध जैन साहित्य, भगवान् नेमिनाथ की मूर्तियां एवं मन्दिर आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

शांता भानावत

617. Post-Harrappan Culture in W. Bengal ? (News dated New Delhi, 1.2.1971); H. T., 2.2.1971; 3:4-6 (bottom); E. S. N. Samanta, Curator of Burdwan Univ. Museum has discovered archaeological sites dating from proto-historic to iron age down to medieval period. The earliest habitation was almost identical with Mahisadal and Pandu Rajar Dhibi and the latest is the remains of a brick-

built stupa belonging to medieval period. The site was in occupation in the age of the Guptas. The antiquities collected from the mounds include examples of plain and painted black and red ware from coarse to fine variety, block ware, bright red ware, incise pottery (both plain and painted), beads and waste-flakes. These various types of pottery are similar to those found in the Ajay valley. The occupation here produced stone-blade industry.

एस. एन. समन्त, अध्यक्ष, बर्दवान वि. वि. संग्रहालय ने प्रागैतिहासिक से लौह युग और मध्य युग तक की तिथियों वाले पुरातत्व के स्थल खोजे हैं। पूर्वतम निवास महिसदल और पाण्डु राजार दीवी से लगभग समरूप था और अर्वाचीनतम मध्य युग के ईंटों के बने स्तूप के खण्डहर हैं। यह स्थल गुप्तकाल में बसा हुआ था। इन टीलों से प्राप्त पुरावशेषों में अपरिष्कृत से परिष्कृत सादा और चित्रित काले और लाल माण्डों के, पापाए पात्र, चमकीले लाल भांड (सादा और चित्रित-) दोनों ही प्रकार के काट कर बनाए वर्तन, मनके और क्षीण शल्कल के निदर्शन मिलते हैं। विभिन्न प्रकार के ये मृद्भाण्ड अजम वादी में प्राप्त गुत्पात्रों के समान हैं। यहाँ के व्यवसाय ने पापाए के फलकों के उद्योग को जन्म दिया।

सुधीर कुमार गुप्त

618. *The First Parthian Ostracoon From Iran*; A. D. H. Bivar; *JRAS* (GBI), I. 1970; 63-66; E. *The Ostracoon from the Qūmis excavation bears inked characters in the Parthian script and is palaeographically comparable with the numerous ostraca from the excavations at Nisā called "Wine Series."* In the Qūmis Ostracoon several of the characters are rather similar. Distinction between them requires care. The author examines the letters of this Ostracoon comparing them with the Nisā letters, presents a transliteration of the text of the ostracoon with a commentary and finally holds that the Ostracoon from Qūmis is without

doubt in Parthian script of c. first c. B. C. The document is quite unlike the "Wine Series" from Nisā and seems to represent a class of ostraca hitherto unknown It represents a list of personal names.' It is not a list of payments in cash made by the persons named.

व्युमिस की खुदाई से प्राप्त सूच्यात्मक अभिलेख (—श्री'स्ट्रेकन) में पार्थिया की लिपि में स्पाही वाले अक्षर मिलते हैं और इन की पुरालिपि में 'मदिराकम' कहलाने वाले निसा की खुदाई से प्राप्त पुष्कल संख्या वाले सूच्यात्मक अभिलेखों से तुलना की जा सकती है। व्युमिस के सूच्यात्मक अभिलेख में बहुत से अक्षर लगभग एक जैसे हैं। उन में भेद के लिए सावधानी अपेक्षित है। ले. इस सूच्यात्मक अभिलेख के अक्षरों की निसा अक्षरों से तुलना कर परीक्षा करता है, टीका सहित इस सूच्यात्मक अभिलेख के पाठ का लिप्यन्तरण प्रस्तुत करता है और अन्त में मानता है कि व्युमिस का सूच्यात्मक अभिलेख निःसन्देह ई. पू. १म शती की पार्थिया की लिपि में है। यह अभिलेख निसा की मदिराकम के नितान्त अनुरूप है और अब तक अज्ञात सूच्यात्मक अभिलेखों की श्रेणी का प्रतिनिधित्व करता है।
.... इस में कुछ व्यक्तियों की सूची है। इस में उल्लिखित व्यक्तियों द्वारा किये गये नकद भुगतानों की सूची नहीं है।

619. *A Fragment of a Frescoed Frieze Depicting Dipaṅkara Buddha in Mirān, Central Asia*; M. S. Bhat, Univ. of Bombay; *UMCV.*, 1970; 587-590; E. The paper deals with a typical scene of Buddhist iconography (listed as M. III. 003) which once adorned the interior wall of ruined Buddhist shrine at Mirān. The author completes the gaps in the description of the scene given by A. Stein and F. H. Andrews and surmises on the basis of a story in Mahāvastu that it depicts Dipaṅkara Buddha, the first Buddha who came to the earth, who prophesied about the birth of Gautama Buddha and who is held in high esteem both by Hīnayāna and Mahāyāna

Buddhists. The paper contains a plate containing a photo of the Freize.

लेख बौद्ध मूर्तिकला के (एम. ३.००३ पर अंकित) एक आदर्शभूत दृश्य का वर्णन करता है जो कभी मिरान में जोर्ण बौद्ध मन्दिर के अन्दर की भित्ति को सुशोभित करता था। ले. ए. स्टाइन और एफ. एच. एण्ड्यूज द्वारा प्रदत्त इस दृश्य के वर्णन में कमियों को पूरा करता है और महावस्तु की एक कथा के आधार पर मानता है कि यह उस दीपङ्कर बुद्ध को चित्रित करता है जो पृथिवी पर आने वाला पहला बुद्ध था, जिस ने गौतम बुद्ध के जन्म की भविष्य वाणी की थी और जो दोनों ही हीनयान और महायान बौद्धों द्वारा परम आदृत किया जाता है। लेख में फ्रीज के चित्र का पत्रक भी है।

सुधीर कुमार गुप्त

६२०. भरतपुर के निकट प्राचीन अवशेष मिले; (समाचार); रा.प., २६.३.१९६१; ३; हि.। राजस्थान के पुरातत्त्व एवं संग्रहालय विभाग के एक दल ने भरतपुर से लगभग दस मील दूर दारापुर के प्राचीन खेड़े में चित्रित भूरे (-सलेटी), लाल और काले रंग के लगभग ३.००० वर्ष पुराने मृद् भांडों की खोज की है। यह स्थान भरतपुर-रूपवास सड़क पर है। इसी स्थान से इस दल को कुपाण कालीन और पत्थर से निर्मित मूर्तियां (Sculptures and Terracotta) भी प्राप्त हुई हैं। [हिटा., २६.१.१९७१; ४:६-८ भी देखें।] पुरातत्त्वविभाग द्वारा भरतपुर-आगरा सड़क पर भरतपुर से चार मील दूर एक प्राचीन स्थल तोह में भी खुदाई की जा रही है, जिस में प्राप्त सामग्री भरतपुर के संग्रहालय में प्रदर्शित की जायगी।

अनिल कुमार गुप्त

६२१; मदन में समुद्र; (समाचार); रा.प., १.२.१९७१; १:२; हि.। जयपुर ३१.१.१९७१ की सूचना के अनुसार लगभग पांच हजार लाख वर्ष पूर्व प्री-कैम्ब्रियन नाम से ज्ञात काल में उदय-

पुर से १३ किलोमीटर पूर्व में कानपुर के पास मदन में दिल्ली तक फैला हुआ समुद्र था।

सुधीर कुमार गुप्त

622. Report on The Excavation At Ter : 1958; Author & Pub. B. N. Chapekar, Poona; 1969; 130; Figures 27; Plates 8; 20-00; Rev. M. S. Mate; BDCRI.; XXVIII. III-IV; 1967-68; 227-228; E. This work consists of 12 chapters. The introduction gives a brief review of previous researches regarding Tagara. It also gives a brief summary of the results of the excavations. The first chapter gives details of stratigraphy, the second discusses the chronology. The rest give a detailed account of all antiquities recovered from the site, comparisons being cited in footnotes. The excavations have yielded two main cultural phases, the Sātavāhana (200 B. C. to 100 A. D.) and the other one, Indo-Roman (100 A. D. to 300 A.D.)

इस कृति में १२ अ. हैं। भूमिका तगारा से सम्बन्धित पहली खोजों की संक्षिप्त समीक्षा देती है और खुदाइयों के परिणामों का संक्षिप्त सार भी। अ. १ में स्तरविज्ञान के विस्तार और अ. २ में तिथिक्रमविवेचन हैं। शेष में स्थल से प्राप्त समस्त पुरावशेषों का विस्तृत विवरण दिया गया है, तुलनाएं पादटिप्पणियों में उद्धृत की गई हैं। खुदाइयों ने दो प्रमुख सांस्कृतिक रूप प्रस्तुत किए हैं—एक सातवाहनीय (२०० ई.पू.से १०० ई. तक) और दूसरा भारत-रोमन (१०० ई. से ३०० ई. तक)।

६२३. लाडनू : तीन हजार वर्ष प्राचीन जोधपुर रियासत में लक्षपतियों की वस्ती; मुन्ना लाल पुरोहित; रा.प., ३१.१.१९७१; ३-४; हि.। यह नगर कम से कम ३.००० वर्ष पूर्व जाहलियों द्वारा बसाया गया था। यहां १० वीं शती के जिलालख खुदाई में प्राप्त हुए हैं। खुदाइयों में प्राचीन मकान और मूर्तियां मिलती हैं। लाडनू आगरा से प्रहमदावाद के मार्ग में था। यह मोहिल

क्षेत्र की राजधानियों में से एक था। इस ने अनेकों राजनीतिक उथल-पुथल देखी हैं। यह मोहिल, जोधपुर, बीकानेर और मुगलों आदि के शासन में रहा है। इस के गढ़ पर मुस्लिम छाप है, अतः यह मुसलमानों द्वारा निर्मित है। यहां धनी मानी सेठ रहते आए हैं। नाम का ठीक-ठीक कारण अज्ञात है। दो जनश्रुतियां इस नाम को लाड़ी और लाड़खानी से व्युत्पन्न मानती हैं।

सिन्धुघाटी संस्कृति

(Indus Valley Culture)

624. **Finns Unlock Secret of Indus-Valley Script;** *Hindustan Times Correspondant, Despatch, 6.2.1971; H. T., 6.2.1971; 3:5-6; E. Asko Parpola a research associate of the Scandinavian Institute of Asian Studies, Helsinki and his three colleagues claim to have already deciphered the Indus Script with the help of a computer into which was feeded the information on the number of signs that occurred, how many times they occurred, their sequence, whether the suffixes occurred at the end or in the beginning or both sides of the signs. The result was an index of 200 closely printed papers. Out of 350 signs used in 2500 inscriptions only 30 signs have been deciphered with certainty. Most of the signs are proper names, largely of Hindu gods and have been rechecked with a reconstruction of religious history. The job may be completed in about a decade. The script is basically Dravidian. The findings are similar to those of the Russian team employing a computer. "The Finns however claim to be the first to find the suffixes in the inscriptions and put them in a system."*

हेल्सिंकी की स्केण्डिनेविया के एशियाई अध्ययन के संस्थान के बोध सहायक, एस्को पार्पोला और उस के तीन सहयोगियों ने दावा किया है कि उन्होंने ने सिन्धुलिपि का कम्प्यूटर की सहायता से व्याख्यान कर लिया है। कम्प्यूटर में प्रयुक्त संकेतों की संख्या, वे कितनी बार प्रयुक्त हुए हैं, उन के

क्रम, क्या प्रत्यय संकेतों के पहले, पीछे या दोनों ओर आए हैं—ये सूचनाएं डाली गईं। परिणाम २०० धिनके छपे हुए पत्रों की तालिका थी। २५०० अभिलेखों में प्रयुक्त ३५० संकेतों में से केवल ३० संकेत ही निश्चय के साथ स्पष्ट किए जा सके हैं। अधिकांश संकेत व्यक्तिवाचक नाम हैं, अधिकतर हिन्दू देवताओं के और धार्मिक इतिहास के पुनर्निर्माण द्वारा उन की जांच कर ली गई है। यह कार्य लगभग एक दशती में पूरा होगा। लिपि मूलतः द्रविड़ है। निष्कर्ष कम्प्यूटर का प्रयोग करने वाले रूसी दल के निष्कर्षों के समान हैं। तो भी फिन्नों ने अभिलेखों में प्रत्ययों को खोजने में अपने को सर्वप्रथम होने का और उन्हें व्यवस्था में प्रस्तुत करने का दावा किया है।

४२४. भारतीय कामशिल्पमीमांसा; सुरेश र. देवापाण्डे; नभा., १०.१९७०; ३८-४३; म. १

625. **Mālvan—Further Light on The Southern Extension of the Indus Civilization;** *F. R. Allchin and J. P. Joshi; JRAS (GBI), 1.1970; 20-28; E.* The paper describes the events leading to discovery of Harappan sites in India with a special account of Mālvan excavations. This place is on the lower estuary of the Tāptī river east of Dumas. Here pottery of 5 types has been discovered. The other items of interest are cattle bones and bones of sheep or goat, some stone blades, blade cores, rubbing stones, hammar stones. These sites are essentially esturine in character. The authors disagree with Rao's views about the description of this culture and name it as Post-Harappan. The lines of communication were primarily by sea towards the coast of Saurāstra. The paper also formulates hypotheses about the discovery of coarse ware found here.

लेख मालवान खुदाइयों के विशेष विवरण के साथ भारत में हड़प्पा के स्थलों की खोज तक ले जाने वाली घटनाओं का वर्णन करता है। यह स्थान 'ड्यूमस' के पूर्व में तापती नदी के निचले

मुहाने पर है। यहां ५ प्रकार के मृद्भांड मिले हैं। रुचि की अन्य वस्तुएं ये हैं—पशुओं की अस्थियां और भेड़ या बकरी की हड्डियां, कुछ पाषाण फलक, फलक क्रोड़, वर्षण के पत्थर, पाषाण-हथौड़े। ये स्थल मूलतः प्रकृति में मुहानों से सम्बद्ध हैं। ले. का इस संस्कृति के विषय में राव के मतों से मतभेद है और इसे प्रत्यक् हड़प्पन नाम देते हैं। यातायात के सूत्र मुख्यतः समुद्र द्वारा सौराष्ट्र के समुद्रतट की ओर था। लेखक ने यहां मिले अपरिष्कृत मृत्पात्रों की खोज के विषय में अपने अनुमान दिये हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

६६. मोहन जो दड़ो से सेनुवन्ध तक एक दृष्टि में; किशोरी दास वाजपेयी; नभाटा., १७.१. १९७१; ४:६; हि०।

६२६. सिन्धु घाटी की लिपि; उपेन्द्र नाथ राय, जलपाई गुड़ि (प. बंगाल); शोप., ३१.३; ७-६.१९७०; ७०-७२; हि.। इस में ले. ने स्वाहा, १.१ में प्रकाशित फतहसिंह के लेख "सिन्धुघाटी की लिपि में ब्राह्मणों और उपनिषदों के प्रतीक" की अलोचना की है और लिखा है कि फतहसिंह ने वर्णमाला का जो ढांचा प्रस्तुत किया है, उस में एक ही वर्ण के अनेक रूप बतलाए हैं। इस अनेकरूपता का फतहसिंह ने कोई सन्तोषजनक समाधान नहीं दिया है। अन्तःसाक्ष्य से वेदों से पूर्व भी लिपि का अतिर सद्भ है। उस युग में जब लिपि वर्तमान ही थी, तो वर्णमाला के अक्षर आत्मा आदि के विभिन्न रूपों के प्रतीक इत्यादि कैसे होंगे। फतहसिंह के अनुसार यदि लिपि का उदय ब्राह्मणों और उपनिषदों के उत्कर्ष से बाद हुआ, तो यह मानना असम्भव और भ्रान्त है। फतहसिंह का भौगोलिक वर्णन भी समस्त साहित्यिक परम्परा के विरुद्ध है। उन का यह मत भी भ्रान्त है कि वे मुद्राओं दर्शन के विद्याभियों के लिए मिश्रण उपकरण के रूप में दार्शनिक भावों को स्पष्ट करने के लिये बनाई गई थी, वनों कि मिश्रण-प्रक्रिया में मृत

उपकरणों की आवश्यकता अधिकतर अल्पवयस्क छात्रों को सिखाने के लिये होती है। दर्शन को पढ़ने वाले अमूर्त चिन्तन में अभ्यस्त होते हैं, अतः उन के लिये ऐसी चीजों की आवश्यकता नहीं होती। दूसरी बात, प्राचीन साहित्य के अध्ययन से हम उस युग की शिक्षापद्धति का पर्याप्त विवरण पाते हैं, परन्तु इस तरह के उपकरणों के व्यवहार की बात नहीं मिलती। यह असम्भव है कि इस पूर्व-प्रचलित उपयोगी रीति को बाद में दर्शन के शिक्षण के लिये एक दम काम में ही न लाया जाता। अत एव सिन्धु मुद्राओं का पाठ अब भी छान-बीन का विषय है।

नाथूलाल पाठक

६२७. सिन्धुघाटी की लिपि का क्या अर्थ है? आई. सेरेत्रियाकोव, प्राच्य अध्ययन इन्स्टीट्यूट के वी. ७५ शोधकर्मी तुवंश शास्त्रीय इन्स्टीट्यूट लैनिग्राद; सोवियत भूमि, ७; ४. १९७०; २६-३०; हि.। रूसी विद्वानों द्वारा कम्प्यूटर की सहायता से सिन्धुघाटी के पाठों के आवृत्ति के आधार पर वर्गीकरण, भाषा., दुर्गा और मुडा भाषाओं से तुलना से सिन्धुघाटी भाषा की उपसर्गहीनता के निष्कर्ष तथा सर्वापि तारे और रक्षार्थक चिह्नों के विवरण से इस भाषा के द्विबिड़ भाषा होने की मान्यता का संक्षिप्त विवरण है।

सुधीर कुमार गुप्त

६२८. सिन्धुघाटी-लिपि का त्रैमासिक 'स्वाहा' में रहस्योद्घाटन; पद्मधर पाठक, वरिष्ठ शोध सहायक, राजस्थान प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान, जोधपुर; राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर का वार्षिक प्रतिवेदन १९६७-६८ तथा १९६८-६९; २८-३२; हि.। इस में स्वाहा में फतहसिंह के सिन्धुघाटी लिपि विषयक लेख (ऊपर सारसंख्या ६४) की उत्तरद्वियों का परिचय दिया गया है। सिन्धुघाटी मुद्राएँ दर्शन की पुस्तकें छापने के काम आती थीं। इन के चित्र और लेख रहस्य-घोर

शेत्र में धारोराव नामक ग्राम में इस लेख में उद्धृत एक शिलालेख मिला है, जो चाहमान इतिहास के लिए सामग्री प्रस्तुत करता है। अभी तक नाडोल के चाहमान नरेश रायपाल के सात शिलालेख ज्ञात थे, जिन के अनुसार चाहमान नरेश रायपालदेव का राज्यकाल संवत् ११८६ से १२०२ तक होना बताया गया है। धारोराव के अम्बिका मन्दिर में खुदे हुए संवत् १२०३ के प्रकृत लघु शिलालेख की दृष्टि में अब रायपाल देव का राज्यकाल एक साल बाद अर्थात् १२०३ तक माना जाना चाहिये।

नाथूलाल पाठक

६३६. चित्तौड़ दुर्ग के अप्रकाशित जन लेख; रामवल्लभ सोमानी, जयपुर; शोप., २१.३; ७-६.१६७०; ५६-५८; हि०। इस लेख में सतवीस देवरी की मूर्ति का लेख और शृंगार चंबरी के शिलालेख उद्धृत किये गये हैं। प्रथम में सतवीस-देवरी मन्दिर के सभामण्डप में उत्तराभिमुख प्रतिमा की चरण चौकी पर जयकीर्ति मूर्ति के उपदेश से शीतलनाथ की प्रतिमा बनाने का उल्लेख हुआ है। इस का काल संवत् १४८४ दिया गया है। दूसरे लेख के अनुसार शृंगार चंबरी का निर्माण १३५८ में हुआ था। महाराणा कुम्भ के शासन काल में इन का केवल जीर्णोद्धार कराया गया था जो वि. न. १५०५ में ऋण्डारी बेल के द्वारा पूर्ण हुआ था।

नाथूलाल पाठक

६३७. जेठक महत्तर; बलबन्तसिंह मेहता, भूतपूर्व उद्योग एवं खान मन्त्री, राजस्थान, उदयपुर; सस्मा.; १९७०; ६-१५; हि०। प्रस्तुत लेख बसन्तगढ़ (बटनगर) के पास प्राप्त वि. सं. ७०३ के १२ पत्तियों के शिलालेख के आधार पर लिखा गया है। यह शिलालेख इस के पूर्व भी दो स्थानों पर प्रकाशित हो चुका है। अब तक अमवश इसे मेवाड़ के प्राचीनतम गुहिल-वंश से सम्बद्ध माना जाता रहा है। आसोपा ने इसे आत्मदाह का विनिष्ट लेख माना। ये दोनों ही मत ठीक नहीं

हैं। ले. ने उक्त आंतियों का निवारण करते हुए स्पष्ट किया है कि वस्तुतः यह बसन्तगढ़ के निवासी महाजन संघ के प्रमुख जेठक की प्रशस्ति का लेख है जो उस की मृत्यु पर उस के दाहसंस्कार के स्थान पर उस की स्मृति में लगाया गया था। इस के पठन से तत्कालीन लोकजीवन, उद्योग, साहित्य, व्यापार, निगमसंगठन आदि पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। ले. ने चण्डिका, आगरम, आरण्य, कूपगिरि, महत्तर, बटनगर आदि पर टिप्पणियाँ भी दी हैं और मूल पाठ भी।

नरेन्द्र भानवत

638. Two Gujarati Documents Bearing on 'Amāri' or Non-slaughter of Animals; M. R. Majumdar, Baroda; *JOI.*, XIX 3; 3.1970; 286-288; E. The paper presents relevant portions about non-killing from two Gujarati documents—one dated Samvat 1507 and the other dated Hijri 1221 (Samvat 1848, i. e., 1792 A. D.). The first declares that slaughter of every kind was prohibited on the 5th, 8th, 11th and 14th days of both the halves of the month and also on the 30th or the New-Moon day—i. e. 9 days in all in a month in place of three days in a month. The other was a mutual agreement between the Butcher community of Baroda and the Mahājanas, the former agreeing not to slaughter any animal on the enumerated days—116 in a year. If Id fell on one of these enumerated days exemption from non-slaughter was sought from the Government for two days. The paper contains two photos of both the sides of the document dated Samvat year 1848.

लेख एक सं. १५०७ और दूसरे हिज्री १२२१ (संवत् १८४८, अर्थात्, १७६२ ई०) की तिथि के दो गुजराती लेखों से बहनिषेध से सम्बन्धित विषयानुसूल सन्दर्भ प्रस्तुत करता है। पहला घोषित करता है कि मास के दोनों पक्षों की पंचमी, अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी को और ३० वें अथवा नए चन्द्र दिवस को भी—मास में तीन दिनों के स्थान में सारे मास में नौ दिन-दूर प्रकार का बंध

निषिद्ध था। दूसरा बर्षा के कृषाइयों और महा-
जनों का पारस्परिक सम्मन्ता है। पहले ने परि-
गणित दिनों - वर्ष में ११६ में किसी भी पशु का
वध न करना स्वीकार किया है। यदि ईद इन
निषिद्ध दिनों में से किसी दिन पड़ती थी, तो चर-
कार से दो दिन के लिए वधनिषेध से छूट मांगी
जाती थी। लेख में संवत् वर्ष १८४८ की तिथि के
लेख के दोनों ओर की प्रतिकृतियाँ (=फोटो) भी
दो गई हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

639. Notes on Aśoka's Seventh
and Ninth Rock Edicts; M. A Mahen-
dale, Deccan College, Poona; UMCV.,
1970; 581-585; E. The author presents
some changes in Hultzsch's construction
and translation of Aśoka's seventh and
ninth Rock-Edicts. He suggests that
(i) in Rock Edict VII Section E nathi
should be construed with all the three,
dāne, sayame and bhāvasudhi. (ii) It is
better to take iminā in Rock Edict IX
Section L to refer to practice of morality.
(iii) In this edict again in Section L,
akālika should be read as alokika. (iv)
In Section M pavasati is used in place of
pasavati, which needs emendation. He
also traces the cause of this event. (v) In
section N it is better to explain ubhaye-
sam as 'both the worlds.'

लगाया है। (५) छण्ड एन (=१४) में उभयसं का
व्याख्यान 'दोनों लोक' करना अधिक अच्छा है।

640. New Light on Rānā Kum-
bha's Praśasti; S. Anand Sastry; Baroda;
JOI., XIX.4; 6.1970; 428-432; E. Some
fragments of inscriptions were discovered
at Kumbhalgarh Fort. An examination
disclosed that they formed part of a
praśasti of Rānā Kumbha. The author
has placed these fragments under two
groups A and B and has studied them.
This study makes it clear that this dis-
covered slab starts with or about the 35th
śloka and hence appears to be the part
of a praśasti whose major portions are in
the Udaipur Museum (No. 5). The sec-
ond slab for the inscription (No. 6) of
the museum could not be identified from
the available fragments as the serial num-
bers do not tally. A look at the table
(given in the paper indicating the num-
ber of verses in each slab of the praśasti)
lends the evidence that possibly there
existed not only a fifth slab (as surmised
by G. H. Ojha) but a sixth one as well
for the above praśasti.

कुम्भलगढ़ दुर्ग में अभिलेखों के कुछ अंश मिले
थे। उन की परीक्षा ने पता चला कि वे राणा कुम्भा
की प्रशस्ति के अंग थे। लेने इन अंशों को दो वर्गों
ए और बी में रक्खा है और उन का अध्ययन किया

६४१. महाराणा जयसिंह के दो अप्रकाशित आज्ञापत्र; जगदीश भाटी, प्राध्यापक, इतिहास वि०, श्रमजीवी कालिज, उदयपुर (राज०); जराइहिरि., ६.४; १०-१२.१९७०; ४०-४३; हि०। यहाँ मेवाड़ के महाराणा जयसिंह के दो आज्ञापत्रों का प्रकाशन किया गया है। ये सम्भवतः फाड़े गये पत्रों के कागजों को जोड़ कर चित्र बनाने के काम में लाने के कारण बच गए हैं और पूरे पढ़े जा सक रहे हैं। कुछ अन्य पत्र भी हैं, जो पूरे नहीं पढ़े जा सके हैं। इन में से एक पत्र के अंश एकाधिक चित्रों में मिलने हैं। आज्ञापत्रों के सम्पादन में पादटिप्पणियाँ भी हैं जिन से मूल लेख का भाव समझने में सफलता मिलती है।

६४२. श्रीमाल नगर का ताम्रशासन; अग्र चन्द नाहटा; जराइहिरि., ६.४; १०-१२.१९७०; ४४-४७; हि०। इस में मध्यकाल में गुर्जर प्रदेश की राजधानी, श्रीमाली ब्राह्मण एवं वैश्यों के मूल स्थान श्रीमाल (=भीममाल) में सेठ तेजमल के पास प्राप्त ८-९" x ४.१-५" आकार के ताम्रशासन की उपनिधि तथा उस के पढ़ने के प्रयासों के विवरण और ताम्रशासन का लेख दिए गए हैं। इस का समय सम्भवतः ११ वीं शती है। ऐसे अन्य शासनो की खोज से राजस्थान के प्राचीन इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश प्राप्त होगा।

643. *Some observations on the Hisse Borala Inscription of Vākātaka Devasena*; Ajay Mitra shastri, Reader in Ancient Indian History, Nagpur Univ., Nagpur; UMCV, 1970; 617-627; E. The importance of the Hisse-Borala Inscription is immense since it is the only dated Vākātaka inscription, the only one complete inscription of Devasena. The date recorded in the inscription is the sheet-anchor of Vākātaka chronology. It enables us to ascertain the dates of other members of the dynasty more precisely. The initial portion containing the date has been damaged. Several conjectures have been presented. The author discusses all the three bases given

by Gai and Saṅkaran for fixing the date of the inscriptions: 1. use of Yuddhiṣṭira era 2. ṣaḍ-dvika-pañca-dvi-yutaḥ (=2512) 3. Śaka kāla identified with Vikrama kāla 4. Yuddhiṣṭhira year (302) 5. reference to the position of the saptaṛṣis according to the Purāṇas and rejects the theory of Gai and Saṅkaran. The author is inclined to accept the reading and interpretation given by Kolte. The use of Śaka era is probably due to the fact that the constructor was probably from Gujara'ta. The paper contains one plate.

हिस्से-बोराला अभिलेख का भारी महत्व है क्योंकि वाकाटकों का यही एक मात्र तिथि से अंकित और देवसेन का एक मात्र पूर्ण अभिलेख है। अभिलेख में अंकित तिथि वाकाटक तिथिक्रम के लिये मुख्य आधार है। यह हमें इस वंश के अन्य सदस्यों की तिथियों को अधिक ठीक-ठीक स्थिर करने में समर्थ बना देता है। तिथि वाला प्रारंभिक अंश क्षतिग्रस्त है। बहुत सी कल्पनाएं प्रस्तुत की गई हैं। ले. गई और शंकरन् द्वारा अभिलेख की तिथि के निषेध के लिए दिए गए तीनों आधारों की समीक्षा करता है: १. युधिष्ठिर संवत् का प्रयोग २. पञ्चद्विकपञ्चद्वियुतः (=२५१२) ३. विक्रम काल से अभिज्ञात शक काल ४. युधिष्ठिर संवत् (३०२) ५. पुराणों के अनुसार सप्तर्षियों की स्थिति का निर्देश; और गई और शंकरन् के मत का निराकरण करता है। ले. का भुक्ताव कोल्टा द्वारा प्रस्तुत पाठ और अर्थ को स्वीकार करने की ओर है। शक संवत् के प्रयोग का कारण सम्भवतः यह है कि निर्माता सम्भवतः गुजरात का था। लेख में एक पत्रक भी है।

मूर्तिकला (Sculpture)

644. *Unpublished Jaina Bronzes in the National Museum New Delhi*; B. N. Sharma, New Delhi; JOL, XIX.3; 3.1970; 275-278; E. The paper describes 5 Jaina bronzes acquired during the last few years by the National Museum

at New Delhi. Two of these are dated and bear dedicatory inscription on their back. Stylistically they appear to have been fashioned in Western India. These images are of 1. Pārśvanātha (Acc. No. 68.69; size 14.2×9.4 cms.) 2. Cakreśvarī (Acc. No. 67.152; size 17.6×8.1 cms.) 3. Tri-Tīrthikā of Pārśvanātha (Acc. No. 66.37; size 36×25.5 cms.) 4. Parikara (Acc. No. 67.103; size 77×86 cms.) 5. Pañca-Tīrthikā of Pārśvanātha (Acc. No. 67.73; size 25.8×21.5 cms.). The author concludes these bronzes are important specimens of Jaina art from Western India. These are important not only for their iconographical study, but also for the study of the various phases of Jaina art, that developed and flourished for several centuries in that part of the country. "The author has also given plates" of the photos of these images in this paper.

रहे ।" ले. ने लेख में इन मूर्तियों की प्रतिकृतियों के पत्रक भी दिए हैं ।

645. The Iconography of a Sarnath Sculpture; B. N. Mukherjee; Calcutta; **JOI.**, XIX.3; 3.1970; 273-274; E. "A stone sculpture (No. 535/5 3/1955-56) in the Archaeological Museum at Sarnath U. P. displays a male figure standing to front with flames rising in the background. The face and the two arms of the figure are mutilated." Remains of two attendants on both the left and right sides are noticeable. There is a cock on the left and a peacock on the right. On the basis of the descriptions of Skanda in the epics and Purāṇic descriptions and representations of Mahāseṇa identified with Kumāra Kārtikeya on several Kuṣāṇa coins, of cock and peacock by the side of a male on some Yaudheya coins and a Nagarjunkonda inscription of the Ikṣvāku period the author identifies the sculpture concerned as a representation of Skanda Kārtikeya. It may be stylistically assigned to the early medieval age. A plate containing a photo of the image is appended to the paper.

लेख में ५ जैन कांसे की मूर्तियों का वर्णन है । ये पिछले कुछ वर्षों में नई दिल्ली में राष्ट्रिय संग्रहालय द्वारा अर्वाप्त किये गये थे । इन में से दो पर तिथि है और उन की पृष्ठ पर समर्पण अभिलेख वर्तमान हैं । शैली की दृष्टि से वे पश्चिम भारत में ढाले गये प्रतीत होते हैं । ये मूर्तियां १. पार्श्वनाथ (अंकन संख्या ६८.६६; आकार १४.२ × ९.४ सैमी.) २. चक्रेश्वरी (अंकन संख्या ६७.१५२; आकार १७.६ × ८.१ सैमी.) ३. पार्श्वनाथ की त्रितीर्थिका (अंकन संख्या ६६.३७; आकार ३६ × २५.५ सैमी.) ४. परिकर (अंकन संख्या ६७.१०३; आकार ७७ × ८६ सैमी.) ५. पार्श्वनाथ का पञ्चतीर्थिका (अंकन संख्या ६७.७३; आकार २५.८ × २१.५ सैमी.) । ले. का निष्कर्ष है कि 'ये कांसे की मूर्तियां पश्चिम भारत से जैन कला के महत्त्वपूर्ण आदर्श हैं । ये केवल अपनी मूर्तिलता के अध्ययन के लिए ही महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, बल्कि जैन कला के उन विभिन्न पदों के अध्ययन के लिए भी महत्त्वपूर्ण हैं जो देश के उस भाग में बहुत सी शताब्दियों तक विकसित और पल्लवित होते

‘सरनाथ उ. प्र. के पुरात्वसंग्रहालय में एक पापाण की मूर्ति (संख्या ५३५/५६३/१६५५-५६) पृष्ठभूमि में उठती हुई ज्वालाओं के साथ सामने की ओर खड़ी नर आकृति को व्यक्त करती है । मूर्ति का चेहरा और दो भुजायें खण्डित हैं ।' वाएं और दाएं दोनों ही ओर दो सेवकों के अवशेष प्रतीत होते हैं । वाईं ओर एक मुर्गा है और दाईं ओर एक मोर । ले. ने वीरकाव्यों में स्कन्द के वर्णनों और पौराणिक वर्णनों और बहुत से कुपाण सिक्कों पर कुमार कातिकेय के रूप में अभिज्ञात महासेन की प्रतिकृतियों, कुछ यौवेय सिक्कों पर ए६ पुरुष के पास मुर्गे और मोर के और इक्ष्वाकु काल के नागार्जुन कोण्डा के अभिलेख के आधार पर प्रस्तुत मूर्ति को स्कन्द कातिकेय की प्रतिकृति माना है । शैली के आधार पर इसे पूर्व मध्य युग में रखा जा सकता है । मूर्ति की प्रतिकृति का एक पत्रक भी लेख में जोड़ा गया है ।

६४६. मध्य वोल्गा में बुद्ध की प्रतिमाएं; मारगारिता कार्नेथेवा, कोशविशेष, प्रादेशिक अध्ययन संग्राहलय के प्राचीन इतिहास विभाग की प्रधान; सोवियत भूमि, १४; ७.१२७०; ४०-४१; हि. । वोल्गा रूस और प्राच्य देशों के बीच व्यापार का मार्ग था । यहाँ बौद्ध भिक्षुओं ने भी अपने मठ (बुद्ध) स्थापित किए, जो अभी तक सुरक्षित हैं । वोल्गा के काल्मिक खानाबदोशों से बहुत सी प्राचीन मूर्तियाँ मिली हैं । चार मूर्तियों के चित्र यहाँ दिए गए हैं । २० सैण्टी मीटर की मूर्ति निर्वाणस्य बुद्ध की है । एक बड़ी मूर्ति के 'चार हाथ (मुल ?) और बारह भुजाएं' हैं ।

647. A Marvel of Karnataka Sculpture; P. Gururaja Bhat; JHSM., 6. 1970; 51-53; E. Karakala has four monuments of all-Karnataka importance. One of them the temple of Ananta-padma-nābha of Anantaśayana, a vyūha type of temple, the like of which is rarely found elsewhere in Southern India assignable to the 12th-13th c. A. D. (Hoyasala Period) has been described. Its architectural merit is remarkable, 'worthy of unquestioned recognition in the excellence of sculpture, a unique type by its own intrinsic merit..... Ananta Padmanabha is Vasudeva and he is surrounded by Sankarshana, Pradyumna and Aniruddha.' The paper describes the garbha-gṛha, the images of deities and their accompaniments like the conch, outer sides of walls, pillars roof and the pradhāna balipīṭha.

कारकल में अखिल कर्नाटकीय महत्त्व के चार स्मारक भवन हैं । उन में से एक अनन्तशयन के अनन्तपद्मनाभ का ब्यूह शैली का मन्दिर है जिस के सदृश दक्षिण भारत में अन्यत्र विरला ही मिलता है । इन को १३ वीं जती (होयसल युग) में रखा जा सकता है । लेख में इस मन्दिर का विवरण है । इन का स्थापत्य युग असाधारण है । "यह मूर्तिकला के उत्कर्ष में निर्विवाद प्रतिपत्ति का अधिकारी है । अनन्तपद्मनाभ वसुदेव हैं । उस को

संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध घेरे हुए हैं ।" लेख में गर्भगृह, देवताओं की मूर्तियों और उन के संचालन आदि उपकरणों, भित्तियों के बाह्य भागों, स्तम्भों, छत और प्रधान बलिपीठ का विवरण दिया गया है ।

648. Metal Sculptures in the Kumaun Hills and The Tradition About Poṇa Rājā; M. C. Joshi, New Delhi; JOL, XIX.4; 6 1970; 493-499; E. The five extant metal sculptures of archaeological importance in the Kumaun regions are described in this paper. Four of these are at Jāgeśvara. Of these four, three are placed within the main Jāgeśvara shrine itself and the fourth one inside the garbha gṛha of the Daṇḍeśvara temple there. The fifth one is now lost. These images depict a male figure in standing position, and with the exception of one in silver at Jāgeśvara, all are made of some kind of metal alloy having bronze-like appearance. Only one of these five figures bears a dated inscription of Śaka era 1562 (i. e., A. D. 1640) stating that it is the image of Trimalla. The image was installed in connection with a great ritualistic worship in honour of Lord Yāgeśvara. Traditionally the silver image made of several tin plates is believed to be the portrait of Rājā Dip Chand (A. D. 1747-77). His head-dress is of typical Mughal type which indirectly supports the traditional identification. The other three images are regarded as the representation of a certain Poṇa Rājā. These three images do not seem to portray one and the same person. They belong to different dates on stylistic grounds. One of these (9th or 10th c. A. D.) is one of the best known examples of the medieval bronzes in India. It appears to be an ascetic. The third image is of Poṇa Rājā and belongs to an age of artistic decline. The figure either depicts some ascetic, Bhakta or a Vānaprastha. It can be ascribed to 12th or 13th c. A. D. After this description the paper discusses the problem of Poṇa Rājā of whom local history records nothing Poṇa seems to be a term of aboriginal derivation. The Kumaunī tradition displays some kind of association with Śilavarman and

his family. Use of the word Poṇa-ṣaṣṭha in an inscription of Śīlavarman discovered in Jagat grāma supports this tradition. "How these sculptures, which are certainly the representations of later personages, came to be known as of Poṇa Rājā is still a matter of research. But surely they carry with them a tradition suggesting the survival of historicity in this form of popular memory."

इस लेख में कुमायूँ प्रदेश में पुरातत्त्व के महत्त्व की पांच उपलब्ध मूर्तियों का वर्णन किया गया है। इन में से चार जागेश्वर में हैं। इन चार में से तीन मुख्य जागेश्वर मन्दिर के भीतर स्थापित हैं और चौथी वहीं दण्डेश्वर मन्दिर के गर्भगृह के अन्दर है। पांचवीं मूर्ति अब नष्ट हो चुकी है। ये मूर्तियाँ खड़े रूप में एक नर आकृति को चित्रित करती हैं और जागेश्वर में चांदी की एक मूर्ति को डोढ़ कर सब कांसी के से रूप वाला एक प्रकार का मिश्र धातु की बनी हुई हैं। इन पांचों आकृतियों में से केवल एक पर शक संवत् १५६२ (अर्थात् १६४० ई.) की तिथि से अंकित एक अभिलेख है। जो इसे त्रिमल्ल की मूर्ति बताता है। मूर्ति का स्थापना भगवान् योगेश्वर के सम्मान में एक विजाल कर्मकांडीय पूजा के सम्बन्ध में की गई थी। टीन की कई चादरों से बनी हुई चांदी की मूर्ति परम्परा से राजा दीपचंद (१७४७-७७ ई०) की मानी जाती है। इस का निरोधक प्रतिनिधि मुगल शैली का है और अप्रत्यक्ष रूप से परम्परागत अभिज्ञान की पुष्टि करता है। अन्य तीन मूर्तियाँ किसी पौरा राजा की प्रतिकृतियाँ मानी जाती हैं। ये तीनों मूर्तियाँ एक ही व्यक्ति का चित्रण करती मालूम नहीं पड़ती। शैली के आधार पर ये विभिन्न कालों से सम्बन्धित हैं। इन में से एक (९ वीं या १० वीं शती ई०) भारत में गव्ययुगोत्तम कांसी की मूर्तियों का उत्तम उदाहरण है। यह कोई मुनि मालूम होता है। तीसरी मूर्ति छोटी पौरा राजा है और कला के पतन के युग की है। आकृति किसी मुनि,

भक्त वानप्रस्थ को चित्रित करती है। यह १२ वीं या १३ शती में रवखी जा सकती है। इस के बाद लेख पौरा राजा की समस्या पर विचार करता है जिस के विषय में स्थानीय इतिहास में कोई भी लेखा नहीं है। पौरा आदिमजातीय उत्पत्ति का शब्द मालूम होता है। कुमायूँ की परम्परा शीलवर्मन् और उस के वंश से किसी प्रकार के सम्बन्ध को अभिव्यक्त करती है। जगत् ग्राम में मिले शीलवर्मन् के एक अभिलेख में पौरावष्ट का प्रयोग इस परम्परा का समर्थन करता है। "ये मूर्तियाँ, जो निश्चय ही पीछे के व्यक्तियों के चित्रण हैं, पौरा राजा की कैसे मानी जाने लगीं यह अभी भी खोज का विषय है। परन्तु निःसन्देह ये अपने साथ एक परम्परा को ला रही हैं जो लोकस्मृति के इस रूप में ऐतिहासिक अवस्थिति को सूचित करती है।

सुवीर कुमार गुप्त

६४६. राष्ट्रीय संग्रहालय की कतिपय जैन धातु मूर्तियों के लेख; अगर चन्द नाहटा, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर; सस्मा., १६७०; २३-२६; हि.। राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संगृहीत धातु मूर्तियों पर उत्कीर्ण लेखों के आधार पर यह लेख लिखा गया है। इस में इन मूर्तियों पर उत्कीर्ण ३० लेखों की मूल प्रतिलिपियाँ भी दी गई हैं। ये लेख १४ वीं से १६ वीं शताब्दी तक के हैं। इन से अनेक ग्राम, नगरों, वंशों, गोत्रों, गच्छों, श्रावक-श्राविकाओं और आचार्यों सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है।

शांता भानावत

650. Religious Tolerance And Intolerance As Reflected in Indian Sculptures; B. N. Sharma, National Museum, New Delhi-II; UMCV, 1970; 657-668; E. Although there were no religious wars as such, it is true that in the history of Indian religion one can find instances which clearly indicate that the people of different sects did have a certain amount of bitterness at one time or the other. At times such a bitterness

aroused the enthusiasm of a particular sect so high as to regard their god superior to those of others. There are also definite evidences, both literary and sculptural, which suggest that there were periods when a perfect religious harmony among all the sects existed. Those who emphasised the tolerance went to the extent of propounding the concepts which led to the formation of images in which the different gods were given more or less equal status." Gods of different pantheons were synthesised and blended into two. The paper illustrates the existence of both these currents of thought by referring to and describing several sculptural representations.

“यद्यपि धार्मिक युद्ध नहीं हुए हैं, तो भी यह सच है कि भारत के धार्मिक इतिहास में ऐसी घटनाएँ मिल जाएँगी जो स्पष्ट बताती हैं कि विभिन्न सम्प्रदायों के जनों में एक न एक समय कटुता की कुछ मात्रा रही है। समय-समय पर इस प्रकार की कटुता ने सम्प्रदाय-विशेष के उत्साह को इतना बढ़ावा दिया कि उन्होंने ने अपने देवता को अन्यो के देवताओं से श्रेष्ठतर माना। साहित्यिक और मूर्तिकला—दोनों ही प्रकार की ऐसी निश्चित साक्षियाँ भी हैं जो इंगित करती हैं कि ऐसे भी काल थे जब सब सम्प्रदायों में पूर्ण धार्मिक संज्ञान विद्यमान था। जो सहिष्णुता पर बल देने थे वे इस प्रकार के भावों के प्रतिपादन की सीमा तक गए जिन से ऐसी मूर्तियाँ बनीं जिन में विभिन्न देवों को न्यूनाधिक समान पद दिया गया।” विभिन्न देवकुलों के देवता संश्लिष्ट कर दो में मिला दिए गए। लेख इन दोनों विचारधाराओं को सत्ता को कई मूर्तियों के चित्रणों का उल्लेख और वर्णन कर के दिखाता है।

सुधीर कुमार गुप्त

आर्यसमस्या (The Aryan Problem)

651. Identification of the Ancient Land of Uttarakuru; Shyam Narain Pande, Prof. & Hd. of the Deptt. of Geography, K. B. Degree College, Mir-

zapur (U. P.); **UMCV.**, 1970; 725-735; E. “The scientific treatment of the evidence (presented by various authors in ancient works) leads us towards the identification of Uttara-kuru around “Tarim Basin,” a region near the present-day Chinese and Russian provinces of Sinkiang.” Descriptions of the R̥gveda and the Mbh. place Utara Kuru in Southern Siberia. Jaina literature places it on the banks of river Stodā (→sitodā→sīto—modern name). Viṣṇu Purāna calls this river Sita. The utara samudra related to Uttara Kuru is indentified ‘Aral Sea’ which appears to have been much bigger in the past but has shrunk by now.

“(प्राचीन ग्रन्थों में विभिन्न लेखकों द्वारा प्रस्तुत) साक्षियों का वैज्ञानिक विवेचन आधुनिक चीनी और रूसी सिबियांग प्रान्तों के पास ‘तारिम थाला’ के समीप उत्तर कुरु के अभिज्ञान की ओर ले जाता है।” ऋग्वेद और महा. के वर्णन उत्तर कुरु को दक्षिणी साइबेरिया में रखते हैं। जैन साहित्य इसे स्तोदा (→सितोदा→सितो—आधुनिक नाम) नदी के किनारों पर रखता है। विष्णु-पुराण में इस नदी को सित कहा गया है। उत्तर कुरु से सम्बद्ध उत्तर समुद्र का अराल समुद्र से अभिज्ञान किया गया है जो प्राचीन काल में बहुत विशाल रहा प्रतीत होता है पर अब सिकुड़ चुका है।

97. **The Aryan Problem**; S. K. Gupta, Reader in Skt., R-2, Univ. Colony, Jaipur-4; **UMCV.**, 1970; 737-742; E.

३०. क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है? रामगोपाल शास्त्री बंध; प्र० संस्कृत विभाग, हुंस राज कालिज, नई दिल्ली; २-५०; हि०। समीक्षक भवानी लाल भारतीय, राजकीय कालिज, अजमेर; आ. मा., ५०.१६; १.१२.१९७०; १६; हि०।

652. **Where Indo-Aryans Came From!**; Yelena Kuzmina, Institute of Archaeology, Academy of Sciences of the USSR.; **Soviat Land**, 20; 10.1970; 16; E.

The burial modes and customs etc. of Bishkent culture gathered from the various burial grounds in Tajikistan belonging to the Bronze Age in the latter half of the 2nd millennium B. C. closely resemble the burial modes and customs concluded from a study of the burial grounds in Swat and Kandahar necropolises (which are unlike the earlier ones found in the north west of the Indian sub-continent) and answer well the description of burials in the R̥gveda and other ancient Indian texts. The Indo-Aryans, therefore, came in the later half of the 2nd millenium B. C. from Central Asia.

ई० पू. दूसरी सहस्राब्दी के उत्तरार्द्ध में कांस्य युग के ताजिकिस्तान की विभिन्न कबरों से प्राप्त विश्वकेन्द्र संस्कृति के जर्बों को गाढ़ने के प्रकारों और विधानों आदि का स्वात और कन्दहार के शमशानों (कबरिस्तानों) की कबरों के अध्ययन से प्राप्त जर्बों को गाढ़ने के प्रकारों और विधानों से (जो उत्तर-पश्चिमी भारत में प्राप्त हुए पूर्वतर प्रकारों और विधानों से भिन्न हैं) घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा वे ऋग्वेद और अन्य प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के शब्द गाढ़ने की क्रियाओं के वर्णन के अनुकूल हैं। अतः भारतीय आर्य दूसरी सहस्राब्दी के उत्तरार्द्ध में मध्य एशिया से आए थे।

वैदिक युग का इतिहास (History of the Vedic Age)

६५, ऋग्वेद का परिचय; सुधीर कुमार गुप्त; प्र० भासन्नसा; ७३; १-५०; हि०।

२६, ऋग्वेदोच्च द्रष्टे; व. ग. राहुरकर; ज्ञानेश्वर, ३.१; २.१९७१; १-१३; म.।

131. *Rsis of the R̥gveda*; (Typed); Laxmi Narain Sharma; Thesis approved by the Rajasthan Univ. for the Ph. D. Degree (Skt.); 1962-63; 6+9+393+5; हि०.

132. *Kausheetaki Brahmana ka Sanskritik Evam Aitihāsika Adhyāyana*; (Typed); Sudarshan Kumar Sood;

Ph. D. (Skt.) Thesis approved by the Kurukshetra Univ., 1969; E.

६६, जलप्लावन—एक ऐतिहासिक घटना; द्वारका प्रसाद सक्सेना, रीडर, मेरठ वि. वि., मेरठ; उमकव., १९७०; ७४७-७५५; हि०।

31. *Fresh Light on the Battle of Ten Kings*; P. L. Bhargava, Univ. of Rajasthan, Jaipur; *URSHS.*, 2; 7.1967; 25-28; E.

६८, भारतीय इतिहास का मूल स्रोत वेद; रामगोपाल अय्यर; गुरुकुल कांगड़ी वि. वि., गुप्त., २३.१-२; ६-१०.१९७०; ६३-६६; हि०।

वेदोत्तरकालीन प्राचीन भारत का इतिहास (History of Ancient India-Post-Vedic)

653. *Economic Self-Sufficiency of Ancient Indian Villages*; Lallanji Gopal. Reader in Ancient Indian History, Culture and Archaeology, Banaras Hindu Univ., Varanasi 5; *UMCV*, 1970; 763-768; E. Megasthenes testifies to the self-sufficiency of Indian Villages which was, in the view of the author, mainly due of the batai system evidenced by Pāṇini and treated at length by the Arthaśāstra. Villages were connected with cities and towns by roads and were provided with transport facilities. Men belonging to different walks of life journeyed from one villages to another and took part in trade and commerce. The Indian villages "in fact, include a nearly complete establishment of occupations and trades for enabling them to continue their collective life without assistance from any person or body external to them."

मेगास्थनीज भारतीय गांव की आत्मनिर्भरता की साक्षी देता है। जे. के मत में यह प्रमुख रूप से वाणिज्य द्वारा निर्दिष्ट और अर्थशास्त्र द्वारा मविस्तार वलित बटाई प्रणाली के कारण था। गांव सड़कों द्वारा शहरों और कस्बों से जुड़े हुये थे और उन को परिवहन की सुविधाएं प्राप्त थीं। विभिन्न व्यवसायों के व्यक्ति एक गांव से दूसरे

661. Intelligence : Crucial mistakes; D.K. Palit, H.T. Military Correspondant; H.T., (W. R.), 11.4.1971; i; E. The author reviews the events leading to the 1962 debacle in the light of B. N. Mullik's recent book and concludes that it was the confusion of the intelligence with opinion by an amateurish system that resulted in the formation of unrealistic policies. The author describes the role of intelligence of Prime Minister Nehru and his trusted military officers Mulik and Kaul and other members of the war council, policy on Chinese moves and the Thagla episode.

ले. वी. एन. मलिक की हाल की पुस्तक के प्रकाश में १९६२ के व्यसन तक की घटनाओं की समीक्षा करता है और निष्कर्ष निकालता है कि यह अनिपुण व्यवस्था के मत के साथ आसूचना की गड़बड़ थी जो अव्यावहारिक नीतियों के निर्धारण का कारण बनी। ले. आसूचना के योग, प्रधान मन्त्री नेहरू और उसके विश्वस्त सैनिक अधिकारी मलिक और कौल तथा युद्धसमिति के अन्य सदस्यों की चोनी गतिविधियों पर नीति और थागला घटना का विवरण देता है।

३६२. डी. ए. वी. संस्थाओं का स्वतन्त्रता आन्दोलन में योगदान; राजेन्द्र जिज्ञासु, दयानन्द कॉलेज, अयोधर; दकास्मा., १९७१; ४५-४८ हि.।

६६२. नवलगढ़ के निर्माता—श्री नवलसिंह जी; मूलसिंह शेखावत, प्रवक्ता, वाणिज्य वि०, सेठ जी. वी. गोदार कॉलेज, नवलगढ़; कावम्बरी, १९६९-६०; ३१-३४; हि.। इस लेख में नवलसिंह के जन्म, वंश, परिवार, कुटुंब, जागीरविस्तार और नवलगढ़ की स्थापना का वर्णन है। इस का काल १८ वीं शती का उत्तरार्द्ध है।

663. From Sepoy to Subedar; Ed. James Lunt; Vikas Publications; 1970; 38-50; Rev. R. P. Gupta; H. T., 11.4.1971; WR, ii : 3-4; E. The book deals with the life and experiences of Sita Ram of Indian Army of the first half

of the 19th C. and his views about his British officers—their virtues and their foibles, their craziness and their plain inscrutability. The review also describes the history and writing and publication of this book. Editor's introduction and annotations are very helpful. The book contains a fictional portrait of Sita Ram.

पुस्तक १९ वीं शती के पूर्वार्द्ध की भारतीय सेना के सीताराम के जीवन और अनुभवों, अपने अंग्रेज अधिकारियों—उन के गुणों और उन के दोषों, उन के उन्माद और उन की सरल दुर्बोधता पर उस के विचारों को प्रस्तुत करती है। समीक्षक ने इस पुस्तक के इतिहास, लेखन और प्रकाशन का विवरण भी दिया है। सम्पादक की भूमिका और टिप्पणियां बहुत सहायक हैं। पुस्तक में सीताराम की आख्यायिक प्रतिकृति भी है।

सुधीर कुमार गुप्त

401. Role of the Arya Samaj in the Social and Cultural Reform in India; (Miss) Jyotsna Velankar, Maharsi Dayananda College, Bombay; DCS., 1971; 11-13; E.

664. Hissar Through the Ages; Harphul Singh, Deputy Commissioner, Hissar; Haryana Review, IV.5; 10-12. 1970; 27-29; E. The city was originally known as Hissar-Feroza, the fort of Feroz (Tughlak). It was built in 1354 A. D. with the hard stone from the ruins of Agroha. It had a strategic, commercial and religious importance. Having witnessed the rules of Moghuls and others it came into the hands of the English in 1803. It played its part in the struggle for independence in 1857 and in the 20th c. It has some notable monuments also.

यह नगर मूलतः हिस्सारफ़ीरोज़ा, फ़ीरोज़ (तुगलक) का दुर्ग कहलाता था। यह १३५४ ई. में फ़ीरोज़ा के तख्तहूरी के दृढ़ पत्थरों से बनाया गया था, इस का युद्धनीतिक, व्यापारिक और धार्मिक महत्त्व था। मुगलों और अंग्रेजों के शासन को अनुभव कर यह १८०३ में अंग्रेजों के हाथ में आया। इस में

१८५७ और बीसवीं शती में स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष में अपना योगदान किया था। यहाँ कुछ प्रसिद्ध स्मारक भवनादि भी हैं।

सुधीर कुमार गुप्त

665. History of the Northern Frontier: The Northern Frontier of India; S.C Bajpai; Pub. Allied Publishers, Bombay; Rev. Devendra Kaushik; **H. T. W.R.**, Sunday, 7 3.1971; ii:4; E. In the present volume the author surveys the history of India's Northern Frontier from the 6th c. B.C. and describes the carrying of the imperialist banner upto the inner regions of the Himalayas. He examines the attitude and policy of the British rulers towards the northern frontier and holds that it was not motivated by a desire to safeguard Indian interests. The British practised appeasement of China and gave away Indian territory to her. The reviewer disagrees with the author about the motives behind the British appeasement of China. He feels that this appeasement was meant to consolidate their position on the Chinese sea coast and the mainland.

इस कृति में ले. ई. पू. ६ठी शती से भारत की उत्तरी सीमा के इतिहास का सर्वेक्षण करता है और हिमालय के आभ्यन्तर क्षेत्रों तक साम्राज्यवादी पताका को ले जाने का वर्णन करता है। वह उत्तरी सीमा के प्रति अंग्रेज शासकों की वृत्ति और नीति की परीक्षा करता है और मानता है कि ये भारत के हितों की रक्षा की इच्छा से प्रेरित नहीं थे। अंग्रेजों ने चीन के प्रसादन की नीति को अपनाया हुआ था और उस को भारतीय क्षेत्र दे दिये थे। समीक्षक चीन के अंग्रेजों द्वारा प्रसादन के मूल में कारणों के विषय में ले. से मतभेद रखता है। वह समझता है कि इस प्रसादन का उद्देश्य चीनी समुद्री तट पर और मुन्घ प्रदेशों में अपनी (=अंग्रेजों की) स्थिति को दृढ़ बनाना था।

अनिल कुमार गुप्त

राजस्थान का इतिहास-राजनैतिक (History of Rajasthan-Political)

६६६. अजमेर के कछवाहा-शासकों की परम्परा में व्युत्क्रम; प्रभाकर शास्त्री; विभ., ६.३; १९७० (२०२६ वि.); ९-१८; हि.। औरस ज्येष्ठ पुत्र अथवा उस की ज्येष्ठ सन्तान को राज्य न मिल कर अन्य को राज्य प्राप्त हो जाना व्युत्क्रम है। लेख में अमेर से कछवाहाशासकों में चार वार नृसिंह, पूर्णमल्ल, भारमल्ल, भावसिंह और प्रतापसिंह की राज्यप्राप्ति पर ऐसे व्युत्क्रम हुए। लेख में व्युत्क्रम के अपवादों का भी विवेचन किया गया है।

सुधीर कुमार गुप्त

667. Amir Khan and Krishna Kumari Episode; B.D.Sharma, Dugar College, Bikaner; **JRIHR.**, VI.4; 10-12. 1970; 34-39; E. The author describes the above episode and concludes that the sacrifice of princess Krishna Kumari paved the way for the future cordial relations between Maharaja Jagat Singh of Jaipur and Maharaja Man Singh of Jodhpur. In the light of the available facts it is not justified to lay the sole responsibility of princess Krishna Kumari's death entirely on Amir Khan, "the best representative of the age of treachery, diplomacy and faithlessness."

ले. शीर्षक की घटना का वर्णन करता है और निष्कर्ष निकालता है कि राजकन्या कृष्णा कुमारी के वलिदान ने जयपुर के महाराजा जगत् सिंह और जोधपुर के महाराजा मानसिंह के बीच भावी सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों के लिए मार्ग पाट दिया। उपलब्ध वृत्तों के प्रकाश में राजकन्या कृष्णा कुमारी की मृत्यु का सब दोष पूर्णतः "धोखे, कूटनीति और विश्वासहीनता के युग के उत्तम प्रतिनिधि" अमीर खां पर ही डालना व्याप्य नहीं है।

सुधीर कुमार गुप्त

६६८. बागड़ के प्रारम्भिक गुहिल वंशी शासक; रामवल्लभ सोमानी, जयपुर; शोप., २१.३;

७-९.१९७०; ९-१६; हि.। वागड़ के वर्तमान गुहिलवंशी शासकों का पूर्वज सीहड़ था। इस के परिवार के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। ले. इसे जैसिंह का वंशज मानता है। सीहड़ के उत्तराधिकारी का नाम जैसल या जयसिंह था। इसे गिलालेखों में प्रमाण दे कर सिद्ध किया गया है।

नाथूलाल पाठक

669. **Marwar Ra Pargana Ri Vigat**—Pt. I; Ed. Narain Singh Bhati, Director, Rajasthan Shodh Sansthan, Chowpasni, Jodhpur; pp. IV+XXXX+602; Rev Kalika Ranjan Qanungo, formerly Prof. & Hd. of the Deptt. of Hist. Univ.'s of Dacca & Lucknow; राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर का वार्षिक प्रतिवेदन १९६७-६८ तथा १९६८-६९; ११-१२; E. The book has been edited with introduction, explanatory foot notes etc. It is a narrative of the Paragana of Jodhpur, Sojat and Jeejawar. It opens many a vista of original researches in the history of Rajputana such as Revenue administration of Marwar, distribution of races in Marwar and above all, a social History of Medieval Marwar. The reviewer briefly discusses the identification of Jeejawar.

पुस्तक भूमिका और व्याख्यात्मक पादटिप्पणियों आदि के साथ सम्पादित की गई है। इस में जोधपुर के सोजत और जीजावर परगनाओं का वर्णन है। यह राजपूताना के इतिहास में मौलिक खोजों के लिए बहुत सी वीथियाँ खोलता है, यथा मारवाड़ का राजरथ प्रशासन, मारवाड़ में जनजातियों का वितरण और सर्वोपरि, मध्ययुगीन मारवाड़ का सामाजिक इतिहास। समीक्षक ने संक्षेप में जीजावर के अग्निज्ञान का विवेचन किया है।

सुधीर कुमार गुप्त

६७०. राजस्थान के इतिहास के प्राचीन प्राक्ष्य; मूलसिंह शेरवाहत, प्रवक्ता, वारिण्य वि., नेठ जी. बी. पोद्दार कलेज, नवलगढ़; फादम्बरी (हि. वि.), १९६९-७०; १०-१३; हि.। प्राचीन

काल में घर बीती और पर बीती के रूप में इतिहास वार्ताएं कही व सुनी जाती थीं। कालान्तर में अकबर के काल में इतिहास की लिखित विधाएं—ख्यात, रासो, नामा, वचनिका, दवावैत, वेली, वंशावलियां या पीढ़ियां, पवाड़ा, सिलोकी, वर्रांक, विगत भूलणां और यात्रावर्णन आदि प्रचलित हुईं। लेख में इन विधाओं का अति संक्षिप्त परिचय और ऐतिहासिक स्वरूप का कथन कर कहा गया है कि सास बहू के मन्दिर, रेवासा के आदिनाथ का मन्दिर, सामोली, लोली आदि झिलालेख और यात्रावर्णन राजस्थान के इतिहास के लिए प्रमुख स्रोत हैं।

671. **Succession in Mewar (1861-1864) and British Policy**; D.L. Paliwal; **JRIHR.**, VI. 4; 10-12 1970; 18-24; E. After the transfer of power from the East India Company to the Crown in 1858 the British policy towards Indian states underwent a change. The ruling princess were permitted to adopt successors on failure of natural heirs. The Crown assumed feudal rights and powers, made the princes its feudatories and interfered in their internal affairs at the slightest opportunity in order to keep them under perfect control and reduce them to the state of its agents. Instance of such interferences in internal affairs of the Indian states have been given by a study of the succession cases in Mewar during 1861 and 1864.

१८५८ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी से ताज को शक्ति के सन्धान हो जाने पर भारतीय राज्यों के प्रति अंग्रेजी नीति में परिवर्तन आया। सगे उत्तराधिकारियों के न होने पर राजाओं को उत्तराधिकारी गोद लेने की अनुमति दे दी गई। ताज ने सामन्ती अधिकार और शक्तियों धारण कर लीं, राजाओं को अपने सामन्त बना लिया और उन को अपने पूर्ण नियन्त्रण में रखने तथा उन्हें अपने अधिकारों की स्थिति में नीमित कर देने के लिए तन्त्र ने भी ध्येय पर यह उन के प्रावृत्त

वृत्तों में हस्तक्षेप करने लगा। ले. ने १८६१ से १८८४ के बीच मेवाड़ में उत्तराधिकार के वृत्तों के अध्ययन से भारतीय राज्यों के आन्तरिक वृत्तों में ऐसे हस्तक्षेपों के उदाहरण दिये हैं।

राजस्थान का इतिहास - सांस्कृतिक (History of Rajasthan Cultural)

४५६, चित्तौड़ के द्वितीय साके की वीर नागी पेमा; अग्रचन्द नाहटा, वीकानेर; शोप., २१.३; ७-६.१९६०; ४३-४६; हि.।

६११. जूना : विशृङ्खल पाषाणों की ऐतिहासिक नगरी; भूरचन्द जैन; राप, १७.१.१९७१; ३:७-८; हि.।

672. Feudalism in Rajasthan; R. P. Kathuria, Lecturer in Education, Regional College of Education, Bhopal; **JRIHR.**, VI.4; 10-12. 1970; 10-17; E. Feudalism is a method of government in which the essential relation is between lord and vassal. Rajput feudalism is different from medieval European feudalism. Indian feudalism has developed in the land as a child of the politico-socio-economic necessities. Its growth was a marked feature between 900 A. D. to 1200 A. D. But its real character developed into a crystallised reality under the Rajputs after the advent of the Muslims. The senior-most member of a Rajput clan was the chief and younger members of the family were his vassals. The relation between the two was of kinship. The vassal discharged military and other obligations including relief, fines of alienation, escheats, aids, wardship and marriage. The system degenerated to a very great extent in the latter half of the 18th century. But on account of this system, Rajasthan never felt the dearth of soldiers. This institution of feudalism, in fact, was very useful and potent in shaping the destiny of Rajasthan.

सामन्तशाही शासन थी वह प्रणाली है जिस में मूल मन्वन्ध अधिपति और सामन्त के बीच होता है। राजपूत सामन्ती मध्ययुगीन यूरोपीय सामन्ती

से भिन्न है। भारतीय सामन्ती इस भूमि में राजनीतिक-सामाजिक आर्थिक आवश्यकताओं की सन्तान के रूप में विकसित हुई है। इस का विकास ६०० ई. से १२०० ई. में लक्षणीय विशेषता थी। परन्तु इस का असली रूप मुसलमानों के आने के बाद राजपूतों के शासन में मणीभीकृत (= घनीभूत) सत्य रूप में विकसित हुआ। राजपूत वंश का सर्ववृद्ध जन अधिपति होता था और परिवार के छोटे सदस्य उस के सामन्त होते थे। दोनों में रक्त (या नातेदारी) का सम्बन्ध था। सामन्त सैनिक और अन्य दायित्व निभाते थे। इन में दुःखापनोदन, परकीकरण के दण्डशुल्क, राजगामित्व, साहाय्य, संरक्षकत्व और विवाह भी थे। १८ वीं शती के उत्तरार्द्ध में यह प्रणाली बहुत सीमा तक अधःपतित हो गई। परन्तु इस व्यवस्था के कारण, राजस्थान ने सिपाहियों की कमी कभी अनुभव नहीं की। वस्तुतः सामन्ती की यह संस्था राजस्थान के भाग्य के निर्माण में बहुत उपयोगी और शक्तिशाली रही है।

सुधीर कुमार गुप्त

668. Marwar Ra Paragana Ri Vigat, Part I; Ed. Narain Singh Bhati, Director, Rajasthan Shodh Sansthan, Chowpasni, Jodhpur; IV-XXXX+602; Rev. Kalika Ranjan Qanungo, formerly Prof. & Hd. of the Deptt. of History, Univ.'s of Dacca & Lucknow; राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर का वार्षिक प्रतिवेदन, 1967-68 तथा 1968-69; 11-12; E.

६७३. राजस्थान की धर्म भावना; मनोहर शर्मा, रानी बाजार, बीकानेर; सप., १०.१-२; १-२.१६:१; ७-१०; हि.। राजस्थान वीर भूमि होने के साथ-साथ विविध धर्मों की रंगस्थली भी है। यहाँ के लोकोत्सव, तीज-त्योहार, पर्व आदि धर्म भावना से अनुप्रेरित हैं। यहाँ शैव, वैष्णव और जैन आदि धर्मों और जसनाथी, विश्वादी, रामस्नेही आदि संत-सम्प्रदायों का प्राचान्य रहा है। यक्षपूजा, नागपूजा, सूर्यपूजा आदि में यहाँ के

लोगों का विश्वास बना आ रहा है। पौराणिक देवताओं में ब्रह्मा, विष्णु, महेश और अवतारों में राम-कृष्ण के प्रति यहां के लोगों की अगाध भक्ति है। वीर भूमि होने के कारण यहां शक्ति की प्रतीक माता—हरणी माता, जीण माता, सिलादेवी आदि की उपासना भी की जाती है। लोक देवताओं में रामदेव जी, पादू जी, गोगा जी, तेजाजी आदि की हिन्दू और मुसलमान दोनों समान रूप से पूजा करते हैं। राजस्थान में व्याप्त यह विविध ढंपी धार्मिक भावना यहां के जनमानस की सरलता एवं प्रबल विश्वास भाव की परिचायक है।

नरेन्द्र भानावत

६७४. राजस्थान में दासप्रथा का स्वरूप; गिरिजा शंकर शर्मा, बीकानेर; शोध, २१.२: ७-९. १९७०; ३०-३३; हि.। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व राजस्थान में प्रचलित दास-प्रथा का अध्ययन इस लेख का मुख्य उद्देश्य है। दास युद्ध में बन्दी लोग या क्रीत होते थे। दास दो प्रकार के होते थे—राजा से सम्बन्धित और जागीरदारों से सम्बन्धित। स्वामी के लड़के व लड़की के विवाह पर दास लड़के और लड़कियां दहेज में भी दिए जाते थे। दासों पर कुछ प्रतिबन्ध भी लगाए गए थे। यथा—१. दास अपनी इच्छा से एक जागीर या रियासत से दूसरी में नहीं जा सकता था, न मानिक की इच्छा के विरुद्ध कुछ कर सकता था। २. कई रियासतों में कुछ समय के लिए दासों के लिए सरकारी नोकरी में प्रवेश भी निषिद्ध था। ३. रियासतों में बेगारी प्रथा के कारण अन्य जाति के लोगों के साथ दासों को भी बेगार निकालनी पड़ती थी।

बाबूलाल पाठक

६२२. लाडनूँ : तीन हजार वर्ष प्राचीन, जोधपुर रियासतों में लखपतियों की वस्ती; मुन्ना लाल पुगेरित; राण., ३१.१.१९७१; ३-४; हि.।

६२५. हाड़ीनी प्रदेश एक अद्भुतम दृष्टि; पमर सिंह सिन्धोदिया, एडवोकेट, बीटा; हाट्टिवि-

स्ना., १९७०; ४-५; हि.। इस में हाड़ीनी के नामकरण तथा इस प्रदेश के साहित्यिक, राज-नैतिक, ऐतिहासिक, कला और आर्थिक महत्त्व का दिग्दर्शन है। अन्त में हाड़ीनी में वनवासी जनसंख्या दी गई है।

सुवीर कुमार गुप्त

676. Jodhpur Session of The Institute of Historical Studies; M. L. Sharma; JRIHR, VI.4; 10-12.1970; 1-9; E. This account of the session contains summaries of the extempore addresses by Tarashanker Banerjee of the Vishva Bharati Univ dealing with the contemporary history of the 18th century in Bengali literature and by M. Mani P. Kameker and a brief account of the papers by G. N. Sharma and Dahanath Sharma on the sources of medieval history of Rajasthan and the sources of the ancient period of Rajasthan respectively. The two scholars referred to several useful works relating to the history of their periods. M. L. Sharma holds that history is also a philosophy. Jodhpur has played a great role in the history of India. It is difficult to define history, but its Skt. synonym 'itihāsa' is self explanatory—"thus it actually happened". Historians' task is very difficult since it is difficult to write true and objective account of events. T. S. Banerjee refers as sources of history to Margala Kavyas, the Vaidhava literature, Panchali, Chhara and folk literature and Aitihāsa-ika Gāthās or historical ballads and describes the Maratha invasion of Bengal in the light of these sources. M. P. Kameker refers to the influence of Tukaram and Ramdas on the political unification of the Marathas. They were followed by more patriotic and national literature in two forms—Bakhars and Powadas. The paper describes the information gathered from some of the works of both these types and refers to biographies, particularly the autobiography of Nana Phadnavis. The main purpose of these three types of work was to arouse the national consciousness and patriotism of the Marathas and to unite them in face of great

dangers. Historically they serve the very important purpose of enabling the historian to understand the spirit of the age.

सम्मेलन के इस विवरण में १८ वीं शती में बंगाली साहित्य में तत्कालीन इतिहास के विवेचक विश्वभारती वि. वि. के ताराशंकर बँनर्जी के, एम. मणि पी. कमेरकर के तात्कालिक मौखिक मापणों के तथा राजस्थान के मध्ययुगीन इतिहास के स्रोतों और राजस्थान के प्राचीन युग के स्रोतों पर क्रमशः जी. एन. जर्मा और दशरथ शर्मा के लेखों के सार दिए गए हैं। इन दो विद्वानों ने अपने काल के इतिहास से सम्बद्ध बहुत से उपयोगी ग्रन्थों का निर्देश किया है। एम. एल. शर्मा मानते हैं कि इतिहास भी एक दर्शन है। भारत के इतिहास में जोधपुर की महान् भूमिका है। इतिहास की परिभाषा देनी कठिन है, परन्तु इस का संस्कृत पर्याय 'इतिहास' स्वतः प्रकाशी है..... "यह वस्तुतः ऐसा हुआ।" ऐतिहासिक वा कार्य बहुत कठिन है क्यों कि घटनाओं का सच्चा और वस्तुनिष्ठ वृत्त लिखना कठिन है। टी. एस. बँनर्जी इतिहास के स्रोत के रूप में मंगल काव्यों, वैष्णव साहित्य पञ्चलि, छर, लोक साहित्य और ऐतिहासिक गथाओं या ऐतिहासिक गीतों का निर्देश करते हैं और इन स्रोतों के सन्दर्भ में बंगाल पर मराठों के आक्रमण का वर्णन करने हैं। एम. पी. कमेरकर ने मराठों की राजनीतिक एकता पर तुकाराम और रामदास के प्रभाव का निर्देश किया है। उन का अनुगमन अधिक देशभक्त और राष्ट्रिय साहित्य के दो रूपों—बक्सर और पोवाड़ा द्वारा किया गया। लेख दोनों ही प्रकारों की कुछ कृतियों से संगृहीत नामों का वर्णन करता है, और जीवन कथाओं, विशेषतः नाना फ़ट्टनवीस की आत्मकथा का निर्देश करना है। इन तीनों प्रकार की रचनाओं का मुख्य प्रयोजन मराठों में राष्ट्रिय चेतना और देशप्रेम को उभारना और उन्हें महान् विपत्तियों के विरोध में एक कर देना था। ऐतिहासिक दृष्टि से वे ऐतिहा-

सिक को उस युग की भावना को समझने के योग्य बनाने के महान् महत्त्वपूर्ण प्रयोजन को पूरा करते हैं।

६७७. राजस्थान इतिहास कांग्रेस का वीकानेर अधिवेशन; निदेशक, हिन्दी विश्वभारती शोध संस्थान; विभ., ६.३; १९७० (२०२७ वि.); २; हि.। ले. ने राजस्थान के इतिहास की विशेषताएँ बताते हुए माना है कि वीकानेर मण्डल ऐतिहासिक शोध सामग्री का अपूर्व भण्डार है।

६७८. राजस्थान में स्वाधीनता संग्राम का इतिहास; (समाचार); विधानसभाई संवाददाता; राप., २१.५.१९७१; ५:२; हि०। जयपुर में २० मई, १९७१ को मुख्य मन्त्री मोहन लाल सुखाड़िया ने राज्य विधानसभा में बताया है कि वलवन्त राय महता, मुनि जिनविजय, हरिभाऊ उपाध्याय, मथुरालाल शर्मा, दशरथ शर्मा, सत्यप्रकाश श्रीवास्तव, नाथुराम खड़गावत के सहयोग से राज्य की सभी भूतपूर्व रियासतों के राजकीय और राजनैतिक रिकार्डों से राज्य में स्वाधीनता संग्राम के इतिहास लिखने का प्रवन्ध किया गया है। यह "राजस्थान थू. दी एजेज" का दूसरा भाग होगा। यह छपने वाला है। पहला भाग छप चुका है।

679. **National Bibliographical Dictionary**; (News); S. P. Sen, Director of the Institute of Historical Studies; **JRIHR.**, VI.4; 10-12.1970; 1; E. Sen said in the institute's Jodhpur session that "the institute is preparing a dictionary of national bibliography in which the area covered is the whole of pre-partition India".

संस्थान के जोधपुर सम्मेलन में सेन ने कहा कि "संस्था राष्ट्रिय कोष रूप पुस्तक तालिका तैयार कर रही है जिस का क्षेत्र विभाजन से पूर्व का समस्त भारत है।"

दक्षिण भारत का इतिहास
(History of South India)

680. **The Karnataka Campaigns**

of Ranadulla Khan (1637-1639); B. Muddachari; JHSM., 6; 1970; 21-26; E. The paper contains an account of the campaigns of Ranadulla Khan between 1637 and 1639 against Ikkeri (now Sagar), Sira, Moraser kingdom and Mysore, their events and treaties. The immediate cause of the campaigns was a misunderstanding between Hanumappa Nayaka of Basavapatna and Virabhadra Nayaka of Ikkeri. The real cause was that the Sultan of Bijapur wished to annex as much as he could out of what was available in south India consequent upon the break up of the Vijayanagar Empire after the battle of Talikota in 1565. The paper also lists five consequences of the treaty between the Ruler of Mysore, Kanthirava Narasaraja who was much disappointed and the Bijapur general. This also reflects that Shahji did not relish the separate existence of Mysore.

लेख में इक्केरी (आजकल सागर), सिरा, मोर-
सर राज्य और मैसूर के विरुद्ध १६३७-१६३९ के बीच
रणदुल्ला खां की युद्धयात्राओं, इन की घटनाओं
और सन्धियों का विवरण है। इन यात्राओं का
तात्कालिक कारण बसवपत्तन के हनुमप्पा नायक और
इक्केरी के वीरभद्र नायक के बीच बोधभ्रान्ति थी।
वास्तविक कारण यह था कि बीजापुर का सुल्तान
१५६५ में तानिकोटा के युद्ध के बाद विजयनगर
साम्राज्य के टिन्न-भिन्न हो जाने के कारण दक्षिण
भारत में जो कुछ उपलब्ध था, उस में से जितना वह
ले सकता था, उतना अपने राज्य में मिलाना च हता
था। लेख में मैसूर के राजा कण्ठोरव नरसंराज,
जो बहुत निराश था, और बीजापुर के सेनापति के
बीच की सन्धि का भी निर्देश है। इस में यह भी
बताया गया है कि शाहजी को मैसूर की स्वतन्त्र
सत्ता नहीं भाती थी।

681. **Chronology of The Gaṅgas of Śvetaka;** S. C. Behera, Sambalpur (Orissa); JOL, XIX. 4; 6.1970; 361-368; E. The Gaṅgas of Śvetaka rose to eminence with the rise of the Bhaumas and probably fell with the fall of the Bhaumas. The tentative chronology given on PP.

368 has been arrived at by a discussion of the position and statement of the various (i.e. 15) copper plates tabulated on PP. 361. The capital of the Gaṅgas was called Śvetaka, modern Chikati. The earliest Śvetaka king was Jaya Varmā. Sāmanta Varmā was the last king. There are no records to trace the history of the Gaṅgas of Śvetaka. The paper discusses various chronological discrepancies.

श्वेतक के गंग भौमों के उत्थान के साथ उत्कर्ष
को प्राप्त हुए और सम्भवतः भौमों के पतन के साथ
पतन को प्राप्त हुए। पृ. ३६८ पर दी गई काम-
चलाऊ तिथितालिका पृ. ३६१ पर सारणीबद्ध
विभिन्न (अर्थात् १५) ताम्रपत्रों की स्थिति और
कथनों के विवेचन से स्थिर की गई है। गंगों की
राजधानी श्वेतक कहलाती थी। यह आधुनिक
चिकति है। सब से पहला श्वेतक राजा जयवर्मा
था। सामन्त वर्मा अन्तिम राजा था। श्वेतक के
गंगों के इतिहास के निर्माण के लिए कोई लेख
उपलब्ध नहीं हैं। लेख तिथिक्रम को बहुत सी
विपमताओं का विवेचन करता है।

682. **Khajuraho : A Study in the Cultural Conditions of Chandella Society;** Vidya Prakash; Pub. D. B. Taraporewala Sons, Bombay; 1967; Demy 4; xxviii+217; 110 photographs and 350 line Drawings; 6-00; Rev. A. D. P.; ABORI., L.I-IV; 1969; 118-120; E. The author has reconstructed the social, economic and moral life of the Chandella society on the basis of sculptural representations supplemented by other contemporary evidences. He also gives a brief description of 21 out of over 30 temples. The temples of different sects are strikingly similar in architectural design. Erotic sculpture are the logical outcome of a number of factors, as, e.g., sexuality and religion were closely inter-linked in India. The reviewer feels that some attention should have been given to socio-economic life.

ले. ने अन्य तत्कालीन सभित्तियों से पूरित मूर्ति-
कला के चित्रणों के माध्यम पर चन्देल समाज के

सामाजिक, आर्थिक और नतिक जीवन का पुनर्निर्माण किया है। वह ३० से भी अधिक मन्दिरों में से २१ का सक्षिप्त वर्णन करता है। विभिन्न ग्रन्थों के मन्दिरों के स्थापत्य अभिकल्प में लक्षणीय नमानना है। कामनास्थीय मूर्तियाँ अनेकों तत्त्वों के न्याय्य परिणाम हैं, उदाहरणार्थ, भारत में काम और धर्म का परस्पर में घनिष्ठ अन्तर्मिश्रण है। समीक्षक का कहना है कि कुछ ध्यान सामाजिक-आर्थिक जीवन पर भी देना चाहिए था।

683. Caṭṭānam Maḍham—Its Identification; K. G. Krishnam, Mysore; **JOI**, XIX. 4; 6. 1970; 346-350; E. Uddyotana-Sūri's Prakṛta Campū Kuvalayamālā describes a caṭṭānam maḍham—a national institute teaching several subjects including Veda and warfare. Its description has been compared with the account of a copper plate charter in Tamil dated 8.7.866 A. D. After examining the various places as the possible site of this institution the author concludes that Uddyotana's reference appears to be to the Kāndaḷūr-śālai, identified with Valiya-śālai, a locality in Trivandrum. It is corroborated by a reference in Anantapur-varṅanam to the existence of a college of advanced Vedic studies at Kāndaḷūr. Such institutions were functioning in Tamil Nadu also.

उद्योतन मूरी का प्राकृत चम्पू कुवलयमाला एक चट्टाङ्गम् मडम् नामक वेद और युद्धविद्या सहित विभिन्न विषयों का अन्वेषण करने वाली एक राष्ट्रिय संस्था का वर्णन करता है। इस के वर्णनों की तुलना दिनांक ८.७.८६६ ई. के तमिल के एक ताञ्जोरमन पत्र के विवरण से की गई है। उन संस्था के लिए संभव विभिन्न स्थानों की परीक्षा के बाद वे. से. निष्कर्ष निकाला है कि उद्योतन का निर्देश विवेकम् के एक क्षेत्र वलियमाला ने अभिमान कान्दलूर-शांलाई की और मानुम पड़ता है। उस की पूर्ण अन्तर्पुरवर्णन में कान्दलूर के उद्योतन मूरी का अध्ययन ने महाविद्यालय की अवस्थिति के

निर्देश से होती है। ऐसी संस्थाएं तमिल नाडू में भी काम कर रही थीं।

684. The Tamil Society of the Sangam Age; V. Perumal, K. G. F. First Grade College, Oorgaum, K. G. F. - 2 (Mysore State); **UMCV.**, 1970; 381-395; E. The literature prior to the Sangam Age (500 B.C. to 200 A.D.) has now been lost. The Sangama literature consists of *Tolkāppiyam*, *Pattupāṭṭu*, *Eṭṭutogai*, *Tirukkural*, *Silappadikāram* and *Manimekalai*. Free from Skt. words, hybrid style, pedantic phrase and fantastic imagination Sangama literature is a mirror which reflects all the aspects of the ancient Tamil society. In education there were two faculties of Arts and Science. It had social, moral, philosophical, spiritual, cultural and living aims. The society was classified on the principle of division of labour. There was perfect social equality between men and women. Friendship implied help. Marriage led to a sacred union of two hearts. Its purpose was sensual enjoyment and charity. Wife was the ruler of home. Monogamy was the only moral code. Prostitution was looked with contempt. Marriage rites had no Aryan influence. Stress was laid on morality consisting of purity of thought, word and deed. Religion was monotheistic. God was prayed for His divine grace. Tamilians believed in the cycle of births and deaths as a result of karma. Culture had four stages touching four aspects—virtue—ethical, wealth—material, pleasure—emotional, and salvation—spiritual. Conception of manhood comprised physical strength and bravery. In the six state agencies army was given the first place. Physical strength, courage and patriotism were the basic qualifications of a soldier. Women also had martial spirit. The warfare had its ethical code. The Sangama age witnessed a benevolent and welfare monarchy. There were three political entities with many chieftains. The king was called 'kavalan' (able protector). He consulted council of ministers, poets and elderly statesmen on important matters. Man had to earn wealth for his family's living.

The state promoted agriculture and other sources of revenue. Labour was respected. Tamil Nad had commercial intercourse with different countries of the world. Various commodities were exported and imported. Exchange of articles was its special feature. Trade and commerce were based on perfect virtue and were completely free from black-marketing, food adulteration and other mal-practices. Various industries determined the economic standard. These included metal works, carpentry, weaving, leather works and so on. Weaving was next to agriculture only. Music served a harmonious link between literature and drama. Tamilian four main metrical forms are perfectly musical. There were three types of musical instruments—wind, string and percussion ones represented by flute, lyre and drum. Painting, sculpture, embroidery and various types of workmanship were in vogue. The fine arts proclaim the emotional development and aesthetic advancement of the Tamils of yore. The author throws much light on these and allied matters relating to Tamil culture in the Sangam Age and often refers to the source of his information.

संगम युग (५०० ई. पू. से २०० ई.) से पूर्व का साहित्य अत्र नष्ट हो चुका है। तोल्काप्पियम्, पत्तुपाट्टु, एट्टुत्तोगड, तिरुक्कुरल, मिन्नप्पदिकारम् और मनिमेकलड संगम साहित्य हैं। संस्कृत ग्रन्थों, मिश्र शैली, पण्डितलज्ज शब्दावली और विपम कल्पनाओं से युक्त संगम साहित्य एक दर्पण है जो प्राचीन तमिल समाज के सब पक्षों की प्रति-विम्बित करता है। शिक्षा में कला और विज्ञान के दो संकाय थे। इस के लक्ष्य सामाजिक, नैतिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, नास्तिक और मराण थे। समाज श्रमविभाजन के सिद्धान्त पर वर्गीकृत थी। पुरुष और स्त्री में पूर्ण नामाजिक समता थी। मैत्री सहायता की शोभा थी। विवाह दो हृदयों का पवित्र एकीकरण था। इस का लक्ष्य शत्रुय युद्धों का उपभोग और दान था। पत्नी धर की मानक थी। एकवर्तीत्व ही एकमात्र प्राथमिकता

थी। वैश्यावृत्ति की अवज्ञा की जाती थी। विवाह-क्रियाओं पर कोई आर्यप्रभाव नहीं था। मन, वचन और कर्म की शुद्धि रूय नैतिकता पर बल दिया जाता था। धर्म एकेश्वरवादी था। ईश्वर की प्रार्थना उस की दिव्य कृपा के लिए की जाती थी। तमिलवासी कर्मजन्य जन्म और मरण के चक्र में विश्वास रखते थे। संस्कृत में नैतिक गुण, भौतिक धन, भाविक मुक्त और आध्यात्मिक मोक्ष—इन चार पक्षों के व्यञ्जक चार स्तर थे। पौरुष की परिकल्पना में शारीरिक शक्ति और वीरता का समावेश था। राष्ट्र के छे गुणों में सेना को प्रथम स्थान दिया गया था। एक नैतिक के लिए शारीरिक शक्ति, साहस और स्वदेशप्रेम आधारभूत अर्हताएँ थीं। स्त्रियों में भी सामरिक-वीरभाव था। युद्धकर्म की अपनी आचारमहिता थी। संगम युग में राजतन्त्र हितैषी और कल्याणकारी था। वहाँ बहुत से सामन्तों वाली तीन राज-नैतिक सत्ताएँ थीं। राजा 'कवलन'—समर्थ रक्षक कहलाता था। वह महत्त्वपूर्ण विषयों पर मन्त्रि-परिषद्, कवियों और वृद्ध राजनीतिज्ञों से परामर्श लिया करता था। पुरुष को अपने परिवार के निर्वाह के लिए धन कमाना पड़ता था। राज्य कृषि और राजस्व के अन्य स्रोतों की वृद्धि और विकास करता था। श्रम का आदर था। तमिल नाडु का जगत् के विभिन्न देशों से व्यापारिक संपर्क था। अनेकों पदार्थों का निर्यात और आयात होता था। वस्तुओं का विनिमय इस की विशेषता थी। वाणिज्य और व्यापार शुद्ध धर्म पर आश्रित था और काला-बाजार खाद्यमिश्रण और अन्य दुर्गचरणों से पूर्णतः मुक्त था। विभिन्न उद्योग आर्थिक स्तर को निर्धारित करते थे। इन में धानुकर्म, तडण, कपड़ा बुनना, चमड़े का काम आदि थे। कपड़ा बुनना केवल कृषि से ही प्रगता था। संगीत नाटक और साहित्य के बीच मायुर्विज्ञान कर्मी का काम करना था। तमिल के चार मुख्य छन्दोत्पन्न पूर्वान्तः संगीतात्मक हैं। पाच सभ तीन प्रकार के थे—यत्तु,

तार और आघात वाले जिन के प्रतिनिधि क्रमशः वेणु, वीणा और ढोलक थे। चित्रकारी, मूर्ति-निर्माण, कशीदा काढ़ना और विभिन्न प्रकार के हस्त-शिल्प प्रचलित थे। ललित कलाएं प्राचीन युग के तमिलों के भावात्मक विकास और सौन्दर्यबोधप्रगति की घोषणा करती हैं। ले. संगम काल में तमिल संस्कृति से सम्बद्ध इन और सम्बद्ध विषयों पर बहुत प्रकाश डालता है और बहुधा अपनी जानकारी के स्रोतों का निर्देश करता है।

685. Deccan Riots of 1875; **JRIHR., VI.4; 10-12.1970; 25-33; E.** The growth of peasant indebtedness in India in the 19th c. stimulated by the fraudulent practices and exorbitant demands of the money-lenders resulted in the development of various grievances by the peasants against the money-lenders. Consequently besides isolated crimes culminating in murders of money-lenders there was an out-break of organised riots known as the Deccan Riots by the Kunbi peasants against the money-lenders (mainly Marwaris) in Poona and Ahmednagar in 1875. Usurious rates of interest, (generally ex-part) court decrees, sale of land under pressure or fear of civil process, the Limitation Law, 1859 and several other circumstances accompanied by the circulation of a story about the surrender of bonds to government by the money-lenders and official enquiry into money lending fanned the riots started at Supa which soon spread to various places in Maharashtra. These riots were marked by the general absence of violence to persons since the object was to make the money-lenders harmless by depriving them of bonds and account books. The Kunbis were law abiding and were led by village heads—Patels and others. The desired aim was fulfilled by the Deccan Agriculturists' Relief Act, 1879 which reduced agricultural indebtedness.

१९ वीं शताब्दी में भारत में ऋण-यत्नना की साहूकारों के बचक व्यवहार और नारी जागो से उत्पन्न वृद्धि ने साहूकारों के विरुद्ध

किसानों की विभिन्न शिकायतों को जन्म दिया। परिणामतः साहूकारों की हत्या में चरम सीमा को छूने वाले इधर-उधर अपराधों के अतिरिक्त १८७५ में पूना और अहमदनगर में साहूकारों (विशेष रूप से मारवाड़ियों) के विरुद्ध कुन्बीकिसानों द्वारा दक्कन विप्लव के नाम से ज्ञात व्यवस्थित विप्लव भड़क उठा। वर्धनशील व्याज की दरें, (बहुधा एक-पक्षीय) न्यायालय की डिग्रियां, दवाव या अदालती कार्यवाही के डर से भूमि का विक्रय, १८५६ का सीमानिर्धारक नियम और साहूकारों द्वारा सरकार को ऋणपत्रों के समर्पण से सम्बन्धित एक कहानी के प्रसार के साथ अन्य अनेकों स्थितियों और रुपया उधार देने की सरकारी जांच ने सूपा में चालू हुए विप्लवों को प्रचण्ड कर दिया जो शीघ्र ही महाराष्ट्र में विभिन्न स्थानों में फैल गए। इन विप्लवों में व्यक्तियों के प्रति हिंसा का सामान्यतः अभाव लक्षित होता है क्यों कि इन का लक्ष्य साहूकारों को ऋणपत्रों और बही-खातों से वञ्चित कर निर्दोष बनाना था। कुन्बी नियम पालक थे और गांव के मुखिया—पटेल और अन्य उन के नेता थे। अभिलषित लक्ष्य दक्कन कृषक अधिनियम १८७९ के द्वारा पूरा किया गया जिस (अधिनियम) ने कृषकों की ऋणग्रस्तता को कम कर दिया।

686. The Five Hundred of Ayyavole; **C. R. Rangaswamiah; JHSM., 6.1970; 55-58; E.** This guild organisation figures prominently in the several grants of the 12th and 13th centuries. It was the biggest trade organisation in Karnataka established either by 500 Chaturvedis or 500 Jain merchants. The guild was also styled as Nana desis as it compared members from various places. It carried trade with far off places like Persia, Nepal and Malaya besides Indian cities. They traded in various types of articles including costly and precious stones, cardmoms, sandle, saffron and drugs. Sea-borne trade flourished during this period. The members of this organisation were a prosperous class in the

society. They were charitable and filled the treasury by paying all and full taxes.

यह श्रेणी संस्था १२ वीं और १३ वीं शती के अनेकों दानपत्रों में निर्दिष्ट हुई है। यह कर्नाटक में सब से बड़ी व्यापारिक संस्था थी जो ५०० चतुर्वेदियों या ५०० जैन व्यापारियों द्वारा स्थापित की गई थी। यह श्रेणी नाना देसी भी कहलाती थी क्योंकि इस में विभिन्न स्थानों के सदस्य थे। यह भारतीय नगरों के अतिरिक्त फारिस, नेपाल और मलाया जैसे दूरस्थ स्थानों से व्यापार करती थी। वे अनेक प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करते थे जिन में बहुमूल्य रत्न, इलायची, चन्दन, केसर और शोपधियां थीं। इस काल में समुद्री व्यापार फला-फूला। इस संस्था के सदस्य समाज में समृद्ध वर्ग थे। वे दानशील थे और कोप को समस्त और पूरे कर दे कर भरा करते थे।

687. **Balance of Forces in the Nāyaka Polity of Madurai;** K. Rajayyan, Sri Venkateswara Univ., Tirupati; UMCV., 1970; 677-683; E. The paper aims at examining the forces in Nāyaka polity and the manner in which they had balanced against each other in safeguarding popular rights and interests within an autocratic set up. The working of this "polity centred upon a system of balance provided by the princely order, poligari system and village community. In their relations with the people the first was autocratic, the second responsive and the third representative. "Princely order - the ruler occupied the highest order with all the powers. "Poligars were rajahs, the auxiliary chieftains occupied a key position in the political structure between the prince and his subjects". Poligars in fact rendered an inestimable service to the community. As intermediaries they did what the rulers normally neglected to do in promoting public welfare. The working of the village communities ensured to the inhabitants the basic requirements, primarily local. These village communities combined in themselves social welfare

policy with republican and representative principles. The kaval performed the duties of the village police. The mutual restrictions imposed upon each other by these three orders of princes, poligars and the village communities served as a corrective to the evils of autocracy and the anomalies of princely administration. The paper describes the civil administration at these three levels and explains defence arrangements and opines that the 'system lacked defined jurisdictions, peaceful settlements of conflicts and universal applicability'. In the absence of anything better it went a long way in safeguarding the rights and promoting the interests of the individuals.

लेख का लक्ष्य नायक राज्यतन्त्र में शक्तियों और उस पद्धति को जिस के द्वारा ये शक्तियां एक-तन्त्रीय व्यवस्था में लोक के अधिकारों और हितों की रक्षा में एक दूसरे के विरुद्ध संतुलित हो जाती थीं—की परीक्षा है। "इस राज्यतन्त्र का कार्यव्यापार राजकीय जनता, पोलोगारी व्यवस्था और ग्रामसमुदाय द्वारा प्रस्तुत सन्तुलन पद्धति पर केन्द्रित था। जनता से सम्बन्धों में पहला एकतन्त्रीय, दूसरा उत्तरदायी और तीसरा प्रतिनिधि था।" राजकीय वर्ग—शासक सब शक्तियों से युक्त सर्वोच्च स्थान को वाह्य करते थे। "पोलीगार राजा था। सहायक सामन्त का राजाओं और प्रजा के बीच राजनीतिक ढांचे में प्रधान स्थान था। वस्तुतः पोलीगारों ने समाज की अनुभूति सेवा की। मध्यवर्ती के रूप में उन्होंने ने वह किया जिस की सामान्यतः लोककल्याण के सम्बन्धन में राजा उपेक्षा कर देते थे। ग्रामसमुदायों के कार्यसंचालन ने निवासियों के लिए आवश्यकताओं—मुख्यतः स्थानीय की पूर्ति निश्चित कर दी। इन ग्रामसमुदायों ने प्रजातान्त्रिक और प्रतिनिधि सिद्धान्तों को ग्रहणवादा हुआ था। 'कवल' ग्राम पुलिस का काम करता था। राजाओं, पोलीगार और ग्रामसमुदायों के इन तीन वर्गों द्वारा ग्राम में एक दूसरे पर लगाए गए प्रतिबन्धों ने एकतन्त्र शासन की सुरक्षाओं और राजाओं के

शासन के षपम्यों के लिए सुधारक का काम किया । लेख इन तीनों स्तरों पर नागरिक शासन का वर्णन करता है, तैनिक व्यवस्था का विवरण देता है और मानता है कि इस 'प्रणाली में क्षेत्रों के निर्धारण, भगडों के शांतिमय निपटारे और सार्वत्रिक अनुकूलता (=प्रयोगार्हता) का अभाव था ।' अन्य साबुतर के अभाव में व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा और हितों के सम्पादन में इस ने पर्याप्त योगदान दिया ।

688. *The River Kaveri in the Dawn of South Indian History*; B. K. Gururaja Rao; *JHSM.*, 6.1970; 33-38; E. The archaeological finds of neolithic, megalithic and later megalithic times on the banks of Kaveri from the junction of the rivers Kapila and Kaveri down the course of Kaveri to its mouth and described with their main characteristics in this paper clearly indicate "that in the protchistoric times, the seeds of civilization were sown on the banks of this sacred river, which nurtured them to grow into a mighty civilization in early historic times".

इस लेख में उन को मुख्य विशेषताओं के साथ वर्णित कावेरी के तटों पर कपिला और कावेरी के संगम से कावेरी के किनारे-किनारे इस के मुख तक नवपाषाणयुगीन, महापाषाणयुगीन और उत्तर महापाषाणयुगीन पुरातात्विक वस्तुएं स्पष्ट इंगित करती हैं "कि प्रागैतिहासिक काल में सभ्यता के बीज इस पवित्र नदी के किनारे बोए गए थे, जिस ने प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल में एक शक्तिशाली सभ्यता के रूप में विकसित होने के लिए उन्हें पालापोना (प्रयत्न बढ़ाया) ।"

689. *Vijayanagara-Sringeri Relations*; A. V. Venkata Ratnam; *JHSM.*, 1:70; 27-31; E. Till the advent of Vidyāranya the Rṣya-śrīṅgagiri or Śrīṅgeri math was a centre of religious and philosophical culture. It was a cluster of hermitages. Vidyāranya played a prominent part in the early history of the Vijayanagar empire. He secured from the emperors of Vijayanagar rich land

endowments, money materials and a number of birudas. It now became a state within a state. It was autonomous in its affairs. Its responsibility or duty was to spread advaita philosophy, education and religion. The Vijayanagar emperors created a Samsthanam which continuously received grants from the various emperors under various teachers. An account of these grants and teachers has been given in the paper. The Math had intimate connections with the royal house. After A. D. 1630 due to political instability the Samsthanam lost some of its holdings and valuable property.

विद्यारण्य के आविर्भाव तक ऋष्यशृङ्गगिरि अथवा शृङ्गेरी मठ धार्मिक और दार्शनिक संस्कृति का केन्द्र था । यह आश्रमों का गुच्छा था । विद्यारण्य ने विजयनगर के प्रारम्भिक इतिहास में प्रमुख भाग लिया । उस ने विजयनगर के राजाओं से समृद्ध भूमि की वृत्ति, धनसामग्री और बहुत से विद्द प्राप्त किए । अब यह राज्य के भीतर एक राज्य बन गया । अपने वृत्तों में यह स्वायत्तशासी था । इस का दायित्व या कर्तव्य अद्वैत दर्शन, शिक्षा और धर्म का प्रसार थे । विजयनगर के नृपों ने एक संस्थानम् की स्थापना की जिसे विभिन्न आचार्यों के काल में विभिन्न सम्राटों से अनुदान मिलते रहे । लेख में इन अनुदानों और आचार्यों का विवरण दिया गया है । मठ के राजभवन से घनिष्ठ सम्बन्ध थे । १२३० ई० के बाद राजनैतिक अस्थिरता के कारण संस्थानम् कुछ क्षेत्र और मूल्यवान् सम्पत्ति से वञ्चित हो गया ।

एशियाई अध्ययन (Asiatic Studies)

690. *Indian Culture in South-East Asia*; R. C. Majumdar; Pub. B. J. Institute of Learning and Research, R. C. Road, Ahmedabad-9; 64; 10-00; Rev. Sumana S. Shah; *JOI*, XIX.4; 6.1970; 449-450; E. It is a collection of three lectures dealing with 1. the beginnings of Hindu Colonisation in South-East Asia with an account of the four Hindu Empires in Indo-China and Indonesia

2. Hindu social and religious institutions
3. Working of Hindu influence on the creation of art and literature of these lands. Hindu has been used in a broader sense including Brahmanism, Buddhism and Jainism and excluding Islam. Illustrations have been added (where necessary). The author mentions the sites of archaeological excavations along with the names of their respective countries.

यह तीन भाषणों का संग्रह है, जिन के विषय हैं—१. इण्डो चाइना और इण्डोनेशिया में चार हिन्दू साम्राज्यों के विवरण के साथ दक्षिण पूर्वी एशिया में हिन्दू उपनिवेशन का प्रारम्भ २. हिन्दू सामाजिक और धार्मिक संस्थाएँ ३. इन भू-देशों में कला और साहित्य की रचना पर हिन्दू प्रभाव की प्रक्रिया। यहाँ हिन्दू का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया गया है जिस में इस्लाम का परिहार करते हुए ब्राह्मण, जैन और बौद्ध धर्मों का अङ्गण किया गया है। (जहाँ आवश्यक है) वहाँ निम्न आदि भाग दिए गए हैं। वे. ने पुरानत्व की खुदाइयों के स्थलों और उन के देशों का उल्लेख किया है।

जाती हैं—(१) उन भारतीयों की प्रभुता जिन की शिक्षा इंग्लैण्ड में हुई थी तथा जिन का अग्रजो शासन से संबन्ध था। (२) उस भारतीय शिक्षा प्राप्त वर्ग का अभ्युदय जिस में पञ्जाब, तमिल विद्यालयों के शिक्षक तथा व्यापारी लोग शामिल थे, तथा (३) श्रमिक वर्ग के कुछ पढ़े लिखे व्यक्तियों का श्रमिकों में वृद्धता द्वारा प्रभाव। ये तीनों प्रवृत्तियाँ क्रमशः १६२० के अन्तिम वर्षों में और १६३० के प्रारम्भिक तथा अन्तिम वर्षों में दृष्टिगोचर होती हैं।

सत्यदेव मिश्र

692. **Political Loyalty and Cultural Roots**; Murugesu Pathmanathan, Lecturer, Faculty of Economics and Administration, Univ. of Malaya, Kuala Lumpur; T.O., 1969-70; 75-78; E. The article raises the problem of political loyalty of the 'Indian Community in Malaysia'. It criticises the view that the said community in Malaysia is loyal to India and advocates that the loyalty of these Indians consists in keeping relations to their kinsmen, village and cultural

शासन के वैपम्यों के लिए सुधारक का काम किया। लेख इन तीनों स्तरों पर नागरिक शासन का वर्णन करता है, सैनिक व्यवस्था का विवरण देता है और मानता है कि इस 'प्रणाली में क्षेत्रों के निर्धारण, भूगडों के शांतिमय निपटारे और सार्वत्रिक अनुकूलता (=प्रयोगार्हता) का अभाव था।' अन्य सावुतर के अभाव में व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा और हितों के सम्पादन में इस ने पर्याप्त योगदान दिया।

688. The River Kaveri in the Dawn of South Indian History; B. K. Gururaja Rao; *JHSM.*, 6, 1970; 33-38; E. The archaeological finds of neolithic, megalithic and later megalithic times on the banks of Kaveri from the junction of the rivers Kapila and Kaveri down the course of Kaveri to its mouth and described with their main characteristics in this paper clearly indicate "that in the protchistoric times, the seeds of civilization were sown on the banks of this sacred river, which nurtured them to grow into a mighty civilization in early historic times".

इस लेख में उन की मुख्य विशेषताओं के साथ वर्णित कावेरी के तटों पर कपिला और कावेरी के संगम से कावेरी के किनारे-किनारे इस के मुख तक नवपाषाणयुगीन, महापाषाणयुगीन और उत्तर महापाषाणयुगीन पुरातात्विक वस्तुएं स्पष्ट इंगित करती हैं "कि प्रागैतिहासिक काल में सभ्यता के बीज इस पवित्र नदी के किनारे बोए गए थे, जिस ने प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल में एक शक्तिशाली सभ्यता के रूप में विकसित होने के लिए उन्हें पालापोना (ग्रयान् बढ़ाया)।"

689. Vijayanagara-Sringeri Relations; A.V. Venkata Ratnam; *JHSM.*, 1. 70; 27-31; E. Till the advent of Vidyāranya the R̥ṣya-śr̥ngagiri or Śr̥ngeri math was a centre of religious and philosophical culture. It was a cluster of hermitages. Vidyāranya played a prominent part in the early history of the Vijayanagar empire. He secured from the emperors of Vijayanagar rich land

endowments, money materials and a number of birudas. It now became a state within a state. It was autonomous in its affairs. Its responsibility or duty was to spread advaita philosophy, education and religion. The Vijayanagar emperors created a Samsthanam which continuously received grants from the various emperors under various teachers. An account of these grants and teachers has been given in the paper. The Math had intimate connections with the royal house. After A. D. 1630 due to political instability the Samsthanam lost some of its holdings and valuable property.

विद्यारण्य के आविर्भाव तक ऋष्यशृङ्गगिरि अथवा शृङ्गेरी मठ धार्मिक और दार्शनिक संस्कृति का केन्द्र था। यह आश्रमों का गुच्छा था। विद्यारण्य ने विजयनगर के प्रारम्भिक इतिहास में प्रमुख भाग लिया। उस ने विजयनगर के राजाओं से समृद्ध भूमि की वृत्ति, धनसामग्री और बहुत से विरुद प्राप्त किए। अब यह राज्य के भीतर एक राज्य बन गया। अपने वृत्तों में यह स्वायत्तशासी था। इस का दायित्व या कर्त्तव्य अद्वैत दर्शन, शिक्षा और धर्म का प्रसार थे। विजयनगर के नृपों ने एक संस्थानम् की स्थापना की जिसे विभिन्न आचार्यों के काल में विभिन्न सम्राटों से अनुदान मिलते रहे। लेख में इन अनुदानों और आचार्यों का विवरण दिया गया है। मठ के राजभवन से घनिष्ठ सम्बन्ध थे। १६३० ई० के बाद राजनैतिक अस्थिरता के कारण संस्थानम् कुछ क्षेत्र और मूल्यवान् सम्पत्ति से वञ्चित हो गया।

एशियाई अध्ययन (Asiatic Studies)

690. Indian Culture in South-East Asia; R. C. Majumdar; Pub. B. J. Institute of Learning and Research, R.C. Road, Ahmedabad-9; 64; 10-00; Rev. Sumana S. Shah; *JOI*, XIX.4; 6.1970; 449-450; E. It is a collection of three lectures dealing with 1. the beginnings of Hindu Colonisation in South-East Asia with an account of the four Hindu Empires in Indo-China and Indonesia

2. Hindu social and religious institutions
3. Working of Hindu influence on the creation of art and literature of these lands. Hindu has been used in a broader sense including Brahmanism, Buddhism and Jainism and excluding Islam. Illustrations have been added (where necessary). The author mentions the sites of archaeological excavations along with the names of their respective countries.

यह तीन भाषणों का संग्रह है, जिन के विषय हैं—१. इण्डो चाइना और इण्डोनेशिया में चार हिन्दू साम्राज्यों के विवरण के साथ दक्षिण पूर्वी एशिया में हिन्दू उपनिवेशन का प्रारम्भ २. हिन्दू सामाजिक और धार्मिक संस्थाएँ ३. इन भूमिक्षेत्रों में कला और साहित्य की रचना पर हिन्दू प्रभाव की प्रक्रिया। यहाँ हिन्दू का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया गया है जिस में इस्लाम का परिहार करते हुए ब्राह्मण, जैन और बौद्ध धर्मों का ग्रहण किया गया है। (जहाँ आवश्यक है) वहाँ चित्र आदि भी दिए गए हैं। ले. ने पुरातत्त्व की खुदाइयों के स्थलों और उन के देवों का उल्लेख किया है।

सधीर कुमार गुप्त

जाती हैं—(१) उन भारतीयों की प्रभुता जिन की शिक्षा इंग्लैण्ड में हुई थी तथा जिन का अंग्रेजी शासन से संबन्ध था। (२) उस भारतीय शिक्षा प्राप्त वर्ग का अभ्युदय जिस में पत्रकार, तमिल विद्यालयों के शिक्षक तथा व्यापारी लोग शामिल थे, तथा (३) श्रमिक वर्ग के कुछ पढ़े लिखे व्यक्तियों का श्रमिकों में बढ़ता हुआ प्रभाव। ये तीनों प्रवृत्तियाँ क्रमशः १९२० के अन्तिम वर्षों में और १९३० के प्रारम्भिक तथा अन्तिम वर्षों में दृष्टिगोचर होती हैं।

सत्यदेव मिश्र

692. **Political Loyalty and Cultural Roots**; Murugesu Pathmanathan, Lecturer, Faculty of Economics and Administration, Univ. of Malaya, Kuala Lumpur; T.O., 1969-70; 75-78; E. The article raises the problem of political loyalty of the 'Indian Community in Malaysia'. It criticises the view that the said community in Malaysia is loyal to India and advocates that the loyalty of these Indians consists in keeping relations to their kinsmen, village and cultural tradition.

leading figures, past and present and brief information about Mongol communities outside the Mongolian People's Republic.

यह राज्य और दलमंगठन, सेना, विदेशों से सम्बन्ध, प्रेस, शिक्षा, अर्थ आदि समकालिक मंगोलिया के सभी पक्षों का विवरण देना है तथा नेताओं के जीवन सम्बन्धों पिछली और वर्तमान सूचनाएँ और मंगोलिया के लोक गणराज्य के बाहर मंगोल समाज के विषय में संक्षिप्त जानकारी देना है ।

मुधीर कुमार गुप्त

694. **The Buddhist Temples of Eastern Siberia**; Lokesh Chandra, Director, International Academy of Indian Culture, New Delhi (India); UMCV., 1970; 629-635; E. The paper describes the author's journey to Buryat ASSR and visit to Buddhist shrines during this journey in 1967.

लेख मे ले. की दुर्यात एएसएसआर की यात्रा और १९६७ मे इस यात्रा में बौद्ध मन्दिरों के दर्शन का विवरण दिया गया है ।

695. **A Ceremonial Ox of India : The mithan in nature, culture and history—Introduction, Appendices, Glossary, References**; Frederick J. Simons; Pub. Univ. of Wisconsin Press, Madison; 1968; x+323; US \$ 11-00; Rev H. H. P. Looft, Australian National Univ., Canberra City A. C. T. 2601, Australia; **Journal of South-East Asian Studies**, 1; 3, 1970; 118-119; E. Certain mountain tribes in South and South-East Asia keep domesticated bovine animals at least for the ostentatious display of wealth, their heads etc. serving motif in tribal arts. Late Heine Geldern opined that the cattle were domesticated for sacrificial purpose and hence were cultural possessions of the Neolithic Austronesians. F. J. Simons and his assistant Elizabeth S. Simons have examined the role of mithan, 'the ceremonial ox' in all its aspects along with other related problems. The author concludes that the main interest was to obtain sacrificial animals

for a convenient beef supply. The reviewer feels that relations between the mithan and megalithic cultures and practices should have been investigated somewhat more thoroughly.

दक्षिणी और दक्षिण पूर्वी एशिया में कुछ पहाड़ी जनजातियां कम से कम अपने घन और पशु-संख्या की आत्मश्लाघा के लिए प्रदर्शनार्थ जनजातीय कला में अभिप्रायों के प्रदायक पालतू गोजातीय पशु रखती हैं । दिवंगत हेइन गेल्डर्न की मान्यता थी कि पशु बलि के निमित्त पाले जाते थे और इस कारण वे नवपाषाणयुगीन आस्ट्रोनेशियनों के सांस्कृतिक अधिगम थे । एफ. जी. साइमून्ज और उस के सहायक एलिज़बेथ एस. साइमून्ज ने मिथन—'वैधिक सांड' की भूमिका की उस के सब पक्षों में अन्य सम्बद्ध समस्याओं के साथ परीक्षा की है । ले. का निष्कर्ष है कि बलि के पशुओं के धारण में मुख्य अभिरुचि सुविधापूर्वक गोमांस की उपलब्धि थी । समीक्षक का विचार है कि मिथन और महापाषाणयुगीन संस्कृतियों और क्रियाओं के सम्बन्धों की गवेषणा कुछ अधिक पूर्णता से की जानी चाहिए थी ।

विदेशों से सम्पर्क

(Indian Contacts with Foreign Countries)

696. **Bukhara : A Museum in which People Live; Soviet Land**, 10; 5, 1970; 22; E. Indian traders lived in an Indian caravan sarai. They traded in Russian raw silk, cotton, astrakhan, samovars and other items and Indian green tea, dyes, medicinal plants, silks, brocades and Kashmir shawls (PP. 24:1, Para 4).

भारतीय व्यापारी एक भारतीय सार्थवाह सराय में रहते थे । वे हस्ती कच्ची रेशम, रुई, अस्त्रखान, समोवर और अन्य वस्तुओं, और भारतीय हरी चाय, रंगों, श्रोपधियों, रेशम, किम-हवाय और कदमीरी शालों का व्यापार करते थे । (पृ० २४:१ संदर्भ ४) ।

697. Some Aspects of The Indo-Mediterranean Contacts; R.N. Dandekar; **ABORI.**, 57-74; E. The subject has been treated in four chronological periods—1. Indo-Mesopotamian, 2. Indo-Anatolian, 3. Indo-Hellinistic and 4. Indo-Roman periods. Evidences from Anthropology, Archaeology and literature etc. have been presented. Harrappans originated in local soil with the Mesopotamians from 2500 B. C. to 1900 B. C. Indus people had trade relations with the Minoan Crete. Indo-Anatolian contacts are proved by linguistic evidences indicating close relation between Vedic Skt. and Anatolian languages, the roots of which are traceable in proto-I. E. migrations. Little evidence is available on Indo-Phoenician contacts. Greek influence is noticed in various walks of Indian thought through contact with Ionian Greeks. Active contacts are recorded during Mauryan age which continued even after the death of Aśoka through Bactrians and Romans. Tamil country also had contacts with Romans, Egyptians and Greeks. Greek influence in astronomy, drama, coinage and Gandhāra art and Indian influence on Greek philology have been pointed out.

के विभिन्न क्षेत्रों में यूनानी प्रभाव लक्षित होता है। मौर्य काल में सक्रिय सम्पर्कों का लेखा प्राप्त है। ये सम्पर्क वैक्टोरियावासियों और रोमनों के माध्यम से अशोक की मृत्यु के बाद भी बने रहे। तमिल देश के भी रोमनों, मिस्रियों और यूनानियों से सम्पर्क थे। ज्योतिष, नाटक, मुद्राओं और गान्धार कला पर यूनानी प्रभाव तथा यूनानी दर्शन पर भारतीय प्रभाव दिखाए गए हैं।

भारतीय राजनीति (Indian Polity)

१६. ऋग्वेद का इन्द्र, इन्द्राणी और वृषा-कपि का सम्वाद; रामनाथ वेदालंकार; मुप., २३.१-२; ६-१०.१६७०; ७०-७६; हि.।

176. **An Additional Note on Sundarapāṇḍya's Nitidviṣaṣṭikā;** Ludwik Sternbach, 8201 Britton Avenue, Elmhurst, N. Y. 11373; **UMCV.**, 1970; 333-365; E.

698. **The Kāuṭilya Arthaśāstra : Part III : A Study;** R. P. Kangle; Pub. Bombay Univ.; 1965; 302; 16-00; V. M. Bedekar; **ABORI.**, L. I-IV; 1969; 125-126; E. Part I (Text) and Part II (English Translation and critical notes)

विशिष्ट ऐतिहासिक परिस्थिति से सम्बद्ध नहीं है। मानव का उच्चतम कल्याण इस का लक्ष्य नहीं है। अतः इस के विचार और पहुँच मंथ्यावैली और यूनानी विचारों से भिन्न हैं। ले. ने आधुनिक भारतीय परिस्थितियों में कौशशा. की शिक्षाओं की उपयोगिता का भी विवेचन किया है। ग्रन्थ के अन्त में दो अनुक्रमणिकाएँ और एक बहुत उपयोगी व्यापक पुस्तकसूची दी गई हैं।

174. Cāṇakya-Nīti—Text-Tradition; Ludwik Sternbach; Pub. V.V.R.I., Hoshiarpur; ccvii + 392 (Part I) & cxxix + 274 (Part II); Rev. P. L. Bhargava; **URSHS.**, 2; 7.1967; 130-131; E.

175. Cāṇakya-Nīti—Text-Tradition; Vol II, Part II; Ludwik Sternbach; Pub. V. V. R. I., Hoshiarpur; 1967; 679; 30-00; Rev. V. M. Bedekar; **ABORI.**, L. I-IV; 1969; 129; E.

१०२; जोश के साथ होश की आवश्यकता; युधिष्ठिर मीमांसक; वेवा., २३.२; १२.१९७०; ३-५; हि. ।

699. The Date of The Arthaśāstra; K. C. Ojha, Ancient History Deptt., Allahabad Univ., Allahabad; **UMCV.**, 1970; 743-746; E. The author disagrees from R. P. Kangle about the date and authorship of the Kauṭilya Artha-śāstra (KAS). He holds that Kauṭilya & Viṣṇu Gupta are two different persons. The present KAS. is a redaction by the latter. Style, contents, position in regard to redaction of works in India and the development of Indian society do not permit to date it earlier than 600 A. D. when it was redacted by Viṣṇu Gupta from the vast KAS. literature.

ले. कोटिल्य अर्थशास्त्र (कौशशा.) के काल और कर्तृत्व के विषय में आर. पी. कांले से असहमत है। उस का मत है कि कोटिल्य और विष्णुगुप्त दो भिन्न ध्वनिक हैं। उपलब्ध कौशशा. पिछले के क्षय सम्पादित है। भारत में सम्पादनों में सम्मन्यित शैली, विषय और स्थिति तथा भारतीय

समाज का विकास इसे ६०० ई. के पहले रखने की अनुमति नहीं देती हैं, जब कि विष्णुगुप्त ने इसे विशाल कौशशा. साहित्य से सम्पादित किया था।

700. A Note on the Arthasastra; S.Bhattacharya, Prof. & Hd. of Skt. Deptt. Banaras Hindu Univ., Varanasi; **URSHS.**, 2; 7.1967; 11-23; E. Buddhism was the first to infuse pessimism in Indian mind which had all along been optimistic with full emphasis on worldly life. Formerly three goals of life dharma, artha and kāma alone were recognised. Brahmā's Nītiśāstra, the first one dealt with only these three goals Bṛhaspati separated artha from the other two. The Arthaśāstra (AS.), being very important had a long tradition. But if there was a conflict between dharma and artha śāstras. the former prevailed. The AS. by the time of Kauṭilya (K) had overgrown with conflicting ideas and imprecise terms. Viṣṇugupta redacted it, composed both the sūtra and the commentary, used the latest terminology and knowledge and made it precise. The KAS. has many affinities with the Mbh. Both offer identical views since both were composed in similar situations and in the same age which forebode the principle of peaceful coexistence. The present KAS. indicates a knowledge of and indebtedness to the Yājñavalkya Smṛti. KAS. has included dharma and kāma also in the sphere of artha which he calls Daṇḍanīti or Rājānīti. He advocates that war should be avoided, if possible. Welfare state is the ideal of kingdom. Economic development is the source of all welfare. Rule of law (daṇḍa) must be maintained under all circumstances.

सांसारिक जीवन पर पूर्ण बल के साथ जो सदा से आशावादी रहा है, उस भारतीय मन में निराशावाद का संचार करने वाला सर्वप्रथम बौद्ध मत ही था। पहले जीवन के तीन लक्ष्य-धर्म, अर्थ और काम ही मान्यताप्राप्त थे। सब से पहले ब्रह्मा के नीतिशास्त्र में इन तीन लक्ष्यों का ही प्रतिपादन था। गृहस्पति ने अर्थ को शेष दो से

अलग कर दिया। महत्त्वपूर्ण होने से अर्थशास्त्र (अशा.) की बड़ी लम्बी परम्परा थी। परन्तु धर्म और अर्थ शास्त्रों में संवर्ष (=विरोध) होने पर पहला ही प्रामाणिक होता था। कौटिल्य (कौ) के समय तक अशा. विरोधी विचारों और अपरिच्छिन्न परिभाषाओं से भर गया था। विष्णुगुप्त ने इस का शोधन किया, शास्त्र और भाष्य दोनों की रचना की, अन्तिमतम परिभाषाओं और ज्ञान का प्रयोग किया और उसे परिच्छिन्न बना दिया। अशा. की महा. से अनेकशः समानता है। दोनों एक समान विचार देते हैं क्यों कि दोनों ऐसी एक समान स्थितियों और समान युग में हुए जिस में शान्तिपूर्णा सहास्तित्व का सिद्धान्त निषिद्ध था। वर्तमान कौटिल्य अशा. याज्ञवल्क्य स्मृति से परिचित भी है और उस का ऋणी भी है। कौशशा. ने अर्थ की परिधि में धर्म और काम को भी ले लिया है। अर्थ को वह दण्डनीति या राजनीति कहता है। वह निर्देश देता है कि यदि सम्भव हो तो युद्ध का परिहार करना चाहिए। जनहितैषी राज्य राष्ट्र का आदर्श है। आर्थिक विकास समस्त कल्याण का स्रोत है। सब ही परिस्थितियों में नियमों का शासन (=दण्ड) बनाए रखना चाहिए।

७०१. महात्मा गान्धी का सन्देश; संकलनकर्ता सम्पादकचक्र पू. एस. मोहनरावः; प्र० प्रकाशन विभाग, सूचनाप्रसारण-मन्त्रालयः; केन्द्रीय शासनम्; १९६६; समीक्षा; सागरिका, ६.२; २०२७ वि.; २१२-२१६; सं. । गान्धियानादेशीयते महात्मनो विचारणा व्यापकप्रसारण पुस्तकमन्त्रालय प्रकाशन बालम्। प्रथम गान्धियानादेशीयते विरोधी महात्मा पूर्णा प्रकाशः मन्त्रालयः ।

१०३. राष्ट्रगोपः पुरोहितः; सांवदोहितः गोकर्णः; गुप., २३.१-२; ६-१०.१६७०; २-५; सं. ।

१०४. राष्ट्रतंत्रम् (भाषानुवादसहितम्); लक्ष्मी नारायण गुक्लः; प्र० ललित मोहन गुक्लः मदन-मोहनगुक्लद्वय, गोरखपुरम्; प्रथम संस्करणम्; ४-७६; २-००; सं., हि. ।

४१७. विश्व शान्ति की खोज; ब्रजनारायण मेहरोत्रा; प्र० रघु साहित्य प्रकाशन, कानपुर-१; समीक्षा; सागरिका, ६.२; २०२७ वि.; २१८; सं. ।

८. वेद का अद्भुत बँल—अर्थात् राष्ट्र का स्वल्प; ब्रह्मानन्द जिज्ञानु; प्र० श्री हंसराज आर्य ट्रस्ट, जाखल मण्डी (जिला हिसार); ०-५०; समीक्षक भवानी लाल भारतीय; आ.मा., ५०.२१; १.१.१६७१; १६:१; हि. ।

702. *Some Unknown Stanzas attributed to Kautilya*; Ludwik sternbach; *URSHS.*, 1967-68; 1-5; E. There are only two original mss. of the Kautilya Arthaśāstra (KAS.), both hailing from south. KAS. was more current in the south than in other parts of India. KAS. has not been quoted and has faded into oblivion for many centuries probably due to its outright rejection and repudiation. Only Sūkti Ratna Hāra has quoted -31 verses attributed to Kautilya. 25 of these are from different prakaraṇas of the KAS. but in the order of KAS.'s prakaraṇas. Two are from Kāmandakiyanīśāstra, four from Cāṇakya's aphorisms, while four verses specifically attributed to Kautilya are not found in any known Skt. work. They deal with rājānīti and are in line with the teachings of KAS. They may, therefore, belong to this work but in none of the four cases

ध्यान और निराकरण के कारण कौशशा. अनेकों शक्तियों तक उद्धृत नहीं किया गया और विस्मृति के गर्भ में पहुंच गया। केवल सूक्तिरत्नहार ने कौटिल्य पर आरोपित ३१ पद्य उद्धृत किए हैं। इन में से २५ तो कौशशा. के विभिन्न प्रकरणों से, उन प्रकरणों के क्रम में हैं। दो कामन्दकीय नीतिसार से हैं, चार चाणक्य के सूत्र हैं, जब कि विशेष रूप से कौटिल्य पर आरोपित चार पद्य किसी ज्ञात सं. ग्रन्थ में नहीं मिलते हैं। ये राजनीति के प्रतिपादक हैं और कौशशा. की धारा में हैं। अतः ये इस ग्रन्थ के रहे हो सकते हैं, परन्तु इन चारों में से एक के विषय में भी यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

703. Some Aspects of Kautilya's Political Thinking; Radhagovind Basak; Pub. The Univ. of Burdwan, West Bengal; 1967; 51; 3-00; Rev. V. N. Bedekar; **ABORI.**, L.I-IV; 1969; 131; E. It is a collection of Basak's three lectures delivered in 1965 based on Kautilya Artha Śāstra (K.A.S.)'s Books II, III, IV, VI to XIV on the subjects (i) Bureaucracy in Kautilya's system of Politics (ii) Civil and Criminal Laws in K.A.S., and (iii) The Duties and Functions of a vijigīṣu king according to Kautilya.

इस में कौटिल्य अर्थशास्त्र (कौशशा.) के २, ३, ४, ६ से १४ अधिकरणों पर आधारित (१) कौटिल्य की राजनैतिक व्यवस्था में अधिकारीतन्त्र (२) कौशशा. में दीवानी व आपराधिक विधियाँ (=मानून) और (३) कौटिल्य के अनुसार विजिगीषु राजा के कर्तव्य और व्यापार विषयों पर १९६५ में प्रदत्त बसाक के तीन भाषणों का संग्रह है।

704. The Seminar on Gandhian Thought; JUPII, 33; 1970; 95-151; E. It presents 13 papers on Gandhian thought by 13 scholars.

इस में गान्धीशैली विचारों पर १३ विद्वानों के १३ लेख हैं।

705. Har Dayal : Revolutionary and Writer Lala Har Dayal and Revolutionary Movements of His Times; Dharma Vira; Pub. Indian Book Co., New Delhi; 363; 25-00; and

706. Letters of Lala Har Dayal; Dharma Vira; Pub. Indian Book Agency, Ambala; 152; 10-00;

Both reviewed by K. N. Sud; **H T. W. R.**, Sunday, 18.4.1971; ii; E. The author presents a picture of three schools of nationalism, namely, Moderates believing in Gradualism and reform, extremists believing in non-Cooperation and boycott, revolutionaries trying violent overthrow of the alien rule. Har Dayal's life is minutely reflected in his letters. He was a revolutionary with difference and was tonic of his times. He had deep religious convictions. His intellectual stature made him respectable in the countries he visited. He knew 14 languages and lectured on various subjects. The reviewer feels that historians have not done justice to him, particularly his opinion about British rule. The author spent 30 years in collecting materials for this work in which history and biography have rolled themselves into one.

ले. राष्ट्रीयता के तीन सम्प्रदायों—कमिकवाद और सुधारों में विश्वास रखने वाले नरम दल तथा असहयोग और वहिष्कार में विश्वास रखने वाले उग्रवादी और विदेशी शासन के प्रचण्ड नाश के प्रयत्न में रत क्रांतिकारी—का चित्र देता है। हरदयाल का जीवन सूक्ष्म रूप से उस के पत्रों में प्रतिबिम्बित हो रहा है। वह वैशिष्ट्ययुक्त क्रांतिकारी और अपने समय का रसायन था। उस के धार्मिक विश्वास बड़ थे। उस के बौद्धिक स्तर ने उसे उन सब देशों में आदृत किया जहाँ-जहाँ वह गया। वह १४ भाषाएं जानता था और विविध विषयों पर भाषण देता था। समीक्षक मानते हैं कि ऐतिहासिकों ने उस के साथ, विनोद रूप से उस की अंग्रेजी राज के प्रति विचारों के साथ न्याय नहीं किया है। ले. ने इस

कृति के लिए सामग्री संकलित करने में तीस वर्ष व्यतीत किए हैं। इस रचना में इतिहास और जीवन-वर्णित दोनों एक रूप में परिणत हो गए हैं।

अनिल कुमार गुप्त

७०७. हरदयाल; घमंवीर; प्र० राजपाल एण्ड सन्स, कर्मवीर गेट, दिल्ली; ३९०; १२-००; समीक्षक विष्णुप्रसाकर, ८१८, कुँडेवालय, अजमेरी गेट, दिल्ली-६; कादम्बिनी, ५ १९७१; हि. । यूरोप में जाकर क्रान्तिकारियों को एकत्र करने व भारतीय स्वार्थानता के लिए प्रयास करने के अतिरिक्त, जालानजी का एक दर्शन भी था। उन की एक लोकप्रिय कृति 'हिट्स फार नेल्स कल्चर' है। ले. ने जाला जी के व्यक्तित्व का स्वपरिचय पर आधारित चित्रण किया है।

अनिल कुमार गुप्त

भारतीय शिक्षा (Indian Education)

३८३. प्र संसमान की शिक्षासंस्थाएँ; नरेंद्र, हृदयवादि; दकास्मा., १९७१; ३७-३८; हि. ।

388. Contributions of Swami Dayananda to Indian Education; R. K. Chaudhuri, Senior Lecturer in English, P. G. Jialal Institute of Education, Ajmer; DCS., 1971: 7-10: F

चार; देवी जाल सामर, उदयपुर; लोककला, २०; ७.१९७०; १-५६; हि. ।

423. A Note on The Study of Feasts And Festivities of the Hindus; Chintaharan Cha ravarti, 28/3 B. Sahana-nagar Road, Kalighat, Calcutta-26; UMCV., 1970; 771-773; E.

769. Folk Tales of The Miris; Praphulladatta Goswami, Hillside, Gauhati-3; UMCV, 1970; 775-778; E. Like other peoples of Assam the Miris of Upper Assam too have interesting folk tales, which still play a clear role in either determining their attitude towards the unseen and the seen worlds or in controlling their beliefs and activity. Some of their beliefs find echoes among other plains-men of the land. The folk tales of the Miris are of various types like animal tales, myths about particular phenomena like the blackness of the drongo, formula tales (which are rather few in Assam), tales illustrative of a belief in fate and wisdom and realistic tales. Miri folk tales have not been recorded to any considerable extent. Their collection will lead to a better understanding among the people in various parts of Assam.

इन के संग्रह से असम के विभिन्न भागों के जनों में साधुतर अवबोधन उत्पन्न होगा ।

सुधीर कुमार गुप्त

७१०. बळी आणि पापवाहक; प्रभाकर भा. मांडे; नभा., १२.१६७०; ६-१७; म. । पापा मुळे अतिवृष्टि, रोग, अवर्षण इत्यादि संकटे निर्माण होताना त्यांच्या आणि पापाच्या निवारणासाठी वलिदान आणि पापवाहक ह्यांची योजना होत असते. अशा प्रकारच्या वलिदानांची आणि पापवाहकांची महाराष्ट्रात प्रचलित असलेली उदाहरणे ह्या लेखात लेखकात दिली आहेत.

पाप से अतिवृष्टि, रोग और अवृष्टि आदि मंकट उत्पन्न होने हैं, इन के और पाप के निवारण के लिए विविध वलिदानों और पापवाहकों की योजना की जाती है। महाराष्ट्र देश में प्रचलित ऐसे वलिदानों और पापवाहकों के अनेकों उदाहरण इस लेख में ले. ने दिए हैं ।

गणेश उभाकान्त थिटे

३८. वृहस्पति द्वारा फालगुण-वन्धन; भगवद्गुप्त वेदान्तकार; गुप्त., २३.१-२; ६-१०. १६७०; ६७-१०२; हि. ।

४२४. भारतीय कामशिल्पमीमांसा; सुरेश र. देगाण्डे; नभा., १०.१६७०; ३८-४३; म. ।

४२५. मकर संक्रान्ति का महत्त्व; वेदव्रत मीमानक, ग्रार्थ समाज, उज्जैन; वेवा., २३.३; १.१६७१; २७-३२; ४१-४३; हि. ।

४२. मूलविधि : स्वहृष्य आणि उगम; प्रभाकर भा. मांडे; नभा., १०.१६७०; २१-२८; न. ।

४२७. राजस्थानी लोक गीतों में विित्रित अर्थव्यपत्त; जगन्नाथ गिहू ग्रामीण, सिरोही; मुरासंहिता., १९६८-६९; १८१-१९१; हि. ।

४७. Recognition of Merit in Caste System in Ancient India; Jogiraj

Basu, Prof. & Hd. of the Deptt. of Skt., Gauhati Univ., Gauhati; UMCV., 1970; 685-694; E.

४२८. शास्त्रीय व्रतों के सामान्य विधिविधान; लक्ष्मी शर्मा, वनस्थली; शोप., २१.३; ७-६.१६७०; १७-२६; हि. ।

४२६. सांभो पूजा की परम्परा; मालती शर्मा, पूना; लोककला, २०; ७.१६७०; ६०-७३; हि. ।

430. Hindu Culture with Special Reference to the Domestic Rites and The Temple Rituals; S. Singaravelu, Lecturer and Acting Hd., Deptt. of Indian Studies, Univ. of Malaya, Kuala Lumpur; T.O., 1969-70; 51-65; E.

विविध (Miscellaneous)

711. Indian Antiquary, III.1-4; 1969; Bombay Professor R. N. Dandekar Felicitation Volume; Rev. V. M. Bedekar; JUPH, 33; 1970; 153-154; E. It contain 20 standard research articles dealing with Grammar (7), with Veda (12) and the reproduction and translation of the Avestan Dātistan D e nik-Pursism IV and V.

इस में २० प्रामाणिक शोधलेख हैं जिन के विषय व्याकरण (७), वेद (१२) और अवेस्ता के दातिस्तन द ए निक-पुरसिस्म ४ और ५ का अनुवाद हैं ।

सुधीर कुमार गुप्त

712. Dr. Mirashi Felicitation Volume; G T. Deshpande, A M. Shastri and V. W. Karambelkar, Nagour; 1965; 458; 40-00; Rev M. K. Dhavalikar; BDCRI, XXVIII.III-IV; 1967-68; 231-234; E. The review contains a short account of the academic contributions of V. V. Mirashi and a brief critical appreciation of some of the papers contributed to and published in the volume.

इस समीक्षा में श्री. वी. मिश्रा की वैश्विक देन का संक्षिप्त विवरण और ग्रन्थ के लिए निवे

गए और उन में प्रकाशित लेखों में से कुछ का संक्षिप्त मूल्यांकन दिए गए हैं।

713 Bhandarkar Oriental Research Institute Poona 1917-1967 Golden Jubilee Celebration; ABORI., L.I-IV; 1969; i-xviii; E. The report contains a description of the Golden Jubilee Celebrations on 17.5.1968, welcome speech by P. V. Cherian, report by R. N. Dandekar about the progress and achievements of the institute, speech by P. L. Vaidya about the Mbh project, description by R. N. Dandekar of the History of Dharmasāstra, Volume I, Part I and ABORI. Golden Jubilee Volume declared formally published by Zakir Husain, honour of some members, address by Zakir Husain and vote of thanks by Abhayankar.

इस विवरण में १७.५.१९६८ को सम्पन्न मुवर्ग जयन्ती समारोह का वर्णन, पी. वी. चेरियन का स्वागतभाषण, एन. दाण्डेकर का संस्थान की प्रगति और उपलब्धियों का प्रतिवेदन, महा. योजना के विषय में पी. एल. वैद्य का भाषण, एन. दाण्डेकर द्वारा धर्मशास्त्र के इतिहास भाग १ खण्ड १ का वर्णन, जाकिर हुसैन द्वारा एभाओरिड के मुवर्ग जयन्ती ग्रंथ के प्रकाशन की औपचारिक घोषणा, जाकिर हुसैन का सम्बोधन और धन्वराजुर द्वारा धन्यवाद प्रस्ताव दिए गए हैं।

शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचन दिया गया है। शोध में क्षेत्रकार्य और आसनकार्य दोनों भी हो सकते हैं और इन में से एक भी। ग्रन्थागारों में प्रस्तुतसंदर्भ-सेवा और व्याप्तसंदर्भसेवा तथा वर्गीकृत व्यवस्थापन की सहायता से विषय के पूर्वकाल में किए गए कार्य के ज्ञान के साथ उपयुक्त सामग्री का चयन आधार, सहायक और आकर ग्रन्थों से शोधप्रणाली पर पत्रपद्धति पर एकत्रित करनी चाहिए। सामग्री इकट्ठी होने पर प्रारम्भिक प्रबन्ध सारणों में आवश्यक परिवर्तन कर शोध की प्रविधि और प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर ऐतिहासिक या आगमनात्मक प्रणाली का अवलम्बन करने हुए प्रबन्ध लिखने में प्रवृत्त होना चाहिए। प्रमाणों, पाठटिप्पणियों, विरामचिह्नों, प्राक्कथन, विषय सूची आदि का सावधानी से निवन्धन किया जाए। पूर्वनिर्णीत विषयों को बँसा ही मान लेने से पिष्टपेषण बन जाता है। हिन्दी में इस की बहुत आवश्यकता है। ले. ने यद्यत् अपने विचारों को हिन्दी के शोध से उदाहरण दे कर स्पष्ट किया है।

सुधीर कुमार गुप्त

गोष्ठियां आदि (Seminars etc.)

इन के संग्रह से असम के विभिन्न भागों के जनों में साधुतर अवबोधन उत्पन्न होगा।

सुधीर कुमार गुप्त

७१०. बळी आणि पापवाहक; प्रभाकर भा. मांडे; नभा., १२-१९७०; ६-१७; म. । पापा मुळीं अतिवृष्टि, रोग, अवर्षण इत्यादि संकट निर्माण होताने त्यांच्या आणि पापाच्या निवारणासाठी वलिदान आणि पापवाहक ह्यांची योजना होत असते. अशा प्रकारच्या वलिदानांची आणि पापवाहकांची महाराष्ट्रात प्रचलित असलेली उदाहरणे ह्या लेखात लेखकात दिली आहेत.

पाप से अतिवृष्टि, रोग और अवृष्टि आदि संकट उत्पन्न होने हैं, इन के और पाप के निवारण के लिए विविध वलिदानों और पापवाहकों की योजना की जानी है। महाराष्ट्र देश में प्रचलित ऐसे वलिदानों और पापवाहकों के अनेकों उदाहरण इस लेख में ले. ने दिए हैं।

गणेश उमाकान्त थिडे

३८. वृहस्पति द्वारा फालगुण-वन्धन; भगवद्गत वेदान्तकार; गुप्त., २३-१-२; ६-१०. १९७०; ६७-१०२; हि. ।

४२४. भारतीय कामशिल्पनीमांसा; सुरेश र. देगमाण्डे; नभा., १०-१९७०; ३८-४३; म. ।

४२५. मकर संक्रान्ति का महत्त्व; वेदव्रत नीमांनक, आर्य गमात्र, उज्जैन; देवा., २३-३; १-१९७१; २७-३२; ४१-४३; हि. ।

५२. मूलविधि: स्वल्प आणि उगम; प्रभाकर भा. मांडे; नभा., १० १९७०; २१-२८; म. ।

४२७. राजस्थानी लोक गीतों में चित्रित अन्धविश्वास; जगन्नाथ मिह्र ग्रामिण, सिरौही; सुरासंहिता., १९६६-६६; १८१-१९१; हि. ।

87. Recognition of Merit in Caste System in Ancient India; Jogiraj

Basu, Prof. & Hd. of the Deptt. of Skt., Gauhati Univ., Gauhati; UMCV., 1970; 685-694; E.

४२८. शास्त्रीय व्रतों के सामान्य विधि-विधान; लक्ष्मी शर्मा, वनस्थली; शोप., २१-३; ७-६.१९७०; १७-२६; हि. ।

४२९. सांझी पूजा की परम्परा; मालती शर्मा, पूना; लोककला, २०; ७.१९७०; ६०-७३; हि. ।

430. Hindu Culture with Special Reference to the Domestic Rites and The Temple Rituals; S. Singaravelu, Lecturer and Acting Hd., Deptt. of Indian Studies, Univ. of Malaya, Kuala Lumpur; T.O., 1969-70; 51-65; E.

विविध (Miscellaneous)

711. Indian Antiquary. III.1-4; 1969; Bombay Professor R. N. Dandekar Felicitation Volume; Rev V. M. Bedekar; JUPH, 33: 1970; 153-154; E. It contain 20 standard research articles dealing with Grammar (7), with Veda (12) and the reproduction and translation of the Avestan Dātistan D e nik-Pursism IV and V.

इसमें २० प्रामाणिक शोधलेख हैं जिनके विषय व्याकरण (७), वेद (१२) और अवेस्ता के दातिस्तन द ए निक-पुरस्तिस्म ४ और ५ का अनुवाद है।

सुधीर कुमार गुप्त

712. Dr. Mirashi Felicitation Volume; G T. Deshpande, A M. Shastri and V. W. Karambelkar, Nagour; 1965; 458; 40-00; Rev M. K. Dhavalikar; BDCRI, XXVIII.III-IV; 1967-68; 231-234; E. The review contains a short account of the academic contributions of V. V. Mirashi and a brief critical appreciation of some of the papers contributed to and published in the volume.

इस समीक्षा में डॉ. वी. सिगशी की वैदिक विज्ञान के क्षेत्र में विद्वानों के द्वारा दत्त की विविध विवरण और ग्रन्थ के लिए विवे

सारकानुक्रमणिका

प्रत्येक सारक के नाम के आगे उस के सारों की पत्रिकागत क्रमसंख्या दी गई है।

अग्रवाल, डॉ० मनमोहन, प्राध्यापक, रसायन-शास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४; १६१; २४०; २५२; २५५; २६४; २६६; २८५; ४२७; ४४३; ४५८; ४७०; ४८१; ४८२; ५५०; ५५३; ५६६ = १६

कासलीवाल, डॉ० कस्तूरचन्द्र, निदेशक, जैन शोधमन्थान, महावीर भवन, सवाई मानसिंह हाइवे जयपुर-३; २८२; २८६; २८६; २६१; ३०८; ३०९; ३११ = ७

गुप्त, अनिल कुमार, प्राध्यापक, राजनीति-शास्त्र, वनस्यली विद्यापीठ, वनस्यली; ७५; ८०; ८१; ८६; १००; १०८; ११२; ११३; १८७-१८८; १९१; १९८; २०६; २१५; २१६; २१८; २१९; २२३; २२४; २२७; २३०; २३१; २५३; २५४; २५६; २७५; २८०; २८२; २८३; २८५; २८७; ३१८; ३२४; ३३२; ३३६; ३५४; ३५५; ३५६; ३६१; ३७१; ३७२; ३७६; ३८२-३८६; ४४०; ४५०; ४६६; ४६७; ४६५; ४६८; ५०३-५१०; ६२०; ६६५; ७०५; ७०६; ७०७-५८

गुप्त, डॉ० रामकुमार, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४; १४८; २०७; २०८; ३२१; ४६७; ४६८; ४७४; ४७५; ४७७; ४८०; ४८६; ४८७; ५५१ = १३

गुप्त, डॉ० सुधीरकुमार, प्रवाचक, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४; १-८८; ३०-५१; ५३-७३; ७६; ७७; ८३-८६; ८९; १०१; १०३-१०८; ११०; १११; ११४-१२४; १२६; १३१-१३५; १३६; १४१-१४७;

१४९-१६०; १६२-१८१; १९०; १९२-१९५; १९६; २०१; २०२; २०४; २०५; २०६; २१०; २१२-२१४; २१७; २२०; २२२; २२५; २२६; २२७; २३४-२३६; २३८; २४१-२५२; २५७; २५९; २६०; २६२-२६६; २६६; २७१; २७६; २७८-२८१; २८३; २८४; २८७; २८८; २९४; २९६; २९८; ३०१-३०७; ३१०; ३१२; ३१३; ३१५; ३२२; ३२५; ३२७-३३१; ३३३-३३८; ३४१; ३४३-३४५; ३४९-३५१; ३५३; ३५७; ३५८; ३६२; ३६४-३६८; ३७०; ३७३-३७८; ३८५-४१६; ४२०-४२३; ४२५; ४२६; ४३१-४३७; ४३९-४४१; ४४३; ४४५-४५३; ४५६; ४६०; ४६३-४६६; ४७१-४७३; ४७६; ४७८; ४७९; ४८३-४८६; ४९६-५०२; ५०४-५०६; ५०९; ५११-५१८; ५२१; ५२२; ५२४; ५२६-५४८; ५५२-५६७; ५६९-५९२; ५९४-६१५; ६१७-६१९; ६२१-६२५; ६२७-६३४; ६३८-६४८; ६५०-६६४; ६६६; ६६७; ६६९-६७२; ६७२; ६७५-६९०; ६९३-७००; ७०२-७०४; ७०८; ७०९; ७११-७१४ = ५१३

गुप्त, सुबोधकुमार, अध्यक्ष, कालरक्षण विभाग, जे० के० सिन्धुटिक्स, कोटा; ८२; ८५; ८७; ९७; ९८; ४९१; ४९४ = ७

गुप्ता, सुकेशी रानी, प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, गुरुनाथ गर्ज्ज कालिदास, मेरठ; ८४; ८८-९३; ९५; ९६; १११; १२५-१२८; ३६० = १५

गोयल, डॉ० प्रीति प्रभा, प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, जयपुर विश्वविद्यालय, जयपुर; १३०; २३२; ३०४; ३२७-३२९; ३३१; ३४३-३४५; ३४६; ३६५; ३८६; ४०१ = १४

यिटे, डॉ० गणेश उमाकान्त, सैण्टर ग्रॉफ
एडवान्स्ड स्टडी इन संस्कृत, पूना विश्वविद्यालय,
पूना; २९; ५२; १०९; १४०; २०३; २३९;
४२४; ७१०=८

पाठक, डॉ० नायूलाल, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, श्री गंगानगर; २७०;
३२३; ३८०; ४२८; ४५४-४५७; ४९०;
४९३; ५०३; ५२३; ६२६; ६३५; ६३६;
६६८; ६७४=१७

भानावत, डॉ० नरेन्द्र, प्राध्यापक, हिन्दी
विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४;
२५८; २६१; २६७; २६८; २७४; २७७;
३१४; ३१६; ३१७; ४४२; ६३७;
६७३=१२

भानावत, महेंद्र, सम्पादक लोककला,
भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर; २५३; ४१८;
४२९=३

भानावत, शान्ता, शोधकर्त्री, सी-२३५ ए,
दयानन्द मार्ग, तिलक नगर, जयपुर; २७२; २७३;
३००; ४६१; ४६२; ४६९; ५२०; ५६८;
६१६; ६४९=१०

रविप्रकाश, संस्कृत डिक्शनरी डिपार्टमेंट,
दक्कन कालिज, पूना विश्वविद्यालय, पूना-६;
५०८; ५१०; ५१४; ५१६-५१९; ५२६;
५२८; ५२९; ५३२-५३४; ५४०; ५४२;
५४३; ५४६-५४९=२०

शर्मा, डॉ० प्रभ कर, प्राध्यापक, संस्कृत विभाग,
राजकीय कालिज, कोटा; ७९; १३६-१३८;
१८२-१८६; १९७; २००; २११; २२८;
२२९; २३३; २३७; ३५२; ४१७;
४३८=१९

शाल्य, यशदेव, उपनिदेशक, राजस्थान हिन्दी
ग्रन्थ अकादमी, तिलक नगर, जयपुर-४;
४१९=१

शुक्ल, डॉ० कुरुषोथ, प्रवाचक संस्कृत विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर; ७४; ७८;
१५४; १९३; ३१९; ३२०; ३२२; ३२६;
३२९; ३३५; ३३६; ३३९; ३४०; ३४२;
३४६-३४८; ३६३; ३६४; ३६६=२०

शुक्ल, मणिशंकर, प्राध्यापक, संस्कृत विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४; २१७-
२२०; २२३-२२५; २३०=८

देवनागरी लिपि में अंकित लेखकनामों की अनुक्रमणिका

(जिन अंकों के आगे कोष्ठों में 'स०' दिया गया है, वे समीक्षाएँ हैं ।)

अग्निहोत्री, प्रभुदयाल, ८४	कण्ठकार्जुनः, १६४
अग्रवाल, दिनेश, २५२	कन्सारा, नारायण मणिलाल, २७८
अग्रवाल, रत्नचन्द्र, ६३५	कमलाकर, ४६२
अज्ञात, २५३	करवेळकर, उपा वि०, १४०
अनूल, गोविन्द-वैनर्जी, ४८७	कविरत्न, प्रकाशचन्द्र, ४६५; ५०१
अग्निदिष्ट, ३; ५; १०; ११; ३४; ८३; २६६;	कांकर, नवलकिशोर, २०६; ५३६
२६६; ३०६; ३३४; ४३२; ४३६; ५५५	कांकर, नारायण शास्त्री, २१६
अभ्यकर, के० वी०, १०८	कानडे, म० गो०, ४८३
अच्यर, रामगोपाल, ६८	कुंवर, उमराव, २५६
अरविन्द (?), २०; ७१	कुमार, प्रह्लाद, १३७
अवस्थी, ब्रह्ममित्र, १३८	कुमारी, वेद, १३३
अवस्थी, भगवान दान, ३७३	कुम्भारे, रामचन्द्र वामन, १५
अहमद, एकवाल, ४७५	कुलश्रेष्ठ, मधुरेशनन्दन, २४५
आर्य, अम्बादान, ७	कुलश्रेष्ठ, रामप्रकाश, ७२४
आर्य, प्रेमराज, ४०६	कृष्ण, ३८७
आचार्य, ज्योतिस्वरूप, ३६	कृष्णमूर्तिः, १८२; १८३; १८४
आचार्य, नामकृष्ण, ३५७; ३५८	कृष्णमूर्तिः, पी०, ४३८
आष्ट्रे, मि० सं०, ४३४	कृष्णलाल, १७१
आनान्न, श्रीगाम, ४३७	कोठारी, देव, २७० (स.); ४६३ (स.)
इन्द्रराज, २१	कोठिया, दरबारीलाल, २६८
इन्द्र, विद्यावाचस्पति, १४७	कोनेयेवा, मारगारिता, ६४६
उपाध्याय, कमला कान्त, २२१	कोण्डिन्य, राही, ३२३
उपाध्याय, बलदेवः, ५८८	कोशिक, जगदीशप्रसाद, ५३१
उपाध्याय, रामजी, २२८; ४२२	क्षीरसागर, दत्तात्रेय बालकृष्ण, १३६
उपाध्याय, विश्वम्भरनाथ, २५३	गण्डेलवाल, देवकीनन्दन, १४६
ज्योतिष्भाष्यमूर्तिनाम, ३७	गिहने, बटुकनाथ, १७३
दोमना, दीनदयाल, ४४०; ४६३ (स.) ५०२ (स.)	गर्ग, रामनेथक, २६०
दोमणकर, ७२	गहलोत, महावीरसिंह, ५०४; ५२४; ७१४
दोमण, सुभाष, ८४	गुप्ता, तिनोरी नान, ४७२

गुप्त, कुंजविहारीलाल, ४९९
 गुप्त, रामेश्वर दयाल, ३३३; ३५६; ३९०;
 ३९३; ३९९; ४०२
 गुप्त, सत्यपाल, ४४३
 गुप्त, सुधीरकुमार, ७५; ८५; ९३; ९५; १२५-
 १२७; १३४; १५७; १५८; १५९; २३१;
 २९५; ३५४; ३५५; ३६०
 गुप्त, सोमनाथ, ४७१; ४७६
 गोयल, जयभगवान, ४९७
 गोयल, प्रीतिप्रभा, १९१; २३२
 गोरसिमोव, ए० बी०, ६५४
 गोस्वामी, मुजानमल, ३१३
 गोड़, पतराम, ३७०
 ग्रामीण, जगमलसिंह, ४२७
 चतुर्वेद, शिवदत्त शर्मा, १७३
 चन्दना, साध्वी, ३१५
 चन्द्र, रमेश, ३३०
 चैतन्य, १६५
 चौधे, श्री० एन०, ४००
 चौधे, वृजविहारी, ४१
 चोरटिया, श्रीचन्द्र, २६५
 चौहान, श्रद्धा, १३०
 जयदेव, ८९

जैन, परमेष्ठीदास, २६१
 जैन, पुष्पलता, ३१७
 जैन, प्रेमसागर, २७०; २७१; २९४
 जैन, प्रेमसुमन, २६८
 जैन, भूरचन्द्र, ६१२
 जैन, माईदयाल, २७२
 जैन, रमाकान्त, २८६
 जैन, राजाराम, २२३
 जैन, सुबोध कुमार, ५६९
 जैन, हीरालाल, ३०७ (स० ले०)
 जैसंशो० (समीक्षा), २६६; २७८; २७९; ३०३
 जोशी, जगदीशचन्द्र, ६३२
 जोशी, पन्नालाल, ५८१
 ज्योतिर्मित्र, १७३ (स०)
 भा, किशोरनाथ, ३३८
 भा, रतिनाथ, १७३
 टण्डन, तेजनारायण, ४९०
 टण्डन, प्रेमनारायण, ५०३
 ठक्कर, श्री कान्त, ५८५
 ठांगे, सदाशिव शम्भादास, २३९
 ठेरोल्लिया, गजानन्द, २९७
 ताताचार्यार, एन० के० रामासुज, ३३७
 तिवारी, प्रनिभा, २१३

दीक्षित, स० का०, २६०
 दीक्षित, सां०, १०३
 देवः, बुद्ध- , १६६
 देवः, रञ्जन-सूरि- , २२४
 देवी, सुनीति, ३८२
 देश पांडे, सुरेश र., ४२४
 दोशी, वेत्तरदास जे०, ३०६ (स०)
 द्विवेदी, ब्रजवल्लभ, ३८०
 द्विवेदी, रहस विहारी, १६३
 द्विवेदी, राधेश्याम, ४७४
 द्विवेदी, रेवाप्रसाद, १६३; २३७
 द्विवेदी, श्री मन्नारायण, ३७७
 द्विवेदी, हरिप्रसाद, ६१
 द्विवेदी, हजारांप्रसाद, २०८
 धनपाल, पल्लीवाल, २७८
 धर्मवीर, ७०७
 नगराज, मुनि, २७७
 नरेन्द्र, ३८३
 नाथ, आचार्य धर्मेंद्र, १७८
 नाहटा, अग्ररचन्द्र, २६१; ४५६; ४७५; ६४२;
 ६४६
 निदेशक, हि० वि० शो० सं०, ६७७
 पचीरी, भगवान सहाय, ४७७
 पंचोली, बन्दीप्रसाद, २४; ४२; १२६; ५५०
 पथिक, स्व० योगी ब्र० जगन्नाथ, ४२१
 परमार्यं प्रकाश से, ३७२
 पाठक, केशव प्रसाद, ३५१
 पाठकः, जगन्नाथ-, २१८
 पाठक, पद्मधर, ६२८
 पाठक, सुनीति कुमार, १४८
 पाण्डेयः, अमरनाथ-, १७२
 पाण्डेय, योगेन, ३६४
 पाण्ड्या, प्रकाश चन्द्र, ५८०
 पान्नीवाल, देवीलाल, ४५७
 पुरुषोत्तम, सी० बी०, ४४६
 पुरोहित, जोधाराम, ६८

पुरोहित, ब्रजनारायण, ४७०
 पुरोहित, मुन्नालाल, ६२३
 पुरोहित, रमेशचन्द्र, १६२; २१५
 पुरोहित, शान्ति गोपाल, ५२०
 प्रणयी, रामनाथपाठकः, १६७
 प्रभाकर, विष्णु, ७०७ (स०)
 प्रसाद, ३५६
 प्रसाद, एस० एन०, ४७३
 प्राणेश, मूलचन्द्र ४५४
 वांठिया, मोहनलाल, २६५
 त्रियाकोव, आई० सेरे, ६२७
 वीरोविक, ई०, ४८६
 भगवदाचार्यः, ८६
 भट्टाचार्य, मनुदेव, ५७२
 भट्टाचार्य, विश्वनाथ, २०७ (स०)
 भद्राचार्य, समन्त, २६८
 भाटी, जगदीश, ६४१
 भानावत, नरेन्द्र, २७३; ४६१; ४६६; ४८१;
 ७१६
 भानावत, महेंद्र, ५६८
 भारतीय. भवानीलाल (समीक्षाएँ), १; ८; २१;
 ३०; ४५; ५३; ७०; १४७; ३६१; ४१४;
 ४२०; ४३७; ५८६
 भारतीय, भवानीलाल, १६४; २२७; ३६५-३६८;
 ४०३-४०८; ४१०-४१२; ४१५; ४५६;
 ४८४
 अमर, भंवरलाल, ४८६
 मंगरुच्छकर, अरविन्द गंगाधर, १६४
 मधुप, महेंद्र, ४८५
 मनचन्द्रा, ६२६
 मनोहर, राम्भुसिंह, ४५८
 मलजी म०, हस्ती, २७५
 महता, बलवन्त सिंह, ६३७
 मांडे, भा० प्रभाकर, ५२
 मांडे, प्रभाकर भा०, ७१०
 मालप्रियादा, दलमुल, २६६; ३०६

मिश्रसेन, २
 मिराशी, वि० वा०, २०३
 मिश्र, गोपाल चन्द्र, ३७६
 मिश्र, लक्ष्मीचन्द्र, ८८; १६० (स०)
 मीमांसक, युधिष्ठिर, ६; ५१; १०२; ४१३
 मीमांसक, वेदव्रत, ४२५
 मुनि, उपाध्याय अमर, ३१५
 मुमुक्षुः, वेदाचार्यो, १२८
 मेहता, प्रभासचन्द्र "शर्मा", ४६३
 मेहता, मोहनलाल, २६४
 मेहता, सी० एस०, ७२२
 मेहरोत्रा, ब्रजनारायण, ४१७
 मोहनरावः, यू० एस०, ७०१
 रघुवंशी, आनन्दपाल, ४३३
 रजनीश, गोविन्द, ४८२
 रणजीतसिंह, ८२
 रूबर, हंसराज, ४८४
 राजा, राजवृद्धि, ४८४ (स०)
 राजेश, श्री धन्यकुमार, २६६
 राठी, गणेश नारायण, ४६१
 राणावत, गोपालसिंह, ४६३
 राम, नानू, ५०२
 राम, उपेन्द्रनाथ, ६२६

वर्मा, सत्यकाम, ७३
 वागीश्वर, १३६
 वाजपेयी, किशोरी दास, ६६
 वाजपेयी, रामसुन्दर लाल, ३७१
 विजय, मुनि कुन्दकुन्द, २८१
 विजयवर्द्धनः, जी०, २३३
 विद्यानन्द, मुनि, २८३
 विद्यामार्तण्डः, घर्मदेवो (देवमुनिवानप्रस्थः), १७
 विद्यालंकार, जनमेजय, १४६ घ
 विद्यासागर, मदनमोहन, ५३; ३८५
 विमल, सालिकराम "शर्मा", ४६४
 विश्वनाथन, एन०, १६३
 वेदकुमारी, १३३
 वेदालंकार, तडित्कान्त, ३८१
 वेदालंकार, भगवद्दत्त, ३८; ६८; ६१ (स०); १
 १७३ (स०); १७७ (स०)
 वेदालंकार, रामनाथ, १६
 वेदश्रमी, वीरसेन, ६०
 वेलणकर, श्री भी०, १६८
 वैदिक विनय से, ४; १२; १४
 वैरागी, प्रभुदास, ५६६
 व्यास, गिरधारीलाल, ३१८
 व्यास, वेद-, ४६०

शर्मा, महावीरप्रसाद, ४७८; ५२३
 शर्मा, मालती, ४२६
 शर्मा, मुंशीराम, १६
 शर्मा, रामदेव, ३६६
 शर्मा, रामनारायण, ८०
 शर्मा, राममूर्ति, ३५२
 शर्मा, लक्ष्मी-, ४२८
 शर्मा, सूर्यदेव, ३८४
 शर्मा, हीरालाल, २६०
 शल्य, यशदेव, ४१६
 शास्त्री, अजयमित्र, २१७
 शास्त्री, अमृतलाल, २६०
 शास्त्री, इन्द्रलाल, ३०१
 शास्त्री, उदयवीर, ३६१
 शास्त्री, के० भुजवली, २५८
 शास्त्री, गणेशमुनि, २६२
 शास्त्री, छज्जूराम, १६०
 शास्त्री, जगत् कुमार, ४५; ६६; ३३२
 शास्त्री, जयदत्त, ३५; ३६१; ४१३
 शास्त्री, देवेन्द्र मुनि, २८५
 शास्त्री, देवेन्द्र मुनि, ४४२
 शास्त्री, नन्दकुमार, १५५
 शास्त्री, नित्यानन्द, २००
 शास्त्री, नेमिचन्द्र, २२५; २२६; २३०
 शास्त्री, नेमिचन्द्र, २८४
 शास्त्री, प्रभाकर, ६६६
 शास्त्री, मंगलदेव, २७४
 शास्त्री, मूलचन्द्र, २६८
 शास्त्री, रमेशचन्द्र, २३६
 शास्त्री, रामगोपाल, ३०
 शास्त्री, रामनारायण, ७६
 शास्त्री, वर्षमान पार्श्वनाथ, ३१४
 शास्त्री, पियाधर, ११२; १६०
 शास्त्री, महेंद्र धीर विक्रम, ४३५
 शुक्ल, पत्रित, २५६ (स०); २६२ (न०)
 शुक्ल, कल्याण, १६६; ३१६; ३२०; ३२६; ३४७

शुक्लः, कृष्णकान्त-, १६२
 शुक्लः, ब्रह्मानन्द-, १६२
 शुक्लः, रमेशचन्द्र, १८६
 शुक्ल, लक्ष्मीनारायण, १०४
 शुक्ल, शिवकुमार, २५५
 शेखावत, मूलसिंह, ६६२; ६७०
 शेखावत, सौभाग्यसिंह, ४५५; ४६४
 श्रियन, रत्ना नगेश, २६३
 श्रीवास्तव, प्रकाश, ७१८
 श्रीवास्तव, प्रमोदकुमार, ७१७
 श्रीवास्तव, विजयशंकर, ६१६
 संयोजक, हिन्दी विश्वभारती चन्द्रान्वेषण विभाग,
 ११३
 संवाददाता, विधानसभाई, ६७८
 सक्सेना, द्वारका प्रसाद, ६६
 संकलित, ३६८
 सत्यप्रेमी, सत्यवीरसिंह, ४२६
 सत्यव्रतः, २११
 सत्यव्रत, (उत्मानिया), ४१६
 सत्यव्रतः, (बन्दी), १६६
 समर्पणानन्द, स्वामी, २१; ७०
 समाचार, ३७४
 समीक्षा, (सागरिका) २२८; २२६; ४१७; ४३८;
 ७०१
 सरला, साध्वी, ३१५
 सरस, श्रीचन्द्र मुराना, २६२; ३१५
 सरस्वती, स्वामी समर्पणानन्द, २१; ७०
 सहाय, राधाकृष्ण, ५५१
 सागर, शीतल, २६८
 साठे, म० दा०, १०६
 सामर, देवीलाल, ४१८
 साहा, रणजीत कुमार, ४६६ (स०)
 सिंह, अयोध्याप्रसाद, २०७
 सिंहः, कर्ण-, १६२
 सिंह, गुरुगोविन्द, १७८
 सिंह, जगमन, ४७६

सिंहः, दशरथ-, २२०

सिंह, फतह, ६२; ६४; ४८८

सिंह, बलदेव, १६५

सिंह, वीरेन्द्र, ७१५; ७१६

सिघई, चम्पालाल, ३००

सिद्ध, श्रीधर, ३७५

सिमोदिया, अमरसिंह, ६७५

सोयागो, चांदमल, २८१

सुमन, क्षेमचन्द्र, ३६४; ४१४

सुमन, वेदप्रकाश, ४२०; ५८६

सुर, नरहरि गोविन्द, १६४

सूरि, अमृतचन्द्र, २७६

सूरि, रत्नप्रभ, २६६

सेठिया, मूलचन्द्र, ७२०

सेठी, हरकचन्द्र, ३१०

सोमानी, रामवल्लभ, ६३६; ६६८

सौरया, विमलकुमार जैन, २७६; २८८

सोल्की, गजेन्द्रसिंह, ४३१; ५००

हस्तीमल, म०, २७५

Index of Names of Authors Recorded in Roman Script

(R in brackets after a number indicates that it is a review.)

Name of Author	And	Abstract Number/s	Name of Author	And	Abstract Number/s
Abhayankar, K. V.,	54; 55; 58		Bedekar, V. M.,	100 (R); 141 (R); 146;	
A. D. P.,	157 (R)			152; 175 (R); 180 (R); 181 (R);	
Agail, F. B.,	531			249-250 (R); 328 (R); 698 (R);	
Agarwal, D. P.,	561			703 (R); 711 (R)	
Agathalingam, S.,	545		Behera, S. C.,	681	
Agrawal, R. C.,	610		Betai, R. S.,	143	
Aiyar, P. C. Ramaswami,	506		Bharadwaj, H. C.,	551	
Aklujkar, A-hok,	314		Bhargava, P. L.,	31; 141 (R); 171 (R);	
Ali. B. Sheikh,	659			192	

- Brown, W. Norman, 181
 Buddha Prakash, 212
 Burrow, T., 60 (R); 539
 Cardona, George, 536
 Cassidy, F. G., 18
 Chakravarti Chintaharan, 423
 Chakravarthy, G. N., 111
 Chandra, Lokesh, 694
 Chapekar, B. N., 622
 Chaudhuri, R. K., 388
 Chemparathy, George, 342; 345; 346
 Chocklingam, V., 144; 449
 Choudhury, Mamata, 557
 Chowdhury, K. A., 604
 Correspondent, H. T., 558
 Dandekar, R. N., 100; 697
 Dange, Sadashiv Ambadas, 27; 77
 Dash, Bhagwan, 120
 Derrett, J. Duncan M., 142
 Desai, Chaitanya P., 570
 Deshpande, G. T., 712
 Devanathachariar, N. S., 350
 Dhadphale, M. G., 513
 Dharmavira, 705; 706
 Dhavale, D. G., 67
 Dhavalikar, M. K., 712
 Dholakia, P. V., 631
 Dikshit, G. S., 576
 Dwarkanath, C., 560
 Emmerick, R. E., 541
 Esteller, A., 33
 Faiss, Klaus, 546 (R)
 Filliozat, J., 559 (R)
 Findler, Nicolas V., 540
 Folson, Marvin H., 517 (R)
 Foster, David William, 516
 Garg, R. K., 76
 Chori, S. A. K., 563
 Ghosal, S. N., 544
 Ghosh, Mohan, 249; 250
 Ghosh, N. C., 609
 Goldman, R., 145
 Gonda, J., 25
 Good, Collin, 510 (R); 518 (R)
 Gopal, Lallanji, 653
 Gopal, Ram, 28
 Gopal, Surendra, 579
 Goswami, Praphulladatta, 709
 Govind, Vijay, 124
 Graubard, Mark, 575
 Gupta, Anand Swarup, 157
 Gupta, Anima Sen, 331
 Gupta, Hirendra Nath, 559
 Gupta, H. N., 577
 Gupta, R. C., 597; 600
 Gupta, R. P., 663
 Gupta, R. S., 605
 Gupta, S. K., 22; 65; 66; 97
 Hay, Eldon R., 257
 Hera, Minoru, 63
 Hetzron, R., 519
 Hingwe, K. S., 708
 Iyengar, D. Krishna, 506
 Iyengar, T.K. Gopala Swamy, 47
 Iyer, K.A. Subramania, 107 (R)
 Jaggi, O.P., 577
 Jamindar, Rasesh C., 655
 Jha, Ramanatha, 453
 Jha, Shailendra Mohan, 452
 Joshi, J.P., 625
 Joshi, Lalmani, 328
 Jeshi, M.C., 648
 Joshi, S.D., 107
 Kakietek, Pioti, 532
 Karmerker, M. Mani, 676
 Kangle, R.P., 698
 Kansara, N.M., 17
 Kantawal, S.G., 506; 506 (R)
 Kapadia, B.H., 26
 Karambelkar, V.W., 712
 Kashikar, G.G., 40 (R); 50; 122
 Kashikar, M.J., 150
 Kathuria, R.P., 672
 Katre, S.M., 535
 Kaushik, Devendra, 665
 Kessler, Christel, 630
 Khair, G.S., 152
 Krishan, Y., 304
 Krishna Moorthy, K., 234; 241
 Krishnan, K.G., 683
 Kulkarni, V.M., 246 (R)
 Kulshreshtha, R.B., 202
 Kumbura, C.E., Goda, 159
 Kuzmina, Yelena, 652
 Laddu, S. D., 57
 Lahiri, D. pankar, 123
 Lascelles, Monica, 542
 Lepschy, G. C., 549 (R)
 Looft, H. H. E., 695
 Lunt, James, 663
 Lutze, Loher, 199
 Mahadevan, T. M. P., 287
 Majumdar, M. R., 638
 Majumdar, R. C., 690
 Mankad, D. R., 243 (R)
 Masson, J., 145
 Masson, J. L., 210; 238; 243
 Mate, M. S., 605 (R); 622 (R)

Matilal, Vimal Krishna, 322
 Mehendale, M. A., 105; 159 (R); 639
 Mies, Maria, 505
 Milov, Vladimir, 543
 Mīrāśī, V. V., 201
 Mishra, Satya Deva, 356
 Modi, P. M., 153
 Moghe, S. G., 349
 Mohan, Brij, 601
 Muddachari, B., 680
 Mukherjee, B. N., 645; 656
 Nagendra, 235
 Nairobi, AFP., 583
 NāKāmūrā Vidyā Vācaspatī, 325
 Nakamura, Hajime, 362
 Nānyābhūpāla, 570
 Narahari, H. G., 335
 Nath, S., 611
 Navathe, P. D., 1
 Nayar, Kuldip, 660
 Ojha, K. C., 699
 P., A. D., 682 (R)
 Page, R. B. Le, 518
 Pal, Animesh K., 530
 Palit, D. K., 661
 Paliwal, D. L., 671
 Pabule, G. B., 59
 Pande, G. C., 574
 Pande, Shyam Narain, 651
 Pandey, C. B., 658
 Pandey, Sangam Lal, 366
 Paradhar, M. D., 214
 Paranavitana, S., 159

Rahurkar, V. G., 18; 21 (R)
 Rajayyan, K., 687
 Rajeswary, Ampalavanar, 691
 Rajvanshi, S. C., 389
 Ram, Sadhu, 634
 Rana, S. S., 633
 Rangaswamiiah, C. R., 686
 Rao, B. K. Guru Raja, 561; 688
 Rao, L. S. Seshagiri, 447
 Rao, T. R. Bhima, 451
 Rao, V. K. R. V., 507
 Ratnam, A. V. Venkata, 689
 Ray, P., 556
 Ray, Priyada Ranjan 117; 118; 559
 Raychaudhury, S. P., 571
 Reisenauer, Roman, 543
 Renseh, Bernhard, 48
 Reuter, Osaka, 553
 Rocher, Rosane, 60
 Roy, Mira, 119; 121; 376; 378
 Sahai, Bhagawant, 607
 Sanders, A. J. K., 693
 Sanderson, L. P., 508
 Sandved, Arthur O., 546
 Sankaran, C. R. 552
 Saraswathi, T. A., 595
 Sarkar, Kobita, 567
 Sastry, S. Anand, 640
 Schokker, G. H., 204
 Schiapè, A., 205
 Schmidt, Au. von Hanns-Peter, 23
 Seeralaw, M., 448
 Sen Gupta, Anima, 331

- Shuk'a, Siddh Nath, 106
 Simoon, Frederick J., 695
 Singaravelu, S. 430
 Singh, Harphul, 664
 Singh, Madan Mohan, 324
 Singh, Satya Prakash, 78
 Sinha, Ajit Kumar, 363
 Sircar, D. C., 656 (R)
 Sohoni, S. V., 222
 Sondak, Lev, 548
 Sood, Sudarshan Kumar, 132
 Smith, R. Morton, 154
 Spokesman, Archeological Department,
 614
 Srinivasan, T. M., 565
 Sternbach, Ludwik, 141; 174-176; 179;
 180; 515; 702
 Subbarayappa, B. V., 110; 343; 376;
 562; 578
 Suhar, Chhotu Bhai, 587
 Subrahmanyam, P. S., 522
 Sud, K. N., 705-706 (R)
 Sukul, Kubera Nath, 608
 Sundaram, R. M., 552
 Swain, Anam Charan, 46
 Thakur, Anant Lal, 339; 340
 Thakurdas, Frank, 660
 Thakur, Upendra Nath, 657
 Thilagwathi, K. 525
 Thite, G. U., 43
 Tirtha, Bhāratī Kṛṣṇa, 116
 Trautmann, Thomas R., 324 (R)
 Turner, Dorothy Rivers, 61
 Unspecified—See Anonymous
 Upadhye, A. N., 247
 Upadhye, P. M. 512
 Varadachari, K. C., 367
 Varadācārī, V., 329; 348
 Varma S., 65
 Velankar, Jyotsna, 401
 Vendler, Zeno, 510
 Venkatacharya, T., 234; 246
 Visvanathan, N., 193
 Wee, P. Van Der, 615
 Woolley, Dale E., 529
 Yoke, Ho Peng, 593

Index of Important Words and Subjects Recorded in Roman Script

(Figures in brackets represent abstracts included under an
 earlier classified subject.)

- Ab l Al-Malik's Inscription, 630
 Abhinavagupta, 210; 243
 Accent in Sanskrit, 54
 Adjectives, 510
 Adṛṣṭa, 340
 Aesthetics, 243
 Aesthetic Experience, 235
 Agriculture, 571
 Ahirgarh, 582
 Ahura, 257
 Aihole Art and Architecture, 605
 Ajanta, 195
 Aṅgāraṁbha mantra, 16
 Aṅgāraṁbhidhi, 19
 Ahimsa, 117
 Amāri, 638
 Ambaka, 77
 Ambalal Plates of Ahivarma, 631
 Amirkhan and Krishna Kumari Episode,
 667
 Ammānai, 448
 Amṛtkar and His Patron, 452
 Anatomy in the Vedic Literature, 119
 Ancient man never talked, 509
 Anthologies, 173-180
 anyatra, 544
 Appearance, 356
 Appendix, 136-140
 Appendix (Letter dated 15. 5. 1965), 65
 Apabhraṁśa, 442-443
 Apabhraṁśa Verse in Avaloka, 247
 Archaeology, (520); 603-623
 Archaeological Plant Remains, 604
 Ardha Māgadhī, 544
 Ariel, 556
 Art and Craft, 122-124

- Arthaśāstra, Kauṭilya, 698
 Arthaśāstra, The Date of The, 699
 Arthaśāstra, A Note on the, 700
 Āryabhaṭa's School, 592
 Aryan Problem, 97
 Aryan Problem, (30; 97); 651-652
 Ārya Samāj, (20; 44; 45; 51; 53; 70;
 134; 135; 170; 194; 227; 295; 333;
 354; 355; 360); 382-416
 Ārya Samaj and Reform in India; 401
 Asiatic Studies, 690-695
 Aśoka Prākṛta, 544
 Aśoka's Two Rock Edicts, 639
 Assam Finds, 606
 Aṣṭādhyāyī, 58
 Astronomical Processes, Hindu, 602
 Astronomy, 67
 Astronomy and Astrology, (16; 18; 69;
 114; 149; 425); 580-592
 Astronomy and Mathematics, Problem
 of Source Materials Concerning, 115
 Astronomy in India, 114
 Āśuśukṣaṇiḥ, 106
 Atharva Veda, 37-38
 Ātman, 74; 76
 Ātman in Buddhist Philosophy: View
 point of the Buddha, 320
 Atris, 18
 Attā, 74; 320
 avidyā, 47
 Avyākṛta, 74
 Ayya-Vole (Guild), 686
 Babylonian Arithmetic, 598
 Bangla, 450
 Bangla Desh, Literary Upsurge in, 450
 Bar Iron Production, 502
 Barth, 257
 Base to Surface Development in English,
 542
 Bhagavadgītā, Statistics of, 154
 Bhakti raga, 211-212
 Bhandarkar Oriental Research Institute
- Brahmasūtra, 153
 Brecht's Theatre, 199
 Brhaspati, 23
 Buddhism, (295; 304); 319-328
 Buddhist Culture of India, 328
 Buddhist Temples of Eastern Siberia,
 694
 Bukhara, 696
 Caarpeḷuttu, 552
 Cāṇakya-Nīti--Text Tradition, 174-175
 Cāṇakya's Sayings, Treasuries of, 180
 Candra, King, 633
 Candrānanda, 342
 Candrānanda, Date of, 344
 Carakasamhitā, 559
 Cārudatta, 204
 Carved Pillar of Gupta Year 61, 610
 Caste System, Recognition of Merit in,
 87
 Caṭṭāṇam Maḍham, 683
 Cauldron, 122
 Causal Relation, 336
 Ceremonial Ox, 695
 Chandella Society, 682
 Chemical Combination in Ancient Philo-
 sophies, The theory of, 118
 Chorasmian Etymologies, 541
 Christian Religion, (258; 295; 403; 407;
 410); 438
 Classical Sanskrit Language and Litera-
 ture, (32; 47; 8.; 91; 103); 159-252
 Computational Linguistics, 540
 Conception Methods, 120
 Consonant Clusters, English, 508
 Consonant Clusters, Features Redun-
 dancy in, 529
 Copper in India, Advent of, 554
 Cosmogonic Theory, 111
 Court Epics, (91); 159-163
 Creation, Philosophical Concepts in
 Hymns of, 78
 Creoli Languages, 515

- Dialect, 534
 Digestion in Āyurveda, 560
 Dīnnāga on Anumeṃya, 322
 Dīpaṅkara Buddha, 619
 Distinctive Feature Analysis, 529
 Dharma, 340
 Dharma Śāstra (82); 141-144
 dhene, 27
 Dhvanyāloka and its Critics, 234
 Doctrine of Īśvara in Nyāya-Kandalī, 345
 Domestic Rites, 430
 Drama, 190-193
 Dramaturgy, 246-253
 Dravidian, Personal Pronouns in, 522
 Economic Selfsufficiency (Rural), 653
 Elements, The Indian Doctrine of Five, 110
 Embryonic Development, 557
 Epics, (28); 145; 146a-154
 Etymology, 62-66
 Etymology, Latest views, 65
 Etymology of Vedic Words, 66
 Evil, 257
 Excavation at Ter, 622
 Feasts of Hindus, 423
 Feature Analysis, Distinctive, 508
 Feature Redundancy, 529
 Festivities of Hindus, 423
 Feudalism in Rajasthan, 672
 Figures of Speech, 244-245
 Fine Arts, (424); 566-570
 Finite Vs. Infinite State Grammars, 528
 Folk Culture, (38; 52; 87; 418; 423-425; 427-430); 709-710
 Folk Etymologies, 63
 Folk Tales of Miris, 709
 Frescoed Frieze, 619
 Gandhian Thought, 704
 Gaṅgas of Svetaka, 681
 Gangetic Copperhoards, 611
 Garta, 26
 gartārūgiva, 1
 Gāthāsaptasatī, Two Verses from Hāla's 222
 Gāyatrī Sāman, 40
 General Studies, (1; 5; 13; 14; 16; 19; 20; 22-27; 29-31; 33; 35-37; 40-47; 482; 75); 68-140; 573-579
 General Study, 194-216; 227-232
 German? Why, 505
 Gītā, 152-154
 Gītā, author of, 154
 Gītā, Brahmasūtraśāra a. Interpreter of the, 153
 Gītā, Quest for the Original, 152
 Glass Manufacturing, 124
 God And Evil, 257
 Gotrabhūmi, Some Missing Portions of The, 327
 Gurukūla System of Education, 389
 Gwalior Inscription of Bhoja, 634
 haṁsa, 46
 Haṁsa, in the Upaniṣadic Literature, Concept of, 46
 Handicraft, 567-568
 hanū, 27
 Har Dayal, Letters of Lala, 706
 Har Dayal: Revolutionary and Writer, 705
 Harappan Culture, 564
 Hemādri, 241-242
 Henoritualism of the Brāhmaṇa Texts, 43
 Herbs, 558
 Hierarchic Numbers, 543
 Higher Education in India, 708
 Hindi, (208; 370; 384; 414; 416; 431); 466-504
 Hindi Drama, 503
 Hindi Journalism, 484-485
 Hindi, Latin Script for, 466
 Hindi Poetry, (431); 487-501
 Hindi Story, 502
 Hindu Culture, 430
 Hindu Feasts and Festivities, 423
 Hinduism, (19); 431-436
 Hinduism, History of, 100
 Hissar, 664
 Hisse Borala Inscription, 643
 His orical Study, (29-31; 37); 95-101
 History of Ancient India--Post-Vedic, 653-658
 History of Rajasthan--Cultural, (456; 611; 622; 668); 672-679
 History of Rajasthan--Political, 666-671
 History of South India, 680-689
 History of the Vedic Age, (29; 31; 95; 96; 98; 131; 132)
 horticulture, 576
 Human body, 557
 Hūṇa History, 657
 Hymns, 181-184
 Identification of rites, 43
 I. E. language, 66
 Impetus Theory, 341
 Indexes, A Comparative Dictionary of I. A. L. languages, 61
 India: Critical Years, 660
 Indian Antiquary, 711

- Indian As Board Chief, 507
 Indian Community Leadership in
 Malaya, 691
 Indian Contacts with Foreign Countries,
 696-697
 Indian Culture, (15; 38; 52; 82-85; 87;
 89; 92; 126; 195; 196; 213; 232;
 324; 328); 423-430
 Indian Culture in South East Asia, 690
 Indian Education, (383; 388; 389); 703
 Indian Polity, (8; 16; 102-104; 174;
 176; 417); 693-707
 Indian-Aryans came from Central Asia,
 652
 Indo-European Languages, (148; 178);
 505
 Indo-Mediterranean Contacts, 697
 Indra, 23
 Indus Script, Finns decipher, 624
 Indus Valley Culture, (94; 99; 424);
 624-629
 Inscriptions, 630-643
 Institute of Historical Studies, Jodhpur
 Session of, 676
 Intelligence: Crucial mistakes, 661
 Interpolation, Second Order, 600
 Irrational in Science, 575
 Irrigation, 565
 Islam, (295; 404; 406; 410)
 Īśvarādīkāraṇavādin, 325
 Īśvara Doctrine, 342
 Īśvara Kṛpṇa, Interpretation of a kārīkā
 329
 Karnataka Sculpture, 647
 kārū, 25
 Kausheetaki Brahmana Ka Sanskritik
 Evam Aitihasik Adhyayana, 132
 Kauṭilya, 698-700
 Kauṭilya, Some Unknown Stanzas of,
 702
 Kauṭilya's Political Thinking, 703
 Kaveri in South Indian History, 688
 Kavindrācārya Saraswatī, 214
 kēruḥ, 25
 ketubha, On the Meaning of, 513
 Khajuraho, 682
 Khotanese Etymologies, 541
 kichiris, 515
 Krishna Kumari Episode, 667
 Kubera, 146
 Kumāradāsa, 159
 Kumaun Metal Sculptures, 648
 Kuntaleśvaradautya, 291
 Kuṣāṇa Geneology and Chronology, 656
 Kushans--Rome Link, 604
 Laghūṭīkā, 246
 Lakṣaṇa in Nyāya-Vaiśeṣika School, 348
 Language, 534
 Language of Malory, 546
 Language of Winchester Manuscript, 546
 Language, Theory of, 519
 Language, The Story of the English, 547
 Landclassification, 571
 Land revenue, 571
 Latin Script for Hindi, 466
 Laylife and Saṁnyāsi, 304

- Maithili, 452-453
 Malayā, 691
 Malaysia, 692
 Mālvān Excavations, 625
 Marāṭhī, 451
 Marriage-ceremonies, 430
 Marwar Ra Paragana Ri Vigat, 669
 Mathematical Ideas in India, Development of, 395
 Mathematics, (115; 116); 593-602
 Math-matics, Indian, 593
 Māṭṭkābhedaṅgram and its Alchemical Ideas, 376
 May, 532
 māyā, 47
 Medical Science, (22; 48); 119-121
 Medical Sciences, (22; 38; 48; 119; 120; 418); 555-560
 Medieval Indian History, (178); 659
 mercury, 576
 Metabolism in Āyurveda, 560
 Metal Technology, 564
 Might, 532
 mineralogy, 123
 Minus sign, 601
 Mirashi Felicitation Volume, Dr., 712
 Miris. Folk Tales of, 7 9
 Miscellaneous, 128-134; 254-256; 711-714
 mithan, 695
 Modern Indian History, (382; 392; 401); 600 665
 Modern Indian Languages, 444-504
 Mohini's, Wedding with Siva, 451
 Mongolia, People's Republic of, 693
 monosyllabic words, 65
 Morning Thoughts, 438
 Morpheme of English, 533
 Mother-in-law V. Daughter-in-law, 142
 Mughal India, 579
 Music, 570
 National Bibliographical Dictionary, 679
 Nature of Veda, 69-70
 Nāṭyaśāstra, 249; 250
 Nāyaka Polity, 657
 Neanderthal man speech, 509
 Neolithic Pottery, 609
 Neoscience, Doctrine of Śaṅkara, 363
 News, 135
 Nikitin's Voyage, Words of Indian Origin, 515
 Nilakṣha as a Mimāṃsaka, 319
 Nimbka Notes XIV, 105
 Nīṅḍaśāstra, 176
 Nean Climatology, 528
 Nominalisations, 510
 Non-slaughter of animals 638
 Northern Frontier of India, 665
 Nyāya, (295; 322); 335-339
 Nyāyamañjarī, On Some Citations of, 335
 Nyāya Works, Lost and Little Known, 339
 OIA 5th Conj. > 9th Conj. in Pāli, Change of, 514
 Om, 46
 Onomatopoeic Words in Prākṛta, 512
 Original Aryan Home in Himalayas, 97
 Ostracon, Parthian, 618
 Other sects, (295); 437
 Painting (424); 566
 Pāli Semantics, 511
 Pāṇini on Metalanguage, 59
 Pāṇini on Object language, 59
 Pāṇini's Technical Vocabulary, 56
 Paper Technology, 563
 Pāpmano Vinidhayaḥ, 50
 Patola Sarees, 567
 Persian, (178)
 Personal Pronouns, 522
 Philosophers, 336-367
 Philosophical Concepts, 16; 23; 32; 35; 42; 46; 71; 73; 76 78; 264; 269; 319; 320; 336; 338; 351-353; 363; 364; 386; 390; 393; 399; 402-403; 419-422
 Philosophical Trends-Heterodox, 574
 Philosophical Trends V. History of Sciences of India, 287
 Philosophy of Aesthetics, 243
 Philosophy of the Veda, (5; 14; 16; 20; 23; 24; 35; 40; 42-48; 75); 74-79
 Pīṭ Sūtras, 58
 Phonemics, Systematic, 545
 Phonology of a Dacca Dialect, 530
 Physical Sciences, (13); 110-118; (341; 376; 378); 553-554
 plants, 558
 Plant Remains, 604
 Plus sign, 601
 Poetry, Definition and Source, 238
 Poet's Public, 254
 poisons, 576
 Political Loyalty and Cultural Roots, 692
 Polity, 102-104
 Poṇa Raja, 648
 Post-Harappan Culture in W. Bengal, 617
 Pottery in Vedic Literature, 122

- Prākṛta, 439-441
 Praśastapāda, Various Names for the
 Work of, 346
 Praśnas, eight, 67
 Pre-Śaṅkara Upaniṣadic Philosophy (in)
 Kālidāsa, 47
 Pronominal Forms in Tamil, 525
 Prose, 185-189
 Psychology, 418
 Purāṇa, (32; 146); 155-158
 Pūrva Mīmāṃsā, (42; 69; 79; 295);
 349-350
 Rājan, Folk Etymology of, 63
 Rājaśekhara, 212
 Rājasthāni, (440); 454-465
 Rājasthāni Poetry, 463-465
 Rāmāyaṇa, 145
 Rāmāyaṇa, The Nominal System of, 521
 Rampart, 2000 Year Old, 613
 Ranadulla Khan, 680
 Rāṇā Kumbha's Praśastis, 640
 Rasa, 235
 Rasagaṅgādhara, 238
 rasa liṅga, 376
 Rasārṇavakalpa, 378
 Rāṣṭrakūṭas of Kuntala, 201
 Rational in Science, 575
 Ratnāvalī Nāṭikā, 452
 Rāvāṇa, 145
 Reconstruction of the Ṛgveda, 54
 Reform in India, 401
 Religious Tolerance, 650
 Ṛgveda, 1-21
 Ṛgveda Padapāṭha, Two Anomalous cases, 1
 Ṛgveda, The Quest for the Original, 33
 Rhetorics (136); 233-243
 Ṛṣis of the Ṛgveda, 131
 ṛtam, 111
 Sanskrit Grammar, New Model, 506
 Sanskrit in Modern India, 535
 Sanskrit Lexicons and Grammar, (56;
 58; 61; 107-109); 506
 Sanskrit Place Names, 205
 Sanskrit Poetics, 233
 Sanskrit, Promotion of, 527
 Sanskṛta Drama, A new approach, 199
 Śāntarasa, 243
 Śarabha Purāṇa, 449
 Sarnath Sculpture, 645
 Śārṅgaka Legend, 28
 Sārcmāhātmya, 157
 Śātavāhana Coinage, 658
 Satkāraṇavāda, 336
 satyam, 111
 Śautira, 539
 Science in India, History of, 574
 Science in India, Western, 573
 Scientists in India, 577
 Sculpture, 644-650
 Seeds, 571
 Seers of the Ṛgveda, 75
 Segmental Phonemes of North German,
 Problems in the analysis of, 526
 Selections, 125-127
 Semantics, Pāli, 511
 Seminars, 715-724
 Sentence Structure, 543
 Sepoy to Subedar, From, 663
 serpents, 576
 Setubandha, 201
 Sex determination Methods, 121
 Shakespearean May and Might, 532
 She'sheni, 515
 Siddhānta, 67
 Siddhāntas, 114
 Sindhānuvākabhāṣya, 50

- Spanish Se, 516
 Spiritualism, (5; 14; 16; 24; 75; 80; 129-131); 417
 Spogli elettronici..., 549
 Sterilization Methods, 120-121
 Stone Panel in Viṣṇupada Temple, 607
 Structure of the Statement, 519
 Study of Words, 22-33
 Subhāṣita-Saṁgrahas, 180
 Subodhini, 50
 Substandard words in English, Structure of, 548
 Succession in Mewar, 671
 Śūdraka, 204
 Sundarapāṇḍya, 176
 suṣuvūṣaḥ, 1
 Sūtras, (6; 38); 49-60
 Svarbhānu, 18
 Svasrū-snuṣā-dhanasamvāda, 142
 Symposium on History of Science in India, 578
 Syntactic Parametres, 543
 Systematic Phonemics, 545
 Tagrenic Theory, 543
 Tamil, (144; 277); 448-449
 Tamil, Pronominal Forms in, 525
 Tamil Society of The Sangam Age, 684
 Tantra, (183; 353); 368-381
 Tao, 331
 Taoism, 331
 Technology, (122; 124); 561-564
 Technology in Iron Age in South India, 561
 Temple Remains, 12th c., 614
 Temple Rituals, 430
 Ten Kings, Battle of, 31
 Thankā, 615
 Tibetan Thankā, 615
 town planning, 576
 Transformational Analysis of Spanish Se, 516
 Transformational Theory, 528
 Translations, 486
 Travelling, 504
 Trigonometrical Series, 594
 Triṣaṅku, 587
 Tryambaka, 22; 77
 Udātta Accent, 55
 Uigur, 590
 ukhJ, 122
 Uṇādisūtras, 58
 Upajana, 115
 Upaniṣads, (40); 44-48
 Upaniṣads, Philosophy of The, 48
 Urdu, 444-445
 Uttarakuru, Identification of, 651
 Vaiśeṣika (267; 295); 340-348
 Vaiśeṣika Philosophy, 340
 Vaiśeṣika Sūtras in the History of Science, 343
 Vaiśeṣikas, The Impetus Theory of, 341
 Vaiṣṇavism, (357)
 Vaitāna Śrauta Sūtra, 49
 Vala-myth, 23
 Vāmana Purāṇa, 157
 Varāṇasī Temple Sites, 608
 Vārttika, Authorship of a, 57
 Vaṭeṣvara Siddhānta, 591
 Veda, 1-140
 Vedānta, (20; 40; 44; 45; 47; 153; 154; 182; 183; 267; 295; 319; 325); 351-365
 Vedānta Deśika, 367
 Vedānta Philosophy in Buddhist Scriptures, 325
 Vedānta Philosophy in Pre-Śaṅkara Philosophical and Religious Works, 362
 Vedic Interpretation, 68
 Vedic Mathematics, 116
 Vedic Mythology, 71-73
 Veterinary science, 576
 Vidvajjanavallabha, 589
 Vijayanagar Sringeri Relations, 689
 Voix (voices), 60
 Vopadeva, 241-242
 Vyāsa-Subhāṣita-Saṁgraha, 179
 Warfare, Science of, 572
 Water-lifting Devices, 565
 Western Kṣatrapas, 655
 Words of Indian Origin, A. Nikitin's Voyage, 515
 World Sanskrit Conference, 507
 X Ray Star, 583
 Yājñavalkya Smṛti, 557
 Yajurveda, 34-36
 Yoga, (86; 295); 332-334
 Zoroaster, 257
 Zoroastrianism, 257

पद एवं विषयानुक्रमणिका

इस अनुक्रमणिका का क्षेत्र देवनागरी लिपि में निबद्ध (मूल और अनूदित) समस्त सार हैं।

अक्षर ६२

अग्नि ३८

अग्निसंहिता ७१

अंग्रेजी भाषा का कीप ५१८

अंग्रेजी में विकास की समस्याएं ५४२

अचलदास खीचोरी वचनिका स्थल ४५४

अचलेश्वर स्तम्भ लेख ६३२

अजपा हंस मंत्र ४६

अजामि १०५

अण्णादुग्गाहु २४७

अन्ध विश्वास ४२७

अन्नदान प्रशंसा १५

अन्यत्र ५४४

अन्य सम्प्रदाय (२६५); ४३७

अपभ्रंश ४४२-४४३

अपभ्रंश जैन साहित्य ४४२

अपभ्रंश पद्य, अक्लोक में २४७

अप्पाशास्त्रिवेदमतम् ६८

अब्द अल्मलिक का अभिलेख ६३०

अभिज्ञान शाकुन्तलम् ट्रेजेडी २५२

अर्थपदार्थक भाषा और पाणिनि ५६
 अर्थपरिवर्तन, पालि में ५११
 अर्थशास्त्र का काल ६६६
 अर्थशास्त्र, कोटिल्य ६६८
 अर्थशास्त्र पर एक विचार ७००
 अर्थशास्त्री ५४४
 अर्थकार २४४; २४५
 अर्थकाराः, ऋग्वेदे १३७
 अर्थनार ४१२
 अर्थविद्या ४७
 अर्थे ० ८. १. ४ २
 अर्थे ० १०. ७. २० ३७
 अर्थव्याकृत ७४
 अर्थवमेव ३६; ४७; ५२
 अर्थोक्त के दो शैलशासन ६३६
 अर्थोक्तों प्राकृत ५४४
 अष्टाध्यायी ५८
 अक्षय में प्राप्त सामग्री ६०६
 अनुः ३
 अहंगण ५८२
 अहत्याज्जत्व ३२
 अहिमा २६१
 अहिल्याम्भारिका २६०
 अह्वयन्तु के तात्पर्य ६३१
 अह्वर २५०
 आक्षेपानुविधि ४६
 आगमशास्त्र के निमित्त ग्रन्थ ३८०
 आच गंग मूर और अहिमा २६१
 आठ निदान, (ज्योतिष के) ३७
 आत्मना ११; ७४; ७६
 आत्मभक्ति का अर्थ १४
 आदिम मानव का निवासस्थान ३७
 आदिमानवों का युद्ध (आर्यों के) ३०
 आधुनिक भारतीय समाज (३८२; ३८३; ४०१);
 ६६०-६६५
 आधुनिक भारतीय समाज ४४५-४०४

आध्यात्मिक जगत् और ज्योतिष ५८१
 आनन्दमार्ग सम्प्रदाय दर्शन २६५
 आभास ३५६
 आयुर्वेदविज्ञान (२२; ४८); ११६-१२१
 आर्थिक आत्मनिर्भरता (ग्रामिक) ६५३
 आर्यजीवन की अभिलाषाएं, वैदिक युग में ८८
 आर्य भट्ट का सम्प्रदाय ५६२
 आर्य मार्तण्ड वा इतिहास ४८४
 आर्यसमस्या (३०; ६७); ६५१-६५२
 आर्यसमस्या कोई नहीं ६७
 आर्य समाज (२०; ४४; ४५; ५१; ५३; ७०; १३४;
 १३५; १७०; १६४; २२७; २६५; ३३३;
 ३५४; ३५५; ३६०); ३८२-४१६
 आर्य समाज और दक्षिण में हिन्दी प्रचार ३६४
 आर्य समाज और महिला जागृति ३८२
 आर्य समाज की देन २२७
 आर्य समाज की देन, हिन्दी साहित्य को ४१४
 आर्य समाज की मान्यताएं ३८५
 आर्य समाज की शिक्षा-संस्थाएं ३८३
 आर्य समाज की संस्कृत साहित्य को देन, ऋषि
 दयानन्द और १६४
 आर्य समाज की हिन्दी की देन ३८४
 आर्य सिद्धान्त मुक्ततावली ३८५
 आर्य सप्तशती-२के मूल्यांकनम् २१८
 आर्यों और आदिवासियों का युद्ध ३०
 आ ✓नम् के अर्थ ४२
 आत्मम वज ४२
 आवागमन ४१२
 आयुगुणाङ्गः १०६
 आसव २६८
 आनूतना की गण्यता ६६१
 अक्षयुक्त मन्त्रान्तराणि १२१
 अष्टकन पण्डितवारी ७११
 इतिहास दर्शन का अर्थ ४१६
 इन्द्रः १६; २३; ३२; ३६३
 इन्द्र जीवात्मा १३०

इन्द्रकृति गौतम २६२
 इन्द्रस्थाहृत्स्वान्नाकारण ३२
 इन्द्राणी १६
 इन्द्रिर ७६
 इन्द्रान (२२५; ४०४; ४०६; ४१० आ)
 इन्द्रानी वर्णन २२५
 इन्द्रान ४०७
 इन्द्रानी मन्त्र २५७
 इन्द्रोपनिषद् ३५४
 इन्द्र ४०३; ४१०
 इन्द्र और धाम २५७
 इन्द्र कृष्ण की एक कारिका की व्याख्या ३२३
 इन्द्ररत्न २७३
 इन्द्ररवाद २६४
 इन्द्ररवाद, आगमिक ३५३
 इन्द्ररवाद, उत्तर वेदान्त में ३६४
 इन्द्ररविचार ३४२
 इन्द्ररविप्रक ३५३
 इन्द्ररसिद्धान्त, न्यायकल्पनी में ३४५
 इन्द्ररसुक्ति ३
 इन्द्रराधिकारणवादी ३२५
 इन्द्रराष्ट्रवाद ३५३
 ईसाई वर्णन २२५
 ईसाईयन (२४५; २६५; ४०३; ४०७); ४१० घ;

३६५

उद्यान विज्ञान ५७६
 उत्तमि के पत्र पर २
 उपजन १०५
 उपनयन सर्वस्व ३५७
 उपनिषद् (४०); ४४१; ४५५
 उपनिषदों का वर्णन ४५
 उपनिषद् सांख्यपरक ३३०
 उर्दू ४४४-४४५
 उर्दू गद्य ७२०
 उर्दू साहित्य में श्रीकृष्ण ४४५
 ऋ० १. ६. २७ ५
 ऋ० १. १७ ३
 ऋ० १. २६. ३ २
 ऋ० १. २७. ६ ७
 ऋ० १. ११३. १६ ३
 ऋ० २. २५. ४ २
 ऋ० ३. ६. ४ १४
 ऋ० ७. ५६. १२ ४
 ऋ० ७. ५६. ३ १०
 ऋ० ८. २६. ११ ६
 ऋ० १०. १४. १ अ का अनुवाद १७
 ऋ० १०. ३७. २ १२
 ऋ० १०. ५६ १६
 ऋ० १०. ११७ १५
 ऋ० १०. ११७. १ ४

अर्धपदार्थक भाषा और पाणिनि ५६
 अर्धपरिवर्तन, पाणि में ५११
 अर्धशास्त्र का काल ६२६
 अर्धशास्त्र, कौटिल्य ६६८
 अर्धशास्त्र पर एक विचार ७००
 अर्धनागधी ५४४
 अर्लकार २४४; २४५
 अर्लकारा, ऋग्वेदे १३३
 अर्लनार ४१२
 अविद्या ४३
 अवे० = १. ४ २
 अवे० १०. ७. २० ३७
 अद्याकृत ७४
 अद्यमेघ ३६; ४७; ५२
 अद्योक्त के दो शैलशास्त्र ६६६
 अद्योक्ती प्राकृत ५४४
 अष्टाध्यायी ५८
 अस्तम में प्राप्त ज्ञानधी ६०३
 अस्तु: ३
 अहंगण ५८७
 अहल्याचारत्व ३२
 अहिंसा २६१
 अहल्यान्मारिका २६०
 अह्वयन्तु के तात्पर्य ६३१
 अह्वर २५०
 अधोपानुविधि ४६
 आगमशास्त्र के सिद्धिप्रत्य ३८०
 आद्य राग मूर और अहिंसा २६१
 आठ सिद्धान्त, (ज्योतिष के) ७७
 आत्मा १६; ७४; ७६
 आद्वैतता का अर्थ १४
 आदिम मानव का नियन्त्रण १०
 आदिमानवों का युद्ध (प्राचीन में) ३०
 आधुनिक भारतीय इतिहास (३८२; ३६०; ४०१);
 ३६०-३६५
 आधुनिक भारतीय भाषाएँ ४४१-४०४

आध्यात्मिक जगत् और ज्योतिष ५८१
 आनन्दमार्ग सम्प्रदाय दर्शन २६५
 आभास ३५६
 आयुर्वेदविज्ञान (२२; ४८); ११६-१२१
 आर्थिक आत्मनिर्भरता (ग्रामिक) ६५३
 आर्यजीवन की अभिलाषाएँ, वैदिक युग में ८८
 आर्य भट्ट का सम्प्रदाय ५६२
 आर्य मार्तण्ड वा इतिहास ४८४
 आर्यसमस्या (३०; ६७); ६५१-६५२
 आर्यसमस्या कोई नहीं ६७
 आर्य समाज (२०; ४४; ४५; ५१; ५३; ७०; १३४;
 १३५; १७०; १६४; २२७; २६५; ३३३;
 ३५४; ३५५; ३६०); ३८२-४१६
 आर्य समाज और दक्षिण में हिन्दी प्रचार ३६४
 आर्य समाज और महिला जागृति ३८२
 आर्य समाज की देन २२७
 आर्य समाज की देन, हिन्दी साहित्य को ४१४
 आर्य समाज की मान्यताएँ ३८५
 आर्य समाज की शिक्षा-संस्थाएँ ३८३
 आर्य समाज की संस्कृत साहित्य की देन, ऋषि
 दयानन्द और १६४
 आर्य समाज की हिन्दी की देन ३८४
 आर्य सिद्धान्त मुक्तावली ३८५
 आर्य नव्यसती-रक सूक्तान्तम् २१८
 आर्यों और आदिवासियों का युद्ध ३०
 आर्य जन्म के अर्थ ४२
 आर्यमन् यज्ञ ४२
 आर्यागमन ४१२
 आयुमुक्षणः १०६
 आसव २६८
 आयुवृत्त की गणना ३६१
 आयुवृत्त गणनाप्रति १२१
 आयुवृत्त गणनाप्रति ७११
 इतिहास दर्शन का अर्थ ४१६
 अर्थ: १६; २३; ३२; ३६३
 अर्थ जीवित्वा १३०

इन्द्रभूति गीतम २६२
 इन्द्रस्याहल्याजारत्न ३२
 इन्द्राणी १६
 इमिर ७३
 इस्लाम (२६५; ४०४; ४०६; ४१० आ)
 इस्लामी दर्शन २६५
 ईमान ४०७
 ईरानी मत २५७
 ईशोपनिषद् ३५४
 ईश्वर ४०३; ४१०
 ईश्वर प्रीत पाप २५७
 ईश्वर कृष्ण की एक कारिका की व्याख्या ३२६
 ईश्वरत्व २७३
 ईश्वरवाद २६४
 ईश्वरवाद, प्रागमिक ३५३
 ईश्वरवाद, नांकर वेदान्त में ३६४
 ईश्वरविचार ३४२
 ईश्वरविषयक ३६६
 ईश्वरविज्ञान, व्यापकदर्शन में ३४५
 ईश्वरस्मृति ६

उद्यान विज्ञान ५७६
 उन्नति के पथ पर २
 उपजन १०५
 उपनयन सर्वस्व ३६७
 उपनिषद् (४०); ४४; ४६
 उपनिषदों का दर्शन ४६
 उपनिषद् सांख्यपरक ३३०
 उद्गूँ ४४४-४४५
 उद्गूँ गजल ७२०
 उद्गूँ साहित्य में श्रीकृष्ण ४४५
 ऋ० १. ६. २७ ५
 ऋ० १. १७ ६
 ऋ० १. २६. ३ २
 ऋ० १. ६७. ६ ७
 ऋ० १. ११३. १६ ३
 ऋ० २. २६. ५ २
 ऋ० ६. ६. ४ १८
 ऋ० ७. ५६. १२ ८
 ऋ० ७. ६६. ३ १०
 ऋ० ८. ६६. ११ ६

- जयपुर की कुंडली ५८५
जयपुर में तन्त्रशास्त्र की दुर्लभ पाण्डुलिपियां ३७४
जय व्रद्धी विंगल ४६०
जयसिंह (महाराणा) के दो यात्रा पत्र ६४१
जमन इन्डोलानी २६६
जल के उठाने की विधियां ५६५
जलप्लावन ऐतिहासिक घटना ६६
जवाहरचिन्तनम् १६८
जादू ३७६
जानकीवल्लभ २१६
जा-कोहरणम् १५६; २०६
जानी विहारीलाल ४७१; ४७६
जामि १०५
जिज्ञासा श्रीर नमोषान ५१
जीवन का लक्ष्य ४४
जीवात्मा ३६०
जीवेश्वरभेदविमर्शः ३६१
जूना ६१२
जिम्क महत्तर ६३७
जैन प्राणियों में विभिन्न दार्शनिक विचारधाराएँ
२६७
- जैनसाहित्यकार राजस्थान के प्राचीन ३००
जैनसाहित्य की विचारधारा एवं विम्बेयण २७३
जैनसाहित्यिक परम्परा २७४
जैनसिद्धान्त २६४
जैमिनि का वेदसिद्धान्त ६६
जैमिनीवाक्येय-जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण्य ४०
जैविकोदगमन ४८
जैसलमेरी बोली में प्राकृत एवं अवहट्ट ४४०
जोरोएक्टर २५७
जोग के साथ हीम १०२
ज्याकनन का मन्त्रिकटन ५६७
ज्यासाखी ५६६
(ज्योतिष-) सिद्धान्त-(ग्रन्थ) ६७
ज्योतिष (१६; १८; ६६; ११४; १४६; ४२५);
५८०-५८६
ज्योतिष श्रीर आध्यात्मिक जगत् ५८१
ज्योतिष श्रीर गणित की नींवनामची ११५
ज्योतिष, प्राचीन हिन्दू ११४
ज्योतिषविशेषक ५८६
ज्योतिषप्रणालियाँ, हिन्दू ६०६
डानस्टाय कवामन्त्रकम् १८५

तन्त्रप्रामाण्य, वैदिक कर्मशास्त्रानुयायिणी में

३७९

तन्त्रोक्त साधना ३७५

तमिल (१४४; २७७); ४४८-४४९

तमिल के सर्वनाम ५२५

तमिलवेद २७७

तमिलसमाज, संगमयुगीन ६८४

ताऊ ३३१

ताम्रोदर्शन ३३१

तांबे का प्रचलनारम्भ, भारत में ५५४

तारा १५८

तिव्वती यंका ६१५

तिरुक्कुरल, जैनरचना २७७

तिलकमंजरीसार २७८

तीर्थदर्शन, विशाल भारत ३०५

तुङ्, ह्नाङ्, बोद्ध मुक्ताग्रों की यात्रा ३२१

तुङ्क १५५

तुलसी २५५

तुलसी का प्रवचन ४९२

तुलसीदास और हिन्दुजाति की तात्कालिक

समस्याएँ ४७२

तुलसीदास-चरितम् ९१

तृष्णा ४९३

तोया ४०८

त्वामविनोद-विनिग्र-प्रबन्ध १९३

त्रिकोणमितीय क्रम ५९४

त्रिदेववाद ७३

त्रिमूर्ति ७१

त्रिलोचनमत्तविमर्गः ३३८

त्रिशकु ५८७

त्रैलोक्य २०; ३९३

त्रयन्वक २३; ७७

त्रहा ६१५

त्रहन विन्व (१८७५) ६८५

त्रिस्तु पूर्वो म्निवा में भारतीय मन्त्रुनि ६९०

त्रिस्तु भाग्य का द्निगम ६८०-६८२

दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार और आर्य समाज

३९४

दक्षिणावर्त शंख ३६८

दण्डी एक अध्ययन २३१

दयानन्द ४१६

दयानन्द और भारतीय शिक्षा ३८८

दयानन्द का कार्य ४०१

दयानन्दशास्त्रार्थसंग्रह ३९५

दयानन्दसरस्वती का दर्शन २९५

दयानन्दाभिमत आर्षसिद्धान्त ४१३

दर्शन के सम्प्रदाय, भारतीय २९५

दर्शन के सम्प्रदायों का वैज्ञानिक संकल्पना पर

प्रभाव २८७

दर्शन में तर्क और विश्वास का समन्वय ३१८

दशराजयुद्ध ३१

दशरूपक २४६

दशरूपक, हिन्दी २४८

दाता की धनसम्पत्ति ४

दार्शनिक ३६६-३६७

दार्शनिक परिकल्प (१६; २३; ३२; ३५; ४२;

४६; ७१; ७३; ७६-७८; २६४; २६६;

३१९; ३२०; ३३६; ३३८; ३५१-३५३;

३६३; ३६४; ३८६; ३९०; ३९३; ३९६;

४०२; ४०३); ४१९-४२२

दार्शनिक प्रवृत्तियाँ-नास्तिक ५७४

दासप्रथा ६७४

द्विजनाम का अनुमेयविचार ३२२

दिव्य जीवन २८०

दीपन्दुर बुद्ध ६१९

दुर्बलवले (नृतीयोऽङ्क) १९०

दुतवाययम् १९१

दृष्ट्या रूप व्याकरणम् ३५

देव ४०८

देवता ७१

देवज्ञानवाद १११

देवमुद्रा, गी० शी० २१९

प्रशासनिक वाक्यांश ५२४
 प्रथम, आठ ६७
 प्राकृत ४३९-४४१; ५३६
 प्राकृतकाव्य २०८
 प्राकृत जैन कथासाहित्य २८५
 प्राकृत रामकाव्य की छन्दोयोजना ४४१
 प्राचल, वाच्य के ५४३
 प्राचीन अवशेष ६२०
 प्राचीन, २००० वर्ष पुरानी ६१३
 प्रार्थना ७; ४३२
 प्रार्थनायोग ३३२
 प्रेमचन्द की कृतियों का हसी अनुवाद ४८६
 फल ५७१
 फागु कृतियों ४८२
 फारसी (१७८)
 फालगुण ३८
 फिट् सूत्र ५८
 फौज ६१६

वृष्टियों ५५८
 वृहती २४
 वृहत्कथा २०८
 वृहत्संहिताविमर्शः ५८८
 वृहद्विवा २४
 वृहस्पति २३
 वृहस्पति का फालगुणचन्दन ३८
 वेचीलोनिमाई गणित ५६८
 वीली ५३४
 बौद्धमत (२६५; ३०४); ३१६-३२८
 बौद्धमन्दिर, युवात के ६६४
 बौद्धशास्त्रों में वेदान्त ३२५
 बौद्धसंस्कृति, भारतीय ३२८
 ब्रह्मगवी २४
 ब्रह्मम् ७६
 ब्रह्मयज्ञ ३३३
 ब्रह्मलक्षण, सर्वमनव्यात्मक ३१३
 ब्रह्मवाद ३५३

- भरतपुर कविकुमुमाञ्जलि ४६६
 भरतभाष्यम् ५७०
 भवप्रतिसंगीत ४५३
 भवप्रतीतानन्द ४५३
 भवभूति और उन की नाट्यकला २०७
 भाण्डारकर ग्रोरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना की
 सुवर्ण जयन्ती का वृत्त ७१३
 भाषा० भाषा ६६
 भारत की उत्तरी सीमा ६६५
 भारत की सफलता और विफलता ६६०
 भारततीर्थदर्शन ३०५
 भारतदशावर्णनम् १६६
 भारतभूव्यूहः १७२
 भारत भूमध्यसागर सम्पर्क ६६७
 भारत में उच्चशिक्षा ७०८
 भारतवर्षदेशः, जयतु १६७
 भारतसम्बन्धी जनश्रुतिया ३५६
 भारतीय ग्रार्थ मध्य एशिया से आए ६५२
 भारतीय इतिहास का मूल स्रोत वेद ६८
 भारतीय कामशिल्पमीमासा ४२४
 भारतीय काव्यशास्त्र की नामयिक सार्थकता २५६
 भारतीय जाति का नेतृत्व, मलाया में ६६१
 भारतीयसंस्कृति या राष्ट्रतन्त्र १०४
 भारतीय साहित्यकार ७१७
 भारतेतिहासः १४७
 भारतेन्दु ४१६
 भारोपीय भाषाएँ (१४८; १७८); ५०५
 भाषा ५३४
 भाषा का दर्शन ७२४
 भाषा का विकास, केवस्टन की ५४६
 भाषा का सिद्धान्त ५१६
 भाषा की कहानी, अंग्रेजी ५४७
 भाषाशास्त्र (२५-२७; ४१; ५४; ५५; ५७;
 ५९; ६०; ६२-६६; ७७; १०५; १०६;
 १२६; १२७; ४३६; ४४३; ४५४; ४५८);
 ५०७-५५२
 भाषाशास्त्रीय अध्ययन (१; २५-२७; ३३; ४१);
 १०५-१०६
 भाषिक स्वर ४१
 भूत ४२०
 भूतवाद ११०; २६४
 भूमिवर्गीकरण ५७१
 भोज ४२३; ६३४
 भोजन में मांस ४००

मलेशिया ६६२
 महामूद के आक्रमण ६५६
 महारौली लौहस्तम्भ ६३३
 महाकाव्य (६१); १५६-१६३
 महात्मा गान्धी का सन्देश ७०१
 महादान वाई ४५५
 महापुराण ग्रॉफ पुष्पदन्त, ए क्रिटिकल स्टडी
 २६३
 महाभारत (२८); १४६; १४६ अ-१५४
 (महाभारत की) तीन घटनाएं १४६ अ
 महाभारत, भोट भाषा में १४८
 महाभारत युगीन समाज १५१
 महाभारत-युद्धकाल निर्णय १४६
 महाभाष्य १०७
 महाभाष्यदीपिका १०८
 महावीर के पूर्व भव २६२
 महावीर स्वामी २६६
 (महिम्नस्तव) १८१
 महिला जागृति ३८२
 महिला शिक्षासंस्थाएं ३८२
 महोत्सपरिणय ४५१
 महोत्स योगी २६५

मिथन ६६५
 मिथिला तथा तन्त्र ३७७
 मिराशी अभिनन्दन ग्रन्थ ७१२
 मिरिस की लोककथाएं ७०६
 मिश्र, प्रभात २१६
 मोमांसाप्रदीप ६६
 मुंह पर पट्टी बांधना ४०७
 मुकुन्दमाला १८४
 मुक्तक काव्य (३२; १०३); १३५-१८८
 मुक्ति २६८; ४१०
 मुगलकाल में विज्ञान और तकनीकी की सामाजिक
 संरचना ५७६
 मूर्तिकला ६४४-६५०
 मूर्तिपूजा ४०५; ४०६
 मूर्तिफलक ६०७
 मूर्तिस्तम्भ, गुप्त संभव ६१ का ६१०
 मूलसाम्प्रदाय भाषा की पीपी ३२३
 मूढगीतांचे गोथ १५२
 मूलविधि. ५२
 मृत्पात्र, वैदिक युग में १२२
 में ५३२
 मेघदूत की वैदिक पृष्ठभूमि = १

भरतपुर कविकुमुदाञ्जलि ४९९
 भरतभाष्यम् ५७०
 भवप्रोतनंगीत ४५३
 भवप्रोतानन्द ४५३
 भवभूति और उन की नाट्यकला २०७
 भाष्यारकर ग्रोरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना की
 मुद्रणं जयन्ती का वृत्त ७१३
 भाष्यो भाषा ६६
 भारत की उत्तरी सीमा ६६५
 भारत की सफलता और विफलता ६६०
 भाग्यतीर्थदर्शन ३०५
 भाग्यदशावर्णनम् १३९
 भाग्यभञ्जसुमिः १७७
 भाग्य भूमध्यनागर सम्पर्क ६९७
 भाग्य में उच्चशिक्षा ७०८

भारतीयसंस्कृति या राष्ट्रतन्त्र १०४
 भारतीय साहित्यकार ७१७
 भारतेतिहासः १४७
 भारतेन्दु ४१६
 भारोपीय भाषाएं (१४८; १७८); ५०५
 भाषा ५३४
 भाषा का दर्शन ७२४
 भाषा का विकास, केवस्टन की ५४६
 भाषा का सिद्धान्त ५१९
 भाषा की कहानी, ग्रंथेजी ५४७
 भाषाशास्त्र (२५-२७; ४१; ५४; ५५; ५७;
 ५९; ६०; ६२-६६; ७७; १०५; १०६;
 १२६; १२७; ४३९; ४४३; ४५४; ४५८);
 ५०७-५५२
 भाषाशास्त्रीय ग्रन्थयन (१; २५-२७; ३३; ४१);

मलेशिया ६९२

महम्मद के आक्रमण ६५९

महरोली लोहस्तम्भ ६३३

महाकाव्य (९१); १५९-१६३

महात्मा गान्धी का सन्देश ७०१

महादान बार्ड ४५५

महापुराण ग्रॉक पुष्पदन्त, ए क्रिटिकल स्टैंडी
२६३

महाभारत (२८); १४६; १४६ अ-१५४

(महाभारत की) तीन घटनाएं १४६ अ

महाभारत, भोट भाषा में १४८

महाभारत युगीन समाज १५१

महाभारत-युद्धकाल निर्णय १४९

महाभाष्य १०७

महाभाष्यदीपिका १०८

महावीर के पूर्व भव २९२

महावीर स्वामी २९६

(महिम्नस्त्व) १८१

महिषा जागृति ३८२

महिषा निशान्तस्व्याएं ३८२

महिषपरिणय ४५१

महिष योगी २९५

मिथन ६९५

मिथिला तथा तन्त्र ३७७

मिराशी अभिनन्दन ग्रन्थ ७१२

मिरिस की लोककथाएं ७०९

मित्र, प्रभात २१९

मीमांसाप्रदीप ६९

मुंह पर पट्टी बांधना ४०७

मुकुन्दमाला १८४

मुक्तक काव्य (३२; १०६); १३४-१८४

मुक्ति २६८; ४१०

मुगलकाल में विज्ञान और तकनीकी की सामाजिक
संरचना ५७९

मूर्तिकला ६४४-६५०

मूर्तिपूजा ४०५; ४०९

मूर्तिफलक ६०७

मूर्तिस्तम्भ, गुप्त संवत् ६१ का ६१०

मूलसाहित्य भाषा की पोथी ३२३

मूळगीताने गोप १५२

मूलविधि ५२

मुत्पाप, वैदिक युग में १२२

में ५३२

मेषरूप की वैदिक पृष्ठभूमि ८५

समायण १४५
 रामायण में नामों की रचना ५२१
 रावण १४५
 रावणभाष्यम् ३६०
 राष्ट्र का स्वल्प ८
 राष्ट्रकूट, कुन्तल के २०१
 राष्ट्रतन्त्रम् १०४
 राष्ट्रवाणी तथा तस्या अमरगायकः कविः प्रणयी
 २२३
 राष्ट्रिय पुस्तक तालिका कोष ६७६
 रामलीला: परम्परा एवं विकास २५३
 रिश्वों की शब्दावली, पूर्वोत्तरी राजस्थानी में
 ५२३
 रघुयामल तन्त्र ३७८
 रघुस्मृतिः ३४
 रघुश्यामलाय १३
 रघुश्यामल कुमायूँ जैन डायरेक्ट्री ३०३
 रघुश्यामल, प्रेमजी का ५३३
 रघुश्यामल, भाव-धार्मिक प्रख्यातों में ३४८
 रघुश्यामलाः पञ्चविधत्वम् २३७
 रघुश्यामल ५७१

वनरगतियों में जीव नहीं १२७
 वर्णनिर्णय में गुण का महत्त्व ८७
 वल का ग्रन्थान २३
 वस्त्वर्लकारदगंनम् २४४
 वाक् ५
 वाचस्पतिकम् २२५
 वाल्मी १७७
 वामन पुराण १५७
 वाराणसी के मन्दिरों के मूल स्थल ६०८
 विक्रमोर्वशीय नाटक में सगमनीय मणि २०३
 विजय नगर और शृंगेरी में मन्थन ६८३
 विजयपयम् १७८
 विज्ञान का इतिहास, भारत में ५०४
 विज्ञान, भारत में परिचय ५७३
 विदुरप्रजागर परिचय ४८०
 विदेशों से सन्तर्क ६६६-६६७
 विद्वानभक्तितीक्ष्ण ऐतिहासिक समस्या २०३
 विद्वज्जनपत्तन ५८६
 विधि-विचारः ३५०
 विधिविधर्मः, सोमनाथदर्शन ७६
 विनयः १७०

शार्मा, चन्द्रवर २१६

शाश्वेति ५१५

शाकल्य ६७

शाखाएं वेदव्याख्यान १३४

शातवाहन मुद्राएं ६५८

शांत रस २४३

शाङ्गिक आख्यान २८

शास्त्रार्थ अजमेर ४०३

शास्त्रार्थ उदयपुर ४०४

शास्त्रार्थ काशी ४०५

शास्त्रार्थ जालंधर ४०६

शास्त्रार्थ वरेली ४०२

शास्त्रार्थ मसूदा ४०७

शास्त्रार्थ हुगली ४०८

शिक्षा संस्थाएं ३८३

शिखारवः १७१

शिपिचिष्ट २७

शिपिन् २७

शिवतस्वरसनाकर ५७६

शिवमहिम्नः स्तोत्रम् १८४

शोना पत्तने की कला १२४

शुक्लाशोषदेतः १८६

श्रीस्तुतिः १८३

श्रीमाल का ताम्रशासन ६४२

श्रुतियों ५७०

श्रुतिमुधा ११; ३७

शृंगारहाट २११

श्रीतं ताराबुधचन्द्रनक्षत्रम् १५८

श्व्यू स्तुपा-धनसंवाद १४२

श्वेताश्वतरोपनिषद् ४५

श्वेताश्वतरोपनिषद् अद्वैतपरक ३३०

पट्कायिक जीव २६१

संयोजक का वक्तव्य ६२

संवर २६८

संवेगनियम ३४१

संस्कार ३४१

संस्कारसमुच्चय ५३

संस्कृत ३५६

संस्कृत (प्राथमिक भारत में) ५७५

संस्कृत घोर भोट महाभारतों की तुलना १४८

संस्कृत का प्रचार ५२७

संस्कृत कोष घोर व्याकरण (५६; ५८; ६१;

१०७-१०८); ५०६

संस्कृतपीठारणः कलिपनापूर्विक-२१६

संस्कृत में विदेशी शब्द ५३७
 संस्कृतव्याकरणतील क्रियाविशेषण १०६
 संस्कृतसाहित्य का आलोचनात्मक इतिहास २२८
 संस्कृत साहित्य को देन, ऋषि दयानन्द और
 आर्य समाज को १६४
 संस्कृतसाहित्यान्तर्गत विवाहसंस्कार २३२
 संस्कृत स्थानों के नाम २०५
 संकलन (वैदिक) १२५-१२७
 संगीतकला ५७०
 संगीत, नाथद्वारा ५६६
 सच्चिदानन्द ७६
 सजनां विषयक वात और गीत ४६५
 सटिष्णुपारस्करीयोपनयनसूत्राणि ६३
 सतियों का काव्य ४५५
 सत्कारणवाद ३३६
 सत्य का अनुसंधान ३५
 सत्य की विजय २२
 सत्यधर्मविचार मेला चान्दापुर ४१०
 सत्यम् १११
 सत्यार्थप्रकाश ४११
 सत्यार्थ सुधा ४११
 सत्यासत्यविधेक ४१२
 सन्तसाहित्य के अध्ययन अध्यापन की समस्याएँ
 ४८१
 संदर्भ ७१५
 संन्यासी और गृहस्थ जीवन ३०४
 समकालीन चित्र ७२२
 समयसार ३१२
 समाचार १३५
 समुद्र, महान में ६२१
 सम्पादकीय ४८४
 सरस्वती-शब्दव्युत्पत्ति: ६४
 सर्प ५७६
 सर्वनाम, तमिल के व्यक्तिवाचक ५२५
 सर्वनाम, व्यक्तिवाचक ५२२
 'सर्वहित' भ्रामक तथ्य ४८५

सर्वादय तीर्थ-जैनधर्म ३१४
 सविता ६
 सांस में बंधक विगरण दो ४६८
 सांस्कृतिक अध्ययन (१६; ३६); ८०-६४
 सांस्कृतिक निष्ठा, मलाया के भारतीयों की ६६२
 सांख्य २४०; (२६७; २६५); ३२६-३३१
 सांख्य और ताम्रो दर्शन ३३१
 सांख्यपरक, उपनिषद् ३३०
 सांभो पूजा की परिकल्पना ४२६
 सात्विक हिन्दू धक्ति का जागरण ४३५
 साधनापथ की भ्रमरसाधिका ३१५
 साधुमार्गी जैनसमाज: संक्षिप्त दिग्दर्शन ३१६
 साधुशक्ति ४२२
 सामन्तशाही ६७२
 सामरस सिद्धान्त और कामायनी ४६७
 सामरस्य, कामायनी और ३७०
 सामविधान ब्राह्मण ३६
 सामान्य अध्ययन (लौकिक संस्कृत) (४७; ८१);
 १६४-२१६; २२७-२३२
 सामान्य अध्ययन (वैज्ञानिक) ५७३-५७६
 सामान्य अध्ययन (वैदिक) (१; ५; १३; १४; १६;
 १६; २०; २२-२७; २६-३१; ३३; ३५-
 ३७; ४०-४८^२; ७५); ६८-१४०
 सा मा सत्योक्ति: १२
 सायणभाष्यं पारमार्थिकम् ६८
 सारनाथ की पावाण मूर्ति ६४५
 सारशतकम् १६१
 सारोमाहात्म्य १५७
 साहित्यशास्त्र (१३६); २३३-२४३
 साहित्यिक विप्लव, बंगला देश में ४५०
 साहानुवाकभाष्य ५०
 सिचाई ५६५
 सिद्धान्त ११४
 सिद्धान्त चन्द्रिका ३६५
 सिद्धान्तशतकम् ४१३
 सिन्धुघाटी की भाषा संस्कृत ६४

नारदोद्योगचारणग्रंथ १.१; १.६७

- सिन्धुवादी की लिपि ६२६
 सिन्धुवादी की लिपि का अर्थ ६२७
 सिन्धुवादी की लिपि में ब्राह्मणों और उपनिषदों
 के प्रतीक ६४
 सिन्धुवादी में चार लिपियाँ ६४
 सिन्धुवादीलिपि का रहस्योद्घाटन ६२८
 सिन्धुलिपि, फिनी व्याख्यान ६२४
 सिन्धुवादी संस्कृति (६४; ६६; ४२४);
 ६२४-६२६
 सिपाही से सूवेदार ६६३
 गीताचरितम् १६३
 सीताराम ६६३
 गीताचरितम् ४४१
 मुन्दरपाण्ड्य १७६
 मूर्वाधिनी १०
 मुनागितमंग्रह १७३-१८०
 मन्नायनमंग्रह (सामाजिक) १००

- स्वनप्रक्रिया, डूका की एक शैली की ५६५
 स्वनिनविज्ञान, अन्वेषित ५४५
 स्वभाववाद ६६४
 स्वभावोक्ति का वैलौपिक ६४५
 स्वर ५४
 स्वरप्रक्रिया, शतपथ ब्राह्मण की ६४
 स्वरानु १८
 स्वरभेद ४१
 स्वरोदयसाधन ३८१
 स्वर्णजयन्ती ग्रन्थ ४६६
 स्वसा ३२
 हुंस की संकल्पना, उपनिषदों में ४६
 हुडप्पा कालीन वस्तुएँ ३८६
 हुडप्पासंस्कृति ५६४
 हनु २७
 हरदत्त ३०३
 हरदत्त के इतर ३०६

हिन्दो विश्वभारती विचारकक्ष ३१८
हिन्दी साहित्य को ग्रार्थसमाज की देन ४१४
हिन्दी साहित्य समिति भरतपुर ४६६
हिन्दु ६२
हिन्दुओं के उत्थान में दयानन्द का कार्य ४०१
हिन्दुत्व ६२
हिन्दुमत (१६); ४३१-४३६
हिन्दु संस्कृति ४३०
हिन्दूधर्म का इतिहास १००
हिन्दू भोज, पर्व, क्रियाएँ ४२३

हिन्दुलक्षणम् ४३६
हिमालय वर्णन ५०४
हिसार ६६४
हिस्सेबोराला अभिलेख ६४३
हीनोरिचवल्लिज्म ४३
हृण इतिहास ६५७
हृदयोद्गार ५०१
हेतुवर्लकारः २३७
हेमचन्द्र की और हिन्दु महाभारतों की तुलना १५०
हेमाद्रि २४१-२४२

सांख्यिकी विश्लेषण (Statistical Analysis)

खण्ड 1 (Section I)	रोमन लिपि (Roman Script)	42
1. विभिन्न भाषाओं में सार (Abstracts in Various Languages)	6. सारक (Abstractors)	22
अंग्रेजी (English)	7. लेखक, सम्पादक, समीक्षक (Authors, Editors, Reviewers)	643
हिन्दी (Hindi)	देवनागरी लिपि (Devanagari Script)	351
संस्कृत (Sanskrit)	रोमन लिपि (Roman Script)	292
मराठी (Marathi)	8. खण्ड 2 (Section II)	
कुलसार (Total No. of Abstracts) 724	लेखक (Authors)	8
2. सारोक्त पत्रिकाएँ आदि (Journals etc. abstracted)	समीक्षक (Reviewers)	3
देवनागरी लिपि (Devanagari Script) 38	लेख (Papers)	10
रोमन लिपि (Roman Script) 29	समीक्षाएँ (Reviews)	6
3. सारोक्त अप्रकाशित शोधप्रबन्ध (Unpublished Theses Abstracted)	9. पृष्ठ (Pages)	360
4. सारोक्त प्रकाशित ग्रन्थ (Published Works Abstracted)	खण्ड 1 (Section I)	284
5. सारोक्त समीक्षाएँ (Reviews Abstracted)	खण्ड 2 (Section II)	84
देवनागरी लिपि (Devanagari Script)	टिप्पणी—इस में प्रारम्भिक अंशों और विज्ञापनों की पृष्ठसंख्या सम्मिलित नहीं है। (This does not include the pages of the introductory parts and advertisements).	
37		

देवनागरी लिपि में प्रयुक्त सामान्य संक्षेप

प्र.	प्रध्याय	प्रानाम्ना.	प्राचीन भारतीय ग्रंथं नापा
प्रं.	प्रंये त्री	छा.	छात्रो
प्रनु.	प्रनुवास्क	नामा.	नास्ती मन्दिर प्रनुसन्धान नामा
प्रनाप्राविप.	प्रखिलभारतीय प्राञ्चविद्या परिषद्	नामप्रना.	(आर-२, विश्वविद्यालयपुरी, जयपुर)
प्रना.	प्रयंगान्ध	न.	मराठी
प्रानामा.	प्राधुनिक भारतीय ग्रंथं नापाए	मनाप्रा.	मध्य भारतीय ग्रंथं नापाए
प्रानामा.	प्राधुनिक भारतीय नापाए	रात्र.	रात्रस्थान
ई.पू.	ईस्वी पूर्व	ले.	लेखक, लेखकों, लेखिका
उ.प्र.	उत्तर प्रदेश	वि.	विक्रमी संवत्
श्र.	श्रुम्बद	वि.	विभाग
क.	कन्द	वि.वि.	विश्वविद्यालय

General Abbreviations Used in Roman Script

A.P.	Andhra Pradesh	NISI., Cal.	National Institute of Sciences ³ in India, 1, Park Street Calcutta-16
AS.	Artha Śūtra	Philos.	Philosophy
AVP.	Atharvaveda, Paippalāda	Pkt.	Prākṛta
BMAS.	Bharati Mandira Anusandhana Shala, R-2, Vishva-Vidyalaya, Puri, Jaipur-4	PP.	Page/s
Br.A Up.	Bṛhad Āraṇyaka Upaniṣad	Ppa.	Padapāṭha
Cal.	1, Park Road, Calcutta-16	Prev. Ref	Previous reference in continuation of which or based on which the paper under abstraction has been produced.
CASPh.	Centre of Advanced Study in Philosophy	Prof.	Professor
CASS.	Centre of Advanced Study in Sanskrit	Pt.	Paṇḍita
CSIR.	Council of Scientific & Industrial Research	Pub.	Publisher/s
Deptt.	Department	Raj.	Rajasthan
E.	English	Rev.	Reviewer
Ed.	Editor	Rv.	Ṛgveda
Govt.	Government	Sg.	Singular
Hd.	Head	Skt.	Sanskrit
HSI.	History of Sciences of India	SML.	Saraswati Mahal Library (Tanjore)
K.	Kannada Kauṭilya	Sv.	Sāmaveda
KAS.	Kauṭilya Artha Śāstra	Tam.	Tamil
Masc.	Masculine	Univ.	University
Mbh.	Mahābhārata	U.P.	Uttar Pradesh
MIA.	Middle Indo Aryan	USSR.	United States of Soviet Russia
MIL.	Modern Indian Languages	VVRI.	Vishveshvaranand Vedic Research Institute, Sadhu Ashram, Hoshiarpur.
MLBD.	Moti Lal Banarasi Dass, Bungalow Road, Jawahar Nagar, Delhi	WR.	Weekly Review
NCC. HSI.	National Council/Commission for Compilation of History of Sciences in India, Bahadur Shah Zafar Marg, New	Yv.	Yajur Veda (White)
		✓	indicates root (— dhātu)

भारतीशोधसारसंग्रह

(Bhāratī-Śodha-Sāra-Samgraha)

खण्ड २ (Section II)

लेख, समीक्षा और विज्ञापन
(Papers, Reviews and Advertisements)

वर्ष १

अप्रैल, जुलाई १९७१

अंक १-२

सम्पादक :

सुधीर कुमार गुप्त

मूल्य

एक प्रति १०-००

रु. पाच (रजिस्ट्री से)

१-५०

Price

Single Copy Rs. 10-00

Postage (under registered cover) Rs. 1-50

भारतीशोधसारसंग्रह खण्ड १ के नियम

प्रकाशन—यह पत्रिका त्रैमासिक है और अप्रैल, जुलाई, अक्टूबर, और जनवरी में प्रकाशित होती है।

लेख—इस में प्रकाशन हेतु (अनतिदीर्घ) लेख पन्ने के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में दोहरे अन्तराल पर टंकित होने चाहिएं। जिन भाषाओं की लिपि रोमन या देवनागरी नहीं है, उन के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग अनिवार्य है। लेखों के साथ अलग पन्ने पर भारतीशोधसार (खण्ड १) की योजना के अनुसार सार भेजना आवश्यक है। प्रकाशित लेखों के लेखकों को १५ प्रतिमुद्रण तथा खण्ड २ की एक प्रति दी जायगी। अप्रकाशित लेखों के लौटाने की व्यवस्था नहीं है।

समीक्षा के लिए पुस्तकों आदि की दो प्रतियां अपेक्षित हैं जिन के साथ अलग से 'समीक्षा के लिए' शब्दों से अंकित पत्र आना आवश्यक है। केवल मौलिक, शोधपरक और शोधोपयोगी रचनाओं की ही समीक्षा की जायगी। पुस्तक-प्रेषकों को समीक्षापृष्ठ की दो प्रतियां मात्र भेजी जाएंगी।

विज्ञापन दरें कोप पृष्ठ २-४००-०० पृष्ठ ३-३५०-००, पृ० ४-५००-०० तथा अन्दर के—पूरा पृष्ठ २५०-००, आधा पृष्ठ १५०-००, चौथाई पृष्ठ ८०-०० है।

पत्रव्यवहार—लेख और समीक्षा के लिए पुस्तकें सम्पादक को, विज्ञापन और तत्सम्बन्धी धन विज्ञापन एवं वितरणव्यय को और अन्य सब पत्रव्यवहार प्रबन्धक, भारतीशोध सार संग्रह, भारती मन्दिर अनुसन्धान शाला, आर-२, विश्वविद्यालय पुरी, जयपुर-४ को प्रेषित करें।

वार्षिक शुल्क—भारतीशोधसार संग्रह के दोनों खण्डों का वार्षिक शुल्क १५०-०० डाकव्यय ५-०० पृथक् है। खण्ड २ की इस प्रति का मूल्य रु० १०-०० है।

भारती मन्दिर अनुसन्धान शाला
आर-२, विश्वविद्यालय पुरी, जयपुर-४

भारतीयशाधसारसंग्रह

भाग २

वर्ष ?

अप्रैल, जुलाई, १९७१

अंक १-

विषयसूची

क्र० सं०	विषय	लेखक	पृष्ठ सं०
	परिचय		
१.	यून	श्रीमती मुकेशी रानी गुप्ता	१-४
२.	धेवभाष्यवदुति को दधान्यद		
	सरस्वती की देन	डा० सुधीर कुमार गुप्त	५-२२
३.	स्वयंवर	श्रीमती प्रीतिप्रभा गोदल	२३-२८
४.	काठ प्रतिष्ठिता में राजगुप्त	श्रीमती कृष्णा बोस	२९-३४
५.	पारिवारिक शब्दों का सांस्कृतिक अध्ययन	श्री निवृत्तागर त्रिपाठी	३५-३८
६.	वैज्ञानिक परिदृष्टि और 'जीवन' की धारणा	डा० धीरेन्द्र सिंह	३९-४२
७.	भारतव्युत्पत्ति धेतना और उस के प्रतिबिम्बि सं० धाकटुपन भट्ट	डा० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा	४३-५०
८.	Validity of Historical and Legendary Inter- pretation of Vedic Stories	Dr. S. K. Gupta	५१-६३
९.	Marvels of Vedic Astronomy	Dr. S. K. Gupta	६३-६४
१०.	The Philosophy of Linguistics	Dr. Parsh Singh	६५-६८
	समीक्षाएँ		
११.	मानव	डा० सुधीर कुमार गुप्त	६९-७०
१२.	सामान्य	डा० धीरेन्द्र सिंह	७१
१३.	दशमोद काविक्रम व्याख्यान	डा० सुधीर कुमार गुप्त	७२-७४
१४.	महाभारत काविक्रम व्याख्यान	डा० सुधीर कुमार गुप्त	७५-७६
१५.	व्याख्यान किन्तु विद्वान् परिषद् काविक्रम व्याख्यान का कीर्ति १९७०	डा० सुधीर कुमार गुप्त	७७-७८
१६.	साहित्यसमीक्षा	डा० सुधीर कुमार गुप्त	७९

परिचय

देशविदेश में अनेकों शोध पत्र-पत्रिकाओं के होते हुए भी एक और शोधपत्रिका को निकालना देश-विदेश में बढ़ते हुए शोधकार्य की दृष्टि में किसी प्रकार भी अनुचित नहीं माना जा सकता। इस पत्रिका के मूल में कुछ भावनाएं हैं। यह उदीयमान शोधकों और लेखकों को शोध-विषयक रुढ़िष्ठ खलाओं से मुक्त हो कर प्रोत्साहन देने की कामना से युक्त है। वैज्ञानिक अध्ययन में युक्त और अयुक्त की धारणा व्यक्तिनिष्ठ और कालनिष्ठ है। ऐसी स्थिति में युक्ति और प्रमाणों से पुष्ट किसी अध्ययन को शैली विशेष का अननुगामी होने के कारण अवैज्ञानिक या हेय समझना विद्या के क्षेत्र में किसी प्रकार भी प्रशस्त नहीं समझा जा सकता है। यह पत्रिका इस स्थिति से ऊपर उठने की लालसा से युक्त है और उदार, असंकीर्ण, अरुढ़ और असाम्प्रदायिक रहना चाहती है। इस का बल सत्य और यथार्थ स्थिति की खोज कर उसे देश के हित में प्रस्तुत करना है। अतः इस में देश के लिए हितकर हर विचार के युक्तियुक्त शिष्ट और संयत भाषा में निवद्ध शोध लेख स्थान पा सकेंगे।

२. इस पत्रिका में संसार की विविध भाषाओं के भारती विद्या के शोधपरक लेख प्रकाशित हो सकेंगे। इस में केवल दो प्रतिबन्ध हैं प्रथम—इस पत्रिका में दो ही लिपियां प्रयुक्त होंगी। अतः जिन भाषाओं की अपनी मूल लिपि रोमन नहीं है, उन सब के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग अनिवार्य है। दूसरे इस पत्रिका के खण्ड एक में सारों की योजना के अनुरूप सार भी लेख के साथ भेजना होगा। विविध भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग उन को एक नई दिशा और पारस्परिक सामीप्य और आदान-प्रदान का अवसर प्रदान करेगा और भारत देश में तो यह भाविक वैमल्य की स्थापना में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत कर सकेगा। भारत की सभी लिपियों का उद्गम सिन्धुघाटी लिपि से हुआ प्रतीत होता है। यदि भविष्य के अध्ययनों से यह प्रमाणित हो जाता है, तो भारतीय लिपिस्वसाओं का पारस्परिक वैमनस्य स्वतः ही क्षीण हो जायगा और उन में स्नेहभाव पारस्परिक आदान-प्रदान, द्वारा लिपिपरिष्कार को सुलभ बना देगा।

३. यह खण्ड भारतीय शोधसारसंग्रह की पूर्ण योजना का प्रतिप्रसव है। सौकर्य और एकरूपता की दृष्टि से लेखों, समीक्षाओं और विज्ञापनों को अलग खण्ड में प्रस्तुत किया गया है।

शतपथब्राह्मण की पर्याययोजना

शुद्ध

श्रीमती सुकेशी रानी गुप्ता, प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग,
रघुनाथ गहर्ज कालिज, मेरठ

१. यूप यज्ञ की सामग्री में एक है। यूप को देवों की विजय से सम्बद्ध कर शतपथ ब्राह्मण में इसे काफ़ी महत्त्व प्रदान किया गया है।

२. यूप की उत्पत्ति के संबंध में यह आख्यान है कि—जब इन्द्र ने वृत्र के वज्र मारा, तो उस वज्र के चार टुकड़े हो गए। इस के तीन भागों में से एक तिहाई या उस के लगभग रथया हो गई। एक तिहाई या उसके लगभग यूप हो गया। शेष एक तिहाई या उसके लगभग रथ हो गया और जो भाग वृत्र के लगा, वह शर बन गया। इनमें दो टुकड़ों—रथया व यूप को ब्राह्मण यज्ञ के काम में लाता है और दो भागों रथ व शर को क्षत्रिय तड़ाई के काम में लाता है।^१

वज्र है। यूप भी वज्र है।^{१०} यूप को १२ या १३ हाथ भर का काटे। संवत्सर में १२ या १३ मास होते हैं। संवत्सर वज्र है। यूप भी वज्र है।^{११} यूप को पन्द्रह हाथ भर का काटे। वज्र पञ्चदश है। यूप भी वज्र है।^{१२} वाजपेय याग का यूप १७ हाथ का होता है या अपरिमित या वे-नपा होता है। वे-नपे वज्र से ही देवों ने अपरिमित को जीता।^{१३} यूप के भागों का प्रोक्षण करता है और पढ़ता है—“तुम्हे द्युलोक के लिए, तुम्हे अंतरिक्ष के लिए, तुम्हे पृथ्वी के लिए।” यूप वज्र है। इन लोकों की रक्षा के लिए इस का प्रोक्षण करता है।^{१४} यूप को इस मंत्र से उठाता है—“अगले भाग से तूने द्युलोक को छुआ, मध्य भाग से अंतरिक्ष को पूरित किया है, नीचे के भाग से पृथ्वी को दृढ़ किया है। यूप वज्र है। इस यूप को इन लोकों की विजय के लिए उठाता है।^{१५} त्रिष्टुप् ऋचा पढ़कर यूप को छिद्र में रखता है। त्रिष्टुप् वज्र है। यूप ही वज्र है।^{१६} जिस ने यूप लगाया उसने वज्र को छोड़ दिया।^{१७} यूप को वेदी के पूर्वार्ध में रखता है। यूप वज्र है। दण्ड वज्र है। जब कोई वज्र को मारता है, तो अग्रभाग को पकड़ कर मारता है। यह वज्र का पूर्वार्ध है, अतः पूर्वार्ध में लगाता है।^{१८} जितनी वेदी होती है, उतनी पृथ्वी होती है। यूप वज्र है। यूप ११ होते हैं, १२वां छिल्ला-छिलाया अलग पड़ा रहता है। वज्र करते समय देवों को असुर-राक्षसों के आक्रमण का भय हुआ। इस आक्रमण को रोकने के लिए उन्होंने यूप गाड़े। जो ११ यूप खड़े किए गए, वे उन तीरों के समान थे, जो छोड़ दिए गए हों, चाहे किसी (शत्रु) के लगे हों या न लगे हों। ये उस लाठी के समान थे, जो मार दी गई हो, चाहे लगी हो या न लगी हो। और जो १२वां यूप पड़ा रहता है, वह उस तीर के समान है, जो लींचा तो गया हो, परन्तु अभी छोड़ा नहीं गया हो। यह यूप वह वज्र था जो दक्षिण की ओर असुर राक्षसों को मारने के लिए रक्खा गया था।^{१९} यूप के बिना पशु का आलंभन नहीं करते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि—पहले पशुओं ने अन्न अर्थात् खाद्य पदार्थ बनना स्वीकार नहीं किया था, जैसा अब कर लिया है, क्योंकि पहले पशु मनुष्य के समान दो पैरों पर खड़े-खड़े चलते थे। देवों ने इस वज्र को देखा जो कि यूप है। इसे स्थापित किया। इस के डर से पशु डर गये और सुकुड़ गए। इस से वे ४ पैरों वाले हो गए और वे अन्न बन गए।^{२०} यूप वज्र को भागी बनाने के लिए वनस्पति के लिए आहुति देता है।^{२१} षपवसथ के दिन ११ अग्नीषोमीय पशु ही ११ यूप होते हैं। त्रिष्टुप् ११ अक्षर वाला होता है। अतः त्रिष्टुप् वज्र है और त्रिष्टुप् वीर्य है।^{२२}

७. श. ३।६।४।२२॥	८. श. ३।६।४।२३; २४॥	९. श. ३।६।४।२५॥	१०. श. ३।६।४।२६॥
११. श. ३।७।१।५॥	१२. श. ३।७।१।१४॥	१३. श. ३।७।१।१५॥	१४. श. ३।७।१।१६॥
१५. श. ३।७।१।२६॥	१६. श. ३।७।१।२१॥	१७. श. ३।७।३।१; २॥	१८. श. ३।८।३।३३॥
१९. श. १३।६।१।४॥			

५. यूप न कोनों वाला होता है। गायत्री में न अक्षर होते हैं। गायत्री यज्ञ का पूर्वार्ध है। यह यूप भी यज्ञ का पूर्वार्ध है।^{२०} गायत्री अग्नि का छंद है। इस से देव लोक को जीत लेता है।^{२१}

६. एक बालिशत (=अग्नि) भर के यूप से इस लोक को जीत लेता है। दो अरत्ति भर के यूप से अन्तरिक्ष को, तीन अरत्ति भर के यूप से द्युलोक को और चार अरत्ति भर का यूप बनाकर दिशाओं को जीत लेता है।^{२२}

७. यूप के दोनों ओर बैठ कर हवन करे। यूप नामिहा के समान है और नामिहा के दोनों ओर आँखें होती हैं।^{२३} सौत्रामणिक आत्मा है। सौत्रामणिक यूप के दोनों ओर दो यूप होते हैं, जैसे आत्मा के दोनों ओर बाहू होते हैं।^{२४}

८. यूप १७ कपड़ों से लपेटा हुआ होता है। सप्तदश प्रजापति हैं। इस प्रकार प्रजापति को जीत लेता है।^{२५} वाजपेय्याय का यूप १७ हाथ भर का होता है। सप्तदश प्रजापति हैं। इस प्रकार प्रजापति को जीत लेता है।^{२६} अश्वमेध्याय में मध्यम यूप पर १७ पशुओं का आलंभन करता है। सप्तदश प्रजापति हैं और अश्वमेध प्रजापति है। अतः अश्वमेध की प्राप्ति के लिए दो ऐसा करता है। सप्तदश सर्व है^{२७} और सर्व अश्वमेध है।^{२८} अतः सर्व की प्राप्ति के लिए १७ पशुओं का आलंभन करता है।

वेदभाष्य-पद्धति को दयानन्द सरस्वती की देन*

डा० सुवीर कुमार गुप्त, एम. ए., पी-एच. डी., शास्त्री,

प्रवाचक, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४

विषय प्रवेश

१. इस कृति का लक्ष्य दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य का आलोचनात्मक अध्ययन कर उस की विशेषता और आधुनिक अध्ययन में उपयोग का प्रतिपादन है।

२. दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेद के अधिकांश भाग (ऋ० ७।६।१।२ तक) और सम्पूर्ण माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेद पर भाष्य लिखे। इन से पूर्व कुछ विज्ञापनों में कुछ मन्त्रों और वैदिक आख्यानो के स्वरूप का व्याख्यान किया। ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में वेदविषयक समस्त सिद्धांतों का युक्ति और प्रमाण के साथ प्रतिपादन किया। आर्याभिविनय में कुछ ऋग्वेद के और कुछ यजुर्वेद के मन्त्रों का शब्दानुवाद और व्याख्या की। पंचमहायज्ञविधि में संध्या और हवन आदि पांच महायज्ञों में प्रयुक्त अधिकांश मन्त्रों का अर्थ आदि दिया। संस्कारविधि में कर्मकाण्ड विषयक कुछ मन्त्रों का जहां-तहां अर्थ किया है। अपनी अन्तिम कृति सत्यार्थ-प्रकाश के द्वितीय संस्करण में अनेकों विषयों और विभिन्न मतों, सम्प्रदायों और धर्मों की आलोचना के साथ-साथ ऋग्वेद के मन्त्रों और वैदिक सिद्धांतों का व्याख्यान भी किया है। इस शोध कृति में इन सभ क्षेत्रों को अध्ययन का आधार बनाया गया है।

मदत्त और आवश्यकता

४. अनेकों निष्पन्न विद्वानों ने भी दयानन्द सरस्वती के विचारों से अनुभूति ली है। कुछ ने उन के ऋण को स्वीकार भी किया है। योगी अरविन्द घोष ने दयानन्दभाष्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की और उसके एकेश्वरवाद को अपनी कृतियों में अपनाया। डा० वासुदेव शरण अप्रवाल ने उरुज्योति आदि में दयानन्दभाष्य की अध्यात्म शैली और ब्राह्मणों की परिभाषाओं का आश्रय लिया है। डा० फतह सिंह ने उस से अनुभूति लेकर अपनी दार्शनिक कृतियाँ—वैदिक दर्शन और वैदिक क्वेस्ट इन टू दी मिस्ट्रीज और वाक्, सामाजिक कृतियाँ—भारतीय समाज शास्त्र मूलाधार और कन्सेप्ट और यज्ञ इन वैदिक सोशोलोजी, शास्त्रीय कृति—दी वैदिक एटिमोलोजी और आलोचनात्मक कृतियाँ—कामायनी सौंदर्य और साहित्य और सौंदर्य का प्रणयन किया है। स्वामी भगवदाचार्य, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, दामोदर शर्मा झा, सम्पूर्णानन्द, टी० कपाली शास्त्री, मधुसूदन ओझा, मोतीचन्द, दादाचन, डा० रावर्ट अन्स्ट ह्यूम आदि बहुत से विद्वानों के भाष्यों और लेखों आदि पर दयानन्दीय विचारधारा का अनुकूल प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

५. उपर्युक्त दोनों प्रकार के विद्वानों की कृतियों के अध्ययन से एक आकुल जिज्ञासा उत्पन्न होती है—दयानन्द सरस्वती के भाष्य में वे कौन से गुण हैं जिन का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा है? क्या वस्तुतः आधुनिक वेदाध्ययन में उन की उपेक्षा की जा सकती है? इस जिज्ञासा की निवृत्ति ही इस कृति का एक मात्र लक्ष्य या उद्देश्य है।

६. इस अध्ययन का महत्त्व इस लिए भी विशेष है कि यद्यपि सायणाचार्य के उपरान्त भट्टोजिदीक्षित का सार और द्वा द्विवेद की नीतिमंजरी आदि लिखे गये, परन्तु दयानन्द सरस्वती ने ही सर्वप्रथम संस्कृत और हिन्दी में वेदभाष्य की इतनी विशाल योजना बनाई और उस के एक बड़े भाग को क्रियात्मक रूप दिया। इस योजना का प्रारूप चारों वेदों की संक्षिप्त विषयसूची में मिलता है, जो अभी अप्रकाशित है।

७. आधुनिक विद्वानों की वैज्ञानिक शैली बहुत प्रचलित हो रही है, परन्तु अभी तक इन आधुनिक विद्वानों में से किसी विद्वान् ने दयानन्दभाष्य की सर्वांगपूर्ण आलोचना नहीं की है। फिर भी इस भाष्य को अस्वीकार्य घोषित किया जाता है। जब तक दयानन्दभाष्य की समीक्षा कर के गुणदोषों का विवेचन न किया जाए तब तक दयानन्दभाष्य को एक दम अस्वीकार्य घोषित करना उचित नहीं जान पड़ता।

८. एक ओर तो आधुनिक विद्वान् बिना किसी सर्वांगपूर्ण आलोचना के इस भाष्य को अध्ययन के अयोग्य मानते हैं और दूसरी ओर, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, दयानन्दभाष्य का प्रभाव अनेक विद्वानों के वैदिक अनुसन्धानों को अनुप्राणित कर रहा है। अतएव यह

परम आवश्यक हो जाता है कि दयानन्दभाष्य की वैज्ञानिक ढंग से समीक्षा की जाए तथा आधुनिक अध्ययन के लिए उस की उपयोगिता और महत्ता को आंका जाए।

६. यही नहीं। आर्यसमाज के क्षेत्र में भी अभी तक दयानन्दभाष्य की कोई संतोषजनक विस्तृत आलोचना प्रकाशित नहीं हुई है। इस भाष्य की समीक्षा में अब तक एक ही छोटी सी कृति—'महापि दयानन्दजी कृत वेदभाष्यानुशीलन' देखने में आई है। इस में पं. शिवपूजन सिंह कुशवाहा ने मुख्यतः अन्यो की सम्मतियों का ही संग्रह किया है। इस में दयानन्दभाष्य की कुछ विशेषतायें तो बताई गई हैं, परन्तु उन के उदाहरण भाष्य से बहुत कम दिए हैं। इस में ऐतिहासिक अनुशीलन का अभाव है। अतः अनुसन्धान की दृष्टि से यह कृति कुछ सीमा तक ही उपयुक्त है तथा दयानन्दभाष्य की विशेषताओं को एक आधुनिक आलोचक को हृदयंगम कानने में बहुत सफल नहीं है। कुछ दो एक छोटे-बड़े निबन्ध भी इसी प्रकार की शैली में मिलते हैं।

१०. कुछ वर्ष पूर्व आनन्द इण्डिया ओरियण्टल कॉन्फ्रेंस के दरभंगा अधिवेशन में 'अपि दयानन्द एज ए वैदिक कमेंटेटर' नामक लेख पढ़ कर सर्वप्रथम लेखक ने ही इस दिशा में उत्सुकता प्रकट की। कुछ छोटे-बड़े लेख भी तदुपरान्त पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। परन्तु इस सूत्र को और किसी ने नहीं पकड़ा। परिणामतः एक ऐसी कृति की परम आवश्यकता थी जो दयानन्दीय वेदभाष्यवृत्ति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का भी अध्ययन करे और दयानन्दभाष्य की विशेषताओं का अध्ययन करने हुए उस की देन या उपयोगिता का निर्धारण करे। परन्तु कृति इस उद्देश्य को पूरा करती है।

इस कृति की मौलिकता और आधुनिक वेदाध्ययन को देन

(४) इस ग्रन्थ में सर्वप्रथम बतलाया गया है कि निघण्टु के जो विषय आधुनिक विद्वानों के लिए एक पहेली बने हुए हैं, वे भी दयानन्दभाष्य से भली प्रकार स्पष्ट हो जाते हैं। उदाहरण के लिये यहां पर निघण्टु के ऐकपदिक का उल्लेख किया जा सकता है।

(५) इसी ग्रन्थ में सर्वप्रथम वेदार्थ को समझने में छन्द और ऋषि की परम्परा से मानी गई उपयोगिता के यथार्थ रूप का प्रतिपादन किया गया है। यहां यह कहना असंगत न होगा कि दयानन्द सरस्वती के अतिरिक्त अन्य सभी भाष्यकार इस बात को मानते हुए भी इस का क्रियात्मक रूप प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे हैं।

(६) वेदार्थव्याख्यान में ऋषियों की उक्त उपयोगिता का मूल्यांकन करते हुए इस बात को बड़े आश्चर्य के साथ लक्षित किया गया है कि इस दयानन्दीय दृष्टिकोण से न केवल वेदार्थ समझने में ऋषियों का स्पष्ट उपयोग समझ में आ जाता है, अपितु उस के प्रकाश में सर्वात्मक क्रमणी के ऋषि सम्बन्धी वे सब कथन भी प्रामाणिक सिद्ध हो जाते हैं जिन को आधुनिक विद्वान् कल्पनाप्रसूत और अप्रामाणिक मानते हैं।

१२. इस प्रकार इस ग्रन्थ में सर्वप्रथम यह बतलाया गया है कि आधुनिक विद्वानों के लिये भी दयानन्दभाष्य अनेक रूपों में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। अतः दयानन्दभाष्य आधुनिक वैदिक गवेषणा के लिये उपेक्षणीय या तिरस्करणीय न हो कर पठनीय और मननीय होना चाहिए। यद्यपि उस में आधुनिक वेदव्याख्यानशैली के समान तुलानात्मक भाषाविज्ञान का पुट नहीं है और इस लिये सम्भवतः आधुनिक विद्वद्बर्ग के लिये उस में उतनी रोचकता न मिले, तथापि इस में सन्देह नहीं कि वेदभाष्य की प्राचीनतम परम्परा को समझने की दिशा में दयानन्द सरस्वती का बहुत बड़ा प्रयत्न है।

१३. उपर्युक्त मौलिकता और देन को भली प्रकार समझने के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ के विभिन्न भागों का सारांश देना उपयोगी होगा।

ग्रन्थ का सारांश

१४. यह कृति छः खण्डों में बांटी गई है। प्रथम खण्ड में उपोद्घात, सारांश और ग्रन्थ की विस्तृत रूपरेखा है। दूसरे खण्ड में पुस्तककालिका और संकेतविवरण दिए गए हैं।

१५. तीसरे खण्ड में पहले तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में दिखाया गया है कि वेदों में ऐसे बहुत से स्थल मिलते हैं जहां उन्होंने ने अपने विषय में विचार प्रकाशित किए हैं। इन्हीं भावों का विस्तार ब्राह्मणों, आरण्यकों और पिछले साहित्य में उपलब्ध वेद की महिमा में पाया जाता है। इस समस्त साहित्य की महिमा के अनुसार वेद सर्वहृत यज्ञ पुरुष से उत्पन्न, कल्याण-

कारी, ईश्वर के कथन, कर्म के स्रोत, वीर्य, तप, आयु और प्राण आदि को देने वाले, मृत्यु-तारक, विश्वरूप, देवों के निवास-स्थान में स्थित, आकाश में व्याप्त, वर्धनशील, परमात्मा के प्रकाशक, पापादि से छुड़ाने वाले हैं। वे समस्त ज्ञान के भण्डार हैं। वे अनन्त, हिंसारहित, प्रीतिजनक और सत्यस्वरूप हैं। उन का जगत् के समस्त यज्ञमय भाव, स्थिति और पदार्थों से तादात्म्य वर्णित किया गया है।

१६. दूसरे अध्याय में बताया गया है कि भारतीयों ने प्राचीन काल से ही वेद को अपने जीवन में प्रमुख स्थान दिया है और उस से अनुभूति ली है। इस कारण वेदमन्त्रों का संकलन आवश्यक हुआ। उस काल में अध्यापन की दृष्टि से आजकल के समान सम्पादकों ने अपनी रुचि के अनुकूल कहीं मूल रूप में, कहीं परिवर्तित रूप में और कहीं टिप्पणियों आदि सहित विभिन्न मन्त्रों के संकलन किए होंगे। ये शाखासंहिता कहलाए। इन में वेदार्थ का प्रारम्भिक रूप मिलता है। यह कुछ पदों के पर्याय रख देने, कुछ व्याकरण के प्रयोगों को बदल देने, वाक्यों को सरल करने और क्रम को परिवर्तित करने आदि तक ही सीमित रहा। कालान्तर में विस्तृत व्याख्या की आवश्यकता होने पर ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों, वेदांगों, पदपाठ, उपवेद, दर्शन, स्मृति आदि की रचना हुई। इन सब के विषयों आदि का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। तदुपरान्त संक्रमण काल का संक्षिप्त परिचय दे कर गुप्तकाल में पुनः वेद के पुनरुत्थान का विवेचन करते हुए माधवभट्ट, वैकट माधव, स्कन्द स्वामी आदि, सायण, भट्टोजिदीक्षित और याज्ञिकवेद पर्यन्त ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण, निघण्टु और निरुक्त आदि के समस्त वेद-भाष्यकारों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। अब आधुनिक काल का आगमन होना है। इस में ब्रिटिश राज्य की स्थापना से संस्कृत-अध्ययन के पुनरुत्थान, पश्चिमाटिक सोसाइटी और चंगल की स्थापना, पी. वी. गोविन्द और होलब्रुक आदि के कार्य का परिचय दिया गया है। गौतम के कानि-समी विचारों, वेद के विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन, पाठशालों की बहुविध देन और भारतीयों के कार्य का वर्णन किया गया है। दशानन्द मारवाड़ी और उन के अनुयायियों का कार्य यहाँ प्रस्तुत नहीं किया गया है।

और अर्वाचीन भाष्यों से उत्पन्न भ्रमों को दूर करने वाला, सुखप्रापक, मन्त्रों के पारमार्थिक और व्यावहारिक अर्थों का प्रकाशक है। यहां सब मन्त्रों में एक ईश्वर का प्रतिपादन किया गया है। ऐसी उद्घोषणा की दृष्टि में वेदों से पङ्कदर्शनों आदि तक दयानन्द सरस्वती को मान्य आधार ग्रन्थों की वेदभाष्यशैली की परीक्षा की परम आवश्यकता हो जाती है।

१८. यहां चौथा खण्ड प्रारम्भ होता है। इस में चौथे से उन्नीसवें तक कुल सोलह अध्याय हैं। इस में उपर्युक्त दयानन्दभाष्य के आधारग्रन्थों की वेदभाष्यशैली की परीक्षा की गई है।

१९. चौथे अध्याय में ऋग्वेद, माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेद, कौथुम शाखीय सामवेद और शौनकीय अथर्ववेद संहिताओं में प्राप्त वेदभाष्यपद्धति का प्रतिपादन किया गया है। इन संहिताओं में इस अध्ययन के लिए पुष्कल उपयोगी सामग्री मिलती है। यह अधिकतर पुनरुक्त अंशों में पाई जाती है। इस सामग्री का अध्ययन बताता है कि वैदिक काल में अर्थ और काम आदि की दृष्टि से एक-एक पद के कई-कई निर्वचन भी किए जाते थे। वहां वेदार्थ का मुख्य आधार निर्वचन थे। मन्त्रों में पदों का प्रयोग पारिभाषिक है। मन्त्रों में पुनरुक्तियां अनेकविध हैं और उन की योजना सविमर्श है। यहां उपसर्ग और निपात सार्थक और निर्वचनीय हैं। उन के विशेष अर्थ मिलते हैं। क्रियाओं में समस्त पुरुषों का पर्यवसान प्रथम पुरुष में और लकारों का लट या वर्तमान काल में अभीष्ट है। धातुएं अनेक नए अर्थों में प्रयुक्त हुई हैं। इन अर्थों को जानने के सिद्धांत भी ज्ञात हो जाते हैं।

२०. वैदिक पदों के प्रचलित या लुद्धि अर्थ वेद के भाव को जानने में सहायक नहीं हैं। वहां उन पदों के विशेष अर्थ अभीष्ट है। यहां सर्वनाम पद भी स्वतन्त्र हैं और संज्ञावत् निर्वचनीय और विभिन्न अर्थों के द्योतक हैं। निघण्टु के ऐकपदिक में संकलित सर्वनामों का भी यही उद्देश्य हो सकता है। पुनरुक्त अंशों में भाव की पुनरावृत्ति में शब्दों में उचित परिवर्तन से अर्थ का प्रकाशन किया गया है। 'इपः' आदि पदों के 'अयं लोकः' आदि अर्थ प्रकरण से ज्ञात होते हैं। प्रसिद्ध वस्तुस्थिति के विरुद्ध कथन कर के भी अर्थ का प्रकाश किया गया है। यहां पर विशेषणों के भी विशेष अर्थ हैं। अग्नि, अंगिरस् आदि पदों के प्रयोग भी विशेष अर्थों में किए गए हैं। पुनरुक्त अंशों में अनेकों पदों के प्रचलित और उन से मिलते-जुलते अर्थ तो मिलते ही हैं, साथ ही अनेक पदों के एकदम नए अर्थ भी पाए जाते हैं। वैदिक उपमाओं में पदों के प्रचलित अर्थ उपमाओं के भाव और सौंदर्य के प्रकाशन में समर्थ नहीं है। अतः यहां उन के विशेष अर्थ अभिप्रेत हैं।

२१. यहां पर ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम माने जाने वाले पदों पर भी अभूतपूर्व प्रकाश लता है। यहां पर इन पदों को ऐतिहासिक नाम मानने पर अनेकों विषमताएं और विरोध

उत्पन्न होते हैं और असम्भव स्थितियां बन जाती हैं। साथ ही अंगिरसों को विशेष गुणों से युक्त पुरुषों की संज्ञा माना गया है। पुरुवस्, आयु और उर्वशी एक ही वस्तु के कई नामों में से तीन नाम हैं। उशाना सामान्य विशेषण पद है। यज्ञ और वृहस्पति ऋषि के पर्याय हैं। कश्यप, ब्रह्मदग्धु, पक्थ, गोशर्य, ऋजिरवन् और दशत्रज का प्रयोग उन के व्यक्तिवाचक होने का निषेध करता है। पुनरुक्त अंशों में विभिन्न ऋषियों का तादात्म्य पाया जाता है। वे देवतावाचक भी हैं। यजुर्वेद में कुछ ऋषिनामों के पारिभाषिक अर्थ भी दिए गए हैं।

२२. यहाँ पर देवतावाचक पद देवताविशेषों के द्योतक नहीं हैं। मित्र और वरुण भाव-द्योतक पद हैं। चन्द्रमा एक ओपधि है। सोम, वामदेव और विश्वे देवाः आदि पारिभाषिक हैं। देव-पद गुणबोधक और विषयबोधक है। पुनरुक्त अंशों में देवतावाची पदों के सामान्य और अन्य देवताओं से तादात्म्य-प्रतिपादक अर्थ मिलते हैं। पर्जन्य, मित्र, वरुण, चन्द्र और सूर्य पर्याय हैं। देवता नाम गुणबोधक पद हैं। पुनरुक्त अंशों में देवों के कर्मों की समानता बताने वाले वाक्य पर्याय संख्या में मिलते हैं। समस्त देवों में एक ही सत्ता या शक्ति ओतप्रोत मानी गई है। गुणबोधक पदों में देवता पदों के पारिभाषिक और सामान्य अर्थों और देवताओं की एकता का निर्देश मिलता है। वेदमन्त्रों में देवतावाची पदों का प्रयोग विशेष गुण होने पर सत्तामात्र के लिए अभीष्ट है।

और अर्वाचीन भाष्यों से उत्पन्न भ्रमों को दूर करने वाला, सुखप्रापक, मन्त्रों के पारमार्थिक और व्यावहारिक अर्थों का प्रकाशक है। यहां सब मन्त्रों में एक ईश्वर का प्रतिपादन किया गया है। ऐसी उद्घोषणा की दृष्टि में वेदों से पङ्कदर्शनों आदि तक दयानन्द सरस्वती को मान्य आधार ग्रन्थों की वेदभाष्यशैली की परीक्षा की परम आवश्यकता हो जाती है।

१८. यहां चौथा खण्ड प्रारम्भ होता है। इस में चौथे से उन्नीसवें तक कुल सोलह अध्याय हैं। इस में उपर्युक्त दयानन्दभाष्य के आधारग्रन्थों की वेदभाष्यशैली की परीक्षा की गई है।

१९. चौथे अध्याय में ऋग्वेद, माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेद, कौथुम शास्त्रीय सामवेद और शौनकीय अथर्ववेद संहिताओं में प्राप्त वेदभाष्यपद्धति का प्रतिपादन किया गया है। इन संहिताओं में इस अध्ययन के लिए पुष्कल उपयोगी सामग्री मिलती है। यह अधिकतर पुनरुक्त अंशों में पाई जाती है। इस सामग्री का अध्ययन बताता है कि वैदिक काल में अर्थ और काम आदि की दृष्टि से एक-एक पद के कई-कई निर्वचन भी किए जाते थे। वहां वेदार्थ का मुख्य आधार निर्वचन थे। मन्त्रों में पदों का प्रयोग पारिभाषिक है। मन्त्रों में पुनरुक्तियां अनेकविध हैं और उन की योजना सविमर्श है। यहां उपसर्ग और निपात सार्थक और निर्वचनीय हैं। उन के विशेष अर्थ मिलते हैं। क्रियाओं में समस्त पुरुषों का पर्यवसान प्रथम पुरुष में और लकारों का लट या वर्तमान काल में अभीष्ट है। धातुएं अनेक नए अर्थों में प्रयुक्त हुई हैं। इन अर्थों को जानने के सिद्धांत भी ज्ञात हो जाते हैं।

२०. वैदिक पदों के प्रचलित या रुढ़ि अर्थ वेद के भाव को जानने में सहायक नहीं हैं। वहां उन पदों के विशेष अर्थ अभीष्ट है। यहां सर्वनाम पद भी स्वतन्त्र हैं और संज्ञावात् निर्वचनीय और विभिन्न अर्थों के द्योतक हैं। निघण्टु के ऐकपदिक में संकलित सर्वनामों का भी यही उद्देश्य हो सकता है। पुनरुक्त अंशों में भाव की पुनरावृत्ति में शब्दों में उचित परिवर्तन से अर्थ का प्रकाशन किया गया है। 'इषः' आदि पदों के 'अयं लोकः' आदि अर्थ प्रकरण से ज्ञात होते हैं। प्रसिद्ध वस्तुस्थिति के विरुद्ध कथन कर के भी अर्थ का प्रकाश किया गया है। यहां पर विशेषणों के भी विशेष अर्थ हैं। अग्नि, अंगिरस् आदि पदों के प्रयोग भी विशेष अर्थों में किए गए हैं। पुनरुक्त अंशों में अनेकों पदों के प्रचलित और उन से मिलते-जुलते अर्थ तो मिलते ही हैं, साथ ही अनेक पदों के एकदम नए अर्थ भी पाए जाते हैं। वैदिक उपमाओं में पदों के प्रचलित अर्थ उपमाओं के भाव और सौंदर्य के प्रकाशन में समर्थ नहीं है। अतः यहां उन के विशेष अर्थ अभिप्रेत हैं।

२१. यहां पर ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम माने जाने वाले पदों पर भी अभूतपूर्व प्रकाश मिलता है। यहां पर इन पदों को ऐतिहासिक नाम मानने पर अनेकों विषमताएं और विरोध

उत्पन्न होते हैं और असन्भव स्थितियां बन जाती हैं। साथ ही अंगिरसों को विशेष गुणों से युक्त पुरुषों की संज्ञा माना गया है। पुरुवस्, आयु और उर्वशी एक ही वस्तु के कई नामों में से तीन नाम हैं। उशाना सामान्य विशेषण पद है। यज्ञ और वृद्धस्वति ऋषि के पर्याय हैं। कश्यप, वसुदेव्यु, पश्य, गोशर्य, ऋजिस्वन् और दशत्रज का प्रयोग उन के व्यक्तिवाचक होने का निषेध करता है। पुनरुक्त अंशों में विभिन्न ऋषियों का तादात्म्य पाया जाता है। वे देवतावाचक भी हैं। यजुर्वेद में कुछ ऋषिनामों के पारिभाषिक अर्थ भी दिए गए हैं।

२२. यहाँ पर देवतावाचक पद देवताविशेषों के द्योतक नहीं हैं। मित्र और वरुण भाव-द्योतक पद हैं। चन्द्रमा एक ओषधि है। सोम, वामदेव और विश्वे देवाः आदि पारिभाषिक हैं। देव-पद गुणबोधक और विषयबोधक है। पुनरुक्त अंशों में देवतावाची पदों के सामान्य और अन्य देवताओं से तादात्म्य-प्रतिपादक अर्थ मिलते हैं। पर्जन्य, मित्र, वरुण, चन्द्र और सूर्य पर्याय हैं। देवता नाम गुणबोधक पद हैं। पुनरुक्त अंशों में देवों के कर्मों की समानता बताने वाले वाक्य पर्याय संख्या में मिलते हैं। समस्त देवों में एक ही सत्ता या शक्ति प्रोतप्रोत मानी गई है। गुणबोधक पदों में देवता पदों के पारिभाषिक और सामान्य अर्थों और देवताओं की एकता का निर्देश मिलता है। वेदमन्त्रों में देवतावाची पदों का प्रयोग विशेष गुण होने पर सत्तामात्र के लिए अभीष्ट है।

२६. छठे अध्याय में बताया गया है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में ही सर्वप्रथम वेद का सीधा और साक्षात् व्याख्यान मिलता है। इन में वेदार्थ की महान् सामग्री और लम्बी परम्परा पाई जाती हैं। इन के वेदार्थ का आधार निर्वचन हैं। इन निर्वचनों की समीचीनता के प्रतिपादक डा० फतह सिंह के मत को उद्धृत कर के उसे यथावत् स्वीकार किया गया है। इन निर्वचनों के आधार वैदिक निर्वचन हैं।

२७. आगे यह दिखाया गया है कि वेदसंहिताओं के समान ब्राह्मणों ने भी देव, देवता और देवतावाचक नामों को उसी प्रकार सामान्य और विशेष अर्थों में लिया है। यहां पर वेदमंत्रों के विषय, ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ, भाव और स्थिति आदि को देवता माना गया है। तैंतीस देवताओं की गुंथी भी खोली गई है। देवतानामों के अर्थ में जो-जो मूलधाराएं काम करती हैं, उन की भी उद्भावना की गई है। साथ ही ब्राह्मणों और संहिताओं के वेदविषयक विचारों में सामंजस्य भी दिखाया गया है। यहां यह भी दिखाया गया है कि ऋषियों और छन्दों के विषय में ब्राह्मणों में वे ही भाव पाए जाते हैं जो संहिताओं में मिलते हैं।

२८. ब्राह्मणों में वैदिक पदों—संज्ञा, सर्वनाम, निपात और उपसर्ग को यौगिक और योगरूढ़ि अर्थों में लिया गया है। इन अर्थों को जानने के लिए उन की दार्शनिक पृष्ठभूमि को जानने की आवश्यकता है। 'दधि' के प्रतीकत्व के विस्तृत विवेचन से इस भाव को हृदयंगम कराया गया है। यहां पर वैदिक पदों के अर्थों के विकास के कुछ नियम भी दर्शाए गए हैं।

२९. इसी अध्याय में यह भी दिखाया गया है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में भी यज्ञप्रक्रिया प्रतीकात्मक है। जो-जो मन्त्र यज्ञ में विनियुक्त हैं उन में यज्ञों के मूलाधारों या उद्देश्यों और लाभों का वर्णन मिलता है।

३०. ब्राह्मणों में विभिन्न प्रकार के आख्यानों के सूक्ष्म अर्थ ही अभिप्रेत हैं, उन के बाह्य या स्थूल अर्थ नहीं। इन में ऐतिहासिकता नहीं है। मन्त्रों में ऐतिहासिक नामों की मान्यता का विकास शनैः शनैः कालान्तर में हुआ है।

३१. सातवें अध्याय में दिखाया गया है कि आरण्यक पद का अर्थ ब्रह्मज्ञान का व्याख्यान-ग्रन्थ है। इन के कतिपय व्याख्यानों से ज्ञात होता है कि ये यह मान कर चलते हैं कि पाठक ब्राह्मणों के व्याख्यानों से परिचित हैं। यहां पर दृष्टिभेद से एक ही मन्त्र के कई-कई अर्थ दिए गए हैं। प्रकरण के अनुसार मन्त्रों के पाठक्रम में परिवर्तन किया जा सकता है। मन्त्रों के व्याख्यान उन की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर भी किए गए हैं। छन्दों से वेदार्थ का प्रकार और ऋषिनाम का निर्वचन कर के वेदार्थ दर्शाया गया है। यहां ऋषि, देवता और छन्दों आदि की स्थिति वेद और ब्राह्मणों के अनुसार है। यहां भी वेदार्थ का प्रमुख आधार निर्वचन हैं।

३६. बारहवें अध्याय के अनुसार ज्योतिष में देवताओं और प्रजापति के ज्योतिष रूप को चित्रित किया गया है ? यहां सृष्टिक्रम का वर्णन वेदानुसार है । वैदिक पदों, ऋषि और देवता नामों को ज्योतिष की परिभाषाएँ माना है । वि और प्र के भी विशेष अर्थ हैं । ज्योतिष में भी सर्वत्र एक सत्ता की व्यापकता मानी गयी है । इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र के मत में वेदमन्त्रों में अधिभूत, अधिदेव और अध्यात्म-सर्वत्र एक परमेश्वर का ही प्रतिपादन किया गया है ।

३७. तेरहवें अध्याय में निघण्टु की वेदभाष्य शैली का अध्ययन किया गया है । इस के अनुसार निघण्टु में पदों का संकलन अर्थ के अनुसार किया गया है । निघण्टु के पदों का वेद में विशेषणवत् प्रयोग मिलता है । यहां पर पदों के यौगिक और योगरूढ़ि अर्थों को प्रकाशित किया गया है । प्रसंगवश प्रतीकों की उत्पत्ति और उन के अर्थों के विकास के नियमों को दर्शाया गया है । निघण्टुसंकलन में भी ये नियम लागू होते हैं । अतः एक पद के अनेक अर्थ पाए जाते हैं, जिन्हें निर्वचन द्वारा जाना जा सकता है । निघण्टु के समस्यास्थलों—‘सर्वपदसामान्य’ आदि से भी ये ही निष्कर्ष निकलते हैं । निघण्टु में आख्यातों और निपातों के भी अनेकविध अर्थ माने गये हैं । निघण्टु के संकलन का आधार ब्राह्मण ग्रन्थ हैं ।

३८. चौदहवें अध्याय में दिखाया गया है कि यास्क ने अपने निरुक्त में जिन-जिन वेदार्थ-सम्प्रदायों के मतों का उल्लेख किया है, उन सब के मौलिक सिद्धांत एक समान हैं । सब ही निर्वचन के आधार पर अर्थ करते हैं । केवल विस्तार में कहीं-कहीं दृष्टि में भेद है । ऐतिहासिक या आख्यानसमय का उद्देश्य भी निर्वचन द्वारा वैदिक आख्यानों के भावों को व्यक्त करना है ।

३९. पंद्रहवें अध्याय में निरुक्त सम्प्रदाय की प्रमुखता और निरुक्त में वर्णित पदों, ऋषियों, देवताओं और छन्दों आदि के निर्वचन द्वारा अर्थ-प्रणाली, देवता-विचार, ऋचाओं के तीन प्रकार, तर्क से वेदार्थ और यज्ञ के अर्थों की व्यापकता आदि का सार दिया गया है । यास्क के मन्त्रों के व्याख्यानों के प्रकार से वहां पदों के यौगिक और योगरूढ़ि अर्थों की मान्यता और मन्त्रार्थ की त्रिविध अर्थ प्रणाली का वर्णन किया गया है ।

४०. सोलहवें अध्याय में प्रतिपादित किया गया है कि पाणिनि व्याकरण में भी नाम धातुज हैं । निपातन से सिद्ध पद भी आख्यातज ही अभीष्ट हैं । धातुपाठ में समस्त धातु और उन के समस्त अर्थ नहीं हैं । धातुओं के अर्थविकास के प्रकार का भी वर्णन किया गया है । उणादिपाठ में निर्वचन द्वारा वैदिक पदों का अर्थ किया गया है । यहां व्यक्तिवाचक पदों की भी व्युत्पत्ति दी गई है । यहां देवतापद पारिभाषिक हैं और ऋषि पद धातुज । आत्रेय और भरद्वाज

एक ही हैं। बृहस्पति आदि में दो उदात्त स्वर होने से वे व्यक्ति वाचक नहीं हैं। औशिज, औष्णिह और दैवत में अपत्यप्रत्यय नहीं है। सोम अग्नि आदि मन्त्रों में प्रतिपादित विषयों के नाम हैं। उपसर्गों की स्वतन्त्र सत्ता है। लकार सार्वकालिक हैं। व्याकरण में मन्त्रों के अनेकविध अर्थ अभिप्रेत हैं। व्यत्यय के बहुल से अर्थानुसार योजना सम्भव हो जाती है।

४१. सत्रहवें अध्याय में अनुक्रमणियों का स्वरूप बता कर माधव भट्ट द्वारा प्रदत्त वेदार्थ के नियमों का सार दिया गया है। यहाँ वैदिक नामों को पारिभाषिक और धातुज माना गया है। वेद में नामों और धातुओं के अर्थ पर्युदास हैं। आख्यात भी उपमान बन जाते हैं। ऋषि, देवता और अन्द से अर्थप्रतिपादन के सिद्धांत का विवेचन किया गया है। इस में सर्वानुक्रमणियों के ऋषि के लक्षण, वेदमन्त्रों से उन ऋषियों के सम्बन्ध और अविशेषित ऋषियों आदि समस्याओं पर विचार किया गया है। इस विवेचन में मन्त्रों के प्रयोगों से ऋषिनामों की कल्पना का प्रकार भी दिखाया गया है। ऋषि नाम सूक्त के भाव के श्रोतक हैं। अतः मन्त्रों में वर्णित विषय भी ऋषि कहे गए हैं। कई बार विशेषणों को ही ऋषि बना दिया गया है। ऋषि और अन्द पद समानार्थक हैं। प्रकरणानुसार ऋषियों में भी परिवर्तन हो जाता है। सर्वानुक्रमणियों में वर्णित विषयों—असुर, पश्चात्ताप, अग्नि के विभिन्न रूप, गुरुगुलु, भौतिक कामनाएं, दानभृतियां और व्यक्तिवाचक नाम आदि को भी देवता माना गया है। इस विवेचन में देवताओं सम्बन्धी अन्य लगभग सभी समस्याओं पर विचार किया गया है और अन्त में बताया गया है कि मन्त्रार्थ ही देवता है।

४४. इस समस्त विवेचन द्वारा यह दिखाया गया है कि वेदार्थपद्धति की एक परम्परा वेदसंहिताओं से प्रादुर्भूत हो कर स्मृतियों और दर्शनों तक अविच्छिन्न रूप में बह रही है। यहां किसी स्थल पर भी नवीन शैली का प्रतिपादन नहीं किया गया है। प्रत्येक आचार्य ने अपनी अपनी दृष्टि से उसी शैली का व्याख्यान प्रस्तुत किया है।

४५. पांचवें खण्ड में शेष समस्त—२० से ४०, अर्थात् २१ अध्याय हैं। इस में दयानन्द-भाष्य का मूल्यांकन किया गया है। बीसवें अध्याय में वेद की उत्पत्ति, रचना, काल, स्वरूप, ऋषि, देवता, छन्द, स्वर, ब्राह्मण, शाखा और वेदों के चार भाग आदि समस्त महत्त्वपूर्ण वैदिक विषयों पर दयानन्द सरस्वती के सिद्धांतों का सार दिया गया है।

४६. इक्कीसवें अध्याय में बताया गया है कि दयानन्दभाष्य के सिद्धांतों का आधार वेदादि कृतियों के पूर्व वर्णित वर्णन है। यहां पादटिप्पणियों में पहले अध्यायों के उन स्थलों का निर्देश किया गया है, जिन में दयानन्दभाष्य के सिद्धांतों के अनुरूप विषय प्रतिपादित किया जा चुका है। इस अध्याय में वेद के शब्दार्थ सम्बन्ध के नियत होने की भावना का मूल अर्थानुसारी पदच्छेद की वेदार्थप्रणाली को बताया गया है। वेद के रचनाकाल पर विभिन्न मतों का उल्लेख किया गया है। साथ ही मन्वन्तर गणनाक्रम का मूल वेदमंत्रों में दिखाया गया है, परंतु काल-निर्णय की चेष्टा नहीं की गई है क्योंकि वह इस कृति की परिधि से बाहर है।

४७. बाईसवें अध्याय में दयानन्दभाष्य की दृष्टि में वैदिक धर्म का मूल आधार एकेश्वरवाद बताया गया है। इस के विरोधी मतों की समीक्षा भी की गई है। मानव की ज्ञानप्राप्ति के प्रकार का वर्णन करते हुए मूल एकेश्वरवाद को ही धर्म का स्रोत या आधार माना गया है। इस अध्याय में तैंतीस, तीन और एक देवता के वादों का विवेचन कर के तीनों में एक-वाक्यता दर्शाई गई है। यहां यह भी बताया गया है कि दयानन्दभाष्य की देवताविषयक धारणाओं में अभिमानी देवताओं या पदार्थों की सजीवता के वाद आदि के लिए कोई स्थान नहीं है। वेदों में संकलित मन्त्र वैदिक काल में चटित ग्रहणों के अवसर पर असुरों से ग्रहणग्रस्त देवताओं के मोक्ष के लिए की गई प्रार्थनाएं हैं—डा० शाम शास्त्री के इस वाद के लिए भी दयानन्दभाष्य में कोई स्थान नहीं है। दयानन्दभाष्य में इन सब स्थलों पर आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक, धार्मिक और आचार सम्बन्धी विभिन्न विषयों का वर्णन पाया जाता है।

४८. तेईसवें अध्याय में दिखाया गया है कि दयानन्दभाष्य में ऐतिहासिक व्यक्तियों के नामों के सामान्य अर्थ किए गए हैं। दयानन्दभाष्य ने दानस्तुतियों में भी व्यक्ति-विशेष राजाओं का सम्बन्ध नहीं माना है। वे इन में सामान्य रूप से दान की महिमा का प्रतिपादन मानते हैं।

कात्यायनसर्वानुक्रमणी के दानस्तुतियों के वर्णन के विश्लेषण और यास्क की साक्षी से दयानन्द-भाष्य के सिद्धांत की समीचीनता प्रकाशित की गई है।

४६. चौबीसवें अध्याय में दिखाया गया है कि दयानन्द वैदिक आख्यानों को आलंकारिक मानते हैं और उन का व्याख्यान ब्राह्मणों आदि के अर्थों और निर्वचनों के आधार पर करते हैं। इस सम्बन्ध में उन के प्रजापति और उस की दुहिता, इन्द्र अद्वय्या और गौतम, इन्द्र और वृत्र, देवासुर संग्राम, कश्यप प्रजापति से सृष्टि की उत्पत्ति और गया तीर्थ के व्याख्यान दिखाए गए हैं। यहां यह भी दिखाया गया है कि दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य में आख्यानों की कोई सत्ता नहीं है। इस तथ्य को शुनःशेष के आख्यान तथा इन्द्र और दधीच की कथा के दयानन्दभाष्य के व्याख्यानों को दे कर हृदयंगम कराया गया है। अन्त में यह बताया गया है कि दयानन्दभाष्य की यह शैली पौराणिक आख्यानों के व्याख्यान की कुंजी है।

५०. यहां दयानन्द सरस्वती के वेद सम्बन्धी मूलभूत सिद्धांतों का वर्णन और विवेचन पूरा हो जाता है। अगले नौ अध्यायों—२५ से ३३ तक में दयानन्द सरस्वती की वेदभाष्यशैली का विवेचन किया गया है।

५१. इस विवेचन में पच्चीसवें अध्याय में दिखाया गया है कि दयानन्दभाष्य ने सर्वनामों निपातों, क्रियाप्रयोगों और संज्ञाओं के व्याख्यान में वेदों की शैली को अपनाया है। सर्वनामों का संज्ञापदों से व्याख्यान किया है। निपातों के भी विशेष अर्थ दिए हैं। लकारों के व्याख्यान वर्तमानकाल में किए हैं। कुछ स्थलों पर पुरुषों का प्रथम पुरुष में पर्यवसान भी किया है। धातुओं के नए अर्थ भी दिए हैं, परन्तु इन का सम्बन्ध उन के मूल अर्थ से अवश्य पाया जाता है। इन भाष्य ने वक्ष सम्बन्धी पदों को भी पारिभाषिक माना है। उन के अर्थ कर्नकाण्ड से भिन्न दिए हैं। प्रकरण, अध्याहार और अनुवृत्ति का भी प्रयोग किया है।

१४. अट्टाईसवें अध्याय में दिखाया गया है कि दयानन्दभाष्य ने शतपथ ब्राह्मण का प्रचुर प्रयोग किया है। इस ब्राह्मण की परिभाषाओं और मन्त्रों के व्याख्यानों के व्याख्यान भी किए हैं। दयानन्दभाष्य और शतपथ ब्राह्मण के व्याख्यानों में एकता का प्रतिपादन भी किया गया है।

१५. उनत्तीसवें अध्याय में दिखाया गया है कि अनेक स्थलों पर दयानन्द सरस्वती ने शाकल्य के पदपाठ में समुचित संशोधन किया है। इस संशोधन में दयानन्दभाष्य के मूलभूत सिद्धांतों की छाप लक्षित होती है।

१६. तीसवाँ अध्याय बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इस में दयानन्दभाष्य के इस मत की समीक्षा की गई है कि निघण्टु के ऐकपदिक में पठित समस्त शब्द 'पद' शब्द के पर्याय हैं और गति, प्राप्ति और ज्ञान अर्थों को प्रकाशित करते हैं। साथ ही अपने धातुज अर्थों को भी। इस का प्रतिफलन अन्य अर्थ-खण्डों पर भी हुआ है। वहाँ प्रत्येक पद के अपने धातुज अर्थ भी हैं और अर्थ-खण्ड के नाम के धातुज और रुढ़ि अर्थ भी। इस समीक्षा में निरुक्त के लेखों का विश्लेषण, निघण्टुपदों के निर्वचन और ब्राह्मणों के मत की परीक्षा की गई है। अध्याय के अन्तिम भाग में दयानन्दभाष्य के निघण्टु पदों के व्याख्यान को दिखा कर, दयानन्द सरस्वती के निघण्टु के संस्करण की कुछ विशेषताएँ दिखाई हैं। यहाँ यह भी दिखाया है कि दयानन्दभाष्य में कुछ ऐसे पदों को भी निघण्टु में पठित बताया गया है जो मुद्रित संस्करणों में उपलब्ध नहीं होते।

१७. इकत्तीसवें अध्याय में दयानन्दभाष्य में उपलब्ध निरुक्त के प्रयोगों और व्याख्यानों की समीक्षा की गई है। दयानन्दभाष्य ने निरुक्त को प्रमाण माना है। अतः उस के निर्वचनों आदि में वे सब गुणदोष मिलते हैं, जो निरुक्त के निर्वचनों में। दयानन्दभाष्य ने अनेक बार निरुक्त के अस्पष्ट व्याख्यानों को स्पष्ट किया है। अनेक बार अपने व्याख्यान की पुष्टि में निरुक्त के व्याख्यानों को उद्धृत किया है।

१८. बत्तीसवें अध्याय में दिखाया गया है कि दयानन्द सरस्वती को अनिवार्य रूप से अपने व्याख्यानों की व्याकरण की प्रक्रिया दर्शानी पड़ी है। परन्तु यह प्रक्रिया सायण की अपेक्षा बहुत संक्षिप्त है। स्वर का विवेचन तो विरला ही किया गया है। दयानन्दभाष्य में व्याकरण का प्रयोग बहुत संयत है। यहाँ व्यत्यय और छान्दस नियमों का अल्प प्रयोग किया गया है। धातुओं के बहुधा पठित अर्थ लिए गए हैं, अथवा उन से सम्बन्धित अर्थ। कल्पना को कहीं आश्रय नहीं दिया गया है।

१९. तैंतीसवें अध्याय में दिखाया गया है कि दयानन्द सरस्वती ने अनेकशः उपमा श्लेष और रूपक अलंकारों का प्रयोग मान कर वेदमन्त्रों का व्याख्यान किया है। यहाँ कुछ उदाहरण भी दिए गए हैं।

६०. चौतीसवें अध्याय में दयानन्द सरस्वती की वेदभाष्यशैली का क्रियात्मक रूप दिखाया गया है। इसमें कुछ ऐसे मन्त्रों के दयानन्दभाष्य (का हिन्दी रूपान्तर) दिया गया है जिन्हें प्रिफिथ आदि विद्वानों ने अश्लील, अस्पष्ट और अज्ञेय बताया है। दयानन्दभाष्य में इन मन्त्रों में न कोई अश्लीलता रह पाई है, न अज्ञेयता और अस्पष्टता। यहाँ विविध विषयों का उदात्त वर्णन पाया जाता है।

६१. अगले तीन अध्यायों—३५ से ३७ में वेदभाष्यकारों में दयानन्द सरस्वती का स्थान प्रतिपादित किया गया है। पैंतीसवें अध्याय में मध्यकालीन भाष्यकारों की शैलियों का वर्णन किया गया है और दिखाया गया है कि वहाँ प्राचीन वेदभाष्यपद्धति की निर्वचन-प्रधानता और लक्षक हृद्दिवाद में परिणत हो गई हैं। ऋषि और छन्द का वेदार्थ में क्रियात्मक प्रयोग नहीं रहा है। ऋषि व्यक्तिविशेष हो गए हैं और देवता शक्तिविशेष। आख्यान ऐतिहासिक और पौराणिक बन गए हैं।

६२. छत्तीसवें अध्याय में बताया गया है कि सामान्यतः पश्चिमी विद्वानों द्वारा प्रतिपादित वेदार्थशैली में मध्यकालीन शैली का ही प्रतिबिम्ब है। यहाँ पर कुछ नयी धारणाँ भी आई हैं। इनमें भारतीय परम्परा की उपेक्षा और तुलनात्मक अध्ययन और भाषाविज्ञान आदि के प्रयोग हैं। भाषाविज्ञान की अपनी सीमाएँ हैं। उस के प्रयोग काल में भाषाओं के संश्लेषण और विश्लेषण तत्त्वों की उपेक्षा कर देने से यह वेदार्थ में अनुपयुक्त हो जाता है। इस के प्रयोग से ही वैदिक पाठों में विकार की कल्पना का जन्म हुआ है। अवेस्ता और वेद में समता की उपेक्षा विषमता अधिक और महत्त्वपूर्ण है। अतः उसे पोषक प्रमाण तो माना जा सकता है, वेदार्थ में आधार नहीं। धर्मविज्ञान आदि का उद्देश्य वेदार्थ नहीं है। वे तो विभिन्न धर्मों में प्रकटा स्थापित करते हैं। अतः वेदार्थ में उन का प्रयोग सर्वत्र ही कर ही किया जा सकता है।

कार्य हैं। उस काल में वेदज्ञान हसित हो चुका था। अनेकों सम्प्रदाय जन्म ले चुके थे। ईसाई और मुसलमान अपना प्रचार कर रहे थे। राजनैतिक शासन अंग्रेजों के हाथ में था। समाज में अनेकों कुरीतियाँ थीं। दयानन्द सरस्वती ने कुरीतियों का उन्मूलन और विभिन्न सम्प्रदायों की कटु आलोचना की। स्वदेशी का सन्देश दिया। परिणामतः सब ही ने इन का विरोध किया और दयानन्द सरस्वती के प्रभाव से बचने के लिये दयानन्दीय विचारधारा की पूर्णतः उपेक्षा कर दी। दयानन्दभाष्य की बाह्य शैली की जटिलता, उस के बौद्धिक और आत्मिक स्तर तथा वेद-विषयक धारणाएँ और अध्येताओं का रूढ़िवाद भी इस भाष्य के मार्ग में बाधा रहे हैं।

६५. उन्तालीसवें अध्याय में दयानन्दभाष्य के व्यापक प्रभाव का चित्रण किया गया है। इस का सार पहले 'महत्त्व और आवश्यकता' के अन्तर्गत प्रथम पृष्ठ पर सन्दर्भ ३-४ में दिया जा चुका है।

६६. चालीसवें अध्याय में ग्रन्थ का उपसंहार है। इस में ऊपर के समस्त अध्ययन का सार है जिस में दयानन्दभाष्य की प्रमुख विशेषताओं और आधुनिक वेदाध्ययन में उपयोगिता का चित्रण किया गया है। इस के अनुसार दयानन्दभाष्य अपनी मान्यताओं के अनुरूप, नैरुक्त प्रक्रिया का अनुगामी, यज्ञ के विशेष भावों का प्रतिपादक, मंत्रगत भाव को स्पष्ट करने वाला, प्राचीन शैली और परम्परा का उद्धारक, वेदार्थ की लुप्त कड़ी का परिचायक, ऐकपदिक की समस्या को सुलझाने वाला, यास्क के भावों का व्याख्याता, ऋषि, छन्द और देवता के यथार्थ स्वरूप का निर्देशक, एकेश्वरवाद और त्रैतवाद का प्रतिपादक और आख्यानों के वास्तविक स्वरूप का प्रकाशक आदि विशेष गुणों वाला है।

६७. आधुनिक वेदाध्ययन को दयानन्दभाष्य की देन और उपयोगिता अनेकविध है। इस के अध्ययन से अनेकों आधुनिक वादों में परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव होगी। इस से भारतीय परम्परा के वेदार्थ में उपयोग, भाषाविज्ञान आदि के यथार्थ स्थान और सर्वानुक्रमणियों के ऋषिसंबन्धी लेखों की प्रामाणिकता और वेदार्थ में प्रयोग की रीति का ज्ञान होता है। देवता-विषय में अनुभूति और ब्राह्मणों की परिभाषाओं को समझने में सहायता मिलती है। ऐकपदिक के व्याख्यान में सौकर्य हो जाता है। वेदार्थ में अलंकारों के क्रियात्मक प्रयोग की रीति का पता चलता है। भाषाविज्ञान आदि के अध्ययन में नई दृष्टि और अवेस्ता के अध्ययन और व्याख्यान में अभूतपूर्व प्रकाश प्राप्त होते हैं।

६८. ग्रंथ यहां समाप्त हो जाता है।

भाषाविज्ञान के अनुसार मानव ने भाषा का क्रमपूर्वक शनैः शनैः अनुकरण आदि अनेकों उपायों की सहायता से विकास किया। प्रारम्भिक भाषा सम्भवतः एकाक्षरा थी। इस तथ्य ने जहाँ भारोपीय काल्पनिक भाषा का स्वतः ही निराकरण कर दिया, वहाँ वैदिक भाषा के एकाक्षरात्व को भी इंगित किया। वैदिक साहित्य ने वाणी को एकाक्षरा, अक्षरसम्मान, योग और व्यतिहार के उपायों से विद्वानों द्वारा विचारपूर्वक शोध कर बनाई हुई कह कर उपर्युक्त इंगित को मूर्त रूप दे दिया। ब्राह्मणों और यास्क ने पदों के विभिन्न अक्षरों को पृथक्-पृथक् पद मान कर व्याख्यान किए। उपनिषदों और पुराणों तक में यह परम्परा आई है। तन्त्रों में तो यह प्रचुरता से लक्षित होती है। अतः ऋग्वेद की भाषा का निर्माण या विकास एकाक्षरा वाणी से हुआ। उस का व्याख्यान समस्या बना होगा। इस लिए ऋषियों ने पदगत प्रत्येक अक्षर के भाव को दृष्टि में रख कर उस पद को इन सब अर्थों के प्रकाशक किसी धातु से सम्बद्ध या निरुक्त किया। कई बार एक धातु देना सम्भव नहीं होता, वहाँ एकाधिक, मिलते-जुलते धातु या समानार्थक धातु या संज्ञा आदि से व्याख्यान दिया जाता है। यही निर्वचन है। एकाक्षरा वाणी से विकसित और उस एकाक्षरात्व स्वभाव को अपने अन्दर धारण करने वाली भाषा के व्याख्यान का यह पद्धति ही एक मात्र उपाय था और है। विभिन्न भारोपीय भाषाओं की तुलना से वैदिक पदों का मूल अर्थ प्राप्त करना सम्भव नहीं। यह तुलना भ्रामक है।

७५. दयानन्द सरस्वती के युग में न भाषाविज्ञान बहुत विकसित हो पाया था, न दयानन्द का उस से कोई परिचय था। तथापि दयानन्द ने संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद् और सूत्र आदि के गहन अध्ययन से और निरुक्त की सहायता से वैदिक भाषा को यौगिक घोषित कर निर्वचन से वेदार्थ करने का सिद्धान्त प्रतिपादित किया और अपनी घोषणाओं के अनुरूप जगत् को एक श्रेय और प्रेय का समन्वय करने वाला लोकोपकारक भाष्य दिया।

स्मृतिकारों द्वारा स्वयंवर का उल्लेख न किए जाने के विभिन्न कारण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। संस्कृत साहित्य में स्वयंवर केवल क्षत्रिय राजाओं में ही पाया जाता है, सामान्य समाज में नहीं। द्रौपदीस्वयंवर में ब्राह्मणवेशधारी अर्जुन द्वारा लक्ष्यवेध और द्रौपदी द्वारा जयमाल डाल दिये जाने के पश्चात् क्षुब्ध राजाओं ने यही कहा कि स्वयंवर केवल क्षत्रियों का होता है, ब्राह्मणों को यह अधिकार नहीं है।^४ स्वयंवर के लिए एकत्रित हुए राजसी जमाव में ब्राह्मण केवल साक्षी के रूप में और दान लेने आया करते थे।^५ धृष्टद्युम्न ने द्रौपदी के स्वयंवर की उद्घोषणा करते हुए केवल राजाओं और राजकुमारों को ही सम्बोधित किया था।^६ सारे राजाओं और राजकुमारों के असफल हो जाने पर ही ब्राह्मण वेशधारी अर्जुन ने अपना पराक्रम दिखाने का साहस किया था।^७ अर्जुन के जीत जाने के बाद भी राजा एवं कुमारगण बिना युद्ध के पराजय मानने को तैयार नहीं थे।^८

स्वयंवर को प्राजापत्य विवाह का ही एक रूप भी माना जा सकता है, क्योंकि स्वयंवर में भी प्राजापत्य की ही भांति पुरुष ही अर्थात् वन कर आया करते थे। हो सकता है कि स्मृतिकारों ने इसी कारण स्वयंवर का अलग से उल्लेख न किया हो।

स्वयंवर के उल्लेख न किये जाने का एक कारण यह भी सम्भव है कि स्वयंवर तो वरचयन का एक ढंग मात्र था। आजकल जैसे समाचार पत्रों में विज्ञापन निकलते हैं, वैसे ही स्वयंवर में उपयुक्त वर का चयन मात्र किया जाता था, वास्तविक विवाह तो बाद में सम्पन्न होता था।

स्मृतिकारों द्वारा अवर्णित किन्तु लौकिक संस्कृत साहित्य में वर्णित स्वयंवर के सम्बन्ध में विवेचन यहां अप्रासंगिक न होगा। समस्त काव्यों के स्वयंवर उदाहरणों को देखने से ज्ञात होता है कि स्वयंवर प्रथा भी प्रारम्भ में काव्यों में भिन्न रूप में वर्णित है और धीरे-धीरे उसका स्वरूप परिवर्तित हो गया है।

रामायण और महाभारत में सीता और द्रौपदी के विवाहप्रसंगों को छोड़कर भी अनेकों स्वयंवर प्रसंग हैं। इन में कुछ प्रसंग ऐसे हैं, जहां अभिभावक या पिता ने स्वयं ही पुत्री को कहीं भी वरचयन करने की पूर्ण स्वतंत्रता दे दी थी। सावित्री और कैंकसी के नैपुण्य और गुणोत्कर्ष के कारण जब उन के पिता उपयुक्त वर को ढूँढने में असमर्थ रहे, तो उन्होंने अपनी कन्याओं को वरचयन की अनुमति दे दी। सावित्री के पिता ने सम्भावित सार्वजनिक कलंक से डर कर पुत्री

४. महाभारत १।१८०।६। न च विप्रेष्वधिकारो विद्यते वरणं प्रति ।

स्वयंवरः क्षत्रियाणामितीयं प्रथिता श्रुतिः ॥

५. महाभारत १।१७५।११-१५।

७. महाभारत १।१७६।१।

६. महाभारत १।१७६।३४-३६।

८. महाभारत १।१८०।१-१०।

स्वयंवर एवं द्रौपदी स्वयंवर में एक सूक्ष्म सा अन्तर दिखाई देता है। सीता के धनुर्बल में पृथिवी के सभी वर्णों और जातियों के मनुष्यों ने ही नहीं, वरन् नागों और राक्षसों तक ने आकर धनुष को चढ़ाने का प्रयत्न किया था। यदि उन में से कोई सफल हो जाता तो सीता उसी की भार्या बन जाती। किन्तु द्रौपदी के स्वयंवर में स्थिति थोड़ी भिन्न रही। द्रुपद के द्वारा रक्खी गई शर्त को पूरा करने के लिए जब कर्ण तत्पर हुआ तो द्रौपदी ने उच्च स्वर में कहा—“मैं सूत पुत्र का वरण नहीं करूंगी।^{१५}” इस से यह ध्वनित होता है कि यद्यपि पुत्री पर पिता का पूर्ण अधिकार था एवं स्वयं वरचयन कर लेना शिष्ट आर्य परिवार में सम्भवतः अनुचित माना जाता था, फिर भी कन्या अपनी अरुचि को प्रदर्शित कर ही सकती थी। इस प्रकार के स्वयंवर क्षत्रियों के ही वर्णित हुए हैं। इन में जीत की शर्त का आधार शौर्य और रणकौशल है। स्वयंवर के पश्चात् उपस्थित प्रार्थियों और विजेता में कई बार युद्ध भी दिखाया गया है, जिस में विजेता उसी प्रकार सफल निकलता है, जिस प्रकार याज्ञवल्क्य ने जनक की सभा में अपने आपको ब्रह्मिष्ठ प्रमाणित किया था। संभव है, शर्त रखते समय व्यक्तिविशेष को ध्यान में रखा जाता हो। कम से कम द्रौपदीस्वयंवर की शर्त के मूल में अर्जुन का अस्त्रकौशल प्रतिबिम्बित हो रहा है।

स्वयंवर विवाह के इस प्रकार में पिता अपनी पुत्री एवं वर को सामर्थ्यानुसार पर्याप्त यौतुक दिया करता था। राजा जनक ने सीता के विवाह पर प्रभूत कन्याधन दिया था।^{१६} द्रौपदी का विवाह हो जाने पर द्रुपद ने भी बहुत धन-सम्पत्ति अपनी कन्या एवं वर को दी थी।^{१७}

स्वयंवर प्रथा का दूसरा रूप वह है जो संस्कृत साहित्य के रघुवंश और नैपथ आदि काव्यों में प्राप्त होता है। पिता विवाह योग्य कन्या के लिए स्वयंवर सभा का आयोजन कर देता था और कन्या आगत व्यक्तियों में से प्रत्येक का कुल-शील वर्णन जानकर अपने उपयुक्त व्यक्ति को वरमात्ता पहना देती थी। कालिदास ने रघुवंश में इन्दुमती स्वयंवर का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।^{१८} इन्दुमती स्वयंवर के पश्चात् विदर्भराज ने अपनी छोटी बहन इन्दुमती और वर अज को सामर्थ्यानुसार धन दिया।^{१९} नैपथ में दमयंती ने यद्यपि स्वयंवर से पूर्व ही राजा नल को अपना वर मनोनीत कर लिया था, तथापि उस के लिए स्वयंवर का आयोजन किया गया। उस में भी दमयंती ने अपने प्रिय व्यक्ति को ही वर रूप में चुना।^{२०} विल्हण ने विक्रमांकदेवचरित के

१५. महाभारत १।१७।१७ के नीचे पादटिप्पणी में धन्य संस्करणों से उद्धृत—“दृष्ट्वा तु तं द्रौपदी वाक्यमुच्चैर्जगाद नाहं वरयामि सूतम् ॥”

१६. वा० रा० १।७।३-६।

१७. महाभारत १।१६०।१५-१८।

१८. रघुवंश ५।३६; ६४; ७६; ६।१०; ६७; ८०।

१९. रघुवंश ७।३२।

२०. नैपथ चरित, ६।३०; ६४; १५।२४।

नवें सर्ग में करहाट के शिलाहार राजा की पुत्री चन्द्रलोका (चन्द्रल देवी) के ऐतिहासिक स्वयंवर का चित्रण किया है, जिस में कन्या ने चालुक्य राजा विक्रमांक या आहवमल्ल को चुना।

साहित्य में प्राप्त स्वयंवरों के इन वर्णनों के अतिरिक्त स्मृतिकारों ने भी पिता या अभिभावक द्वारा बड़ी आयु तक विवाह न किए जाने की अवस्था में कन्या द्वारा स्वयंवरण का विधान किया है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के एक सूक्त में भी ऐसा वर्णन है कि रूपवती और अलंकृता बधू मनुष्यों के बीच स्वयं अपने मित्र को हूँद लेती है।^{२१}

धर्म सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने भी ऐसी कन्या को स्वयं ही पति वरण करने का आदेश दिया है जिस का विवाह बड़ी आयु तक पिता ने न किया हो। गौतम कहते हैं कि कुमारी कन्या तीन मासिक धर्मों को वित्ताने के पश्चात् स्वयं अपनी रुचि के अनिन्दित-चरित्र व्यक्ति से विवाह कर ले और पिता या परिवार से प्राप्त आभूषणों को त्याग दे।^{२२} वसिष्ठ ने व्यवस्था दी कि ऋतुमती हो जाने के पश्चात् कुमारी तीन वर्ष तक प्रतीक्षा कर के फिर स्वयं सर्वगण पति को ग्रहण कर ले।^{२३} महाभारत में बिल्कुल वसिष्ठ के समान ही व्यवस्था प्राप्त होती है।^{२४} बौधायन ने इस व्यवस्था में इतना संशोधन और कर दिया कि उपयुक्त वर प्राप्त न होने पर कन्या गुणहीन व्यक्ति को ही वर रूप में ग्रहण कर ले।^{२५} याज्ञवल्क्य और मनु ने निश्चित विधान किया कि यदि विवाह कराने वाला कोई नहीं है तो कन्या तीन वर्ष तक प्रतीक्षा कर के समान गुण वाले वर को स्वयं ग्रहण कर ले। न दी गई कन्या यदि स्वयं पति के पास जाती है (हूँदती है), तो वह कन्या और वर-दोनों ही पाप के भागी नहीं होते हैं।^{२६}

कन्या के द्वारा स्वयंवरण के इस विधान में पिता द्वारा यौतुक दिए जाने का कोई अवसर था ही नहीं, सूत्रकारों ने यह विधान किया कि स्वयं वरण करने वाली कन्या पिता के द्वारा दिए गए अलंकारों को त्याग दे। यदि ऐसी कन्या अपने साथ पिता, माता या भाई द्वारा दिए गये अलंकारों को या धन को ले जाती थी तो वह चौर कर्म की भागी होती थी।^{२७}

स्मृतिकारों द्वारा दी गई स्वयंवरण की इस व्यवस्था के विवेचन से ज्ञात होता है कि इस के नियामक दो तत्त्व थे—(१) पिता का कन्या पर से अधिकार हट जाता था, (२) कन्या को आभूषणादि त्याग कर ही जाना होता था। इस प्रकार पिता और कन्या—दोनों को ही जो यह दण्ड मिलता था, यह स्पष्टतया सूचित करता है कि इस प्रकार का स्वयंवरण लोकप्रिय नहीं था और स्मृतिकार ऐसे विवाह को प्रोत्साहन नहीं देना चाहते थे।^{२८}



२७. मनुस्मृति ६।६०-६१—त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती । ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद् विन्देत
संहसं पतिम् ॥ अदीयमाना नर्तारमविगच्छेद्यदि स्वयम् । नैनः किञ्चिदवाप्नोति न च यं साधिगच्छति ॥

२८. मनुस्मृति ६।६२—अलंकारं नादहीत पित्र्यं कन्या स्वयंवरा । मातृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्याद्
यदि तं हरेत् ॥

काठक संहिता में

राजसूय

श्रीमती कृष्णा बोस, शोध छात्रा, संस्कृत विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

राजसूय यज्ञ पूर्णतया सोमयज्ञ नहीं है। यह एक जटिल यज्ञ है। इस में बहुत सी पृथक् पृथक् इष्टियां सम्पादित होती हैं। यह यज्ञ केवल क्षत्रिय द्वारा ही सम्पादित होता है। राजसूय यज्ञ से सम्बन्धित मंत्र और विधित्राहाण्य पन्द्रहवें स्थानक के दस अनुवाकों में हैं।^१ यहाँ इस यज्ञ से सम्बन्धित केवल विधित्राहाण्य का ही वर्णन किया जायेगा। मंत्रभाग की क्रियाओं से सम्बन्धित त्राहाण्य के न होने से उन का उल्लेख मात्र किया जायेगा।

निर्ऋति तथा अनुमति के लिए इष्टि :—सोमयाग के बाद प्रथम दिन अनुमति के लिए पुरोडाश को पीसते समय जो अन्न पीछे गिर जाये उस से निर्ऋति के लिए हवि बनाते हैं। निर्ऋति के लिए एककपाल पुरोडाश तथा अनुमति के लिये अष्टकपाल पुरोडाश एक साथ पकाया जाता है। पहले निर्ऋति के लिए किसी वंजर भूमि पर अङ्गार रख कर विस्त्रंसिका के काण्डों से 'जुपाणा निर्ऋतिर्वेतु स्वाहा' से आहुति देता है। इस की दक्षिणा घेनु है। अनुमति के अष्टकपाल पुरोडाश की आहुति देता है। इस की दक्षिणा भिन्न किनारी वाला वस्त्र है। अनुमति के लिए पुरोडाश पीसते समय शम्या के उत्तर की ओर गिरे हुए धान्य को ले कर उत्तरी दिशा में बल्मीकवपा को खोद कर आहुति दे। उस छिद्र को पत्थर से ढक देता है।^२

पांच विशिष्ट हविर्याग :—अगले पांच दिनों तक निम्न आहुतियां देता है।

प्रथम दिन :—सुवद्वत् आदित्यों के लिए घी से बना हुआ चरु दे। दक्षिणा वर है।

द्वितीय दिन :—अग्नि-विष्णु के लिए एकादशकपाल की आहुति दे। दक्षिणा नाटा वैल है।

तृतीय दिन :—अग्नि-सोम के लिए एकादश कपाल पुरोडाश दे। दक्षिणा हिरण्य है।

चतुर्थ दिन :—इन्द्राग्नी के लिए एकादशकपाल पुरोडाश दे। दक्षिणा सेचनसमर्थ वैल है।

पंचम दिन :—अग्नि के लिए अष्टकपाल पुरोडाश दे। दक्षिणा रेशमी वस्त्र है।^३

आग्रयणोष्टि :—अगले दिन अर्थात् सातवें दिन आग्रयणोष्टि के लिए सोम के लिए श्यामाक चरु और इन्द्र और अग्नि के लिए द्वादशकपाल, विश्वदेव के लिए चरु, द्यावापृथिवी के लिए एककपाल पुरोडाश की आहुति दे । दक्षिणा बभ्रू तथा पिङ्गल वत्स और प्रथमज वत्स है ।^४

चातुर्मास्ययाग :—आठवें दिन चार मास पश्चात् किये जाने वाले चातुर्मास्य यज्ञों का प्रारम्भ होता है ।

इन्द्रतुरीयाग :—इस याग में अग्नि के लिये अष्टकपाल, वरुण के लिए यवमय दसकपाल चरु, रुद्र के लिए गावीधुक चरु तथा इन्द्र के लिए सान्नाय्य की आहुति दे । दक्षिणा नवप्रसूतिका गाय है ।^५

अपामार्ग होम :—स्थिर जलों में से अपामार्ग (पौधाविशेष) को ला कर उस का सक्त वना कर दक्षिण की ओर वंजर भूमि में एक-एक अङ्गार रख कर पलाश की स्रुव द्वारा अपामार्ग की समंत्र आहुति देता है । इस की दक्षिणा वर है ।^६

पञ्चेध्मीय होम :—मंत्रों^७ से आहुतियां दी जाती है । इस की दक्षिणा पांच अश्वों से युक्त रथ है ।^८

देविका हविर्याग :—अगले दिन अनुमति, राका, सिनीवाली तथा कुहू के लिए चरु की आहुतियां तथा धातू के द्वादशकपाल पुरोडाश की आहुति देता है । दक्षिणा अप्रसूत चार साल की गाय है ।^९

श्रिपंथुक हविर्याग :—तीन-तीन हवियों वाला यह यज्ञकर्म क्रमशः तीन दिनों में किया जाता है ।

प्रथम दिन :—अग्नि-विष्णु के लिए एकादशकपाल पुरोडाश, इन्द्रविष्णु के लिए चरु और विष्णु के लिए त्रिकपाल पुरोडाश दे । दक्षिणा वौना वैल है ।

द्वितीय दिन :—सोमपूपा के लिए एकादशकपाल पुरोडाश, इन्द्रपूपा के लिए चरु तथा पूपा के लिए चरु की आहुति दे । दक्षिणा श्याम वैल है ।

४. वही

६. का० सं० १५।२।२।

८. का० सं० १५।२।४।

५. का० सं० १५।२।२।

७. का० सं० १५।२।३-४

९. का० सं० १५।३।५

तृतीय दिन :—अग्नि-वैश्वानर के लिए द्वादशकपाल पुरोडाश तथा वरुण के लिए यवमय चरु दे । दक्षिणार्थे क्रमशः हिरण्य और वभ्रू अश्व हैं ।^{१०}

रत्नियों की हवियां :—अगले दिन से बारह दिन तक बारह रत्नियों अर्थात् सदस्यों के घर जा कर निम्न बारह हवियों की आहुतियां देता है ।

१. पुरोहित के घर :—बृहस्पति के लिए चरु दे । दक्षिणा शितिपृष्ठ वैल है ।

२. राजा के घर :—इन्द्र के लिए एकादशकपाल पुरोडाश दे । दक्षिणा ऋषभ है ।

३. महिषी के घर :—अदिति के लिए चरु दे । दक्षिणा घेनु है ।

४. परिवृत्ति के घर :—निर्ऋति के लिये नाखूनों से बितूपीकृत कृष्ण धान से निर्मित दक्षिणा श्येनी (सफेद) कूटा (सींग वाली) बण्डापस्फुरा गाय है ।

५. सेनानी के घर :—अग्नि के लिए अष्टकपाल पुरोडाश दे । दक्षिणा हिरण्य है ।

६. संगृहीता के घर :—अश्विनौ के लिए द्विकपाल पुरोडाश दे । दक्षिणा जुड़वां वैल है ।

७. अन्तःपुराध्यक्ष के घर :—सवितृ के लिए अष्टकपाल पुरोडाश दे । दक्षिणा सफेद वैल है ।

८. सूत के घर :—वरुण के लिए यवमय दशकपाल पुरोडाश दे । आठ दिन का भूरा वैल दक्षिणा है ।

९. वैश्यग्रामणी के घर :—मरुत् के लिए सप्तकपाल पुरोडाश दे । दक्षिणा चितकवरी वालगभिणी चार साल की गाय है ।

१०. करसंग्राहक के घर :—पूपादेवताक चरु दे । दक्षिणा श्याम वैल है ।

अज्ञावाप और आखेटक के घर :—ग्यारहवें और बारहवें दिन रुद्र के लिए गावीधुक चरु की आहुति दे । दक्षिणा म्यानयुक्त तलवार और छेद को ढकने वाला वाला का प्रतिप्रथित पवित्र कपड़े का टुकड़ा, दामभूषा वत्सतर या शवल (धन्वेदार) वैल है ।

रत्नियों की आहुति के बाद राजा अपने घर में सुत्रामन् तथा अंहोमुच् इन्द्र के लिए एकादशकपाल पुरोडाश की आहुतियां दे । दक्षिणा ऋषभ है ।^{११}

इस के उपरान्त दीक्षणीयेष्टि का अनुष्ठान होता है ।

मैत्रवारहस्पत्य चरु :—मित्र और वृहस्पति के लिए चरु बनाया जाता है ।

निर्माण विधि इस प्रकार है :—स्वयं टूटी हुई अश्वत्थ वृक्ष की शाखा से पात्र बना कर उस में श्वेतवत्सा श्वेतगाय का दूध दूह कर, उस दूध को स्वयं जमने, मथने तथा मन्थित मक्खन को स्वयं पिघलने दिया जाता है । आव्य में मित्र के लिए मोटे चावल और वृहस्पति के लिए दो टुकड़े हुए चावलों को पकाते हैं । इन आहुतियों के लिए वेदियां आधी बनाई जाती हैं, आधी स्वयं-कृत होती हैं । वहियां और इध्म आधे कटे हुए और आधे स्वयं कटे हुए होते हैं । मित्र और वृहस्पति के लिए चरु की आहुति देते हैं । इन की दक्षिणा क्रमशः अश्व और श्वेतपृष्ठ वैल हैं ।^{१२}

इस के उपरान्त दीक्षा वारह दिन तक होती है । सोमक्रयण सामान्य नियमों के अनुसार होता है ।^{१३}

देवसुव हवियां :—गृहपति अग्नि के लिए आशूधान्यों का अष्टकपाल प्रसवितृ सविता के लिए सतीन धान्यों का अष्टकपाल, वनस्पति सोम के लिए श्यामाक चरु, वाचस्पति वृहस्पति के लिए नैवार चरु, ज्येष्ठ इन्द्र के लिए वर्ष में बढ़ने वाले धान्यों का एकादशकपाल, सत्यपति मित्र के लिए आम्रों का चरु, धर्मपति वरुण के लिए यवमय दशकपाल, पशुपति रुद्र के लिये गावीधुक चरु—ये आहुतियां देवसुव की हैं । समंत्र इन देवताओं की प्रार्थना की जाती है ।^{१४}

अभिषेचनीय द्विवस

छठे अनुवाक में विविध प्रकार के जलों का ग्रहण, संस्कार, जलों को काष्ठ पात्रों में भरना, धिष्ण्याग्नि में स्थापन तथा आग्नीध्रीय अग्नि में आहुति और यजमान द्वारा पाठ किये जाने वाले मंत्र हैं ।^{१५}

सप्तम अनुवाक में यजमान द्वारा वस्त्र पहिनना, पगड़ी बांधना, नवनीत द्वारा अब्रजन लगाना, मंत्र का जप, धनुर्ग्रहण तथा मानसिक रूप से सभी दिशाओं में गमन सम्बन्धी मंत्र है ।^{१६}

अभिषेक :—सप्तम अनुवाक में ही अभिषेक सम्बन्धी मंत्र हैं जिन में यजमान द्वारा व्यात्र चर्म विछे चौकी पर आरोहण, सीसे और चांदी के टुकड़ों को क्रमशः नपुंसक और नाई को देने तथा पार्थनामक छः आहुतियों से विनियुक्त मंत्र और विषाणा से यजमान के अभिषेक सम्बन्धी मंत्र हैं ।^{१७}

१२. का० सं० १५।५।७।

१४. का० सं० १५।५।७।

१६. का० सं० १५।७।१४-१६।

१३. मा० औ० सू० २।१।२।१५-१६।

१५. का० सं० १५।६।८-१३

१७. का० सं० १५।७।१७-१८।

विजय अभियान :—अष्टम अनुवाक का उन्नीसवां मंत्र यजमान द्वारा रथारोहण, निर्धारित दूरी तक गमन, यजमान के हाथ में आमिन्ना देना तथा लौट कर यजमान का जूते उतार कर रथ से उतर जाने में विनियुक्त है।^{१८} शेष मंत्र यजमान द्वारा जप, आह्वनीय के उत्तर की ओर आसन्दी रखने; उस पर आरूढ़ होने तथा रथविमोचनीय आहुति देने और 'सारथि'सहित रथ को रथवाह में रखने से सम्बन्धित हैं।^{१९} राजसभा और द्यूत क्रीडा से सम्बन्धित मंत्र उपलब्ध हैं।^{२०}

आभिषेकोत्तरकर्म

संसृप हवियां :—दस देवताओं के लिए दस हवियां ये हैं—सवितृ के लिए अष्टकपाल, सरस्वती के लिए चरु, पूषन् के लिए चरु, बृहस्पति के लिए चरु, इन्द्र के लिए एकादशकपाल, वरुण के लिए यवमय दसकपाल, त्वष्टृ के लिए अष्टकपाल, अग्नि के लिए अष्टकपाल, सोम के लिए चरु, तथा विष्णु के लिए त्रिकपाल पुरोडाश। इन आहुतियों की दक्षिणार्थ क्रमशः श्येत वैल, अप्रसूत चार वर्ष की गाय, श्याम वैल, शित्तिष्ठ वैल, ऋषभ, बभ्रु महानिरष्ट, शुण्ठ (सफेद अथवा नाटे कद का वैल) हैं।^{२१}

दशपेय याग

दिशा सम्बन्धी हवि पंचक :—विभिन्न दिशाओं में अग्नि के लिए अष्टकपाल, इन्द्र के लिए एकादशकपाल, विश्वेदेव के लिये चरु, मित्र-वरुण के लिए आमिन्ना तथा बृहस्पति के लिए चरु दे। इन की दक्षिणार्थ क्रमशः हिरण्य, ऋषभ, पिशङ्गी लाल मिश्रित भूरा) धेनु, वशा (विनम्र गाय) और शित्तिष्ठ वैल हैं।^{२२}

प्रयुज हविर्याग :—इस भाग में छः छः हवियों के दो वर्ग हैं। प्रथम वर्ग में आग्नेय कष्टकपाल, सौम्य चरु, सावित्र अष्टकपाल, बार्हस्पत्य चरु, अग्नि-वैश्वानर के लिये द्वादशकपाल, त्वष्टृ के लिये अष्टकपाल हैं। दक्षिणा दक्षिण की ओर जोता हुआ रथवाहनवाह है। द्वितीय वर्ग में सरस्वती, पूषन्, मित्र, वरुण, अदिति और क्षेत्रपति के लिये विभिन्न चरुओं की आहुतियां दी जाती हैं। दक्षिणा बांया रथवाहनवाह है।^{२३}

पशुवन्धयाग :—इस के उपरान्त सामान्य नियमों से पशुयज्ञ होते हैं।

सत्यदूत हविर्याग :—सवितृ के लिये द्वादशकपाल, अश्विनौ और पूषन् के लिये एकादशकपाल और सत्यवाक् सरस्वती के लिये चरु की हवियां दी जाती हैं। दक्षिणा दण्ड, जूते

१८. का० सं० १५।५।१६।

२०. का० सं० १५।५।२६-२६

२२. का० सं० १५।६।३०-३१

१६. का० सं० १५।५।२५।

२१. का० सं० १५।६।३०।

२३. वही

की जोड़ी और पानी में न भीगने वाला थैला है। इन आहुतियों के वाद दूतों को अन्य राजाओं के पास भेजा जाता है।^{२४} इस तरह राजसूय की विधि समाप्त होती है।

राजसूययज्ञ में त्रिवृत् बहिष्पवमान, पञ्चदश याज्य, पञ्चदश माध्यन्दिन पवमान, सप्तदश पृष्ठ, सप्तदश आर्भव पवमान, इक्कीस अग्निष्टोम, चौतीस अभिपेचनीय के पवमान, पञ्चदश याज्य, सप्तदश पृष्ठ, इक्कीस अग्निष्टोम और उक्थ, सप्तदश दशपेय, इक्कीस केशवपनीय के बहिष्पवमान, सप्तदश याज्य, सप्तदश माध्यन्दिन पवमान, पञ्चदश पृष्ठ, पंचदश आर्भव पवमान, त्रिवृत् अग्निष्टोम और उक्थ, एकविंश पोडशी होते हैं। जितनी संवत्सर की अहोरात्रियां होती हैं उतने ही स्तोत्र होते हैं।^{२५}



गृह

मोनियर विलियम्स ने गृह का भी प्रारम्भिक अर्थ अनुदास और सेवक^८ बताया है।^९ फिर इस का अर्थ क्रमशः घर, घर के लोग और पत्नी में विकसित हो गया। यास्क मुनि^{१०} का निर्वचन है गृह्णन्तीति सताम् अर्थात् जो वस्तुओं को पकड़ता या प्राप्त करता है। यही मत कोशकारों^{११} का है, अतः 'घर' और 'कलत्र' दो अर्थ किए गए हैं। इसी लिए कोशकारों ने 'गृहस्थ' का अर्थ गृहे (गृहेषु) दारेषु तिष्ठति अभिरमते है, अर्थात् जो गृह में रहता है और स्त्रियों में अभिरमण करता है।^{१२} परन्तु गृह शब्द प्राचीन है, क्योंकि इस से मिलते जुलते शब्द भारोपीय भाषा में मिलते हैं। ghrīdh=to plait और garōda=a cave, a residence of Daevas.^{१३}

गृहपति

गृहस्वामी के लिए वैदिक साहित्य में गृहपति^{१४} और गृहप^{१५} शब्द प्रयुक्त हुए हैं। पाणिनि काल^{१६} में भी ये शब्द प्रचलित थे। पुराणों में उस के पञ्चमहायज्ञ,^{१७} यज्ञादि, व्रत, अग्निहोत्र, श्राद्ध आदि^{१८} कर्तव्यों का चित्रण किया गया है। आर्यों का मुख्य देवता अग्नि है जिस का सर्वाधिक वर्णन वेदों में हुआ है। उसे भी गृहपति^{१९} और विश्वपति^{२०} कहा गया है। अतः आगे चल कर समृद्ध वैश्य को भी गृहपति कहा जाने लगा। कभी-कभी यह कुलपति के लिए भी प्रयुक्त होता था।^{२१}

अन्वय-अन्ववाय

प्रत्येक परिवार में एक कुलविशेष की सत्ता होती है। कुल के लिए अन्वय (अन्ववाय) वंश और कुल शब्द प्रयोग में आते हैं। 'परस्परनिरपेक्षायामेकस्मिन्नन्वयः'^{२२} अर्थात् परस्पर निरपेक्ष पदों का सम्बन्ध अन्वय है और पदानां परस्पराकांक्षा योग्यता च^{२३} के आधार पर अन्वय (अनु+) इ (इण्)+अच् का मूलार्थ है 'क्रम' सङ्गति (Prose order)। इस प्रकार श्लोकार्थ या

८. (क) तुलनीय ऋ० १०।११।१३॥

९. ऐ० ब्रा० ने द्वार युक्त होने से गृहों को दुर्गा, स्थिति हेतु होने से प्रतिष्ठा, निरन्तर वस्तुओं का संग्रहस्थल होने से थोक कहा है।

१०. नि० ३।१३॥

११. गृह्णातीति—अमर-मुद्रा २।२।४; गृह्णातीति वान्यादिकं जीवनार्थं यस्मिन्निति—शब्दक०॥

१२. तु० न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते। १३. इटी० या० डा० सि० वर्मा पृ० ७६॥

१४. ऋ० ६।५।३।२; अथर्व १।४।१।५।१॥ श० ४.६।५।५ आदि।

१५. वा० सं० ३०।११॥ १६. पा. अष्टा. ४।४।६०॥ १७. मा० पु० ७।१४; म० पु० ४०।१, २॥

१८. म० पु० ५२ अ०॥ १९. ऋ० १।१।२।६; ३।६।५; ६०।४; वा० सं० २।२७॥

२०. ऋ० १०।४।४॥

२१. शौनको गृहपतिर्वै नैमिषीर्यस्तु दीक्षितः। दीक्षासु चोदितः प्राह सत्रे

तु द्वादशाह्निके ॥

२२. सिद्धांत कौमुदी २३. शब्द क०

वाक्यार्थ के इस सादृश्य पर इस का अर्थविकास 'कुल' हुआ प्रतीत होता है। अन्वयाय [अनु+अव+अय+घञ् (अच्)] का लगभग यही अर्थ है। यद्यपि बाद में इस का विग्रह यह भी किया गया—'अन्वेति जन्म प्राप्नोति जनपरम्परया ऽस्मिन्' अर्थात् जिस में लोग जन्म ग्रहण करते हैं।

वंश

वंश का अर्थविकास 'कुल' भी बांस की गांठों के अविच्छिन्न क्रम से हुआ। महर्षि यास्क^{२४} ने 'वन+√शी' और 'वन+√श्रु' से निष्पन्न कर यह मन्तव्य प्रकट किया है कि यह वन में होता है और इस में से शब्द सुनाई पड़ता है परन्तु इस से 'कुल' अर्थ पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। अमर-कोश सुधाव्याख्या और शब्दकल्पद्रुम में √वश कान्तौ, √वन सम्भक्तौ, √दुवम उद्गिरणे और √वन शब्दे आदि धातुओं^{२५} से इसे निष्पन्न किया गया है जो यह स्पष्ट करता है कि उस समय तक इस का 'कुल' अर्थ विकसित हो चुका था।^{२६}

कुल

वंशवाची कुल शब्द का प्रचलन वैदिक साहित्य में ब्राह्मण ग्रन्थों से पूर्व नहीं मिलता। पहले यह गृहवाची रहा होगा और फिर गोत्र या परिवार का भी अर्थ देने लगा। कोशकारों और वैयाकरणों ने √कुल संस्थाने (संस्थाने) बन्धुषु च (to accumulate, to be a kin) और √कुङ् शब्दे से निष्पन्न किया है। प्रथम से सम्मिलित परिवार प्रथा का और द्वितीय से 'जहां बरतन होते हैं, खनकते ही हैं' के अनुसार परिवार में कलह का संकेत मिलता है, परन्तु उन से संगीतात्मक ध्वनि भी निकल सकती है जो परस्पर सौमनस्य से ही सम्भव है।^{२७} जिस के लिए वेद का ऋषि कहता है—“संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्”^{२८} कुल का विग्रह 'कु' भूमि लाति' अर्थात् जो पृथ्वी पर स्थित है और 'कौ लायते' अर्थात् जो अन्त में पृथ्वी में विलीन हो जाता है—भी किया गया है। तन्त्रशास्त्र में यह शरीर और आचारवाची भी है। वहां शिव और शक्ति दोनों को 'कुल' कहकर नव विशिष्ट कुलों का वर्णन है। देवी का नाम कुलाङ्गना और कुलेश्वरी भी है।^{२९}

२४. नि० ५।४।६॥

२५. क्रमशः इन के अर्थ हैं—√वश—to desire √वन to honour, to help √दुवम to vomit √वन to sound. सभी से किसी न किसी प्रकार कुल अर्थ लाया जा सकता है जैसे वमति उद्गिरति पुरुषान् आदि।

२६. मोनियर विलिवम्स ने Derivation doubtful कहकर छोड़ दिया है।

२७. यही अर्थ वन शब्दे से निर्मित वंश का भी किया जा सकता है।

२८. ऋ० १०।१९।२॥

२९. ललितासहस्रनाम १।६१-६६॥

कुलपति

कुल के स्वामी के लिए कुलपा,^{३०} कुलवृद्ध,^{३१} वृद्ध^{३२} और कुलपति उत्तरोत्तर संज्ञाएं पड़ती गईं। 'कुलानि पाति' या 'कुलस्य पतिः' अर्थात् जो कुलों की रक्षा करता है या जो कुल का स्वामी है—विग्रह के कारण कुलपति का अर्थविकास भावसादृश्य वशा शैक्षणिक संस्थान, गुरुकुल या छात्रवर्ग के पालक के रूप में हुआ—

मुनीनां दशसाहस्रं यो ऽन्नदानादिपोषणात् ।

अध्यापयति विप्रपिरसौ कुलपतिः स्मृतः ॥^{३३}

अर्थात् भोजन तथा पालनपोषण की व्यवस्था करते हुए दस हजार ब्रह्मचारियों को पढ़ाने वाला कुलपति कहलाता है। इस परिभाषा से मिलता जुलता शब्द अंग्रेजी में 'डीन' (Dean) है जो विश्वविद्यालय के विभिन्न सङ्काओं में अध्यक्ष होता है। यह लैटिन शब्द 'दशन्' (decan) या 'डेसेनस' (decanus) अर्थात् दश डिवीजन का सेनापति या दश पादरियों के ऊपर मुख्य पादरी) से बना है। अब इस में से दश का भाव लुप्त हो गया है और अधीनस्थ विभागों की संख्या कुछ भी हो सकती है। इसी प्रकार कुलपति में 'दश-सहस्र' का भाव लुप्त हो गया है और अब विश्व-विद्यालय के सर्वोच्च अधिकारी को कुलपति कहा जाता है। रामायण^{३४} में इस का आर्थी निर्वचन 'कुलानि पातयति' किया गया है और एक लघुकथा के द्वारा यह बताया है कि कुलपति (मठाधीश) जैसे उच्च एवं समर्थ पदों पर धनापहरण उत्कोच, धन का दुरुपयोग और परपीडन आदि से व्यक्ति बच नहीं पाता है अतः उसे सचेत हो कर समाजहित में ध्यान रखना चाहिए। इस अंश को भले ही प्रक्षिप्त मान लिया जाय परन्तु इस से आर्थी निर्वचन पर प्रकाश पड़ता है जैसे कुत्सित या अप्रिय बोलने पर कुलपति का विग्रह 'कुत्सिता लपतिः यस्य' कर दिया जाए। आजकल कुलपति राज्यपाल (गवर्नर) होता है जो नाम मात्र का है क्यों कि उस का छात्रों के शरीर व मन से कोई सम्बन्ध नहीं होता। प्रबन्धकार्य उपकुलपति करता है पर व्यवहारतः छात्रों के मन व शरीर से उस का भी कोई सम्बन्ध नहीं है।

३०. ऋ० १०।१७६।१॥ श०ब्रा० १।२।२२॥ वृह०उप० १।५।३२॥

३१. महा० शांति० १०८।२७॥

३२. पा० अष्टा० १।२।६५॥

३३. शब्द क० से उद्धृत

३४. वा० रा० उत्तर २।४५॥

वैज्ञानिक परिदृष्टि और 'जीवन' की धारणा

डा० वीरेंद्र सिंह, व्याख्याता, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४

१. वैज्ञानिक-चिंतन का एक विशिष्ट आयाम विकासवादी (इवोल्यूशन) अन्तर्दृष्टि है जिस ने मानवीय मूल्यों तथा 'जीवन' की धारणा को समझने का प्रयत्न किया है और जो 'जीवन' के रहस्य तथा उस की समस्या को एक तार्किक-परिदृष्टि प्रदान करता है ।

२. जब भी जीवन के उद्भव तथा उस के संगठन का प्रश्न आता है तब वैज्ञानिक-चिंतन में जैविक-अंगीय धारणा (कौन्सेप्ट ऑफ औरगेनिज्म) का एक विशिष्ट योगदान माना गया है । यह धारणा, जीवशास्त्रीय दृष्टि से एक तार्किक नियम का रूप भी है । विकासवाद के अन्तर्गत प्राण-शक्ति का एक विकसित रूप हमें एककोपीय प्राणी से अनेककोपीय प्राणियों तक प्राप्त होता है । एककोपीय प्राणी (यूनीसेलुलर) 'अमीबा' में जीवन का संगठन अपने आदिम रूप में प्राप्त होता है और यह संगठन उतना ही जटिल होता जाता है जैसे-जैसे अनेककोपीय (मल्टीसेलुलर) प्राणियों का विकास होता जाता है । यह विकास की अनेककोपीय परिणति केवल जीवधारियों की विशेषता नहीं है, पर जल में तथा धरती पर प्राप्त वनस्पतियों में यह परिणति दर्शनीय है । इसी तथ्य पर जैविक-अंगीय सिद्धांत आधारित है कि भौतिक-मानव का विकास 'जैविक-अंगों' का क्रमागत विकास है जो मूलतः अपने आदिम रूप में आदिम-जीवन-प्रकार से सम्बन्धित है ।^१ भ्रूण (एम्ब्रियो) का शुरु से अंत तक का विकास, इन सभी जीवन-प्रकारों से हो कर गुजरता है जो उस के विकास-इतिहास में पूर्व घटित हो चुके हैं । यही कारण है कि शिशु जन्म की नौ महीने की अवधि उन सभी पूर्व स्थितियों की 'स्मृति' है जिस से उस का विकास क्रम घटित हो चुका है । 'अमीबा' से लेकर मानव तक की विकास-यात्रा, जैविक-अंगीय-धारणा के अनुसार, एक क्रमिक विकास यात्रा है—बहु अनायास कोई घटित होने वाली घटना नहीं है । अतः जीवन की गति एक प्रक्रिया (प्रोसेस) है और यह प्रक्रिया 'संगठन' पर आधारित है । यहाँ 'जीवन' का ऐतिहासिक पन्ना उभरता है और इसी तथ्य पर जीवशास्त्रीय-विचारकों ने 'जैविक-अंग' (औरगेनिज्म) को 'ऐतिहासिक-व्यक्ति' के रूप में स्वीकार किया है ।^२

३. जीवन के स्वरूप को समझने के लिए वैज्ञानिक शब्दावली में 'संगठन (औरगेनाइजेशन) शब्द के अर्थ को समझना आवश्यक है । इस शब्द के स्वरूप का अर्थ अनेक तत्त्वों की

१. ह्यूमन डेस्टनी, लीकॉम्बट यूनिवर्सिटी, पृ० ५५

२. प्रोब्लैम्स ऑफ लाइफ, लुडविग वान बर्टालेमी, पृ० १०८

जटिलता का अन्योन्य क्रिया-प्रतिक्रियात्मक रूप है। ये सभी 'तत्त्व' सापेक्ष अवस्था में, एक 'जैविक-अंग' की धारणा एवं संरचना में सहायक होते हैं। जिस प्रकार परमाणुओं के संगठन से 'अणु' की संगठना होती है, उसी प्रकार अनेक तत्त्वों के पारस्परिक सम्बन्ध से 'अंग' की संगठना होती है। अतः इन तत्त्वों तथा प्रक्रियाओं के परिवर्तन से 'सम्पूर्ण' में परिवर्तन होता है और जब इन तत्त्वों तथा प्रक्रियाओं का विलयन हो जाता है, तब वह संगठन भी नष्ट हो जाता है। इस नियम का जीवन की व्यवस्था तथा संगठन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऐसे अनेक नियम हैं, पर उन में एक महत्त्वपूर्ण नियम कोपीय विभाजन का अनुक्रम है। यह चतुरायामिक कोषों का विभाजन एक कोष और उस से उत्पन्न कोषों का एक संगठित रूप है। दूसरा महत्त्वपूर्ण नियम पैतृक-संस्कारों के वाहक तत्त्व 'जीन' का अनुक्रमिक रूप है जिस के द्वारा संगठन का आंतरिक पक्ष पुष्ट होता है। आंतरिक पक्ष से मेरा तात्पर्य उन गुणों से है जो संस्कार के रूप में किसी जीवधारी के शिशु को प्राप्त होते हैं। मेंडिल का यह जीन सिद्धांत संगठन के एक विशेष पक्ष का उद्घाटन करता है जो जीवधारियों के मानसिक एवं बौद्धिक विकास का मूलतत्त्व है। मेंडिल ने लिखा है कि विज्ञान केवल तथ्यों का आकलन एवं संगठन नहीं है; तथ्य उसी समय ज्ञान का रूप धारण करते हैं जब वे धारणात्मक-पद्धति के अन्तर्गत आते हैं।^३ मेंडिल ने जीन-सिद्धांत के अन्तर्गत तथ्यों का यही धारणात्मक रूप रखा है। इस से यह भी स्पष्ट होता है कि विज्ञान केवल तथ्य-परक प्रक्रिया नहीं है, पर वह धारणात्मक-चिंतन का भी क्षेत्र है। विज्ञान का यह पक्ष मानवीय ज्ञान का वह रूप है जो विश्व, प्रकृति और मानव के रहस्यों तथा सत्यों को उद्घाटित करता है। यही विज्ञान का ज्ञान-मूल्य है।^४

४. तीसरा नियम शारीरिक आकृति और शरीर के अन्दर होने वाली भौतिक प्रक्रियाओं से सम्बन्धित है। एक जैविक-अंग केवल शारीरिक आकृति सम्बन्धी अनुक्रम को ही प्रदर्शित नहीं करता है, पर इस के अतिरिक्त वह आंतरिक प्रक्रियाओं के क्रम को भी प्रदर्शित करता है।

५. इन तीन महत्त्वपूर्ण नियमों के प्रकाश में संगठन और जैविक-अंग का एक सापेक्ष सम्बन्ध प्राप्त होता है। इसे ही जीवशास्त्रीय शब्दावली में 'जीवन की व्यवस्थित-धारणा' कहा गया है। इस धारणा के अन्तर्गत जैविक आकृतियों का रूप स्थिर नहीं होता है, पर मूलतः गत्यात्मक होता है। यही गत्यात्मकता ही 'जीवन' को गतिवान् बनाती है और वृद्धि (ग्रोथ) को जीवन का अंतर्गत तत्त्व स्वीकारती है। जीवन की यह गत्यात्मकता एक अन्य तत्त्व की ओर संकेत करती है। वह यह कि जीवन का प्रमुख सब स्थानों पर है, चाहे वह पृथ्वी हो या कोई अन्य ग्रह

३. में इन द माडर्न वर्ल्ड, जे० हक्सले, पृ० २००

४. वैज्ञानिक परिदृष्टि, वर्टरेन्ड रसेल, पृ० १५०

या नक्षत्र । यह दूसरी बात है कि जीवन का रूप आवश्यकतानुसार परिवर्तित हो गया हो, पर मूल रूप से जीवन की विश्वजनीन 'शक्ति' का वह एक अनेकपक्षीय रूप है । इसे ही श्री अरविन्द ने 'ब्रह्मांडीय जीवन-शक्ति' की संज्ञा दी है जो जैविक और अजैविक विश्व में समान रूप से व्याप्त है ।^५ यह जीवन-शक्ति समस्त विश्व में व्याप्त है जो केवल मात्र कल्पना नहीं है, पर आधुनिक विज्ञान की एक आदर्श-धारणा है ।

६. उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश से यह स्पष्ट होता है कि जीवन में जहां एक ओर विभिन्नता है, वहीं दूसरी ओर उस विभिन्नता में एकता भी विद्यमान है । जीवधारियों में जीवन की एकता का रूप अनेक दृष्टियों से देखा जा सकता है, यदि हम उसे मानवीय मानदण्ड से देखें और परखें । इस दृष्टि से समस्त जीवधारियों में शुभ और अशुभ (पाप और पुण्य) की कोई न कोई भावना समान रूप से प्राप्त होती है । अच्छे और बुरे का यह विस्तार समस्त प्राणीजगत की एक विशेषता है जो उस की एकता का रूप माना जाता है । इस के अतिरिक्त जीवन-प्रक्रिया, विभिन्न जातियों में सहयोग-भावना, परिस्थितिजन्य आचरण तथा प्रजनन-प्रक्रिया—ये कुछ अन्य क्षेत्र हैं जहां जीवन की एकता दर्शनीय है ।^६ आकृति, शारीरिक रचना, मनश्चेतना आदि के क्षेत्र में हमें विभिन्नता के दर्शन होते हैं । विभिन्नता का महत्त्व उसी सीमा तक स्वीकार किया जा सकता है जहां तक प्रत्येक वनस्पति तथा जीवधारी अपने 'स्वधर्म' का पालन कर सकने में समर्थ हो । प्रसिद्ध प्राणिशास्त्री हाल्डेन ने इसी कारण से 'स्वधर्मपालन' को जीवन की एकता के लिए एक अत्यन्त आवश्यक तत्त्व माना है ।

७. जीवन की एकता तथा अनेकता के इस आयाम को दृष्टि में रख कर, जीवन के एक अभिन्न अंग 'व्यक्ति' (इण्डिविजुअल) के स्वरूप को समझना भी आवश्यक है । जीवशास्त्र में 'व्यक्ति' का अर्थ सामान्य अर्थ ही है जो केवल एक जैविक अंग है जब कि मनोविज्ञान में व्यक्ति का अर्थ सामान्य न हो कर विशिष्ट होता है । विकासवादी-दृष्टि से 'व्यक्ति' एक ऐसा जीवधारी है जो दिक्, काल और क्रिया के परिप्रेक्ष्य में जीवित रहता है और एक विशिष्ट जीवन-चक्र (लाइफ-साइकिल) का पालन करता है । विकास के निम्न स्तर में अमीबा और हाइड्रा को यदि दो भागों में विभाजित किया जाता है तो प्रत्येक भाग एक 'व्यक्ति' की तरह आचरण करता है । कुछ इसी प्रकार की विकसित दशा मानव नामधारी प्राणी में यदा कदा देखी जाती है, जब डिम्ब (ओवा) के सिंचन के पश्चात्, वह दो या अधिक में विभक्त हो जाता है और इस प्रकार दो या दो से अधिक शिशु एक साथ जन्म लेते हैं । यहां पर व्यक्ति की धारणा एक भौतिक रूप में है जब कि

५. साइंस एण्ड कल्चर, महर्षि अरविन्द, पृ० ३६

६. दि यूनियटी एण्ड डाइवर्सिटी ऑफ लाइफ, जे. बी. एस. हाल्डेन, पृ. ४०--४१

'व्यक्तित्व' की भावना व्यक्ति के समस्त आंतरिक एवं बाह्य गुणों या अवगुणों का एक समष्टि रूप है। इस दृष्टि से 'व्यक्ति' की भावना एक प्रगतिशील एकीकरण की भावना है जिस में पैतृक संस्कार, शारीरिक संरचना, नाड़ी-संस्थान और जीवन-चक्र का एक सानुपातिक एकीकरण प्राप्त होता है। इस प्रकार 'व्यक्ति' एक सीमा है जिस का सम्पूर्ण साक्षात्कार असंभव है, पर जिस तक पहुंचा जा सकता है।^७ यह तथ्य एक अन्य दिशा की ओर भी संकेत करता है कि व्यक्ति की धारणा कोई पूर्ण-धारणा नहीं है। यही कारण है कि 'पूर्ण-व्यक्ति' की भावना एक कल्पना है। जीव-विज्ञान की दृष्टि से पूर्ण-व्यक्ति का तात्पर्य केंद्रीकरण है जिस का सम्बन्ध नाड़ी-संस्थान (सुष्मना नाड़ी-स्पाइन्डल कोर्ड) से है और इस केंद्रीकरण के विरोध में विकेंद्रीकरण या बिखराव की प्रवृत्ति लक्षित होती है। इसी से जीवधारियों में केंद्रीकरण की प्रवृत्ति प्रजनन क्रिया में व्यवधान भी दे सकती है और यही कारण है कि विकेंद्रीकरण की प्रवृत्ति जीवधारियों के लिए कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः जीवन के स्थायित्व एवं विकास के लिए ये दोनों प्रवृत्तियां न्यूनाधिक रूप से आवश्यक हैं।

८. अस्तु। जीवन के विकास में केंद्रीकरण एवं बिखराव की प्रवृत्तियां निरपेक्ष न होकर सापेक्ष हैं क्योंकि जीवन के विकास में इन दोनों तत्त्वों का कार्य-कारण-सम्बन्ध है। विकास-क्रम में किसी भी अंग का (व्यक्ति) विकास-संयोगाश्रित नहीं है, पर यह विकास सीमित है। यह विकास सीमित इसलिए है कि प्रकृति के नियम के अन्तर्गत प्रत्येक वस्तु या घटना का एक परिवेश होता है और यह परिवेश उस घटना या वस्तु को एक अर्थ देता है। इस के अतिरिक्त विकास का यह सीमित पक्ष तीन तत्त्वों के प्रकाश में कार्यान्वित होता है। प्रथम तत्त्व जीन में अवश्यभावी परिवर्तन की प्रक्रिया है जिस का संकेत ऊपर किया जा चुका है। दूसरा तत्त्व वे आन्तरिक गुण हैं जो विकासक्रम के दौरान किसी जाति या जीवधारी में अनेकानेक परिवर्तन लाते हैं। यह प्रक्रिया सामूहिक भी है और व्यक्तिगत भी। तीसरा तत्त्व संगठना का है जिस पर विचार किया जा चुका है। इस प्रकार विकास की अपनी सीमाएं लक्षित होती हैं और घटित होते हुए विकास-क्रम के आधार पर हम भावी विकास की सम्भावनाओं से भी अवगत हो सकते हैं। इस पक्ष पर विकासवादी-चिंतकों ने विचार किया है^८ और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मानव जीवन का भावी विकास भौतिक एवं शारीरिक स्तर पर न होकर अब मानसिक एवं आत्मिक स्तर पर ही संभव है। जीवन की गति सदैव उच्चतर चित्तियों की ओर ही होती है जैसा कि विकास-परम्परा से लक्षित होता है।

७. प्रोब्लैम्स ओफ लाइफ, बरटालैनफी, पृ० ५०

८. ऐसे कुछ चिंतक ली कॉम्प्ट ड्यू' त्त, डब्लू० एच० हाइटहेड, जे. हक्सले और अरविंद हैं।

भारतेन्दु युगीन चेतना और उसके प्रतिनिधि पं. बालकृष्ण भट्ट

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, रीडर, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

भारतेन्दु युग आधुनिक हिन्दी साहित्य का विहान है। यह युग हिन्दी साहित्य की प्रायः सभी आधुनिक विधाओं का जनक है। अतः इस की महत्ता अनेक दृष्टियों से समूचे हिन्दी साहित्य में अद्वितीय और अतुलनीय है।

किसी भी साहित्य की समृद्ध आलोचना उस साहित्य के सर्जनात्मक पक्ष को भी प्रतिबिम्बित करती है। इस दृष्टि से भारतेन्दु युगीन आलोचना अपने युग का वास्तविक प्रतिनिधित्व करती है।

यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि समूचे भारतेन्दु युग का गहन एवं वैज्ञानिक अध्ययन अद्यावधि नहीं हुआ है। अतः इस युग का साहित्यिक मूल्यांकन भी अभी अपूर्ण है।

भारतेन्दु युग का यदि मनोयोग पूर्वक अध्ययन किया जाये तो यह देख कर आश्चर्य होगा कि उस युग की रचनाओं में आज भी बड़ी ताजगी एवं जीवंतता है। इस युग का समूचा साहित्य यदि प्रकाश में लाया जा सके तो अनेक प्रचलित परवर्ती मान्यताओं में आमूलचूल अंतर उपस्थित हो जायगा। उदाहरणार्थ, यह धारणा सर्व प्रचलित है कि हिन्दी आलोचना को भौतिकतावादी यथार्थ का निकप मार्क्सवाद ने दिया है किन्तु तथ्य यह है कि आलोचना का यह भौतिक एवं यथार्थवादी निकप भारतेन्दु युग में ही परीक्षित एवं पुष्ट हो चुका था। यह निभ्रान्त भाषा में कहा जा सकता है कि इस के समीक्षकों की दृष्टि यथार्थ परक होने के साथ-साथ वैज्ञानिक भी थी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. प्रताप नारायण मिश्र, पं. बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' तथा लाला श्री निवासदास भारतेन्दु युगीन आलोचना के प्रमुख स्तम्भ हैं। इन में भी सैद्धान्तिक निष्ठा वैचारिक विशदता, स्पष्ट एवं प्रखर चिन्तन, निर्भीकता तथा अभिव्यक्तिगत वैशिष्ट्य की दृष्टि से पं. बालकृष्ण भट्ट ही इस युग के निर्विवाद प्रतिनिधि आलोचक हैं।

भौतिकतावादी दृष्टिकोण :-

संसार को नश्वर और जीवन को क्षणभंगुर मानने की चिरपरिचित वेदान्ती विचारधारा से भट्ट जी की विचारधारा मूलतः भिन्न है। 'हिन्दी प्रदीप' में एक स्थान पर वे अत्यन्त स्पष्ट भाषा में पूरी निर्भीकता के साथ लिखते हैं :-

“संसार सुख का सार और स्वार्थ तथा परमार्थ साधन का पवित्र मन्दिर है। पर हम इसे अपने कुलक्षणाँ से दुःख के प्रवाह का स्रोत, यावत् संताप और क्लेश का अपवित्र आलय कर रहे हैं। पौरुषेय गुण शून्य हम अपने अकर्मण्य वेदान्तिओं को क्या कहें जो संसार को दुःख रूप मिथ्या और नश्वर मानते हैं। यह प्रत्यक्ष है कि हमारे ही अविचार, अविवेक अशान्ति, असंतोष मोहान्ध बुद्धि आदि दुर्गुणों का कारण है कि स्वर्णमंदिर संसार को हम ढहाके उजाड़ खंडहर कर रहे हैं। जहाँ अमृत का कुंड भरा है उसे हम हलाहल विष से भरे देते हैं वड़े विद्वान हुए यावज्जीवन शास्त्र और फिलासफी को रट-रट पच मरे जितना रट डाला उस के एक वाक्य पर भी जो विवेक और विचार को काम में लाते तो अपने अस्तव्यस्त कामों से जो अनेक दुःख सहते हैं और अपनी समझ और काम का दोष न दे संसार को दुःख का आगार मान बैठे हैं, यह भ्रम मिट जाता। यदि विवेक और विचार को मन में जगह देते तो जो दुःखमय बोध होता है वही अनन्त सुख का हेतु होता।”^१

आलोचना में इतिहास, और ऐतिहासिक दृष्टिकोण को प्रमुखता देते हुए भट्ट जी एक स्थान पर लिखते हैं:—

“जब हमारा प्रश्न ही मनुष्य जाति का अनूठापन नितांत ऐतिहासिक है तो इस लिए जहाँ इतिहास हम को सहारा न देगा वहाँ निश्चय हम को ठहर जाना पड़ेगा।”^२

धर्म और राजनीति की तुलना में राजनीति को वरेण्य बताते हुए भट्टजी लिखते हैं:—

“चाहे धर्म सम्बन्धी एकता से आप और-और तरह का लाभ मानें पर देश की उन्नति और वास्तविक भलाई करने का द्वार हम राजनीतिक एकता को ही मानेंगे। जब तक कोई जाति एक राजनीतिक समूह न होगी जिस का एक ही राजनीतिक उद्देश्य है और जिस जाति के लोग एक ही राजनीतिक ख्याल से प्रोत्साहित नहीं हैं, तब तक आप उस जाति की सम्पत्ति और बुद्धि की बुनियाद किस चीज पर कायम रखेंगे? हम देखते हैं कि अंगरेजों के इतिहास में बहुत जल्दी राजनीतिक एक जातित्व आ गया जिस के कारण उन की जाति की उन्नति चरम सीमा को पहुँचने लगी और उसी के विपरीत हम देखते हैं कि राजनीतिक बंधन न होने से बहुत जल्द हमारी जाति तीन तेरह हो गई। अंगरेजों में राजनीतिक एकता के कारण उन के देश की वास्तविक उन्नति हुई उसी के विपरीत राजनीतिक एकता न होने से हमारा हास हुआ और आगे चल कर इस का यह परिणाम हुआ कि अंगरेज जाति ने अपना इतिहास अपने अनुकूल कर लिया। वही

१. 'हिन्दी प्रदीप' सितम्बर, १९६५, पृ० ४

२. वही, जनवरी, १९६७, पृ० ३

हमारी जाति का इतिहास फल मार के हमारे प्रतिकूल हो गया । और आपस की फूट से जो कुछ बची खुची ताकत रह भी गई थी उसे विदेशीय नेताओं ने आकर चूर-चूर कर डाला ।”^३

किसी भी पराधीन जाति के साहित्य में राजभक्ति और देशभक्ति में से राजभक्ति ही वरेण्य रूप में चित्रित मिलेगी । भारतेन्दु युग के प्रायः सभी समर्थ लेखक पराधीनता की मानसिक कायरता से नितांत मुक्त हैं । उन सब में भी भट्टजी की देश भक्ति का स्वर सब से अधिक प्रखर-मुखर है । राजभक्ति और देशभक्ति की वरेण्यता के संदर्भ में भट्टजी अपनी निर्भ्रान्त और द्विधा-हीन भाषा लिखते हैं :—

“हमारा कथन है कि राजभक्ति और प्रजाहित दोनों का साथ कैसे निभ सकता है ? जैसे हंसना और गाल का फुलाना बहुरी चवाना और शहनाई का बजाना एक संग नहीं हो सकता ऐसा ही यह भी असंभव और दुर्वट है । राजभक्ति का फल निस्संदेह पहले देखने में बड़ा मीठा है पर परिणाम में महामंदकारी और रूखा है । इसे बहुत खाते-खाते मनुष्य क्षीणवीर्य क्षीणस्वत्व और क्षीणतेज हो जाता है और रग-रग और रोम-रोम में दास्य भाव अलर्क अर्थात् कुत्ते के विप के समान ऐसा असर कर जाता है कि जिस के दूर करने की कितनी ही तदवीर हो कुछ कारगर नहीं होती ।”^४

भारतीय समाज में—विशेष रूपेण हिन्दुओं में—यह धारणा युग-युगों से बद्धमूल है कि वेद अपौरुषेय हैं । अपौरुषेय शब्द की प्रायः अलौकिक के अर्थ में व्याख्या की जाती है । इधर पश्चिम के विज्ञानवादी तथा मार्क्सवादी दृष्टिकोण ने सभी परम्परा मुक्त मान्यताओं की जड़ हिला दी है । पश्चिमी दृष्टि से जीवन-जगत् को देखने वाले अनेक महानुभाव यह समझते हैं कि यह भौतिकतावादी दृष्टिकोण हमारे देश के लिए बड़ा अद्भुत और अश्रुतपूर्व है । परन्तु तथ्य यह है कि इस देश में आरंभ से ही अध्यात्मवादी विचारधारा के साथ-साथ ही भौतिकतावादी विचारधारा भी प्रवाहित होती रही । भारतेन्दु युगीन अनेक प्रमुख लेखकों में यही विचारधारा बड़े प्रखर रूप में मिलती है । यह भी युगों से प्रचलित भारतीय विचारधारा के एक पक्ष की विकसित एवं आधुनिक परिणति है । संस्कृत के निष्णात् विद्वान एवं प्राध्यापक होने पर भी भट्टजी इस आधुनिक विचारधारा के सब से बड़े प्रवक्ताओं पोषकों एवं समर्थकों में से एक थे । वेदों के सम्बन्ध में व्यक्त भट्टजी के विचारों से उपर्युक्त कथन का सहज ही समर्थन हो जायगा । भट्टजी वेदों के सम्बन्ध में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं :—

३. वही, जनवर, १८८८, पृ० ६

४. वही, सितम्बर, १८८२, पृ० १-३

“मनुष्य मात्र का यह सामान्य धर्म है कि जब वह किसी वस्तु को जानना चाहता है या किसी वस्तु की खोज करता है तो पहले उन्हीं वस्तुओं में उस की खोज करता है जो सामने देख पड़ती हैं, तब दूर की चीजों में खोजता है। इस लिए लोगों ने पहले जब कोई आश्चर्यजनक वस्तु अर्थात् जिस का कारण वे नहीं समझ सके देखा तो उसे ईश्वर मान लिया। वेदों में इन्द्र, वरुण, सूर्य आदि जो देवता माने गए हैं उस का यही कारण है कि वे सब मनुष्यों के प्रथम अनुमान तथा कल्पना के फल हैं। वेद में सब से परम उपास्यदेव सविता लिखे हैं जो सूर्य का एक नाम है। इस का कारण भी यही है कि पृथ्वी पर सब से बढ़ कर आश्चर्य की वस्तु सूर्य है जो नित्य-नित्य हमारे दृष्टिगोचर होता है और प्रकाश में भी उस के समान दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इस लिए पहले सोचने वालों ने इसी को ईश्वर और जगत् का कारण मान लिया। इसी तरह जल, वायु, अग्नि औषध और विद्युत् आदि को भी ईश्वर कल्पना कर लिया। इसी लिये वेद के अनेक भागों में इन सबों के नाम का उल्लेख बार-बार आया है। क्रमशः ज्यों-ज्यों लोगों की बुद्धि सोचते सोचते मंजती गई तब वे सूर्य आदि को भी जड़ और भौतिक पदार्थ समझने लगे।”^५

भट्टजी वेदों को अन्धविश्वास के आधार पर अंतिम बात नहीं मानते। वे इस सम्बन्ध में विकासवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए लिखते हैं :—

“उपरान्त और सोचने वाले ऋषियों ने उपनिषद् और ब्राह्मण बनाए वे सब यद्यपि वेद नहीं हैं पर वेद से बढ़ कर पदार्थों का वर्णन उन में है।”^६

भट्टजी ने हिन्दी में तुलनात्मक समीक्षा की नींव डाली। इस के अंकुर उन की आरंभिक समीक्षाओं में ही मिलते हैं भवभूति तथा कालिदास की तुलनात्मक समीक्षा का एक उदाहरण अप्रासंगिक न होगा :—

“कालिदास से भवभूति इस बात में अलवृत्ता विशिष्ट माने जा सकते हैं कि कालिदास चेष्टा करने पर भी दूसरा रस वैसा न लिख सके जैसा शृंगार रस लिखा पर भवभूति ने वीर चरित्र में वीरता को पूरी तरह पर दिखला दिया है। इस में संदेह नहीं कि कालिदास की प्रतिभा भवभूति से बहुत अधिक बढ़ी चढ़ी थी। मालूम होता है कि कालिदास को कुछ भी नहीं सोचना पड़ा। कलम उठा लिखते गए हैं पर भवभूति की ‘लेवर्डे स्टाइल’ प्रकट कर रही है कि बीच बीच बहुत ठहर ठहर आगे बढ़े हैं।”^७

भट्टजी की दृष्टि मूलतः लोकमंगलवादी है अतः जहाँ भी उन्हें कुछ भी लोक मंगल विरोधी दिखाई देता है वहीं उन की लेखनी उस पर सीधा प्रहार करती है। भट्टजी की यही

५. वही, माचं, १८८०, पृ० १८

६. वही, जून-जुलाई, १८९९, पृ० ३०

७. वही, जून-जुलाई, १८९९, पृ० ६१-६२

लोकमंगलवादी विचारधारा कालान्तर में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल में अपने पूर्ण विस्तार के साथ प्रकट होती है। पं० बालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी के रीतिकालीन साहित्य की बड़ी कड़ी भाषा में आलोचना की है क्योंकि वह साहित्य उन की लोकमंगलवादी विचारधारा से मेल नहीं खाता। भट्टजी के एतद्विषयक विचार अपने परवर्ती समर्थ लेखकों आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के लिए भी प्रेरणा-स्रोत बने। रीतिकालीन साहित्य के सम्बन्ध में भट्टजी अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं :—

“हिन्दी कवि भी उन्हीं पुराने कवियों की शैली का अनुसरण कर आज तक चले आए हैं और उस ढंग को छोड़ कोई दूसरे प्रकार की भी कविता हो सकती है यह बात उन के मन में धंसती ही नहीं। जिसकी उपमा हम एक छोटे से तालाब की देंगे जिस में न कहीं से पानी का निकास है न नया ताला पानी उस में आने की आशा है। तब इस के अतिरिक्त और क्या हो सकता है कि उस का पानी दिन दिन सड़ता ही जाय और गन्दगी बढ़ती जाय क्योंकि नियम बद्ध हो जाने से गिनी गिनी बातें उन के लिए बच रहीं उन्हीं का बार-बार पिष्टपेषण किया करें। प्रायः तो नायक-नायिका के एक एक अंग का तलशिल वर्णन उन की सम्पूर्ण कवित्व शक्ति का ओर छोर आ लगा है। बहुत बड़े पट्टकृतु के वर्णन में जा फंसे। वसन्त हुआ तो वही सहकार मधुकर कामदेव की सेना को अपने अपने ढंग पर गा जाने के अतिरिक्त एक ही विषय पर और नई बात लावें कहां से ? पावस को कहने लगे तो मोर-दादुर की टर टर, वियोगिनी नायिका की स्मर दशा आदि इनी गिनी दस पांच बातें हैं जिन पर कविता की अधिष्ठातृ देवी को सैंकड़ों वर्षों से घसीट जीर्ण कलेवर कर डाला।”

आधुनिक हिन्दी साहित्य में लोकसाहित्य की महत्ता घोषित करने वाले भट्टजी संभवतः सर्वप्रथम आलोचक हैं। आज तो लोकसाहित्य को कौन अधिक महत्ता दे इसे लेकर आलोचकों में परस्पर बड़ी स्पृद्धा है। आज लोक-साहित्य मंडन, लोकतंत्रीय तथा समाजवादी व्यवस्था के अत्यन्त अनुकूल पड़ता है। मतदान के आधार पर निर्वाचित लोकप्रिय सरकारें जन-साधारण के साहित्य-संगीत एवं संस्कृति पर ध्यान देने के लिए विवश भी हैं। परन्तु इतने पहले इस संदर्भ में इतनी ओजस्वी और प्रगतिशील वाणी बोलने वाले ‘भट्टजी’ संभवतः प्रथम और अकेले आलोचक थे। आज के अनेक आलोचक अनजान में उन के कितने ऋणी हैं भट्टजी के इन शब्दों को पढ़ कर वे स्वयमेव ठीक ठीक समझ सकेंगे :—

“अब प्राम्य कविता पर ध्यान दीजिये, मल्लाहों के गीत, कहारों का कहरवा अथवा आल्हा आदि सब महाभही केवल गंवारों की रोचक कवितायें, उन की प्रशंसा में यदि हम कुछ कहें तो नागरिक

जन जो भाषा की उत्तम कविता के रसपान के घमंड में फूले नहीं समाते अवश्य हम पर आक्षेप करेंगे और हमें निपट गंवार समझेंगे। निस्संदेह वे ग्राम्य कवितायें हैं और मलार, ठुमरी का स्वाद लेने वालों की दृष्टि में महाभदी और घृणित हैं। पर इस से यह तो सिद्ध नहीं होता कि कविता के बंधे कायदे पर न होने से उन में कोई गुण है ही नहीं और सर्वथा दूषित ही हैं। अब हमारे पाठक जन पूछ सकते हैं आपने उस में ऐसा कौन सा गुण पाया जो उस पर इतना लट्टू हो रहे हैं। माना वे सर्वथा दूषित और कविता के गुणों से वंचित हैं पर उन में सच्ची कविता का लसरा पाया जाता है अर्थात् उन में चित्त की एक सच्ची और वास्तविक भावना की तस्वीर खिंची हुई पाई जाती है और आप की क्लासिक उत्तम श्रेणी की भाषा-कविता का जहर इस में कहीं नहीं पाया जाता जो यहां तक कृत्रिमता पूर्ण रहती है कि उस के जोड़ की एक निराली दुनिया केवल कविजी के मस्तिष्क में ही स्थान पाए हुए है।^९

साहित्य और उस के कथ्य के सम्बन्ध में भट्टजी के विचार जितने प्रगतिशील और क्रान्तिकारी हैं भाषा के सम्बन्ध में भी उस से कुछ कम नहीं हैं। भट्टजी प्राथमिक रूप से संस्कृत के ही विद्वान थे-संस्कृत-अध्यापन ही उन की कुछ दिन आजीविका था किन्तु वे यह मान कर चलते हैं कि साहित्य में पाण्डित्य का प्रदर्शन अभीष्ट नहीं होना चाहिए। वे चाहते हैं कि जो कुछ लिखा जाय उसे समाज का बहुतांश समझ सके। संस्कृत पाण्डित्यों के हिन्दी भाषा ज्ञान पर व्यंग्य करते हुए एक स्थान पर उन्होंने लिखा है :—

“संस्कृत में कहो खर्रां का खर्रां रंग डालें पर मुझावरेदार हिन्दी उन्हें चार पंक्ति लिखना पड़े तो उस में वे दस गलतियां अक्षर तथा व्याकरण की करेंगे।”^{१०}

भट्टजी कट्टर शुद्धतावादी लेखक नहीं थे प्रगतिशील एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण वे इस तथ्य को समझते थे कि जीवंत भाषा में सतत परिवर्तन की प्रक्रिया अच्युत रहती है। वे इस का स्वागत करते थे :—

“भाषाओं के इतिहास में आप हिन्दी की दशा देख यह मत समझ लीजिये कि भाषा की सूरत बदलने के लिए विदेशी के साथ टक्कर खाना जरूरी बात है। ऐसा ख्याल करना भूल है कि अगर विदेशियों की भाषा के साथ यह भाषा टक्कर न खाए होती तो शुद्ध रीति पर बनी रहती क्यों कि वेद की संस्कृत को नाटक और काव्यों की संस्कृत में किसने उतार दिया। या संस्कृत को प्राकृत के रूप में किस विदेशी भाषा के साथ टक्कर खाने ने बदल दिया और फिर भाषा की बाहरी आकृति पर विदेशियों का कुछ असर पहुंच सकता है पर उस के भीतरी नियमों को तिल भर भी जिसकाना किसी की सामर्थ्य नहीं। हम ने ऊपर कहा कि भाषा भी संसार की इतर चैतन्य

सृष्टि का नियम मानती है। इस कारण जैसा पीटने से गद्दा बड़ा नहीं हो सकता उसी तरह बाहर वालों का सम्पर्क भी कुछ बहुत हानिकारक नहीं हो सकता और फिर भाषा के सम्बन्ध में हानि शब्द का पूरा-पूरा तात्पर्य तै करना बड़ा कठिन है क्योंकि परिवर्तन के बीज तो भाषा में आप ही भरे हैं। क्यों कि संस्कृत से प्राकृत हुई और प्राकृत से वर्तमान हिन्दी। हम लोगों का केवल इतना ही कर्तव्य है कि देखते जायें कि क्या क्या बदल बदल हुए।^{११}

आज जब समानवादी जीवनपद्धति ने लोगों को एक नई दिशा में सोचने के लिए विवश और प्रवृत्त किया है वहां इतने वर्षों पहले ही इस प्रगतिशाली चिन्तन के अंकुर भट्टजी में मिलते हैं। हिन्दी में सम्भवतः भट्टजी पहले मनीषी हैं जिन्होंने मुन्दर भविष्य को अपने कल्पना-चक्रों से स्पष्ट देख लिया था। जनवादी संस्कृति आज उन वर्गों की ओर उन्मुख है जो युग-युगों से शोषित और उपेक्षित थे। भट्टजी पहले आलोचक हैं जिन्होंने प्रामीण भाषा के मयुर वैशिष्ट्य की ओर सुसंस्कृतों का ध्यान प्रथमतः आकृष्ट किया था :—

“भाषा का पूरा जोर देखने के लिए उन लोगों पर ध्यान दीजिये जो एक ढंग से शून्य भीति है अर्थात् जिन पर किसी प्रकार की शिक्षा मात्र ने अपना रंग नहीं जमाया है। और जो घर में तथा घर के बाहर छोटे बड़े सब से एकतार की अपनी सहज भाषा बोलते हैं। सच पूछिए तो ऐसी भाषा से बढ़ कर संसार में कोई दूसरी मीठी भाषा नहीं हो सकती। इस कारण अगर ठेठ हिन्दी शब्दों की आप को खोज है तो गत काल के या वर्तमान समय के नपी-जुबी प्रायः एक ही ढर्रे पर चलने वाली कवियों की बाणी से लेकर सहस्रों धारा से चलती सजीव प्रामीण भाषा को देखिए। यदि आप यह कहें कि शिक्षा के अभाव से ऐसे लोग असभ्य या अरलील शब्द अपनी बोलचाल में बहुत भरते हैं तो साथ ही इस के यह भी सोचना चाहिये कितने हजारों लाखों शब्द ऐसे भी मिलते हैं कि जिन के पुष्ट भाव और अर्थ गौरव को देख चकित रह जाना पड़ता है। सच पूछिए तो इस थोड़े समय में हिन्दी की कुछ कम विजय नहीं हुई। वे ही सब शब्द जो किसी समय गंवारों की भाषा समझे गए थे, अब कालचक्र के हेर फेर से अधिकारशाली पढ़े-लिखे लोगों के वर्ताव में फिर आने लगे, वरन ठेठ से ठेठ हिन्दी शब्दों की खोज लोगों को है और वह ठेठ हिन्दी हमारे प्रामीण जनों के ही कण्ठ का आभरण है। सच है जिस पत्थर को न्याय ने बेकाम जन फेंक दिया पीछे वहीं कोने का सिरा हुआ।^{१२}

भट्टजी को पूरा विश्वास था कि अन्ततः इसी जन भाषा की विजय होगी और उसे एक दिन आदर मिलेगा। लक्षण इस तथ्य को अत्यन्त स्पष्ट रूप से पुष्ट कर रहे हैं।

११. वही, जनवरी, १९५५, पृ० ५-६

१२. वही, जुलाई, १९५५, पृ० १-५

संस्कृत भाषा के निष्णात विद्वान होने पर भी भट्टजी हिन्दी का स्वतंत्र अस्तित्व मान कर चलते थे और वे इसे उन खतरों से बचाना चाहते थे जिन का शिकार संस्कृत भाषा हो गई थी। भट्टजी की धारणा थी कि अत्यन्त जटिल व्याकरण किसी भी भाषा के लिए वरदान नहीं है अपितु अभिशाप ही है। संस्कृत के सहज विकास में उस का व्याकरण ही बाधक हुआ। हिन्दी भाषा को ऐसे ही जटिल व्याकरण के बंधन में बंधे वे नहीं देखना चाहते थे। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है :—

“अभेद्य दुर्गसदृश पाणिनि के व्याकरण के आगे हिन्दी का व्याकरण छोटी सी फूस की झोंपड़ी है। यह तो प्रकट है कि अब हमें उतने बड़े व्याकरण की आवश्यकता न रह गई। एक वह समय था कि अनेक जंजालों से भरे हुए पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि के सूत्र, वार्तिक, भाष्य में एक मात्रा का ही हेर फेर हो जाने पर एक बड़ी भारी इमारत को ढाह कर फिर से खड़ी करना था। और इसी का परिणाम यह हुआ कि हमारे यहां का व्याकरण ऐसा भ्रंश से भरा हुआ शास्त्र हो गया जैसा पृथ्वी के किसी कोने में न हुआ होगा। सच पूछिए तो दो गाड़ी के बोझ की पुस्तकें ‘शेखर मंजूषा’ ‘कैयट’ आदि बड़े बड़े जगद्वाल जो रचे गए उन में और है क्या? सिवा इस के कि कीचड़ में पांव बोर फिर धोओ। इन्हीं विफल चेष्टाओं में व्याकरण इतना बढ़ा शास्त्र हो गया जिस में नवीन और प्राचीन का झगड़ा पढ़ते-पढ़ते उमर की उमर बीत जाती है, कोरे के कोरे मूर्ख रह जाते हैं। ऐसी सरल भाषा हिन्दी में इस सब खटपट का अब कुछ काम ही न रह गया।”^{१३}

ये ही वे मूलभूत तत्त्व हैं जिन पर भारतेन्दु युगीन समालोचना दृढ़ता पूर्वक खड़ी है। उद्धरणों की बहुलता इस लिए क्षम्य है क्योंकि उस युग की बात पर बिना उन के विश्वास करना आज के किसी भी व्यक्ति के लिए कठिन होता है।

भारतेन्दु युग में आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य को उस काल के तपस्वी साधक लेखकों ने बड़ी ही दृढ़ भित्तियों पर खड़ा किया था यही कारण है कि उस काल का साहित्य हमें आज भी रोचक, नवीन, प्रगतिशील तथा वैज्ञानिक प्रतीत होता है। इस समूची चेतना को यदि एक शब्द में ही व्यक्त करना हो तो वह शब्द है ‘पं० बालकृष्ण भट्ट’।

Validity of Historical and Legendary Interpretation of Vedic Stanzas*

Dr. S. K. Gupta, Reader in Sanskrit,
Rajasthan University, Jaipur.

The problem of Vedic interpretation has been a very difficult one. It has engaged the attention of Vedists since the days of at least the Brāhmaṇas. In this age regular studies in vedic exegesis came into existence. The Brāhmaṇa literature appears to have originated a little after or even contemporaneous with the Vedic texts. The repeated texts in the Samhitās and their Śākhā texts afford ample exegetical material. This material has created some new problems. It is proposed to give a brief treatment to one of them, viz., the historical and legendary interpretations of Vedic stanzas and hymns.

2. The repeated texts have at several places substituted one word by another word. In many cases such interchanged words can be safely taken as synonyms leading to a high probability for such an understanding where the interchanged words are not known to be synonyms. This method of study has been followed by modern scholars like A. A. Macdonell. Some of the proper names have been substituted by other proper names in the repeated texts. Following the above method they can be regarded as synonyms. Some proper names so replaced by other proper names or by common nouns in the repeated texts are given below.

१. यत्नान्त्या परावति यद्वा स्यो अवि तुर्वणे ।
अतो रवेन सुवृता न आ गतं नाकं सूर्यस्य रविमनिः ॥ Rv. I. 47.7
यत्नान्त्या परावति यद्वा स्यो अथ्यम्बरे ।
अतः सद्भ्रानिगिन्वा रवेना यातमदिवना ॥ Rv. VIII. 8.14
Also cp. Ng. II. 16. ३-४—अम्बरम् । तुर्वणे । [अन्तिक्रान्तौ] ।
२. नक्षू क्नायाः नक्ष्यं नवीया ऋतं वदन्त ऋतयुक्तिमगन् ।
दिवर्हेतो य उत गोपमानुरदक्षिणातो अच्युता वृद्धन् ॥ Rv. X. 61.10
नक्षू क्नायाः नक्ष्यं नवीयो रायो न रेज ऋतमित् नुरन्वन् ।
पुत्रि वन् ने रेकम् आयवन्त सवर्द्धवायाः पय उन्निवायाः ॥ ibid, Verse 11
३. एवा नदानो नम तस्य वीनिर्भरद्वात्रा अन्यचन्त्यकम् ।
एवा हृतातो धमवो ज्युष्टा विश्वे स्तुतातो नूता वज्रपाः ॥ Rv. VI. 50.15

इम उ त्वा पुहशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कम् ।

श्रुवी हवमा हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति ॥ Rv. VI. 21.10

४. अनस्वन्ता सत्पतिर्मांमहे मे गावो चितिष्ठो असुरो मघोनः ।

त्रैवृष्णो अग्ने दशमिः सहस्रैर्विश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥ Rv. V. 27.1

अथ प्लायोगिरिति दासदन्यानासंगो अग्ने दशमिः सहस्रैः ।

अधोक्षणो दश मह्यं हशन्तो नला इव सरसो निरतिष्ठन् ॥ Rv. VIII. 1.33

3. In the same way identification of the following names can be easily examined and inferred from the repeated texts.

Name	in Rv.	identified with	in Rv.
Daśagvāsaḥ	V.29.12	.Bharadvājāḥ	VI.50.15
Navagvāsaḥ	ibid	Daśagvāsaḥ	V 29 12.

Both these words have been used here as adjective and the qualified noun.

Pajriyāya	I.116.7	Kṛṣṇiyāya	I 117.7
Bharadvājāḥ	VI.25.9.	Viśvāmitrāḥ	X 99.17
	VI.50.15	Vasiṣṭhāḥ	VII.23.6
Bhujum	I.112.20	Paktham	VIII.22.10
Bṛghavaḥ	X.39.14	Ṛbhavaḥ	X.39.14

(See Sāyaṇa's Commentary)

Manuḥ Sāmvaraṇaḥ	VIII.51.1	Manur Vaivasvataḥ	VIII.52.1
Medhyātithim	VIII.49 9	Etaśam	VIII 50.9
Vimadāya	VIII.9.15	Vatsāya	VIII.9.15.

These two words appear to have been used as adjective and the qualified noun. Supply of 'ca', as conjectured by Griffith, is, therefore, unnecessary.

4. Besides other descriptions also point out that the Vedic seers did not consider the so-called names of seers and other personages as proper names, e. g., the Ṛg-Veda says that 'the father made Ṛjraśva blind'.¹ Aṅgiras' have been called 'sons of fire'² and 'sons of heaven'³. They praise ṛta 'law and order'. They bear easily and are warriors of asura, renowned scholars⁴ and members of the clan of go 'speech'.⁵ Atri alone could discover the sun after the same had been attacked by Svarbhānu.^{5A} The Yajurveda verse⁶ 'agner janitramasi vṛṣaṇau stha urvaśyā-yurasi purūravā asi' declares urvaśī, āyu and purūravas as the names of one and the same object. Indra⁷ and Maruts⁸ have been called Uśanā Bṛhaspati, yajña and ṛṣi are synonyms—'bṛhaspatim yajñamakṛṇvata ṛṣim'⁹. The seer names Aṅghomuk¹⁰ and Agastya¹¹ are adjectives to Indra.

1. Rv. I.116.16	2. Rv. X 62.5	3. Rv. IV.2.15	4. Rv. VI.65.5
5A. Rv. V.40.6;9	6. Yv. V.2	7. Rv. I.130.9	8. Rv. VIII.7.26
9. Rv. X.13.4	10. Rv. X 63.9	11. Rv. I.170.3	

Uṣṇik (metre) and life breath. Air is Uśan. Evayā Marut is Pratiṣṭhā (—firm position). This earth is Kadrū. Kapiñjala was born from the soma-drinking mouth of Viśvarūpa, resembles, as it were, the brown colour (babhru) and is Soma Rājan. Kumāra is one of the forms of fire or Rudra. Kūrma is Prajāpati, the sun, the vital breath, the original essence of all the worlds reduced to the state of primeval waters. Gayaḥ is soma, moon and life breath. Gātu is sacrifice. Gṛhapati is the sun, this world, the fire, penance or heat and the wind. Gharma is the name of fire and of the sun. Jamadagni is this eye and the lord of creatures. The sacrificer is Jaritā. Juhū is identified with the heaven, the warrior and the right hand. This air is Tārksya. Tvaṣṭā is speech, lord of creatures and the giver of form to all. Dakṣiṇā is the purogavī, śubha and śleṣman of sacrifice; it is food and is related to Savitṛ. This speech is Dadhyañ Ātharvaṇa. Devaratha is this earth, the Rathantara, the sacrifice and the fires. Devarāta is so called because he was bestowed by the gods. Dyutāna Māruta is this wind. Dharuṇa is fire and the sun. Dhiṣṇyā are fires called Svānaḥ, Bhrājaḥ, Aṅghārīḥ, Bambhārīḥ, Hastāḥ, Suhastāḥ and Kṛśānuḥ. Nabhas is one of the two months of the rainy season, the fire and the mid-region. The season is Nābhānediṣṭha. Nārāyaṇa is the Primeval Puruṣa. Pataṅga is the life breath. Parameṣṭhī is waters, odana, ṛta and self-rule. Fire and year are Parikṣit. Indra himself is Parucchepa. The darbha grass, waters, fire, wind and the airs in the body are called Pavitra. Babhru is soma.

11. Such senses of a large number of other proper names can be culled from the Brāhmaṇa works.

12. The Nighaṇṭu lists contain many words which have been identified with names of some persons. The author of the Nighaṇṭu takes these names as common nouns or adjectives, As, e. g., Aditi is a synonym of earth, cow, speech and pada; Ilā of Earth, cow and speech; Pṛṣṇi is a sādharma nāma; Gṛtācī is night; Śambara is water and cloud; Rauhiṇa, Vṛtra and Asura are cloud; Ahi is a synonym of both cloud and water; Sūryā, Śacī and Suparṇī are names of speech; Śacī denotes intellect and action as well. Abhvam is a synonym of great and waters. Dadhikrāḥ, Etaḡva, Etaśa, Paidva, Daurgahaḥ, Aucchaiśravasaḥ and Tārksyaḥ are synonyms of horse; Gayaḥ of offspring, wealth and house. Nahuṣaḥ, Turvaśaḥ, Druhyuvaḥ, Āyavaḥ, Yadavaḥ, Anavaḥ and Pūravaḥ are names of man; Cyavānā denotes an arm, Śakvarī an arm and a cow. Āyuḥ is food, Manyuḥ is anger, Turvaśe is near, Kutsaḥ is thunderbolt and Rbhukṣāḥ and Yahvaḥ signify great. Venāḥ is a name of intelligent and of sacrifice. Kapvaḥ, Kaviḥ, Māndhātā and Uśijaḥ mean intelligent; Bharatāḥ and Kauravaḥ signify priests. The following are synonyms of pada; Kauryaṇaḥ, Tauryaṇaḥ, Parāśaraḥ, Śamyoh, Gātuḥ, Pavitram, Śipiviṣṭaḥ, Urvaśī, Atharvāṇaḥ, Bhṛgavaḥ, Āptyaḥ, Saramā, Yamī, Indrāṇī, Saranyū, Vṛṣākapiḥ, Atharvā, Manuḥ, Dadhyañ.

15. Yāska gives the etymologies of names of rivers like Gaṅgā, Yamunā and others.⁴² He explains Bṛhaspati as the protector or nourisher of the great.⁴³ Yama is a controller or giver. He is also fire.⁴⁴ Hiranyastūpa is a golden pile or is one who has a golden pile (stūpa).⁴⁵ Āyu is a moving active man.⁴⁶ Paruchepa is a seer since he has penis with joints or penis in every limb.⁴⁷ Pururavas is he who often weeps bitterly.⁴⁸ Saramā is so called because she moves.⁴⁹

16. Dadhyañ is one who concentrates his thoughts or who is the object of concentration. A thoughtful person is called Manu.⁵⁰

17. It appears, therefore, from these evidences that in the age of the Mantras and the immediately following epochs the so called proper names of seers, kings, persons, demons, rivers and the like were probably not regarded as such. They were treated as common nouns or even as adjectives.

18. A study of the various elements and versions of legends associated with the Mantras indicates that they probably were not intended as such by the authors of the hymns. As, e. g., the legend of Śunaḥśepa centres round the names Śunaḥśepa, the victim and hero of the story and the seer of Rv. I, 24-30, his two brothers named Śunaḥpuccha and Śunolāṅgūla, their father Ajīgarta, king Hariścandra, his son Rohita and Viśvāmītra. The present text of the Ṛg-Veda does not contain any verse seen by any of the persons of the story except the first and the last.

19. References to this story are seen in Rv. I. 24. 12-13 and V. 2. 7. All commentators contributing to the legendary and historical school agree in translating Rv. I. 24. 12 as 'may that king Varuṇa protect us who was invoked by fettered Śunaḥśepa'. Likewise they agree in translating Rv. I. 24.13 so as to convey that Varuṇa is invoked to release Śunaḥśepa who is bound to three pillars. In Rv. V.2.7 Śunaḥśepa is described as bound for a thousand and released by Agni from the stake.

20. An analysis of these translations shows that the story of Rv. I. 24. is different from the story of Rv. V. 2. In Rv. I. 24, too, the accounts in the two verses under reference are contradictory to each other. Whereas in verse 13 the event is being described as happening, it is described as an event of past in Verse 12. In both the verses the description is in the third person and the seer in each case appears to be different from Śunaḥśepa as well as from the seer of the other verse. But the Aitareya Brāhmaṇa, the main source of the legend clearly ascribes these verses to Śunaḥśepa.

42. N. IX. 26

43. N. X. 12

44. N. X. 19-20

45. N. X. 33

46. N. X. 41

47. N. X. 42

48. N. X. 46

49. N. XI. 24

50. N. XII. 33

21. This legend is found in the Aitareya Brāhmaṇa, the Vasiṣṭha Dharma Sūtra, the Vālmīki Rāmāyaṇa and the Vāraruca-nirukta-samuccaya. All these four accounts differ from each other. According to the Vasiṣṭha Dharma Sūtra Hariścandra buys the son of Ajīgarta Sauyavasi. His fetters are removed by gods (and not by Varuṇa). He refuses to become a son of the priests but takes refuge into Viśvāmītra, the Hotṛ.⁵¹

22. Vararuci holds that Ajīgarta, a great seer having high power of penances was oppressed by famine. He along with his family praised Prajāpati.⁵² Vararuci gives a different version in his commentary on Rv. I. 24.3.⁵³ The Rāmāyaṇa version also differs. According to this legend Ambarīṣa, king of Ayodhyā was busy in his sacrifice. His sacrificial victim was stolen. He compensated by purchasing Śunaḥṣepa from his father Ṛcika. Viśvāmītra was a maternal uncle of Śunaḥṣepa. He helped the poor boy who was released by Indra.⁵⁴

23. No forms of the words Śunaḥpuccha, Śunolāṅgūla, Hariścandra, Ajīgarta, Ajīgarti and Ṛcika have been used in the Ṛg-Veda. Forms of Rohit and Rohita have been used in the singular as well as in the plural and have been explained as adjectives by all commentators. Neither these words nor Viśvāmītra occur in Śunaḥṣepa hymns, particularly in verses connected with the story. Viśvāmītra hymns, too, do not contain the word Śunaḥṣepa nor do they have any reference to this legend. Ambarīṣa has been used only once in Rv. I. 100. 17.

24. It is needless to examine more legends from this point of view. This study is a sufficient evidence to doubt the existence of legends and histories in the view of the authors of the hymns. Such legends appear to have been framed by later theologians and teachers to explain abstract ideas in a concrete form. This conclusion receives further support from Yāska's remark 'ṛṣer dṛṣṭārthasya prītirbhavatyākhyāna-samyuktā'⁵⁵—seers who have deep insight into a subject explain it through the medium of legends. Teachers resort to this device even these days. It is also corroborated by the esoteric and symbolic explanations of vedic legends offered by the Brāhmaṇa works, by Yāska and others and by the total absence of all traces of legends and history in the vedic commentaries of Svāmī Dayānanda Sarasvatī and his followers.

25. Gradually some common nouns usually adopted as proper names in common life created a doubt in the minds of later generations--'are words like Kaṇva. Āyu and Nahuṣa common nouns or they refer to certain persons of those names?'

51. Va. Dh. S. XVII. 31-35

52. VNS. IV. 27. PP. 79

53. VNS. I. 18.

54. Vālmīki Rāmāyaṇa, Bālakāṇḍa, Chapters 61-62.

55. N. X. 10; 46

This created a confusion in the minds of early vedic commentators of the post-Yāska period. Yāska has also betrayed his confusion by offering etymologies of the so-called proper names preceded by introductory sentences which, sometimes, appear to regard these words as proper nouns. This confusion is well reflected in the following alternative explanations of vedic proper nouns and legends offered by Skanda Svāmin in his commentary on the Ṛg--Veda. Some interpretations of Mādhava Bhaṭṭa also reflect the same spirit as will be clear from what follows now.

Reference Word or legend explained as proper noun in the Rv.		Alternative Explanations	
I. 1. 6	Aṅgiras	Aṅgiras was born from fire. Here it denotes its source.	Abdominal fire which reduces to juice all that is eaten and drunk for the maintenance of the body.
I. 6. 1	Yuñjanti bradhnam aruṣam (L)	Mātali and others yoke Indra's chariot which is great and shining.	The singers or sacrificers offer praises or oblations to Indra, the great and shining or goer towards his enemies or sacrifices. MB. The worlds yoke the great and shining sun.
I. 6. 2	Nṛvāhasā	carriers of Indra in human form.	carriers towards men. MB. carriers of men.
I. 8. 8	asya sū- nṛtā gomatī	Indra's own milk-yielding and desire fulfilling cow.	Thunder sound accompanied by aerial waters. MB. His gentle or impelling speech, bestower of cows (?)
I. 10. 11	Kauśika SK.	Son of Kuśika, i.e., Indra, who became Kuśika's son on account of the latter's penances for a son like Indra.	Seer or milker of Pṛṣni bound by Kuśis.
		MB. 1. Indra, disciple of Viśvāmitra. 2. Bound by golden and silver Kuśis.	
I. 13. 6	dvāraḥ SK.	doors of the sacrificial place.	Flames of fire since they are his doors, as it were.

	MB.	Goddesses Doors since they prevent one from entering.	
I. 13. 10 Tvaṣṭā	SK.	Carpenter of the gods.	Fire
	MB.	Offers Yāska's etymologies.	
Viśvarūpa	MB.	'Father of Viśvarūpa'	One who creates or brings changes in all forms.
	SK.	— —	Omniform
I. 14. 2 Kaṇvāḥ	SK.	Sons of Kaṇva	Intelligent wise priests.
	MB.		Sons of Kaṇva. Kaṇva is not a sage. He is one who speaks (fr. √kaṇ to make sound).
I. 14. 12 aruṣiḥ rohitāḥ	SK.	Mares of fire, named Rohit.	Cars green and glistening with power.
	MB.	— —	Shining green horses.
I. 16 3 Indra	SK.	Indra	The Supreme Lord.
I. 22. 17	SK.	Refers to the Paurāṇika legend of Vāmana, Viṣṇu and Bali.	Viṣṇu is Āditya here. His movements to Udayagiri, Sky and the Astagiri are described.
	MB.	refers to the three strides of Viṣṇu assu- ming the form of Vāmana as related in the Brāhmaṇas.	Quotes from the Nirukta.
I. 22. 20 Viṣṇu		Viṣṇu	The Sun.
I. 23. 3 Sahasrākṣau	SK.	Indra alone has a thousand eyes. Nāsatyā and Dasrā have been called so in company with Indra.	
			MB. Majestic (tejasvinsu).
I. 33. 4 Upaśākebhīḥ		Aṅgirasas.	Power, strength.

I. 33. 12	Śuṣṇam	The demon Śuṣṇa	Powerful (adjective to cloud).
	Ilīviśaḥ	The demon Ilīviśa	A cloud
I 36. 10	Manave	Manu-a person of this name	Man.
	18 Turvītim	A demon of this name	Killed (taken as a verb).
I. 45. 4	Priyamedāḥ SK.	---	SK. MB. Lovers of sacrifice.
	MB.	A seer of this name.	
I. 46. 9	Kaṇvāsaḥ	Descendants of Kaṇva	Intelligent priests:
I. 51. 4	Dānumad	Which is accompanied by Dānu, the mother of demons.	Sound of the mid region
I. 52. 5	Trita	A person of this name	1. In three places—in the fore-front, in the middle and in the end; or, 2. An adjective to Indra.
I. 52. 8	Manuṣe	1. King Manu, or 2. Seer Manu	Man
	MB.	---	Man
I. 62. 4	Saraṇyubhiḥ	---	Desirous of moving
I. 62. 7	Ayāsyāḥ	Āṅgīrasa	Indra, whom it is difficult to bring.
		VM.	Experts in movements.
I. 80. 7	Mṛgam	A demon of this name	A cloud which has to be sought for.
I. 80. 9	Sahasram	One thousand Vasurociṣ seers.	One thousand priests or my sons.
I. 100. 16	Nāhuṣṣu	Subjects of king Nahuṣa.	Men.
I. 101. 1	Ṛjīśvanā	Ṛjīśvā, son of Vidathin.	A thunderbolt since it goes direct (on its aim).
	2 Manyunā SK.	Son of Prajāpati named Manyu.	Anger (Both SK. and MB.)
I. 114. 5	Varāhaḥ	A demon	1. A cloud 2. A hog.
I. 116. 7	Pajriya	An Āṅgīrasa of this name.	A priest who possesses food in the form of oblations, who praises and who sacrifices.

26. This confusion must have been enhanced by Paurāṇika traditions of histories and legends. Skanda sometimes specifically refers to such traditions under 'iti Paurāṇikāḥ'.⁵⁶ The legends originally coined to attract the attention of readers and listeners and to bring home to their minds the abstract ideas of the hymns might have been the nucleus of Purāṇas. The word 'purāvidah' in the Atharvaveda indicates that this refers to scholars well versed in the knowledge of the problems of creation and universe. The abstract solutions of these problems expressed in the form of legends and histories must have formed the earliest contents of the Purāṇas. To these legends several other legends, histories and material were added and the Purāṇas gradually became an independent wing of Indian literature with their relations severed from the Vedas. But the tradition remained afloat that Purāṇa legends were originally devised to explain the vedic stanzas. It is reflected in the dictum 'Itihāsa-purāṇābehām vedam upabṛṃhayet' on the one hand and in the adoption of historical and legendary method of interpretation of Vedic stanzas on the other hand. This method developed gradually. A rich literature of legends coined to explain vedic verses appears to have arisen and existed in the Brāhmaṇic age when their adhyātma, adhidiva and adhiyajña explanations were quite well known. Hints to such explanations are contained in equations of synonyms given at the end of these legends. The etymologists originally would not have accepted such legends as they did not actually exist in the hymns. But later on they also incorporated them in their works to show that there was no fundamental difference between the two approaches since the legends were also explained with reference to the etymology of the vedic words. It was, however, a step which made etymology a servant of the legendary school and it was employed merely to support the existence of legends in the hymns. Gradually etymology must have been regarded unnecessary since the pivot words in the legends had acquired fixed legendary senses and most of them became proper names. This process must have been accelerated by the Paurāṇika legends which now were absolutely independent of vedic texts. The height of this process is seen in the commentary of Veṅkaṭa Mādharma who declares in unambiguous and unmistakable terms that there should be no objection if his explanations differ from earlier authorities. He declares that his interpretations are as different from those of the earlier commentators as a cow is different from a horse. His commentary is very rich in legends and historical accounts where he employs etymology sparingly and that too for his own purpose of yielding the legendary fixed senses. He has generally discarded the alternative, symbolic and esoteric interpretations given by his predecessors. Sāyaṇa and the modern vedic scholars have followed the footsteps of Veṅkaṭa Mādharma and have increased the number of proper names.

56. See Skanda Svāmin's comments on Sumeke in Rv. I. 113. 3 and on Pajriyāya in Rv. I. 116. 7.

27. It is, therefore, quite clear from the above analysis and evidences that the connotation of proper names assigned to Kaṇva, Āyu, Nahuṣa, Turvaśa, Vasiṣṭha, Jamadagni and other vedic words and the legends coined around vedic words like Śunaḥśepa were perhaps not intended by the authors of vedic hymns and as such the validity of historical and legendary interpretations of the vedic hymns and stanzas is questionable.

LIST OF ABBREVIATIONS

Br. A. Up.	—Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad
Ch. Up.	—Chāndogya Upaniṣad
Fr.	—is derived from.
Kās.	—Kaṭhaka Saṃhita, Svadhyaya Mandala, Aundh (now Pardi), (1943).
L.	—Legend
MB.	—Mādhava Bhaṭṭa in his Ṛgveda Vyākhyā edited by C. K. Raja in two Vols., Madras (1939; 1947).
MS.	—Maitrāyaṇī Saṃhitā, Svadhyaya Mandala, Aundh (now Pardi), (1998 V. S).
N.	—Nirukta edited by L. Sarup, Lahore (1927).
PAV.	—Paippalāda Atharva Veda Saṃhitā in 3 Vols. edited by Dr. Raghuvir, International Academy of Indian Culture, Lahore, Nagpur (now at New Delhi).
Rv.	—Ṛgveda.
SK.	—Skanda Svāmin in his Ṛgveda-Bhāṣya edited by C.K. Raja, Madras (1935) and its extracts in the Ṛgarthadīpikā of Veṅkaṭa Mādhava edited by L. Sarup.
V. Dh. S.	—Vasiṣṭha Dharma Sūtra, B.O.R.I., Poona (1930).
Vebhāpa.	—Sudhir Kumar Gupta-Vedabhāṣyapaddhati ko Dayānanda Sarasvatī Kī Dena (Cyclostyled Thesis), Rajasthan University (1956).
VM.	—Veṅkaṭa Mādhava in his Ṛgarthadīpikā edited by L. Sarup in 4 vols., Lahore-Delhi.
VNS.	—Vārarucaniruktasamuccayaḥ, edited by i.C.K. Raja, Madras (1938) 2. Vararuci Niruktasamuccayaḥ, edited by Yudhiṣṭhira Mīmāṃsaka, Ajmer, (2022 V. S.).
Yv.	—Yajurveda, Propakāriṇī Sabhā, Ajmer, (1999 V. S.).

Marvels of Vedic Astronomy

Dr. S. K. Gupta, Reader in Sanskrit,
Rajasthan University, Jaipur.

1. The Paurāṇika mythology in literary form appears before us sometimes in the 5th c. B.C. when the epics were composed or were in composition. Pāṇini refers to some Paurāṇika personages. Taittirīya Saṃhitā also makes some references to epic characters. There are mythological legends in the Brāhmaṇas which have provided both materials and models to Purāṇa writers. The Vedic deities appear in a very different garb in the Purāṇas. Some of the Vedic gods have disappeared, yielding place to new ones, some have lost their importance and have fallen into background while some have gained much importance with their character metamorphosed to a great extent. This mythology appears to be very incredible, ludicrous, childish and sometimes obscene. In spite of its obvious seeming demerits devout Hindus have been believing, following and practising it with extreme devotion. It has sometimes led to unwholesome practices in the Hindu society. In the 19th Century alien religions attacked it very bitterly and presented its gods in distorted forms. The faith of many Hindus was shaken and they changed their religion. Dayānanda Sarasvatī came. He too, denounced Paurāṇika mythology. Some saints defended the faith. Since then a tussel is going on between the opponents and the defenders of Paurāṇika mythology. It offers a problem to the students of Indology—' what actually is the basis of Paurāṇika mythology? Are Paurāṇika deities mere imagination or they have some background? What phenomena, if any, do they represent?'

2. Various scholars have tried to solve these problems from their points of view. Their main approach has been spiritual or philosophical. But these explanations have failed to give a satisfactory clue to the Paurāṇika mythology. It is Shri Anakchandra Bhayawala who has put forth the most satisfactory and most convincing of all the explanations offered so far in his new unpublished work "Marvels of Vedic Astronomy". The learned scholar has delivered several lectures on his researches in various places including Jaipur and his approach has been received well.

3. In his work Shri Bhayawala makes an astronomical approach to Paurāṇika mythology. Dr. Sham Shastri held that the basis of Vedic religion was a cycle of solar eclipses. Tilak offered astronomical explanation of many Vedic passages. Jacobi and some others also have done so. Akshaya Devi identified Vedic gods with some astronomical phenomena. All these attempts can be called sporadic

and do not offer a consistent account of the whole mythology. Shri Bhayawala has succeeded to a great extent in his attempt to offer the astronomical background of the main Paurāṇika deities—Jagannātha, Viṣṇu, Brahmā, Rudra, Lakṣmi, Durgā and others. For modern astronomical researches he draws mainly upon the Astronomical Atlas and Jeans' work. Most of his observations are illustrated by the Paurāṇika pictures of deities etc. as are available in the market and the astronomical nebula photo-graphed by the modern giant telescopes and point out their similarities in form which can be easily seen by any one. The descriptions given in the epics and the Purāṇas have a striking and accurate resemblance with the modern astronomical descriptions. These resemblances in form and description cannot be accidental. They could be in a place or two but not in all places. If some one not conversant with the history of modern researches had seen them through Sanskrit verses he would have unhesitatingly declared a borrowing on the part of the modern astronomers—so close are the resemblances. Not only this. The time computations of the origin, preservation and dissolution of the present creation have wonderful similarities. In some cases ancient Indian calculations offered by the Purāṇas are much higher than the modern astronomical computations but here the modern calculations are yet tentative. They are in the process of evolution.

4. While discussing the ancient drawings of constellations (Rāśis), Shri Bhayawala has presented the Greek and Hindu figures simultaneously. A close examination of the two mythological figures with the corresponding nebula indicates that the Hindu representation is much more faithful and accurate than the Greek one. To cite some examples: Hindu representations of Cygnus (Haṃsa), Taurus (Vṛṣabha), Cancer (Karka), Aries (Meṣa), Sagittarius (Dhanurdhāri), Capricornus (Makara), Aquarius (Kumbha) and Lepus (Mūṣaka) may be examined. The examination of these figures clearly indicates that the Greeks have borrowed the figures from India and have changed their direction. Had they observed the phenomena they would have given figures identical with the Hindu representations. This leads to the inevitable conclusion that the Greeks are indebted to the Indians in astronomy and not the other way as is generally believed by modern scholars. Shri Bhayawala's attempt, thus, offers a new line of research. A detailed examination of all the astronomical observations of the Greeks and the Hindus are essential before a correct appraisal of the situation can be made.

5. Shri Bhayawala has also referred to Avestic and Arabic mythological statements and has associated them with astronomy along with the Hindu observations. Such references are not many. Wherever they have been cited Shri Bhayawala has become rather emotional and has not examined their occurrences in the various religions critically. He could do justice to it by discussing the

chronology of the observations in the various religions and could have arrived at the irresistible conclusion that the Hindu astronomy is the ultimate source of all later observations, wherever they may be.

6. Shri Bhayawala's work is, therefore, a very important landmark in the study of Hindu mythology. It can not be brushed aside without a serious examination. It may be suggested that Shri Bhayawala should concentrate himself on his work, revise it thoroughly removing the repetitions, completing the incomplete observations wherever they may be, publish this work and advance his studies further. The Government--State or the Central, or some big publisher should offer to publish the work, the publication of which is very costly and is not within the means of an ordinary person or an ordinary publisher. Hindu trusts and organisations should also come forth to assist such publications and advancement of such objective researches. Other younger scholars should also devote themselves to the study of this subject and reveal the truth, advance knowledge and dispel the darkness of incorrect notions, if any.

7. The title of the work 'Marvels of Vedic Astronomy' appears to be much wider in scope than the matter presented in the study. The work relates mainly to the observations of Purāṇas and refers to Vedic sources sparingly. The title should, therefore, be modified as 'Marvels of Paurāṇika Astronomy' (or 'Hindu Astronomy'). Similar studies in Vedic astronomy can be usefully taken up.

8. The mss. of this work is with the author, Shri Anakchandra Bhayawala. C/o. The Museum Planetarium, Sayaji Bag, Baroda.



The Philosophy of Linguistics

Dr. Fatah Singh, (Former Director, Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur), Professors' Colony, Naya Pura, Kota

Ancient India developed a branch of philosophy known as Vaiyākaraṇa Darśana (Philosophy of Grammar) which studied in the context of modern Linguistics can lead to what may be called the Philosophy of Linguistics. This branch of knowledge would aim at the comparative study of words in different languages with a view to find out the early thought of man. To amplify my viewpoint, I may refer to the various concepts of the first man which have been discussed in my book, Kāmāyanī Saundarya (enlarged edition). It was a great surprise to see that almost all the names of the first man were traceable to Vedic language where they could invariably be taken to mean either individual or Cosmic Spirit. A similar surprise was caused when, in course of deciphering hundreds of Indus inscriptions, I came across the word Ana and its cognates which may be correlated to Sanskrit Ana, found not only as a common part in the words Prāṇa, Apāna, Udāna, Vyāna and Samāna, but also as an independent word meaning something like 'life force'. As the same idea can be seen behind the words like Eng. animal, animate, inanimate and animism and Latin anima (soul), animo (to fill with breath) and animatus (animated), it naturally follows that, quite early in prehistoric times, man in Asia and Europe had discovered the life force that separates the animate from the inanimate objects and lies at the base of the root 'an' to breathe-or live.

The Principle of Growth

A very interesting fact is revealed by the study of the Sanskrit word Brahmā and its cognates spread widely in Burmese, Indian, Islamic, Christian and Jewish traditions. These words seem to have been derived from the root bṛṃh meaning, to grow or expand. Like the author of 'The Expanding Universe', the early man was also wonder-struck to see the universal phenomenon of constant expansion which he ascribed to the life force of eternal growth and named it Brahman by combining the root bṛṃh—brhm with the root 'an' noted above. As this force of growth was always found to be orderly, the idea of a governing Law naturally came to human mind, and the Vedas called it Brahmanaspati, the lord of Brahman (principle of growth) who seems to have assumed the title of Brahmā, the Vidhi (Law) of the Purāṇas. That this Brahmā is the same as Abrahm or Ibrahim is suggested not only by the phonetic affinity of these words, but also by the common concept of his daughter-cum-wife who bears the name of Sarasvatī or Sarah implying 'dynamism'. The dynamism inherent in the principle of

growth can also be seen in the concept of Gaṅgā, the symbol of eternal flow from the kamaṇḍalu of Indian Brahmā.

The thought Force

On comparing his own personality with the world outside, the man came to realise that his own behaviour was characterized by thought-force, besides life-force of trees, birds and animals etc. The root man 'to think', therefore, was found out to express the concepts of Sans. Manu (the first man), mānuṣa (man), manuṣya and manas, Egyptian Minos (first man), Hebrew Noah, German mann, Gothic manna, Dan. mand, Icel. manar, A. Sax. man, mann, man, all meaning a person. This feature of human personality has been aptly noted by Yogavaśiṣṭha attributed to sage Vālmiki in the following words :—

जीवन्ति हि तरवो जीवन्ति मृगपक्षिणः ।
जीवति यस्य जीवनं मननेनोपजीवति ॥

“Trees indeed live, and so live animals and birds, but he actually lives whose life is based on thought-force”.

The discovery of thought-force, in addition to life-force in man led him to see within himself a being that exists, moves and thinks. To express this triple character of human self, the Indus-cum-Vedic tradition seems to have respectively used the three words, namely, a of the root as 'to exist', at 'to move perpetually' and man 'to think'. When combined together, these three particles gave the word Aatman or Ātman, the Sanskrit name for inner man. This word Ātman occurs as Adam in Jewish, Christian and Islamic traditions. Apart from the phonetic affinity of the two names, the details associated with the two tell the same tale of human self manifesting its dynamism of motion and thought out of its static existence. According to the Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad (I. 4. 1-3) there was Ātman in the beginning. He did not enjoy alone. He desired a mate. He became like the human pair embracing each other. He divided Himself into man and woman. The same thing is retold in the Book of Genesis in a slightly different way. There, Adam, created by God, does not enjoy alone and wants a mate. God takes out one of Adam's ribs and makes it a woman, his help mate.

Dichotomy in Man

This story of the first man, called Ātman or Adam obviously refers to the dichotomy of human soul and its power of objectification. With this power, human soul multiplies itself into various aspects with the help of a number of senses and faculties. Mythologically, these aspects of human personality were conceived as sons of Ātman-Adam. This is in fact the dichotomy of the subject and the object indicated by the Sanskrit words asmat and yuṣmat, respectively the first and second person pronouns. If the prefix 'mat' common to both the words

is taken away, the remaining 'as' meaning 'to exist' may be compared with A. Sax. is, Gothic ist, Lat. est, Greek esti which seem to have given the first person pronouns like German ich, Gothic ik, Latin ego, Greek ego, A. Sax. ic and English I. In the same way, yuṣ or yu of yuṣmat derived from the Sanskrit root yu meaning 'to mix and unmix' seems to be responsible for the second person pronouns like Gothic ju, A. Sax. ye and eow, O. H. G. Iu, Sans. yūyam and English you and ye. While the subjective aspect of human personality signified by first person pronouns points out to an early belief in its permanent existence as indicated by the root as 'to exist', the objective aspect connoted by the second person pronouns suggests its shifting or changing nature as the root yu 'to mix and unmix' would imply. It is the second aspect of man that objectifies the subject (self), makes a sojourn to the world without and then comes back to the inner self. This is aptly the help mate of Ātman-Adam, the inner self of whom the latter can significantly say in the words of the Bible "This is now bone of my bones, and flesh of my flesh. She shall be called Woman, because she was taken out of Man".

The Need for a Methodolgy

Like a few specimens discussed here, many others can be studied to find a picture of the early thought of man-kind with the help of Linguistics. Being a specialized branch of modern Semantics, this study can certainly depend upon its approach and method, to a great extent, but, to justify its name (Philosophy of Linguistics), it must develop its own methodology to probe into the 'philosophy' behind the various cognates of a word chosen for a comparative study. In this connection, a great caution is needed in grasping the contents of ancient scriptures full of archaic forms, allegorical expressions and figurative devices. A new approach is particularly called for in dealing with what is known as historical allusions in scriptures. While it will be wrong to start with the assumption that there is no history in scriptures, many of the so-called historical narratives may prove to be what is known as 'arthavāda' and 'dṛṣṭānta' in India. Many stories occurring in the Upaniṣads, Purāṇas, the Bible and the Koran may thus have to be interpreted in a new way if we accept the comparative method. The myths and legends studied thus may yield a rich material for the philosophy of Linguistics and what appears to be a 'nonsense' and 'a white lie' today may supply a clue to understand the development of human thought leading to the concept of 'the Universal Man' (Viśva-mānuṣa) of the Ṛg-Veda.

गागर

रचयिता व प्रकाशक श्री गजेन्द्र सिंह सोलंकी, पत्रकार, बक्सपुरी का कुण्ड,
पुरानी बान मण्डो, कोटा ६ (राजस्थान); भूमिका लेखक डा. फतहसिंह,
एम. ए., डी. लिट्; पृष्ठ १४-१५१; मूल्य ६-००

समीक्षक : डा० सुधीर कुमार गुप्त, प्रवाचक,
संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४

१. किसी भी देश और जाति के जीवन और प्रगति का सूचक उस का साहित्य होता है। इसी कारण सभी देशों और जातियों में अनेकों व्यक्ति साहित्यसृजन में व्याप्त होते हैं और उस कर्म से कोई भौतिक लाभ न होने पर भी इस साधना में अपने जीवन को लगा देते हैं। साहित्य में प्रवृत्तियाँ युगानुरूप होती हैं। देश में जब पतन और उत्थान की शक्तियों का संघर्ष होता है, देश को अपनी आत्मा को पहचानने, बचाने तथा नवनिर्माण की आवश्यकता होती है, तब साहित्यकार देश को ऐसी प्रेरणा अपने मधुर और मोहन सृजन से देता है। दयानन्द सरस्वती के आविर्भाव से प्रारम्भ हो कर, स्वतन्त्रतासंग्राम के काल में विशेष बल पा कर ऐसी प्रेरणा देने वाला साहित्य आज भी अनेक साहित्यकार प्रस्तुत कर रहे हैं। गजेन्द्र सिंह सोलंकी भी ऐसे लेखकों की श्रेणी में आते हैं। इन की 'गागर' राष्ट्र की एकता और गौरव का सन्देश देने वाला काव्य है, जो अपने में सागर को समाए हुए है।

२. इस छोटे से कविता संग्रह में श्री सोलंकी ने आकांक्षा, समर्पण, वन्दना, भारतदर्शन, युगदर्शन, विविधदर्शन, नियतिदर्शन और छविदर्शन—इन आठ शीर्षकों में आदि काल से आज तक के अपने देश के प्राकृतिक सौंदर्य, सांस्कृतिक प्रवृत्तियों और शौर्य का सुन्दर, सरस, अलंकृत, स्वाभाविक और प्रवाहमय सरल देशी और तद्भव शब्दों के समुचित सन्निवेश से युक्त शैली में जाति और धर्म आदि की संकीर्णता से रहित, भावात्मक एकता का प्रत्यक्ष दर्शन कराने वाला, आर्य द्रविड, हिन्दु जैन सिक्ख और मुसलमान आदि सब ही देशवासियों को एक सूत्र में बांधता हुआ चित्रण प्रस्तुत किया है।

३. इस काव्य के गुणों की प्रकाशक भूमिका के लेखक डा. फतहसिंह के शब्दों में 'श्री गजेन्द्र सिंह सोलंकी ने वर्तमान हिन्दी कविता को एक नई शक्ति दी है जिस में परम्परा का संवत्, नवीनता का उत्साह एवं मानवता के नव निर्माण का स्वस्थ, सुन्दर तथा सरस स्वर है।' कवि को जहाँ अपनी संस्कृति की उपलब्धियों पर गौरव है, वहाँ राष्ट्रविरोधी कुत्सित एवं गहित तत्त्वों और प्रवृत्तियों पर खेद भी है। वह देश को एक सूत्र में बांधने वाले सभी महापुरुषों को सम्मान देता है। कवि का अतुल्य तप, पौरुष और नवीनता का सन्देशवाहक है। 'छविदर्शन' में

कवि ने शृङ्गार का उज्ज्वल स्वरूप उपस्थित किया है। वस्तुतः श्री सोलंकी की गागर विविध रूपों में मनोरंजन, चिन्तन और आचरण की विचारोत्तेजक, पुष्कलसामग्री प्रस्तुत करती है।

४. इस काव्य में अनुप्रासों की छटा और थिरकन मनोमोहक हैं। नए प्रयोगों और अकविता के इस युग में कवि का पुरानी शैली में लिखना सम्भवतः कुछ को अटपटा लगे, परन्तु प्राचीन शैली को भी नूतन युगानुरूप आनन्दप्रवाहिणी बनाने में ही तो कविकर्म का उत्कर्ष है। अकविता की भी अपनी रूढ़ियां हैं। प्रत्येक नवयुग में शैलियों का संघर्ष सम्भव है और होता रहा है। इस से श्री सोलंकी के काव्य का मूल्य बढ़ता ही है, घटता नहीं है। वैसे भी काव्य में शैली एक माध्यम मात्र है-गौण है। वहां विचार ही प्रमुख हैं। अतः कवि इस रचना के लिए वधाई के पात्र हैं। हमें उन की लेखनी से भविष्य में भी अन्य देश के मार्गदर्शक राष्ट्र भावना से ओतप्रोत काव्यों की आशा है।



“ शतमन्यु ”

ले० कवि श्री रामस्वरूप खरे, प्रकाशक हिन्दी प्रचार सभा, सदर, मथुरा
(उत्तर प्रदेश); प्रथम संस्करण; २०२६ वि.; पृ. ५२; मूल्य १-५०

समीक्षक : डा० बीरेन्द्र सिंह,
व्याख्याता, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

‘शतमन्यु’ श्री रामस्वरूप खरे का खण्डकाव्य है जो द्विवेदीकालीन खण्डकाव्य की शैली में लिखा गया है। शतमन्यु एक पौराणिक चरित्र है जिस के बलिदान से दुर्भिक्ष पीडित जनता को वर्षा का लाभ होता है। कथा अत्यन्त छोटी है। दुर्भिक्ष पड़ता है और जनता वर्षा के लिए विकल है। यह मान्यता है कि नरमेघ के द्वारा ही वर्षा सम्भव है और नरपति द्वारा यह घोषणा होने पर एक बालक ‘शतमन्यु’ अपना बलिदान देकर जनता के दुःख को दूर करता है। अन्त में कवि ने बालक के बलिदान के व्याज से आज के युग में राष्ट्र के लिए बलिदान की महत्ता को उपदेशात्मक शैली के द्वारा प्रस्तुत किया है। इस प्रतिपादन में नरमेघ की भावना को ले कर कवि ने एक प्राचीन परम्परा को नया संदर्भ देने का प्रयत्न किया है, पर यह प्रयत्न पूर्ण सफल नहीं हो सका है, क्योंकि काव्य का अन्तिम सर्ग उपदेश से आरोपित है। काव्य का सौंदर्य उपदेश की व्यंजना करना है जो कथा के माध्यम से ध्वनित होना चाहिए। आधुनिक बोध का जहां तक प्रश्न है, यह काव्य परम्परा से ही अधिक बंधा है। काव्यशैली प्राचीन है, वर्णनात्मकता का अधिक आग्रह है और कथासंयोजन में अन्तर्द्वन्द्व, संघर्ष तथा वर्तमान मानव नियति का वैसा चित्रण नहीं है जो हमें डा० धर्मवीर भारती के ‘अंधायुग’ तथा कुंवरनारायण के ‘आत्म-जयी’ में प्राप्त होता है। ये दोनों रचनाएं पौराणिक वातावरण पर आधारित होते हुए भी उनका ट्रीटमेंट (Treatment) नितान्त नया है। शतमन्यु का ‘ट्रीटमेंट’ नया न हो कर पुराना है जो आज के पाठक की संवेदना को आंदोलित करने में असमर्थ है।

फिर भी, कवि ने कहीं-कहीं पर काव्यसर्जना की दृष्टि से, अच्छे प्रयोग किए हैं जहां तक भाषा तथा उक्ति का प्रश्न है। आमुख में कवि का कथन है कि—

लुटाता सौरभ वही प्रसून

प्रथम जो खिलता कांटो बीच ।

वही दे पाता अभिनव ज्योति—

दीप, जो हंसता तम के बीच ।

इस प्रकार की अनेक उक्तियां मिलती हैं जो कवि की सर्जनात्मकता के प्रति संकेत करती हैं। उन्नी प्रकार कवि की एक और सुन्दर उक्ति है—

सृजन क्लिकारी भर कर आज

मुक्त हो खेलेगा सानन्द ।

पड़ेगा फूट नया स्वर सहज

आदि कवि का ज्यों पहला छंद ।

काव्य उक्तियां तथा उन में प्रयुक्त उपमान अधिकतर परम्परा से लिए गए हैं, और उन का प्रयोग भी नया न हो कर पुराना है जैसा कि उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है।

दयानन्द कॉलेज, अजमेर रजतजयन्ती १९७१ स्मारिका

Souvenir प्राचार्य वावले अभिनन्दन ग्रन्थ Principal Vable Commemoration

Volume; सम्पादक : रविशंकर वर्मा, सदाविजय आर्य; जी. एल. जोशी, संयोजक

आचार्य वावले अभिनन्दन समिति; प्रकाशक ताराचन्द, मंत्री, आर्यसमाज शिक्षा समा, अजमेर

समीक्षक : डा० सुधीर कुमार गुप्त, प्रवाचक, संस्कृत विभाग,

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४

१. यह ग्रन्थ दयानन्द कालिज अजमेर की रजत जयन्ती के अवसर पर आचार्य वावले को उन की कालिज की सेवाओं के सम्मान में भेंट किया गया था। इस ग्रन्थ के चार भाग हैं—पहले में आचार्य वावले और दयानन्द कालिज की प्रशस्ति और शुभकामना के सन्देश हैं। इन में जीवन के विविध क्षेत्रों के मूर्धन्य व्यक्तियों के उद्गार हैं। दूसरे भाग में दयानन्द कॉलेज की स्थापना और प्रगति का इतिहास दिया गया है। डी. ए. वी. स्कूल की स्वर्णजयन्ती के वर्ष में ५. ४. १९४१ को इस की स्थापना हुई। अनेक संकटों का सामना करते हुए यह सुखाडिया की सहायता से, जियालाल के पुरुषार्थ से और अनुदानों आदि के द्वारा आधुनिक रूप को प्राप्त हुआ है। कालिज के पाठ्यविषय तथा क्रमोन्नति, आर्थिक विकास, प्रिंसिपल वावले के साथी और सहयोगियों पर प्रकाश डाला गया है, कालिज की प्रगति के चित्र तथा पुराने छात्रों की २५ वर्ष की गुणीय तालिका दिए गए हैं।

२. तीसरे भाग में स्मारिका है जिस में १९ निबन्ध हैं—६ अंग्रेजी में और १० हिन्दी में। यद्यपि लेख अच्छे हैं और विषय के प्रकाशक हैं, तथापि विषय की गरिमा को देखते हुए उन में अनेक बहुत छोटे और रूपरेखा मात्र कहलाने योग्य हैं। वे सामान्य जन के लिए रोचक और उपयोगी हैं, शोध की दृष्टि से उन का मूल्य साधारण है। यदि कतिपय लेख कुछ विस्तृत और सप्रमाण होते तो शोध की दृष्टि से अधिक उपयोगी सिद्ध होते। इन उन्नीस में से एक दयानन्द पर, एक महात्मा हंसराज पर लिखे गए हैं, शेष दयानन्द और उन की विचारधारा से सम्बन्धित हैं। अपने लेख में टी. एन. चतुर्वेदी^१ ने भारतीय जनता में पुस्तकों के अध्ययन में रुचि बढ़ाने और पुस्तकों के प्रकाशन और वितरण के लिए सुन्दर सुझाव दिए हैं। जनोपयोगी पुस्तकों का देश में भारी अभाव है। इस ओर उठाए गए पग अपर्याप्त हैं। प्रौढ़ और बालसाहित्य असन्तोषजनक हैं। चतुर्वेदी ठीक ही चाहते हैं कि चुनी हुई पुस्तकों को सहायता दे कर सस्ते मूल्य में प्रकाशित और वितरित कराया जाए। पुस्तकालयों का प्रचार, पुराने लेखों और पुस्तकों का पुनर्मुद्रण और

पुस्तकक्रय के लिए अनुदान दिए जाएं। आर. के. चौधरी^२ ने शिक्षा पर दयानन्द की विचार-धारा का सुस्पष्ट चित्रण किया है और उसे आधुनिक माना है। ज्योत्सना वेलकर^३ मानती हैं कि स्वा. दयानन्द ने राजनीति में भाग नहीं लिया। उन्होंने सामाजिक अभ्युत्थान पर शक्ति लगाई। उन्होंने संसार को शारीरिक, आध्यात्मिक और सामाजिक उन्नति का नारा दिया। जातिप्रथा की कटु आलोचना की। शुद्धि का प्रचार किया। स्त्रियों के अभ्युत्थान के लिए पर्दा, अशिक्षा, सतीप्रथा, विधवाजीवन आदि का विरोध किया। राजवंशी^४ ने गुरुकुल प्रणाली की विशेषताओं का प्रतिपादन करते हुए २० वीं शती में गुरुकुलों के अभियान को विफल माना है। अडवानी और राव^५ ने छात्रों में अनुशासन हीनता की समस्या का, प्रीतम बेली^६ ने आदर्श अध्यापक के गुणों और कार्यप्रणाली, और जोगेन्द्रसिंह ने लोकहितैषी राज्य में प्रशासकीय सेवाओं के आदर्श, लक्ष्य और कार्य का विश्लेषण किया है। सूर्य देव^७ ने आर्यसमाज की हिन्दी सेवाओं पर विहंगम दृष्टि डाली है। सुनीति देवी^८ ने महिला जागृति में आर्यसमाज के कार्य का संक्षिप्त परिचय दिया है। सत्यव्रत^९ का महर्षि दयानन्द का हिन्दी गद्य के जन्मदाता के रूप में मूल्यांकन हिन्दी के इतिहास लेखकों को भारी चुनौती है। राजेन्द्र जिज्ञासु^{१०} का डॉ. ए. वी. संस्थाओं के छात्रों, अध्यापकों और कार्यकर्त्ताओं की स्वतन्त्रता आन्दोलन में देन का वर्णन स्फूर्ति दायक और जानकारी से भरा पढ़ा है। यह इन संस्थाओं के गौरव को सदा के लिए अविस्मरणीय बनाने वाला है। जेमचन्द्र^{११} सुमन का दक्षिण में हिन्दी प्रचार में आर्य समाज के योगदान का विवरण ज्ञानवर्धक और प्रेरणादायक है। उन का यह कहना ठीक ही है कि दक्षिण में हिन्दी प्रचार की विशालता और व्यापकता के मूल में आर्यसमाज के कार्य की प्रधान देन है। भगवान दास^{१२} ने महात्मा हंसराज के प्रभावशाली और आकर्षक व्यक्तित्व, वैदिक विचारों में अदम्य आस्था, आर्यसमाज और लोक कार्य में अनीण उत्साह, लगन और निर्भयता, अलोभ का प्रभावपूर्ण चित्रण किया है।

३. चौथे भाग में आचार्य वान्से के व्यक्तित्व, कृतियों तथा कार्य पर ५४ लेख हैं, जिन में १७ अंग्रेजी में हैं, शेष हिन्दी में। श्री वान्से एक अथक यात्री, अद्भुत कार्यकुशल, विकसमान व्यक्तित्व वाले, सदा कार्यरत, दुःखों से न घबराने वाले लेखक और प्रशासक तपस्वी हैं। इन की शैक्षणिक कृतियां भी उच्च कोटि की हैं। ऐसे विद्वान् कर्मवीर का अभिनन्दन उचित ही था, और किया भी गया। इस ग्रन्थ को उन को भेंट किया गया। उन के अनुरूप बनाने के लिए उस में भारी संख्या में चित्र भी हैं।

२. पृ० ७	३. पृ० ११	४. पृ० १४	५. पृ० २०	६. पृ० २३	७. पृ० ३४
८. पृ० ३६	९. पृ० ४२	१०. पृ० ४९	११. पृ० ५२	१२. पृ० ५७	

१. आज कल अभिनन्दन और स्मृति ग्रन्थों और स्मारिकाओं की भरमार है। उन में से अविश्रान्त सरदार से सदायता लेने, विज्ञापनों से घन कमाने और किञ्चित् प्रसिद्धि के लिए निश्चलते जाते हैं, उन के लेखों के स्तर ऊँचे नहीं होते, न उन में शोषगरिमा होती है। वे सामान्य होते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ उपर्युक्त तीनों में से किसी भी लक्ष्य को ले कर नहीं चला है, इस का शुद्ध सात्त्विक भाव है—ज्ञानिज्ञ का परिचय और वाक्यों का अभिनन्दन। इस कारण इस का स्तर अन्य बहुत से ग्रन्थों से ऊँचा है, परन्तु विद्या की गरिमा की दृष्टि से यह मध्यम गुणों वाला ही माना जा सकता है। आशा है भविष्य में आर्य समाज और उस की संस्थाओं में जब किसी अन्य व्यक्ति को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जायगा, तो उस में शोषगरिमा और ठोस विचारप्रधान लेखों का वादूल्य रहेगा।



महावीर जयन्ती स्मारिका १९७१

प्रधान सम्पादक : भंवरलाल पोल्याका; प्रकाशक : ताराचन्द साह, मन्त्री, राजस्थान जैन सभा,
जयपुर; पृष्ठ ७०+१३२+२०; चित्र ६; मूल्य २-००
समीक्षक : डा० नन्दकिशोर शर्मा, प्राध्यापक दर्शन विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४

आधुनिक युग में विज्ञान के बढ़ते चरण जहां एक ओर मानव के भौतिक जीवन को अधिक सम्पन्न तथा सुखमय बनाने में सहायक हुए वहां दूसरी ओर मानव संस्कृति पर उस का विपरीत प्रभाव भी स्पष्ट परिलक्षित हुआ। समस्त नैतिक तथा धार्मिक मूल्यों को चुनौती दे, उस ने मानव के आध्यात्मिक अस्तित्व को ही संकट में डाल दिया। मानव जीवन केवल भौतिक जीवन नहीं है। उस का वास्तविक अस्तित्व तो नैतिकता तथा आध्यात्मिकता को लेकर है। तथा वे ही आध्यात्मिक तथा नैतिक मूल्य अनादि काल से मानव जीवन को सार्थकता प्रदान करते रहे हैं।

ऐसी स्थिति में जो भी संस्थाएं इस संकट काल में नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का संचालन तथा पुनःस्थापन का कार्य कर रही हैं वे मानव तथा उस की संस्कृति की बहुत बड़ी सेवा कर रही हैं। जैन सभा इस क्षेत्र में विशेष रूप से सक्रिय है। आचार्य तुलसी का अणुव्रत आंदोलन मानव समाज के आध्यात्मिक तथा नैतिक जीवन में क्रांति ला देने की आकांक्षा रखता है। धनी जैन समाज का पर्याप्त धन धार्मिक संस्थाओं में व्यय होता है। इस से जहां एक ओर समाज के नवयुवकों की धार्मिक तथा नैतिक मूल्यों में रुचि एवं आस्था की वृद्धि होती है वहां दूसरी ओर उन की विभिन्न व्यसनों तथा दुर्गुणों से रक्षा भी होती है।

महावीर जयन्ती स्मारिका का लगभग हर वर्ष नियमित प्रकाशन इस दिशा में एक सराहनीय कदम है। हर वर्ष "जनता को महावीर स्वामी के प्रेरणाप्रद जीवन, उन के सर्वोदयी सिद्धांतों आदि के साथ-साथ जैन धर्म और जाति के इतिहास, पुरातत्त्व, संस्कृति आदि की याद दिला ये स्मारिकाएं जीवन को गौरवमय बनाने के लिए प्रेरणा प्रदान करती हैं।" आध्यात्मिक तथा नैतिक महत्त्व के साथ-साथ इन स्मारिकाओं का शोध की दृष्टि से भी काफी महत्त्व होता है। जैन दर्शन, संस्कृति, इतिहास आदि के शोध में समाज की रुचि बनाए रखने के लिए स्मारिका का नियमित प्रकाशन उत्तम साधन है।

इस वर्ष सन् १९७१ की स्मारिका का प्रस्तुत प्रकाशन उपरोक्त दोनों दृष्टियों से सफल कहा जा सकता है। आत्मनिवेदन के अन्तर्गत श्री केवल चन्द ठोलिया और श्री तारा चन्द साह ने

स्मारिका का इतिहास और परिचय दिया है। श्री भंवरलाल पोल्याका ने महावीर जयन्ती की छुट्टी की मांग कर एकता से विशिष्ट, चारित्रपूर्ण, धर्मोन्मुख स्वस्थ समाज के निर्माण का आह्वान किया है। श्री ताराचन्द्र साह ने राजस्थान जैन सभा, जयपुर का परिचय देते हुए उस के कार्य का संक्षिप्त विवरण दिया है। शेष स्मारिका तीन भागों में विभक्त है। प्रथम खण्ड महावीर स्वामी के धर्म तथा दर्शन से संबंधित है जिस में छः कविताएं तथा अठारह लेख संकलित हैं। द्वितीय खंड में इकतीस लेख हैं जिस में आठ कविताएं भी सम्मिलित हैं। उपरोक्त दोनों खंड हिन्दी भाषा में हैं। तृतीय खंड में केवल तीन लेखों का संग्रह है जो आंग्ल भाषा में हैं तथा साथ में चिंतन के लिए कुछ विचार भी संकलित हैं। विवेचन की दृष्टि से हम स्मारिका के लेखों पर विषयानुसार विचार करेंगे।

प्रथम-पद्यात्मक रचनाएं:—जैसा अभी उल्लेख किया, स्मारिका में कुल चौदह कविताएं हैं। द्वितीय खंड में, जो मुख्य रूपसे इतिहास तथा पुरातत्त्व आदि से संबंधित है, कविताओं का होना अप्रासंगिक है। इन कविताओं को भी प्रथम-खंड में ही होना चाहिए था, विशेष रूपसे इस लिए कि प्रथम खंड की कविताएं तथा द्वितीय खंड की कविताएं एक ही प्रकार की हैं। स्मारिका निर्भय हाथरसी की 'ज्योतिर्मय अमरदीप' नामक कविता से प्रारंभ होती है जिस में महावीर स्वामी का जयघोष है। स्मारिका के काव्यात्मक भाग की एक मुख्य विशेषता है पंडित चैनसुख दासजी की कविताओं का समावेश। पंडितजी की सात कविताओं में से एक में कवि भगवान् को वरदान को पूर्ण करने में विलंब के लिए 'उपालंब' देता है। एक अन्य कविता कवि की 'अन्तर्वेदना' को प्रकट करती है जो उसे अपने जीवन की अन्तिम अभिलाषा की पूर्ति में सफलता दिखलाई न देने पर खसेट रही है। 'आत्म कामना' में कवि भगवान् के गुण-गान करते हुए उन में अपने को लीन करने की कामना करता है। महागति में मानव की चरम स्थिति का सुन्दर चित्रण है। किन्तु कवि की सर्वश्रेष्ठ कविताएं हैं 'जीवन-गीत' तथा 'जीवन पट'। 'जीवन-गीत' में कवि निष्ठात्मक जीवन को ही सफल जीवन मानते हैं। निष्ठा में विफलता भी सफलता है। निष्ठा के साथ जूझते रहना ही जीवन की सच्ची सफलता है तथा इस से विमुख होने वाला जन हीन, निर्बल व विमोही है। जीवन पट कवि के अन्तिम समय की रचना है, जब उस का जीर्ण शीर्ष जर्जर शरीर मृत्यु की छाया को स्पष्ट मंडराते देखता है। जीवन का समस्त नशा उतर जाने से निर्मल जीवन अधिक निवार पा जाता है। जीवन व मृत्यु का अन्तर्द्वन्द्व अब अधिक नहीं सहा जाना तथा कवि भगवान् से शीघ्र ही इस से मुक्त करने की प्रार्थना करता है। कविता बड़ी मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी है। उपरोक्त कविताओं से स्पष्ट है कि पं० चैन सुख दासजी न केवल उच्चकोटि के दार्शनिक तथा विद्वान् थे वरन् अच्छे कवि भी थे। स्मारिका की अन्य कविताओं में विपिन

जारोली की 'जीओ और जीने दो' कविता भी उल्लेखनीय है। कविता का भाव उस के शीर्षक से स्पष्ट है।

द्वितीय श्रेणी के लेखों में धार्मिक, दार्शनिक तथा सांस्कृतिक लेखों की चर्चा हम कर सकते हैं। श्री निहाल चन्द जैन का "जीवन सरोज की पांच पांखुड़ी" भावात्मक गद्य प्रणाली में लिखा गया उत्तम लेख है जो महावीर स्वामी के जीवन के पांच पहलुओं का सुन्दर चित्रण करता है। प्रो० उदय चन्द जैन के लेख में अहिंसा दर्शन का अच्छा विवेचन है। अहिंसा प्राणियों का जीवन नष्ट न करना मात्र ही नहीं है। प्राणियों से मैत्रीभाव, राग-द्वेष आदि अन्तरंग शत्रुओं पर विजय प्राप्ति तथा आसन, शयन, भोजन गमनादि प्रत्येक क्रिया का सावधानी पूर्वक सम्पन्न करना भी अहिंसा का आवश्यक अंग हैं। श्री इन्द्रमल जैन ने जैन दर्शन को उस के स्याद्वाद तथा नय सिद्धांत के आधार पर उदार दृष्टिकोण वाला प्रदर्शित किया है। वे कहते हैं कि जैन दर्शन दुराग्रही नहीं है—किन्तु वे इस संदर्भ में इस प्रश्न पर विचार करना भूल जाते हैं कि जब सभी दर्शन अंशतः ठीक हैं तो जैन दर्शन भी तो अंशतः ही सत्य हुआ। फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि जैन दर्शन अन्य दर्शनों की तुलना में अधिक सत्य है जैसा कि जैन दार्शनिक दावा करते हैं। दो ही विकल्प हैं, या तो वह अन्य दर्शनों की भांति ही अधूरा दर्शन है या वह फिर निश्चित अनुदार दर्शन है। श्री चन्दनमलजी चांद अपने लेख में आध्यात्मिक तथा नैतिक क्रांति को ही वास्तविक क्रांति मानते हैं। श्रीमती शांता भानावत ने जैन ग्रन्थों के आधार पर क्रोध का उत्तम विश्लेषण प्रस्तुत किया है। श्री अरार चन्दजी नाहटा ने अपने लेख में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि अहिंसा तथा अपरिग्रह ही विश्वशांति का अमोघ उपाय हैं। श्री सत्यंधर कुमार सेठी ने श्री महावीर को महान् क्रांतिकारी के रूप में देखा है। डा० नरेन्द्र भानावत ने शाकाहार के पक्ष में युक्तियां देते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि शाकाहार ही मानव का प्राकृतिक भोजन है। श्री लक्ष्मीचन्द सरोज ने अणुव्रत के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए इसे अति उपयोगी आंदोलन बतलाया है तथा श्री प्रेमचन्द रावका ने आज के युग में धर्म की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला है। आंग्ल भाषा में लिखा गया डा० ज्योति प्रसाद जैन का 'दी जैन पाथ ऑफ रिलीजन' लेख उच्चकोटि का है। लेखक ने इस लेख में जैन धर्म को युक्ति युक्त तथा माननीय माना है। लेख में जैन धर्म की मुख्य-मुख्य विशेषताओं पर रोचक एवं युक्तिपूर्ण ढंग से प्रकाश डाला गया है।

उपरोक्त सभी लेखों का परिपेक्ष जैन दर्शन तथा धर्म तक ही सीमित है। इन लेखों में किसी भी विषय पर अन्य दर्शनों के संदर्भ में विचार नहीं किया गया है। स्मारिका के अधिकांश लेख इस प्रकार के हैं, यह स्मारिका की एक कमी भी है। इसी लिए स्मारिका में मुद्रित कुछ ऐसे

लेखों का जिन का दृष्टिकोण व्यापक अथवा तुलनात्मक है स्मारिका में विशेष महत्त्व है। इस कोटि के लेखों में आंग्ल भाषा में लिखा हुआ श्री रामचन्द्र जैन का 'पदार्थिज्म' नामक लेख विशेष रूप से उल्लेखनीय है। लेखक के अनुसार पदार्थ आत्मा तथा भौतिक तत्त्वों की एकता है तथा इस ऐक्य का सर्वोत्तम विकास मनुष्य है। मनुष्य न केवल आत्मा है और न केवल भौतिक तत्त्वों का समूह। अतः धर्म तथा दर्शन मानव से संबंधित होने के कारण इन दोनों तत्त्वों को महत्त्व देगा। पूर्ण रूपेण भौतिक संस्कृति अथवा दर्शन वैसा ही एकांगी है जैसा केवल आत्मिक दर्शन। लेखक के अनुसार भारतीय दर्शन सदैव पदार्थ का दर्शन रहा है। आज साम्यवादी संस्कृति ने, जो पदार्थ का दर्शन न हो कर भौतिक दर्शन है, इस संतुलित दर्शन को चुनौती दी है तथा लेखक ने अपने लेख में प्रश्न किया है कि हमें विचार करना है कि इस संक्रमण काल में हम संतुलित पदार्थ के दर्शन को स्वीकार करें या एकांगी साम्यवादी भौतिक दर्शन को? डा० सुधीर कुमार गुप्त का 'महावीर तथा दयानन्द' नामक लेख भी इसी कोटि में आता है। लेख में महावीर तथा दयानन्द का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। लेखक के अनुसार अपने समय में फैले हुए अनाचारों का प्रतीकार करना दोनों महापुरुषों का प्रधान लक्ष्य रहा है। दोनों के दार्शनिक सिद्धांतों में कई रोचक समानताओं पर भी लेखक ने प्रकाश डाला है। लेख विद्वत्ता पूर्ण है। डा० दरवारी लाल का "श्रमण संस्कृति की वैदिक संस्कृति को देन" नामक लेख उत्तम कोटि का है। लेखक के अनुसार श्रमण परंपरा अत्यन्त प्राचीन है तथा बहुत प्राचीन समय से वह वैदिक संस्कृति को प्रभावित करती आ रही है। लेखक के अनुसार वैदिक संस्कृति में अहिंसा, मूर्तिपूजा तथा अध्यात्म का महत्त्वपूर्ण स्थान श्रमण संस्कृति के प्रभाव के कारण ही हैं। श्री रिपभ दास रांका ने भी अपने लेख में बतलाया है कि प्राचीन श्रमण परंपरा ने कई धाराओं में वैदिक संस्कृति को प्रभावित किया है तथा भारतीय संस्कृति इन दोनों परम्पराओं का सुन्दर समन्वय है।

साहित्य सम्बन्धी लेख स्मारिका में बहुत कम हैं। इस विषय पर लिखे गए लेखों में डा० लालचन्द का 'त्रज भाषा—जैन प्रबन्ध काव्यों में लक्ष्यानुसंधान' लेख उल्लेखनीय है। लेखक के अनुसार जैन साहित्यकारों ने सुन्दर के साथ-साथ सत्यं तथा शिवं का मेल बिठाया है जब कि जैनैतर साहित्यकारों का लक्ष्य केवल सुन्दर तक ही सीमित रहा है। साहित्यिक लेखों में प्रो. सत्यव्रत का "जैन साहित्य का नैपथ्य हीर सौभाग्य" नामक लेख भी महत्त्वपूर्ण है।

इतिहास तथा पुरातत्त्व से सम्बन्धित लेखों ने स्मारिका को गौरव प्रदान किया है। इस विषय पर लेखों की संख्या पर्याप्त है तथा इन में से कुछेक लेख उच्चकोटि के कहे जा सकते हैं। आंग्ल भाषा में लिखा गया डा० डी. एन. शुक्ल का "जैन मूर्ति कला" नामक लेख अपना विशेष महत्त्व रखता है। जैन मूर्ति कला का प्रारंभ से लेकर आज तक का इतिहास, उस की विशेषताएं, जैन

दर्शन तथा संस्कृति का उन की मूर्तिचक्रा पर प्रभाव आदि महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर लेखक ने विद्वत्ता के साथ प्रकाश डाला है। डा० भागवत भागवत ने देवगढ़ की उपाध्याय मूर्तियों तथा उन में से एक पर अंकित लेख आ वर्णन प्रस्तुत किया है। श्री दिगम्बर दास जैन ने विभिन्न शिक्षा लेखों, मूर्तियों तथा अन्य आधार पर कुम्हलखंड के इतिहास में जैन पुरातत्त्व के योगदान की चर्चा की है। लेख में शोध विद्यार्थियों के लिए अच्छी सामग्री एकत्रित है। डा० सत्य प्रकाश ने अपने संक्षिप्त लेख में जैन कलाकारों की भारतीय चित्रकला को देन को अनुपम बतलाया है। यदि जैन ग्रंथों की प्रगति, जैन मूर्तियों के पाद लेख, जैन मंदिरों के शिक्षा लेख आदि का अध्ययन किया जावे तो भारतीय इतिहास की रिक्रिता बहुत बरी जा सकती है। श्री रामवल्लभ सोमानी ने उग्रोक्त अथन की पुष्टि अपने लेख में जयपुर के १२ वीं शताब्दी के प्राचीनतम दिगम्बर जैन लेखों के अध्ययन के आधार पर की है। प्रो० कुम्हलखंड राजपेयी ने उग्रविनी के पुरातत्त्व की रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक माला प्रस्तुत की है। तथा डा० पवन कुमार ने श्री महावीर के समय के राजतंत्र तथा राजसत्ता पर प्रकाश डाला है।

अंत में स्मारिका को अधिक उपयोगी बनाने तथा उस का स्तर उच्चतर बनाने की दृष्टि से कुछ सुझाव अनुपयुक्त नहीं होंगे। ऐसे प्रकाशनों का एक उद्देश्य जैन वर्ण दर्शन तथा संस्कृति आदि से पाठकों का सामान्य परिचय कराना भी होता है। किन्तु स्मारिका में कोई भी ऐसा लेख नहीं है जो इस उद्देश्य की पूर्ति कर सके। यदि एक दो ऐसे लेखों का समावेश भी स्मारिका में होता जो जैन वर्ण तथा दर्शन का सामान्य किन्तु समग्र परिचय पाठकों को दे सकते तो स्मारिका की उपयोगिता में निश्चित वृद्धि होती।

आज के युग में विज्ञान से वर्ण को एक बड़ी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। तथा इस का समाधान केवल शक्ति-धुनियों, तीर्थङ्करों, अथवा श्रुति आदि की दुहाई देकर नहीं किया जा सकता। आज ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो वर्ण की सत्यता अथवा उपयोगिता तर्क अथवा युक्ति के आधार पर स्थापित कर सके। कुछ लेखों में इस प्रकार का प्रयास भी किया गया है, किन्तु वह पर्याप्त नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि अभी भी जैन समाज इस चुनौती से पूर्ण रूप से परिचित नहीं है और इसी लिए उस का समाधान खोज निकालने के प्रयास का अभाव है।

भारतीय दार्शनिक परम्परा अती समृद्ध परम्परा रही है। विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों में मुख्य प्रश्नों पर निरंतर तर्क विवाद भी होता रहा है। स्मारिका के लेखकों ने अपने लेखों में इस परम्परा को ध्यान में नहीं रखा है, यद्यपि इस के कई लेखक भारतीय दर्शन से अच्छा परिचय रखते हैं। यदि वे अपने लेखों के परिप्रेक्ष्य को अधिक व्यापक बनाते तो उन लेखों का मूल्य काफी बढ़ जाता।

स्मारिका विश्व हिन्दू परिषद् हाड़ौती सम्मेलन कोटा १९७०

सम्पादक डा० फर्तसिंह, सिन्धु लिपिविशेषज्ञ एवं मू० पू० निदेशक, राज० प्राच्य विद्या

प्रतिष्ठान, जोधपुर; प्रकाशक स्वागत समिति हाड़ौती सम्मेलन; १९७०; पृष्ठ

८+३७+३५ (विज्ञापन); निःशुल्क वितरणार्थ

समीक्षक : डा० सुधीर कुमार गुप्त

प्रवाचक, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४

१. प्रत्येक जाति में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। कभी वह ऊपर उठती है, तो कभी नीचे जाती है। जब वह अधोगामिनी होती है, तो उस जाति के मनीषी उस को ऊपर उठाने के लिए अपने सर्वस्व की आहुति देते हैं। बुद्ध, महावीर, शंकर और दयानन्द आदि ने अपने बलिदानों और उपदेशों से भारतीय जन को ऊँचा उठाने का प्रयास किया और अपने पीछे एक संगठित समाज छोड़ कर गए।

२. विदेशी शासन के युग में हिन्दु-मुसलमान का जो दूषित बीज अंकुरित और विकसित हुआ, उस के विकास की धारा देश के स्वतन्त्र होने पर भी आगे बढ़ती रही। हिन्दू और मुसलमान दोनों ने ही अपने अभ्युत्थान की पृथक्-पृथक् योजना की। हिन्दू विश्वपरिषद् ऐसी ही एक योजना है। यह हिन्दू मात्र का अभ्युत्थान और उत्कर्ष उन को एकता और स्नेह के सूत्र में बांध कर करना चाहती है, भेदभाव को, ऊँच नीच को, आर्य-द्रविड भावना को, हिन्दी और अहिन्दी के विष को दूर करना चाहती है। एतदर्थ जनसम्पर्क के लिए स्थान-स्थान पर अपने सम्मेलन आदि करती है। हाड़ौती सम्मेलन भी एक ऐसा ही समारोह था।

३. हिन्दू विश्वपरिषद् ने अपनी विचारधारा और लक्ष्य से अभिज्ञ करने के लिए प्रस्तुत स्मारिका का प्रकाशन और वितरण किया। इस का आरम्भ संस्कृत पद्य में निवद्ध प्रार्थना तथा जैन, बौद्ध, सिक्ख और हिन्दुओं के प्रार्थना मन्त्रों से मंगलाचरण से होता है। अमर सिंह सिसोदिया ने हाड़ौती प्रदेश पर एक विहंगम दृष्टि में हाड़ौती का भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, और सांस्कृतिक परिचय दिया है। हाड़ौती में भील, मीना और गणसिया नामक वनवासी रहते हैं। उद्घोधन में फतह सिंह ने भारतीय भावना और आदर्शों को प्रस्तुत करते हुए जनमात्र का उन आदर्शों की उपलब्धि के लिए आह्वान किया है। पादटिप्पणी में कठिन शब्दों का अर्थ दिया है। तत्परचान् २६ पृष्ठों में देश की विविध महान् विभूतियों के उत्साह और प्रेरणा दायक सन्देश हैं। इन में हिन्दुओं के सब वर्गों का अध्ययन कर उन को संगठित करने, व्यावहारिक कार्यक्रम निर्धारित करने, मन्दिरों की सुरक्षा, हिन्दू-मुसलमान—दोनों के लिए एक से नागरिक कानून

वनवाने, पारिवारिक आदर्शों की स्थापना करने त्रिविध संस्कार को जागृत करने, वैदिक चिन्तन पर प्रतिष्ठित आर्य सत्य को पहचान कर व्यवहार में लाने, साम्प्रदायिक और संकीर्णता की समस्याओं के समाधान तथा राष्ट्रकल्याण के लिए ठोस कार्यक्रम बनाने की प्रेरणा दी गई है।

४. अगले छै पृष्ठों में विश्व हिन्दू परिषद् के प्रन्यासी मण्डल, प्रबन्ध समिति, राजस्थान में परिषद् के कार्य की प्रगति और राजस्थान प्रदेश समिति के विवरण दे कर राजस्थान में सेवा योजनाओं, उद्देश्य और प्रवृत्तियों का परिचय दिया है। विज्ञापनों से पूर्व हिन्दुओं के संदर्भ में ईसाई शिक्षा संस्थाओं, धर्मयाजकों और उन के प्रचार और हिन्दू विश्व परिषद् की अद्यावधि उपलब्धियों के विवरण दिए गए हैं, जो इस विषय पर कार्य करने वाले शोधक के लिए उपयोगी हैं।

५. स्मारिका में कुल सात लेख हैं—छै हिन्दी में और एक अंग्रेजी में। अंग्रेजी लेख में आनन्दप्रिय ने हिन्दु जाति के चारों ओर मंडराने वाली अनेकों भीतियों और समस्याओं का चित्रण कर के उन से त्राण की योजना बनाने का आह्वान किया है।

६. हिन्दी लेखों में प्रमुदयाल अग्निहोत्री ने 'भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व' में आत्मा की शाश्वतता, कर्मवाद और वर्णाश्रम-व्यवस्था का विवेचन किया है। आप ने ठीक ही लिखा है कि भारतीय जन-जीवन पर उसकी दार्शनिक और धार्मिक विचारशैली की छाप है। यह हिन्दू को अविच्छिन्न जीवनप्रवाह, कर्मण्यता और कर्तव्यपालन का सन्देश देती है। डा० अग्निहोत्री ने आधुनिकों की शूद्र, दास, दस्यु आदि सम्बन्धी कतिपय मान्यताओं का औचित्यपूर्ण खण्डन किया है। भारत में पूर्वकाल में सब धर्मों में सह अस्तित्व भाव था। वे एक दूसरे का आदर करते थे। वर्ण के जन्मगत हो जाने से ही ईर्ष्या द्वेष आदि की वृद्धि हुई। शिक्षा निःशुल्क और समानता की आपदक थी। विद्याप्रतिष्ठान समाज के नियामक थे। वहीं साहित्य-रचना हुई।

७. शि. शं. आपटे ने विश्वहिन्दू परिषद् की कल्पना और उस के विचारों का परिचय देते हुए माना है कि हिन्दुओं के द्योतन के लिए हिन्दू शब्द बहुत ही उपयुक्त है। यह भौगोलिक क्षेत्र का द्योतक है। आज हिन्दू समाज विघटन के पथ पर है। उस को सब ओर से भय उत्पन्न हो चुका है। अतः उन में उत्साहसृजन, संघटन और आत्मबोध जागृत करने की आवश्यकता है। हिन्दू विश्व परिषद् का लक्ष्य यह सब कुछ करना है। आज राजनैतिक कारणों से अथवा अलौकिक उदारता से प्रेरित हो कर अथवा दूसरों की प्रतिक्रिया से भयभीत हो कर तथा अन्य एवं-विध कतिपय कारणों से हिन्दू की जात करने वाले को साम्प्रदायिक और देश के साथ उचित न्याय न करने वाला घोषित किया जाता है। लेखक ने इस प्रतिक्रिया की ठीक ही उपेक्षा की है

और बड़ी शिष्ट और संयत भाषा में अपनी मान्यता को प्रस्तुत किया है। उन की मान्यता 'धर्मान्तर का अर्थ है राष्ट्रान्तर' पूर्णतः तो नहीं, अंशतः ही सत्य मानी जा सकती है।

८. रामजी उपाध्याय ने विभिन्न धर्मों और कालों—वैदिक, बौद्ध, जैन और हिन्दू में साधु शक्ति के स्वरूप और प्रभाव का संक्षिप्त वर्णन किया है। प्राचीन काल में साधु ही सच्चे कर्मयोगी और उदात्त आदर्शों के संस्थापक थे। डा० उपाध्याय आधुनिक भारत के पुनर्निर्माण के लिए साधु शक्ति की पुनः अवतारणा को आवश्यक मानते हैं। डा० उपाध्याय का कर्मयोगित्व को साधुओं में ही सीमित कर देना विचारणीय प्रतीत होता है। राम और कृष्ण जैसे कर्मयोगी साधु नहीं थे। वे गृहस्थ थे। भीष्म आदि भी साधु नहीं थे। साधु वीतरागी और सर्वहितेच्छु होता है। ऐसे जनों की आज परम आवश्यकता है।

९. आनन्दपाल सिंह रघुवंशी का सन्देश सभी भारतवासियों के लिए उपयोगी है। आज भारतवासी कर्मठ और व्यावहारिक कम है। दर्शन, महान् व्यक्तियों और वर्णव्यवस्था आदि के गुणगान मात्र से कल्याण सम्भव नहीं। हिन्दू के लिए आवश्यक है कि वह विभाजन का अन्त, दलितों का उद्धार, समाज का एकीकरण एवं स्वदेशीकरण करे और देश में सब के लिए सुख, शांति और वैभव उत्पन्न करे और उसे बनाए रखे। विज्ञान और अध्यात्म की मिली-जुली विचारधारा ही आज का व्यावहारिक धर्म हो सकता है। हिन्दुओं के पुनरुत्थान के लिए डा० रघुवंशी ने २० सूत्री कार्यक्रम सुझाया है।

१०. स्मारिका का प्रमुख और सब से अधिक महत्त्वपूर्ण लेख फतह सिंह का 'संयोजक वक्तव्य' है जो १२ उपशीर्षकों—फूट और अलगाव, हिन्दुत्व बोध, हिन्दुकुश की परम्परा, परशु का प्रतीक, हिन्दुत्व, व्यावहारिकता, हिन्दू मात्र की सम्पत्ति, सम्मिलित प्रयत्न की रूपरेखा, हमारे आन्दोलन का आधार घृणा न हो, अस्पृश्यता हिन्दुत्व विरोधी, अस्पृश्यता केवल तात्कालिक आवश्यकता के रूप में और विवेयात्मक दृष्टि की आवश्यकता में प्रस्तुत किया गया है। लेखक की मान्यता उचित ही है कि हिन्दू समाज अपनी मूल भावना 'एकं सत्' के सिद्धान्त को भूल कर अलगाव की शोचनीय प्रवृत्तियों से आक्रांत हो गया है। इस सिद्धान्त से ही हिन्दुत्व की यह प्रमुख विशेषता विकसित हुई है 'कि वह अपनी परिधि में अनेक प्रकार की विविधता को समेटे हुए है और किसी एक मान्यता के लिए दुराग्रह नहीं करता है।' लेखक के मत में हिन्दु शब्द देशवाची है जो सिन्धुघाटी की मुद्राओं के 'हिन्धु' पद से विकसित हुआ है और विदेशी भाषाओं में इंडोस, इंडस और इंडिया के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। सिन्धु और हिन्धु का सह अस्तित्व था। आध्यात्मिक दृष्टि से 'हिन्धु' का 'सिन्धु' में पर्यवसान होता है। इस 'सिन्धु' आदर्श का चित्रण लेखक ने ऋ. १०-६ से उपस्थित किया। इस सूक्त से विलोचिस्तान से ब्रह्मा

पर्यन्त भारत का चित्र सामने आता है। लेखक के इस कथन में सार प्रतीत होता है कि हिन्दुकुश नाम में हिन्दु और √कृष् का ध्वन्यात्मक और आर्थिक योग है। वे परशु को भी हिन्दुकुश का समानार्थक एक प्रतीक मानते हैं। परशु का लक्ष्य असत्य का नाश और सत्य—आनन्दमय सोम का पुनरुज्जीवन है। अतः हिन्दुत्व में व्यक्ति और राष्ट्र का वह निर्माण निहित है जो हिन्दू को सम्पूर्ण हन्ता को नष्ट कर सम्पूर्ण विश्व को हिलाने वाला बना सकता है। हिन्दु पद राष्ट्रीय संस्कृति का द्योतक है। उसे सम्प्रदाय मानना अनुचित है। वह जयन, यजन और भजन के द्वारा मानवता के उत्कर्ष की कामना करता है। आज यदि डा० सिंह के हिन्दु और हिन्दुत्व के इस व्याख्यान को सुचारु रूप में मनोगत कर लिया जाए तो राष्ट्र के कुछ व्यक्तियों में हिंदु को बुरा-भला कहने, हिंदु के प्रत्येक कार्यकलाप की निंदा करने, उसे साम्प्रदायिक कहने की जो दूषित प्रवृत्ति प्रतिदिन समाचारपत्रों और भाषणों आदि में दिखाई पड़ती है, प्रत्येक विज्ञ, राष्ट्रहितैषी और न्याय्य व्यक्ति को उस के निराकरण और अपनयन के लिए विचार करने के लिए बाधित होना पड़ेगा। स्वयं हिंदु समाज को भी आत्मबोध होगा और वह अपनी रक्षा और अभ्युत्थान में समर्थ होगा। डा० सिंह ने हिंदू को परामर्श दिया है कि वह स्नेहसिक्त वातावरण में राष्ट्रोत्थान के आंदोलन के निमित्त विवेचात्मक दृष्टि को अपनाते हुए ऋग्वेद के 'विश्वमानुष' और 'सिधु-क्षित्' आदर्शों को पूर्णरूपेण अपने जीवन में ढाले। इस प्रकार लेखक हिंदू को संकीर्णता, अकर्मण्यता और हीनता से उठा कर उदार, सक्रिय और उन्नत राष्ट्रीय व्यक्ति बनाता है।

११. प्रस्तुत स्मारिका के इस विवरण से यह अनायास ही समझा जा सकता है कि यह अपने लक्ष्य के अनुरूप बन पड़ी है। इस का अध्ययन उदार भावों की सृष्टि और आत्मबोध में सहायक है। साथ ही विश्वहिंदू परिपद् के असाम्प्रदायिक रूप का भी इस से सम्यक् परिचय हो जाता है। विश्वहिंदू परिपद् की साहित्यिक गतिविधि यदि इस प्रकार की स्मारिकाओं के साथ और भी शोधप्रधान रचनाएं प्रस्तुत कर सकी तो यह निश्चय ही देश में प्रेम और एकता का भाव जागृत करने में राजकीय भाविक वैमल्य की योजनाओं से कहीं अधिक सफल हो सकती है। इस विषय में डा० फतह सिंह की सिधु घाटी विषयक खोजें और भारतीय समाज और संस्कृति के व्याख्यान विश्वहिंदू परिपद् के लिए विशेष मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं।

१२. स्मारिका का मुद्रण आदि उच्च कोटि का है।

अलंकारस्य संस्कृतसोपानम्

प्रणेतृ डा० सुभाष वेदालंकार (तनेजा), एम. ए., पीएच. डी., साहित्याचार्य; प्रकाशक : अलंकार प्रकाशन, ७४, आदर्श नगर, जयपुर-४; प्रथमसंस्करण (१८-७-६६); पृष्ठ ८+८-ख+६६; मूल्य १-३०
समीक्षक : डा० सुधीर कुमार गुप्त, प्रवाचक, संस्कृत विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४

१. संस्कृत भाषा चिरकाल से मानवों को, विशेषतः भारतीयों को विविध प्रकार की अनुभूतियां देती रही है। पिछली लगभग दो शताब्दियों में तो पश्चिम ने इस से विशेष अनुभूति ले कर भाषाविज्ञान आदि अध्ययनों का प्रवर्तन किया है। संस्कृत इस देश को आदि काल से एकता के सूत्र में बांधती रही है। जब-जब भी भाषाविवाद की परिस्थितियों में देश में विघटन की प्रवृत्तियों ने जन्म लिया, तभी संस्कृत ने अपनी सौम्यता और सर्वग्राहिता से देश को विघटन से बचाया। अतः भारतीय संस्कृत का पढ़ना-पढ़ाना अहो भाग्य मानते रहे हैं। आज देश की परिस्थितियों में संस्कृत के व्यापक पठन-पाठन का महत्त्व और भी बढ़ गया है। अतः उस के पठन-पाठन में सहायक सभी सामग्री अभिनन्दनीय है।

२. प्राचीन काल से ही बालकों को संस्कृत सिखाने के लिए ग्रंथ लिखे जाते आए हैं। लघुपाणिनीय, ऋजुपाणिनीय, लघुसिद्धांतकौमुदी, अनुवादशिक्तक, भाषाप्रवेशिकाएं, सरल व्याकरण आदि बालकों को बोध कराने के लिए रचे गए हैं। डा० तनेजा का प्रस्तुत प्रयास भी संस्कृत में प्रवेश पाने वालों के लिए है। इस में चार सोपान हैं—पहले में वर्ण, सन्धि, विभक्ति, कारक, क्रिया, धातु, समास, अव्यय, कृदन्त और तद्धित का प्रारम्भिक परिचय दिया गया है। दूसरे सोपान में व्यवहारोपयोगी ५७ शब्दों और ३० धातुओं के रूप दिए हैं। धातुओं के रूप पांच लकारों के हैं। चार धातु आत्मनेपदी हैं। तीसरे सोपान में व्यावहारिक शब्द और धातु कोष देते हुए यह भी इंगित किया है कि उन के रूप किस प्रतिनिधि शब्द या धातु के समान चलेंगे। चौथे सोपान में पत्रलेखन सम्बन्धी कुछ सामान्य निर्देश दे कर संस्कृत में ५ पत्र और १३ छोटे-छोटे निबन्ध दिए गए हैं। इस प्रकार विषयों के चयन और प्रतिपादन की दृष्टि से रचना बहुत उपयोगी है जिस में व्याकरणविषय को आधुनिक पद्धति पर प्रस्तुत करते हुए सरल करने का भरसक प्रयास किया गया है।

३. प्रारम्भिक स्तर के छात्रों के लिए निर्मित पुस्तकों में मुद्रण, कागज और टाइप का विशेष ध्यान आवश्यक है। इस पुस्तक में इन का उचित ध्यान नहीं रखा गया है। टाइप बारीक है। छपाई घिनकी है, और कागज हल्का है। मुद्रण में पर्याप्त भूलें हो गई हैं। लेखक ने स्वयं प्रन्थारम्भ में चार पृष्ठ का शुद्धिपत्र दिया है।

४. यदि लेखक इस में हिन्दी से संस्कृत में और संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद करने पर भी कुछ पृष्ठ जोड़ देते, तो पुस्तक और भी अधिक उपयोगी बन जाती।

Descriptive List of Works

by Dr. S. K. Gupta

N. B. All books are in Hindi except nos. 1 and 26-29 which are in English.

Prices indicated here are exclusive of postage which runs from Rs. 1, 25 to Rs. 2, 50 depending upon the weight of the publication. Full postage is charged.

1. **Seers of the Ṛg-Veda, Their Message And Philosophy** :—(with Hindi Translation and Appendices) being the Kerala (University) Koil Varma Valia Thampuram Gold Medal Essay for 1954. The paper arrives at the conclusion that the names of ṛṣis, devatās and chandas' associated with Vedic verses are special terms coined to express the senses of the Mantras related with them. Price Bound Rs. 8/-
2. **Rāvaṇa Bhāṣyam** :—is the first critical edition in Devanagrī script of the commentary by Rāvaṇa on thirteen Ṛks preserved by Sūrya Paṇḍita Daivajña in his Parmārtha-Prabhā ṭīkā on the Gītā. It is an improvement upon the collection of Hall (now long out of print) and the remarks of Pt. Bhagavaddatta. The introduction contains a comparative study of the various commentators and Rāvaṇa. The appendices and indices contain a Hindi version of the commentary, the various interpretations of Vedic words by various commentators and a lot of other information. Price Rs. 15/-
3. **Bhāratīya Darśana ke Sampradāya** :—The only book in Hindi presenting a brief introduction to the history, contents and literature of Indian philosophy from the Vedas to the present day. It deals with the philosophies of the Vedas, the Smṛtis, the systems of philosophy—orthodox (Sāṃkhya, Yoga, Nyāya, Vaiśeṣika, Pūrvya and Uttara Mīmāṃsās), heretic (Cārvāka, Bauddha, Jaina), Tantras—Hindu, Bauddha and Jaina and new systems of Nānaka and other saints, Dayānanda Saraswatī, Ānanda Mārga, Brahmākumārī, Aravinda Ghosha, Mahatmā Gāndhī, Swāmī Śaraṇānanda, Parsis, Christians and Musalmans along with various appendices and an index. It is most suited to the general reader, the B. A. student and those who require authentic information on new systems and trends of Indian philosophy. Cloth Bound Rs. 7.50, Ordinary Binding Rs. 6. 00, Paper back Rs. 5. 00

4. **Veda-Lāvaṇyam** :—in two parts contains an edition of the initiation aphorisms of Pāraskara, Rv. I. 154; II. 12; X. 90 (also Yv. 31); 121; 125 with detailed introductions, Sāyaṇa's commentary, Hindi translation, notes containing critical and comparative study of important words, phrases and sentences with three appendices on vedic grammar, accent and padapāṭha. Unbound Rs. 11-00
Library edition Rs. 13-50

Vol. I Cloth bound 10-50

Vol. II Unbound 3-00

(Some of its parts are also available separately as indicated below :-)

5. **Saṭippana Pāraskariyopanayana Sūtrāṇi** :—contains introduction, text of Pāraskara Gṛhyasūtra Upanayana sūtras, their Hindi translation and notes (containing among other things translation of verses according to the ceremony in which they are applied). Paper back Rs. 4-00
6. **Pāraskariyopanayanasūtrāṇi** :—contains Hindi translation with text and notes and indices. Paper back Rs. 3-50
7. **Ṛksūktāni** :—contains the text, Sāyaṇa Bhāṣya, Hindi translation and notes on Rv. I. 154; II. 12; X. 90 (as also Yv. XXXI); 121; 125 with appendices on padapāṭha, Vedic accent and grammar and indices. Paper back Rs. 7-00
8. **Indra Sūkta** :— Paper back Rs. 1-50
9. **Puruṣa Sūkta** :— Paper back Rs. 1-50
10. **Veda Bhāratī** :—presents a collection of Rv. 3. 62. 10; 5. 82. 5; Yv. 36. 24; Ait. Br. 33. 2-3; Śat. Br. 1. 8. 1. 1-11; Tait. Up., Śikṣā Vallī, 9; 11 and Iśa Upaniṣad with Hindi translation, notes and author's own Sanskrit commentary. Bound Rs. 4-80, Paper back Rs. 4-00
11. **Veda Bhāratī (Kena)** :—Above with Kenopaniṣad in place of Iśa Upaniṣad. Paper back Rs. 4-80
12. **Veda Bhāratī (A)** :—The above without the Iśa and the Kena Upaniṣads. Paper back Rs. 3-00

13. **Īsopaniṣad** :—It contains the text of the Upaniṣad with a brief introduction, Hindi translation, explanatory and critical notes containing several new interpretations etc., a new simple Sanskrit commentary 'Bhāvaprakāśikā Sudhīriṇī' by the editor containing a summary of the views of commentators and the editor's own views.

Paper back Rs. 1-25

14. **Kenopaniṣad** :—It contains the text of the Upaniṣad with a brief introduction, Hindi translation, critical and explanatory notes containing editor's new interpretations, editor's new Sanskrit commentary—'Bhāvaprakāśikā Sudhīriṇī', appendices and indices. This edition claims to present for the first time a clear, easy and intelligible exposition of some of the intricate and difficult passages of the text. Import and nature of Umā, the senses of Yakṣa with reference to adhyātma and adhideva have become clear. The appendices contain a running Hindi translation, **English translation**, a note on metres in the Upaniṣad and a comparative study of the tadvanam of the Kenopaniṣad with the tadvanam of the Indus seals as deciphered by Dr. Fatah Singh.

Paper back Rs. 2-50 Library edition Rs. 3-50

15. **Vedabhāṣyapaddhati ko Dayānanda Sarasvatī kī Dena kā Sāra** :—It is a short summary of the author's thesis for the Degree of Doctor of philosophy (Rajasthan University). The full work contains 40 chapters and several appendices. This summary gives a gist of all these chapters, and appendices. It also contains a brief statement of the author's further work on this subject done after the composition of this work.

Paper back Rs. 2-50 Library edition Rs. 3-50

16. **Samkṣipta Daśa Kumāra Caritam** :—Chapters I, II and III of the Pūrva Pīṭhikā and the Uttara Pīṭhikā with a detailed introduction, Sanskrit gloss, literal Hindi translation, notes (on ch. 1 only), indices and the Pūrvavṛttānta of Bhaṭṭa Nārāyaṇa with Hindi translation.

Bound Rs. 6-50

17. **Prathama Uchchvāsaḥ** :—of the Pūrva Pīṭhikā of Daśakumāra Caritam of Daṇḍin edited with introduction, notes, Hindi translation, Pūrvavṛttānta etc., Vocabulary and indices (From the above).

Third Edition Bound Rs. 4-60 Paper back Rs. 3-80

18 **Viśruta Caritam** :—Chapter VIII and the relevant portion of the Uttara Piṭhikā of the Daśakūmāra Caritam edited with a new detailed Sanskrit commentary Sudhīriṇī Bhāvaprakāśikā by the editor along with Hindi translation, notes and introduction.

Fourth Edition Library edition Rs. 7-20 Paper back 4-40

19. **Kumārotpattirviśrutacaritañca** :—A combined edition of the preceding two publications (Chapter I and Chapter VIII) with one introduction. Rs. 7-80

20. **Sukanāsopadeśaḥ** :—of the Kādambarī of Bāṇa Bhaṭṭa edited with a detailed introduction, new Sanskrit commentary Anilā by the editor, literal Hindi translation and notes etc.

Bound Rs. 4-80 Paper back Rs. 4-00

21. **Bāṇa aurā Daṇḍī-Eka Adhyayana** :—It presents a critical, comparative and analytical study of the two Sanskrit prose writers. It deals with the definition and other problems of prose, prose romance, life, date, works, style, merits, demerits, description of nature, sentiments, figures of speech, knowledge of Paurāṇika mythology, art of story writing etc. etc. of both the poets. The study of the two poets presented here forms part of the introductions to publications numbers 16 to 20 above. Cloth Bound Rs. 6-00

N. B. The study of these poets is also available separately—Bāṇa Rs. 4-00; Daṇḍī Rs. 3-50

22. **Meghadūta kī Vaidika Pṛṣṭhabhūmi aurā Usa kā Sāhskṛtika Sandeśa** :—discusses the vedic background of the paurāṇika myths alluded to in the Meghadūtam of Kālidāsa and brings out their cultural import. 0-90

23. **Arthavyaṅjakatā-Citram** :—is a chart presenting a comparative study of the arthavyaṅjanā treated in the Sāhitya Darpaṇa and the Kāvya Prakāśa. 0-60

Collections of Spare Reprints of Research Papers and Articles :— (from various journals). Supply of these reprints is subject to availability at the time of indent or supply as the case may be.

24. **Vaidika bhāṣā aurā Nirvacana** :—(It contains 7 papers). Rs. 8-50

25. **Yāskīya Nirvacāna** :—contains 4 papers. All these are also included in the above collection. Rs. 6-00
26. **Ancient Schools of Vedic Interpretation** :—discusses the underlying unity of all the Vedic schools of interpretation referred to by Yāska in his Nirukta. (Reprint from the JGRI). Rs. 3-00
27. **Coconut (Tryambaka) in the Ṛg-Veda is the Origin of Śiva Cult** :— It is a reprint from the Śódha Bhāratī and holds that the Śiva cult has originated and developed from a personification of the coconut (=tryambaka). Rs. 4-00
28. **Indological Essays** :—contains the reprints of the above two papers along with a reprint of 'Monosyllabic Origin of the Vedic Language', (from the JGJRI). Rs. 10-50
29. **Nature and Scope of Etymology in the Context of Vedic Words** :— It is a reprint from the RUSSH. It examines critically the modern and ancient concepts of etymology in relation to their usefulness for Vedic interpretation and suggests the adoption of Indian approach corroborated by evidences of modern approach. Rs. 5-00
30. **Indological Papers** :—Includes the above, and Law of Palatalisation, A Rethinking, Aryan Problem, Validity of Historical and Legendary Interpretation of Vedic Stanzas, Viśvāmitra and Nadiyām, Brāhmaṇa and Veda meṃ Vikāra. Rs. 12-50

दी बैंक आफ राजस्थान लिमिटेड

पंजीकृत कार्यालय, उदयपुर

केन्द्रीय कार्यालय, जयपुर

राजबैंक जन हितैषी डिपोजिट योजना

राजबैंक "जन हितैषी डिपोजिट योजना" के अन्तर्गत आपकी जमा ज्यों की त्यों बनी रहेगी लेकिन फिर भी आपको हर महिने एक निश्चित आमदनी प्राप्त होगी।

आरम्भिक जमा राशि या

मासिक आमदनी या

उसका गुणांक

जमावधि

उसका गुणांक

१,००० रु०

२४ माह

५.६२ रु०

१,००० रु०

३७ माह

६.०४ रु०

१,००० रु०

६१ माह

६.२५ रु०

आप इस मासिक आमदनी से अपने बच्चों की शिक्षा की फीस, मकान किराया, बीमा किस्त आदि का भी सुविधापूर्वक भुगतान कर सकते हैं।

कृपया विशेष जानकारी के लिए बैंक की किसी निकटस्थ शाखा से सम्पर्क करें।

सुरक्षा के लिए राजबैंक में बचत कीजिए।

साईदास मेहरा

अध्यक्ष

जयपुर नगर का सुनियोजित विकास कर बढ़ती हुई आवास समस्या के हल के लिए

नगर विकास न्यास ट्रस्ट प्रतिज्ञ है

किन्तु

यह तभी सम्भव है जबकि आप सहयोग दें।

१. न्यास भूमि पर अतिक्रमण न होने दें।
२. किसी प्रकार का अनधिकृत निर्माण न करें।
३. न्यास द्वारा स्वीकृत योजनाओं में ही भूखण्ड खरीदें।
४. कृषि भूमि को आवादी की वता कर बेचने वालों से सावधान रहें।

आवास के लिए नई योजनाएं बनाना

व

कच्ची वस्तियों का उद्धार हमारा संकल्प है।

वालचन्द्र वैद्य

अध्यक्ष

नगर विकास न्यास, जयपुर द्वारा प्रसारित

अल्प बचत के नये साधन

७ वर्षीय नेशनल सेविंग सर्टिफिकेट (चतुर्थ निर्गम) :—

ये सर्टिफिकेट (१००), (१,०००) व (५,०००) रुपये के डाकघरों व स्टेट बैंक व उसके सहायक बैंकों से खरीदे जा सकते हैं। इनमें व्याज ७। प्रतिशत प्रति वर्ष दिया जाता है। तीन वर्ष पश्चात् भुनवाये जा सकते हैं।

डाकघर टाइम डिपोजिट :—

५० रुपये के गुणन में यह डिपोजिट किसी भी डाकघर में करवाये जा सकते हैं। व्याज निम्न प्रकार है :—

१ वर्ष के लिये ६ प्रतिशत

३ वर्ष के लिये ७ प्रतिशत

५ वर्ष के लिये ७। प्रतिशत

५ वर्षीय डाकघर रिकरिंग डिपोजिट खाता :—

५ रुपये के अभिदान में यह रिकरिंग खाते किसी भी डाकघर में खोले जा सकते हैं :—

प्रति माह रकम	२०	५	१०	२०	५०	१००	५००
५ वर्ष बाद कुल रकम	२०	३५५	७१०	१४२०	३५५०	७१००	३५५००

५ वर्ष में एक बार, किन्तु १ वर्ष बाद जमा रकम की आधी रकम श्रृण ले सकते हैं।

इन तीनों योजनाओं में जमा करने की अधिकतम कोई सीमा नहीं है। इनसे व अन्य स्वीकृत मदों से एक वर्ष में एक नाम से मिलने वाली व्याज की रकम ३००० रु० तक पर कोई आय-कर नहीं लगाया जायेगा और न ही त्रोट पर आय-कर कटेगा। इनमें संस्थायें रकम जमा नहीं करा सकती।

पूर्ण विवरण व सेवा हेतु सम्पर्क करें :—

जिला औरगेनाईजर, राष्ट्रीय बचत (भारत सरकार), पोस्ट मास्टर एवं स्टेट बैंक आफ इण्डिया व स्टेट बैंक आफ बीकानेर एण्ड जयपुर, अल्प बचत एवं स्टेट लीटररीज विभाग, राजस्थान, जयपुर।

With

Best Compliments

From :

JAIPUR PRINTERS
JAIPUR

LMB

Cable : ALAMBE.

Phone : 61261 (3 Lines)

While in Jaipur,

'THE PINK CITY'

Visit

L.M.B. Hotel

JOHARI BAZAR

JAIPUR

- * Each Room has telephones.
- * Private bath—running hot and cold water.
- * Air-conditioned rooms with radio and refrigerator.
- * Superb cuisine Indian VEGETARIAN.
- * Lift service, central location, parking facilities.
- * Air-conditioned attached-Restaurant.
- * 'LAXMI MISHTHAN BHANDAR'

राज्य में परिवार नियोजन के क्षेत्र में प्राप्त उपलब्धियां

योजना के शुरु से सितम्बर, १९७१ तक

विवरण

उपलब्धियां

(अ) नसबन्दी किये गये

214747

(ब) लूफ लगाये गये

121220

(स) गर्भ निरोधक उपकरण वांटे गये :—

(1) निरोध

8941869

(2) डयफाम

120534

(3) जेलो/क्रीम

142010

(4) भागवाली गोलियां

2456786

राज्य परिवार नियोजन संस्थान, राजस्थान, जयपुर द्वारा प्रसारित

इस अंक के लेखक और समीक्षक

१. श्रीमती कृष्णा बोस, एम. ए., घोष छात्रा, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४
२. डा० नन्द किशोर शर्मा, एम. ए., पीएच. डी., प्राध्यापक, दर्शन विभाग, राजस्थान विश्व-विद्यालय, जयपुर-४
३. श्रीमती प्रीति प्रभा गोयल, एम. ए., प्राध्यापिका, संस्कृतविभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर
४. डा० फरह सिंह, (मूलपूर्व निदेशक, राजस्थान थोरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, जोधपुर), प्रोफेसर्ज कार्लोनी, नयापुरा, कोटा
५. डा० राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, एम. ए., पीएच. डी., रीडर, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४
६. डा० वीरेन्द्र सिंह, एम. ए., पीएच. डी., व्याख्याता, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४
७. श्री शिवसागर त्रिपाठी, प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
८. श्रीमती सुकेशी रानी गुप्ता, प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, रघुनाथ गर्लज कालिज, मेरठ
९. डा० सुधीर कुमार गुप्त, एम. ए., पीएच. डी., शास्त्री, प्रभाकर, प्रवाचक, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४

फरवरी के अन्तिम दिवस के पश्चात् प्रकाशित होने वाले प्रथम अंक में प्रकाशनीय त्रैमासिक भारतीयशोधसारसंग्रह, जयपुर के स्वामित्व और अन्य विषयों का विवरण—

फार्म ४

(नियम ८ के अनुसार)

- | | |
|---|--|
| १. प्रकाशन का स्थान | जयपुर |
| २. प्रकाशनान्तराल | त्रैमासिक (वर्ष में चार अंक) |
| ३. मुद्रक का नाम
राष्ट्रीयता
पता | श्री सुबोध कुमार गुप्त
भारतीय
भारती मन्दिर अनुसन्धान शाला,
आर-२, विश्वविद्यालयपुरी, जयपुर-४ |
| ४. प्रकाशक का नाम
राष्ट्रीयता
पता | श्री सुबोध कुमार गुप्त
भारतीय
भारती मन्दिर अनुसन्धानशाला,
आर-२, विश्वविद्यालयपुरी, जयपुर-४ |
| ५. सम्पादक का नाम
राष्ट्रीयता
पता | डा० सुधीर कुमार गुप्त
भारतीय
आर-२, विश्वविद्यालयपुरी, जयपुर-४ |
| ६. पत्रिका के स्वामी का
नाम और पता | भारती मन्दिर अनुसन्धानशाला,
आर-२, विश्वविद्यालयपुरी, जयपुर-४ |

मैं, सुबोध कुमार गुप्त घोषणा करता हूँ कि ऊपर दिये गए विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

सुबोध कुमार गुप्त

प्रकाशक

फोन कार्यालय : ७४२८४

राजस्थान राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक लि०

१०१, अशोक मार्ग, सी-स्क्रीम, जयपुर-१

राजस्थान राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक लि०, जयपुर राज्य में कृषि विकास के प्रयोजनों हेतु दीर्घकालीन ऋण वितरण करने वाली एक मात्र शीर्ष संस्था है जो अपने ३५ प्राथमिक भूमि विकास बैंकों के माध्यम से कृषकों को ऋण उपलब्ध कराती है। साधारण भूमि विकास कार्यों के लिए व्यक्तिगत ऋण प्राप्ति की अधिकतम सीमा २५,०००/- तथा टू कटर क्रय करने हेतु यह सीमा ६०,०००/- रू० रखी गई है। कृषकों से ली जाने वाली व्याज की दर ६ $\frac{1}{2}$ प्रतिशत प्रतिवर्ष है। ये ऋण ५ से १५ वर्ष की अवधि में चुकाए जा सकते हैं।

विशेष जानकारी के लिए अपने क्षेत्र के प्राथमिक सहकारी भूमि विकास बैंक से सम्पर्क करें।
श्रीकृष्ण भापुर, प्रधान व्यवस्थापक
नारायण चतुर्वेदी, अध्यक्ष

फोन नं० ६१३७५

जी भर के जीन्नों, गोल्ड स्पॉट पीन्नों !

ठन्डा

गोल्ड-स्पॉट

पीन्नों

निर्माता : जयपुर वॉटलिंग कम्पनी, भोटवाड़ा

बल स्फूर्ति और नवयौवन

के लिए

डावर च्यवनप्राश (अष्टवर्ण युक्त)

८०० ग्रा० की एक पैकिंग खरीदने पर
एक डावर डायरी १६७२ फ्री दी जायगी ।

राजस्थान प्रदर्शनी स्टाल नं० १४१

कृष्णा एन्जिनीयर्स

किशनपोल बाजार, जयपुर-३

फोन नं० ६३८४६